जनवरी १९६९ वर्ष [illegible]—अंक १ रजि० क्र० ६६८९/६०.

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

१. सम्पादकीय	—	३
२. इतिहास में भारतीय परम्परायें	श्री गुरुदत्त	६
३. अन्तर्राष्ट्रीय हलचल	श्री आदित्य	१६
४. नागरिकों के मूल अधिकार	श्री सचदेव	२०
५. आदि आर्य एवं साम्यवादी	श्री गुरुदत्त	२४
६. अस्तित्व की रक्षा	श्री विद्यानन्द विदेह	३०
७. समाचार समीक्षा	—	३३
८. साहित्य समीक्षा	कौशिक	३८
९. राष्ट्रीय एकता—हल या समस्या	श्री आनन्दकुमार अग्रवाल	३९

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५० सम्पादक
वार्षिक ५.०० अशोक कौशिक

शाश्वत संस्कृति परिषद् के प्रकाशन

१—धर्म संस्कृति और राज्य—लेखक श्री गुरुदत्त

तीनों विषयों की व्याख्या, इनका परस्पर सम्बन्ध तथा आज के युग की समस्याओं से इनका समन्वय इस पुस्तक का विषय है। अत्यन्त ही सरल भाषा में युक्तियुक्त विवेचना इसकी विशेषता है।

मूल्य आठ रुपये

२—धर्म तथा समाजवाद—ले० श्री गुरुदत्त

समाजवाद की युक्तियुक्त विवेचना, तथा धर्म के साथ उसका 'सम्बन्ध' इस पुस्तक का विषय है। समाजवाद के विषय में बहुत-सी भ्रामक धारणाओं का स्पष्टीकरण इस पुस्तक में है। राजनीति के प्रत्येक विद्यार्थी तथा समाजवाद व धर्म में रुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए पठनीय ग्रन्थ।

मूल्य सजिल्द पुस्तकालय संस्करण ६ : रुपये

सम्पूर्ण पाकेट ,, ३ : रुपये

३—भारत—गांधी-नेहरू की छाया में—ले० श्री गुरुदत्त

'जवाहरलाल नेहरू एक विवेचनात्मक वृत्त' का संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण। यह पुस्तक पिछले एक वर्ष से भारत भर में चर्चा का विषय रही है। नया संशोधित संस्करण १५ जनवरी, १९६९ तक छप जायगा।

मूल्य सजिल्द पुस्तकालय संस्करण आठ रुपये

सम्पूर्ण पाकेट ,, तीन रुपये

४—श्रीमद्भगवद्गीता—एक अध्ययन—ले० श्री गुरुदत्त

अत्यन्त ही सरल बोधगम्य भाषा में यह अध्ययन एकदम अनूठी रचना है। गीता के विषयों का क्रमवार विस्तृत एवं युक्तियुक्त विश्लेषण।

मूल्य (कपड़े की जिल्द सहित) १५ रुपये

प्राप्ति स्थान

भारती साहित्य सदन

विक्री विभाग

३०/९० कनॉट सरकस, नई दिल्ली-१

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

सम्पादकीय

नया वर्ष

परमपिता परमात्मा की असीम कृपा से 'शाश्वत वाणी' अपने जीवन का आठवां वर्ष समाप्त कर इस अंक के साथ नवें वर्ष में प्रवेश कर रही है। हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वह हमको बल और बुद्धि प्रदान करे जिससे हम इस पत्रिका को इसके उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिये अधिक से अधिक समर्थ बना सकें।

हमारा उद्देश्य है भारत में हिन्दू राष्ट्र की, इसके वास्तविक अर्थों में, स्थापना करना। यह हमारा विश्वास है कि यदि आज भारत में, हिन्दू समाज में अराष्ट्रीयता एवं हीन भावना पनप रही है तो इसमें देश के पढ़े-लिखे विद्वान (ब्राह्मण) वर्ग की अयोग्यता ही कारण है।

भारत में पढ़े-लिखे वे माने जाते हैं, जो विश्वविद्यालयों से उपाधियाँ प्राप्त किये होते हैं। और इन विश्वविद्यालयों में डाक्टर, इन्जीनियर, वकील, क्लर्क तथा आन्दोलनकर्त्ता निर्माण किये जा रहे हैं। इनमें श्रेष्ठ मानव और श्रेष्ठ हिन्दू निर्माण नहीं किये जा रहे।

कभी कोई अपने पूर्व-जन्म के शुभ कर्मों के कारण अथवा उन शुभ कर्मों के अधीन इस जन्म में श्रेष्ठ संगत प्राप्त करने के कारण, इन विश्वविद्यालयों में पढ़ते हुए भी

मानवों की कोटि में और श्रेष्ठ जनों की कोटि में सम्मिलित हो जाता है, परन्तु समाज, पूर्ण रूप से आधुनिक विश्वविद्यालयों की उपज होने से अथवा उनसे प्रभावित होने के कारण उन श्रेष्ठ मानवों को नीच और त्याज्य मानता है। उनको समाज में मान-प्रतिष्ठा और पदवी प्राप्त नहीं हो सकती और वे प्रक्षिप्त मान छोड़ दिये जाते हैं।

इस पत्रिका का उद्देश्य है, इस कहे जाने वाले पठित वर्ग को राष्ट्रीयता का मार्ग दिखाना। जब से यह पत्रिका चल रही है, निरन्तर यह कार्य कर रही है।

हमारा यह मत है कि हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति जो प्राचीन वैदिक धर्म और संस्कृति ही है, संसार में सर्वश्रेष्ठ है। किसी काल में इसकी श्रेष्ठता की छाप तत्कालीन पूर्ण ज्ञात संसार पर लगी हुई थी। काल-चक्र से भारत का सम्पर्क संसार के अन्य देशों से छूटा और इसका प्रभाव भी विलीन हो गया। भारत, अपने में विकार उत्पन्न होने के कारण, दुर्बल हुआ तो यह दूसरों का दास भी बना। इस दासता के काल में भी भारत की आत्मा, आर्य अथवा हिन्दू धर्म और संस्कृति, इसका आश्रय बनी रही।

अब इस अंग्रेज़ी काल में प्रचलित आधुनिक शिक्षा ने हिन्दू समाज के मन में, इस धर्म और संस्कृति के प्रति घृणा निर्माण की है। परिणाम यह हो रहा है कि हिन्दू सन्तान स्वयं को हिन्दू कहने में भी संकोच अनुभव करने लगी है।

यह स्थिति केवल इस कारण उत्पन्न हुई है कि समाज में पढ़े-लिखे हिन्दू अर्थात् आर्य सन्तान अपने धर्म एवं संस्कृति से सर्वथा अलग हो गये हैं। इस अलगाव को मिटाने के लिये ही इस पत्रिका को प्रारम्भ किया गया है।

पत्रिका का उद्देश्य है कि पढ़े-लिखे हिन्दू लोगों के मनों में हिन्दू धर्म और संस्कृति की श्रेष्ठता को स्थापित करना, मनोद्‌गारों को उभार कर नहीं, वरंच उनको समझा कर कि यही एक कल्याण का मार्ग है।

पत्रिका यह यत्न करती रही है कि वैदिक सिद्धान्तों को ज्ञान-विज्ञान की कसौटी पर कस कर यह सिद्ध करे कि वे सिद्धान्त शुद्ध कुन्दन की भान्ति सोना हैं। इनमें मैल नहीं है।

पत्रिका का यह भी उद्देश्य रहा है कि आर्य अर्थात् हिन्दू समाज पर शताब्दियों की दासता के कारण जो मैल और धूरि आकर जम गयी है, उसे हटा कर इसका निर्मल रूप प्रकट किया जाये और फिर उस निर्मल रूप के साथ वर्तमान युग की कही जाने वाली उन्नति में ऐसे रहा जाये जैसे कीचड़ में कमल रहता है।

पत्रिका अपने उद्देश्यों में कितनी सफल हुई है, अभी इसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। कार्य अति दुस्तर है। एक ओर पूर्ण राज्य शक्ति, पूर्ण शिक्षा प्रपंच और चकाचौंध कर देने वाली तकनीकी उन्नति है तथा दूसरी ओर यह छोटी सी पत्रिका है। यह हम जानते हैं कि हम अकेले नहीं हैं। हमारे साथ इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये अन्य कई छोटे बड़े प्रयाण चल रहे हैं। हम भी अपने भाग का भार वहन कर रहे हैं।

जहां हम, लोगों को, धर्म और संस्कृति की शुद्ध विवेचना द्वारा यह समझाने का यत्न कर रहे हैं कि हमारे विरोधियों ने जो रूप हिन्दुस्तान का प्रस्तुत किया है, वह मिथ्या है, वहां हम विपरीत परिस्थितियों का विरोध करने का भी यत्न करते हैं।

पत्रिका का यह उद्देश्य रहा है कि :—

(१) वैदिक धर्म और वैदिक संस्कृति के शुद्ध और निर्मल स्वरूप को सामने लाया जाये।

(२) वैदिक धर्म और संस्कृति के विरोधी मत-मतान्तरों के षड्यन्त्रों का भाण्डा फोड़ा जाये।

(३) राज्य, जो अनजाने में हिन्दू धर्म और संस्कृति का विरोध कर रहा है, उसे सन्मार्ग दिखाया जाये।

(४) उन सहयोगियों को अपनी सामर्थ्यानुसार सहायता दी जाए जो हिन्दू धर्म और संस्कृति को प्रभावी बनाने में संलग्न हैं।

ईश्वर से हमारी प्रार्थना है कि वह हमें बल, बुद्धि और साहस दे कि हम अपने इस कार्य में पहले से भी अधिक उत्साह से लगे रहें।

देश की वर्तमान स्थिति

कोई दिन खाली नहीं जाता कि जिस दिन देश में कहीं न कहीं शान्ति भंग होने के समाचार न आते हों। सन् १९६७ के पंच-वर्षीय निर्वाचनों के पूर्व देशव्यापी विद्यार्थी आन्दोलन चला था। बहुत कम स्कूल, कालेज अथवा विश्वविद्यालय बचे थे जहां तोड़-फोड़ न की गयी हो। सबसे विस्मयजनक बात यह होती रही थी कि जब विश्वविद्यालय के प्राँगणों में शान्ति-व्यवस्था स्थापित करने के लिये पुलिस जाती थी, तो विद्यार्थी और संसद तथा विधान सभाओं के विपक्षी दल के सदस्य हो-हल्ला मचाने लगते थे; परन्तु विद्यार्थी तो विश्वविद्यालय अथवा कालेजों के प्रांगणों को छोड़कर बाहर जनता की धन-सम्पत्ति को भी तोड़-फोड़ करने अथवा आग लगाने चले आते थे।

विद्यार्थी [illegible] गये अथवा उनको भड़काने [illegible] किसी [illegible] तैयारी में लग गये और कुछ-कुछ शान्ति हो गयी । परन्तु एकाएक बंगाल में स्थिति बिगड़ी । कलकत्ता में और उसके आस-पास के उद्योग-क्षेत्रों में क्रान्ति का बिगुल बजा दिया गया ।

कारखानों में हड़तालें होने लगीं । मालिकों से अपनी बात मनवाने के लिये घिराव आरम्भ हुए । इस विधान के विपरीत कार्यवाही को बंगाल के एक कम्युनिस्ट मन्त्री उचित बताने लगे । केन्द्र घिराव को एक अपराध मानते हुए भी, तथा बंगाल के मन्त्री के व्यवहार को अनुचित समझते हुए भी, इस बात में हस्तक्षेप नहीं कर सका । अथवा यह भी कहा जा सकता है कि अधिकांश मंत्री केन्द्र में भी और राज्यों में भी, इस दण्ड-विधान में अपराध मानी हुई बात (घिराव) को उचित ही मानते रहे हैं ।

इसका परिणाम यह हुआ कि नक्सलबाड़ी में उपद्रव व्यापक रूप में आरम्भ हो गये । नागरिकों की निजी सम्पत्ति लूटी और और विनष्ट की जाने लगी । पूर्ण देश में हल्ला मच गया । तब राज्य विधान सभा में फूट पड़ गयी ।

अब पुनः विद्यार्थियों में हलचल मच रही है । बीसियों स्थानों पर कालेज, स्कूल और विश्वविद्यालय अनिश्चित काल के लिये बन्द करने पड़ गये हैं । इतने पर ही सन्तोष नहीं हुआ । नक्सलबाड़ी जैसा उपद्रव केरल में आरम्भ हुआ और अब छुट-पुट अन्य स्थानों पर भी हो रहे हैं ।

केन्द्र सरकार में बैठे गृह मन्त्री बार-बार कह रहे हैं कि शान्ति भंग करने वालों को कुचल दिया जायेगा, परन्तु यदि कुछ किया जा रहा है तो वह प्रभावहीन हो रहा है । उपद्रव दिन प्रतिदिन बढ़ रहे हैं ।

ऐसा क्यों हो रहा है ? इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक हो गया है । सरकार का, सोचने का ढंग मिथ्या सिद्ध हो चुका है । यदि यह मिथ्या न होता तो रोकने के उपायों के साथ साथ उपद्रव बढ़ते नहीं । वस्तुस्थिति यह है कि देश में भले लोगों की नींद हराम हो रही है । कोई नहीं जानता कि अगले दिन कहां डाका पड़ जायेगा अथवा कहां घिराव हो जायेगा ?

हमारा यह मत है कि कहीं सैद्धान्तिक भूल है । हमारे मत में भूल विचारों में ही है । धर्मयुक्त आचरण को अधर्म समझा जा रहा है और अधर्म को धर्म माना जा रहा है ।

वर्तमान 'सैकुलर स्टेट' का यह व्यवहार बन गया है कि अधर्म युक्त व्यवहार करने वालों को इस कारण क्षम्य मान लिया जाता है कि वे अधर्म

युक्त व्यवहार करने पर विवश हो रहे हैं । संसद में एक दल है जो धर्म को अधर्म कह रहा है ।

उदाहरण के रूप में जब बंगाल के कम्युनिस्ट मन्त्री ने यह कहा कि बल-पूर्वक अपनी बात मनवाना कम्युनिस्ट सिद्धान्त के अनुसार है तो उसका कथन अधर्म युक्त था। इस मन्त्री ने संविधान का, जिस पर हाथ रख कर उसने सौगन्ध ली थी, विरोध किया था । मन्त्री संविधान को भंग करे तो वह पद से निकाला जा सकता है । सौगन्ध भंग करने का दण्ड भी है। केन्द्र ने यह नहीं किया ।

अभिप्राय यह कि सरकार अधर्म युक्त व्यवहार करती है। सरकार अधर्म को सहन करती है। इसी प्रकार जब दंगे होते हैं तो सरकार दोषियों की रक्षा करती है। यह भी अधर्म युक्त व्यवहार है।

ऐसी अधर्म युक्त सरकार न तो विद्यार्थियों की समस्या सुलझा सकती है और न ही सर्व साधारण में फैल रही अराजकता को दूर कर सकती है। यह सरकार इस अधर्मयुक्त नीति के पालन करने से विनष्ट हो जायेगी।

धर्म क्या है ? वर्तमान समय में हमारा संविधान ही धर्म है। यदि विद्यार्थी विश्वविद्यालय के भीतर किसी प्रकार की तोड़ फोड़ करते हैं तो भला उनको दण्ड कौन दे ? सरकार की पुलिस क्यों न उस तोड़-फोड़ को रोकने का यत्न करे ? जो विद्यार्थी, प्राध्यापक अथवा जो दल यह कहता है कि तोड़-फोड़ करने वाले विद्यार्थी को विश्वविद्यालय से बाहर की पुलिस और सेना पकड़ नहीं सकती अथवा उनमें व्यवस्था स्थापित नहीं कर सकती, वह अधर्म को प्रोत्साहन देता है। वह दण्डनीय है।

कुछ लोग मिलकर एक दल बना लेते हैं । इस पर क्या उस दल का यह अधिकार हो जाता है कि वह अधर्म को प्रोत्साहन दे । इस देश में यही हो रहा है और सरकार राजनीति का अर्थ समझती है कि धर्म, अधर्म दोनों ही क्षम्य हैं। उसकी दृष्टि में संसद के अतिरिक्त कुछ धर्म है ही नहीं ।

यह बात गलत है। एक अंग्रेज राजनीतिज्ञ ने यह कहा था, प्रजातन्त्र में सबको सब प्रकार की स्वतन्त्रता है। शर्त यह है कि स्वतन्त्रता का भोग करने वाला दूसरे को भी वैसी ही स्वतन्त्रता देने के लिये तैयार हो ।

इसी बात को हमारा धर्मशास्त्र इस प्रकार कहता है कि जैसा व्यवहार तुम अपने साथ पसन्द नहीं करते, वैसा तुम किसी दूसरे के साथ भी मत करो ।

यह सार है धर्म का। इस समय देश में ऐसे दल हैं जो इस सिद्धान्त को नहीं मानते। वे अपने पक्ष वालों के साथ दूसरों से भिन्न व्यवहार रखने की सर्व साधारण में घोषणा करते हैं। यह सिद्धान्त मानने वाले अधर्मी हैं और अधर्माचरण करने वाले दण्डनीय हैं।

देश में न्यायालय धर्म-अधर्म में निर्णय करने के लिये नियुक्त हैं। परन्तु भारत की स्थिति यह है कि जब न्यायालय कोई निर्णय देता है तो उस निर्णय को अमान्य करने के लिये कानून में संशोधन कर दिया जाता है। यह अधर्म है।

जब कानून के किसी शब्दार्थ पर विवाद हो तो उस शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये संशोधन किया जाना ठीक है, परन्तु जब कानून के आधार पर ही मतभेद हो जाये तो न्यायालय की बात मान्य होनी चाहिये। ऐसा हो नहीं रहा। इसका परिणाम यह हो रहा है कि देश में अधर्म और अधर्माचरण करने वालों की रक्षा हो रही है।

धर्म वह नहीं जो संसद स्वीकार कर ले। धर्म का अपना पृथक् अस्तित्व है। संसद उस शाश्वत धर्म को मानने वाली होनी चाहिये।

धर्म का आधार हमने ऊपर बताया है। यह कसौटी है कर्म को परखने की, जिससे धर्मयुक्त कर्म और अधर्मयुक्त कर्म में भेद-भाव किया जा सकता है।

व्यक्ति पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है और उसको उस स्वतन्त्रता का भोग प्राप्त होना चाहिये। शर्त यह है कि वह उस स्वतन्त्रता का भोग करता हुआ किसी दूसरे की स्वतन्त्रता का हनन करने वाला न हो।

जब एक व्यक्ति दूसरे की वह स्वतन्त्रता छीनने लगता है; जिसका भोग वह स्वयं कर रहा होता है, तब वह अधर्माचरण करता है और दण्डनीय है।

यदि देश में सुव्यवस्था रखनी है तो धर्म-राज्य स्थापित होना चाहिये। वर्तमान सरकार ऐसा राज्य स्थापित नहीं कर सकी। दल की रक्षा धर्म नहीं है। प्रत्युत दल धर्म की रक्षा के लिये होते हैं। ऐसा दल निर्माण करने की आवश्यकता है और ऐसे दल की सत्ता स्थापित करना धर्म है।

भूल सुधार

दिसम्बर १९६८ के विशेषांक के पृष्ठ ३८ की पंक्ति १९ के अन्त में 'नहीं' शब्द भूल से लिखा गया है। पाठक गण कृपया 'नहीं' शब्द काट लें। अब वाक्य इस प्रकार होगा—इस श्लोक से सिद्ध है कि राजा कृषि और गौ-रक्षा पर अधिक ध्यान देता था।

—सम्पादक

इतिहास में भारतीय परम्परायें

श्री गुरुदत्त

मानव सृष्टि की उत्पत्ति

मानव सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में खोज करते हुए प्रायः युरोपीय विद्वान और उनकी परिपाटी पर चलने वाले भारतीय विद्वान एक भारी भूल करने लग जाते हैं। वे वेदों में लिखे वर्णन को मानव इतिहास मान लेते हैं। यह भूल भारी भ्रम का कारण हुई है।

उदाहरण के रूप में ऋग्वेद के एक मन्त्र में लिखा है कि अदिति के आठ पुत्र थे। मन्त्र इस प्रकार है :—

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व स्परि ।
देवाँ उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत् ॥
(ऋ० — १०-७२-८)

इस मन्त्र का अर्थ है : अदिति (प्रकृति) से आठ पुत्र (तत्त्व) हुए। इन देवों में से सात (नक्षत्र) नीचे रहे और मार्तण्ड ऊपर हुआ।

परन्तु ये देवता और यह अदिति मानव शरीरधारी देवता नहीं थे। यहाँ अभिप्राय अष्टधा प्रकृति से है। यही अदिति है और प्रकृति के आठ पुत्र हैं।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥
(भ० — गी० — ७।४)

अर्थात्——पृथिवी, आपः, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार, ये आठ प्रकृति से जन्म लेते हैं।

वास्तविकता यह है कि वेद में आये शब्दों से ही मनुष्यों ने अपने तथा अपनी सन्तानों के नाम रखे। अतः जब दक्ष के कन्यायें हुई तो उसने एक का नाम अदिति रख दिया और अदिति के बारह पुत्र हुए। वे भी दिव्य गुण-सम्पन्न थे। अतः उनका नाम देवता पड़ा।

दक्ष कन्या अदिति के बारह पुत्र देवता थे। आदि प्रकृति अदिति के आठ पुत्र (तत्त्व) थे।

जब यह समझ लिया जाये कि वेदों में मानव इतिहास नहीं तो फिर भ्रम होने की सम्भावना नहीं रहती। साथ ही भारतीय इतिहास स्पष्ट समझ में आने लगता है।

ब्रह्मा परमात्मा की कर्तृत्व शक्ति को कहते हैं। वैवस्वत मन्वन्तर में मानव सृष्टि हुई। वैवस्वत मन्वन्तर में जो परमात्मा की कर्तृत्व शक्ति थी, वह विवस्वान कहलायी।

विवस्वान का अर्थ सूर्य भी है। सूर्य की किरणों ने मानव सृष्टि की उत्पत्ति की।

यह हम इसी लेखमाला के पहले एक लेख में लिख चुके हैं कि ब्रह्मा का सातवां जन्म कमल से हुआ।

इदं च सप्तमं जन्म पद्मजन्मेति वै प्रभो।
(महा भा० शा० ३४७–४३)

इसकी व्याख्या भी महाभारत में है।

ततस्तेजोमयं दिव्यं पद्मं सृष्टं स्वयम्भुवा।
तस्मात् पद्मात् समभवद् ब्रह्मा वेदमयो निधिः॥
अहंकार इति ख्यातः सर्वभूतात्मभूतकृत्।
ब्रह्मा वै स महातेजा य एते पञ्च धातवः॥
(महा भा० शा०—१८२—१५, १६)

लिखा है कि जब पृथिवी बन गई तब उस पर दिव्य पद्म उत्पन्न हुआ और उस पर स्वयंभुव मानस देव उत्पन्न हुए। वे 'वेदमय' ज्ञानमय थे। वे ब्रह्मा थे।

ब्रह्मा अहंकार नाम से भी विख्यात हैं। वे सब भूतों की आत्मा हैं और उन भूतों की सृष्टि करने वाले हैं। वे पंचभूतों से ही उत्पन्न हुए थे।

आगे चल कर लिखा है :—

मानसस्येह या मूर्तिर्ब्रह्मत्वं समुपागता।
तस्यासनविधानार्थं पृथिवी पद्ममुच्यते॥
कर्णिका तस्य पद्मस्य मेरुर्गगनमुच्छ्रितः।
तस्य मध्ये स्थितो लोकान् सृजते जगतः प्रभुः॥
(महा भा०—शा०—१८२-३७,३८)

अर्थात्······ब्रह्मत्व) परमात्मा की कर्तृत्व-शक्ति मानस देह में मूर्ति के

रूप में प्रकट हुई। उनके आसन के लिये जो पृथिवी जल से निकली, वही पद्म (कमल) है।

इस कमल की कर्णिका मेरु पर्वत है जो आकाश में बहुत ऊंचे तक गया है। उसी पर्वत के मध्य भाग में स्थित होकर ब्रह्मा ने सब लोकों की सृष्टि की।

इन उद्धरणों से यह प्रकट होता है कि मन्वन्तर के आरम्भ में पृथिवी जल से ढँपी हुई थी। उस पृथिवी का जल सूखने लगा तो पृथिवी का जो सबसे ऊँचा भाग था, वह जल से निकलने वाले कमल की भान्ति नग्न हुआ। वहां ब्रह्मा बना और उन्होंने सृष्टि की।

यह जल कैसे सूखा? इसके विषय में वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार लिखा है :—

सर्वं सलिलमेवासीत् पृथिवी तत्र निर्मिता।
ततः समभवद् ब्रह्मा स्वयंभूर्दैवतैः सह॥
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुंधराम्।
असृजच्च जगत् सर्वं सह पुत्रः कृतात्मभिः॥

(वा० रा०—अयो०—११०-३,४)

अर्थात्—पहले सब कुछ जल-मग्न था। उस जल के भीतर पृथिवी बनी। अर्थात् जल सूखने पर भूमि जल से बाहर निकली। उस पर देवताओं के साथ ब्रह्मा प्रकट हुए। भूमि को जल से बाहर वराह ने निकाला, जिस पर कृतात्मा ब्रह्मा ने पुत्रों के साथ सृष्टि की।

ब्रह्मा जिन देवताओं के साथ प्रकट हुए, वे वही थे, जिनका वेद (१०-७२-८) में वर्णन आया है। अभिप्राय स्पष्ट है कि परमात्मा मानव सृष्टि करने में उन देवताओं की आवश्यकता अनुभव करते थे। वे देवता थे अदिति (आदि प्रकृति) के पुत्र। महत्, बुद्धि, अहंकार तथा पंच महाभूत। इनकी सहायता से ही शरीर, इन्द्रियां, मन और बुद्धि बनीं और जब शरीर बन गये तो आत्मायें उनमें आकर बसने लगीं।

वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि वराह ने पृथिवी को जल से निकाला। यह वराह कौन था?

निरुक्त में वराह के अर्थ लिखे हैं :—

वराहो मेघो भवति। वराहारः। (निरुक्त—५-४)

वराह बादल बन जाता है जो जल पीता है।

ब्रह्मा कौन था? इस विषय में भी वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि

यह कृतात्मा था । (अथ०—११०-४) कृतात्मा का अर्थ परमात्मा से है । कृतात्मा का अभिप्राय परमात्मा की निर्माण शक्ति ही है ।

क्या ब्रह्मा पंचभौतिक शरीर वाला था ? यह असम्भव नहीं । वैसे तो प्रत्येक प्राणी में कर्तृत्व शक्ति रहती है । इसी से वह सन्तान निर्माण करता है । प्राणी के पंच-भौतिक शरीर में ही यह कर्तृत्व शक्ति रहती है । अतएव ब्रह्मा का पंच-भौतिक शरीर में होकर मानव सृष्टि का निर्माण कर सकना असम्भव प्रतीत नहीं होता ।

प्रथम मानव जो बना, वह मानव देह-मूर्ति रूप में प्रकट हुआ । (म०-भा०-शा०-१८८-३७)

ब्रह्मा ने सृष्टि रचना उस समय आरम्भ की होगी, जब भूमि जल से निकल चुकी होगी और उस पर वनस्पतियां उत्पन्न हो चुकी होंगी तथा वन, पशु भी बन चुके होंगे । यह भी हम इसी लेखमाला के एक लेख में बता चुके हैं कि वनस्पतियां कहां से आयीं और इतर जीव-जन्तु कैसे उत्पन्न हुए ।

ब्रह्मा ने कई प्रकार के शरीर निर्माण किये ।

भागवत् महापुराण में इस प्रकार वर्णन आया है :—

> ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रमथ तामिस्रमादिकृत्
> महामोहं च मोह च तमश्चाज्ञानवृत्तयः ॥
> दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बह्वमन्यत ।
> भगवद्ध्यानपूतेन मनसान्यां ततोऽसृजत् ॥
> सनकं च सनन्दं च सनातनमथात्मभूः ।
> सनत्कुमारं च मुनीन्निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः ॥
>
> (भा०-पु०-३-१२-२,३,४)

सबसे पहले ब्रह्मा ने तम, मोह, महा-मोह, तामिस्र और अन्ध तामिस्र प्रकृतियों वाली सृष्टि रची ।

तम के अर्थ हैं अविद्या । मोह अस्मिता को अर्थात् अर्ध चेतना को कहते हैं । महामोह राग का नाम है । तामिस्र द्वेष को कहते हैं और अन्ध तामिस्र आसक्ति को कहते हैं । इसका अभिप्राय है कि पहले इतर जीव-जन्तु उत्पन्न किये । इस सृष्टि में पूर्व कल्प की पापात्मायें आ बैठीं ।

ब्रह्मा को इस सृष्टि के रचने से प्रसन्नता नहीं हुई । अतः उन्होंने प्रयत्न से सनक, सनन्द, सनातन और सनत्कुमार, ये चार निवृत्तिपरायण उर्ध्वरेता मुनि उत्पन्न किये ।

इन्होंने आगे सृष्टि चलाने से इन्कार कर दिया।

इस प्रकार भिन्न भिन्न प्रकार की सृष्टि उत्पन्न करने के अन्त में उन्होंने दस पुत्र उत्पन्न किये, जिन्होंने मानव सृष्टि उत्पन्न की।

अथाभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे ।
भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः ॥
मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥

(भा०-पु०—३।१२-२१,२२)

अर्थात्—परमात्मा की शक्ति से सम्पन्न ब्रह्मा जी ने सृष्टि के संकल्प से दस पुत्रों को जन्म दिया। इनके नाम हैं मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद। (ऐसा ही मनु० १-३५ में भी लिखा है।)

ब्रह्मा के इन दस पुत्रों में छः ऋषि थे और वे ब्रह्मा के मानस पुत्र कहलाये। इनके विषय में महाभारत में लिखा है :—

ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः ।
मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥

(महा भा०-आदि०—६५-१०)

मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु—ये ब्रह्मा जी के छः पुत्र महर्षि कहलाये।

शेष चार भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद विद्वान तो थे, परन्तु ऋषि नहीं थे। ऋषि उनको कहते हैं जो वेदों की ऋचाओं को सुनकर उनको मानव भाषा में कह सकते थे और जो उन ऋचाओं के अर्थ बता सकते थे। नारद इत्यादि देवताओं से उच्चारित ऋचाओं को सुन और समझ नहीं सकते थे। विद्वान् लोग इन ऋषियों से बतायी बात को ऋचाओं में स्वीकार करते थे। ये छः ऋषि ही ब्रह्मा के मानस पुत्र कहे जाते हैं।

ब्रह्मा ने कुछ कन्याएँ भी उत्पन्न कीं। एक शतरूपा थी और फिर शतरूपा से अकूति, देवहूति और प्रसूति उत्पन्न हुईं।

प्रसूति का विवाह दक्ष प्रजापति से हुआ और उससे तेरह कन्यायें अदिति इत्यादि उत्पन्न हुईं। इनका विवाह मरीचि के पुत्र कश्यप से हुआ और इन तेरह पत्नियों से बहुत सन्तान हुईं।

यहां अदिति से अभिप्राय उस अदिति से नहीं, जिसका उल्लेख ऋग्वेद (१०-७२-८) में आया है। वहां अदिति से अभिप्राय मूल प्रकृति से है और

उसके आठ पुत्र कहे हैं। इस स्थान पर अदिति दक्ष की कन्या का नाम है और उसके बारह पुत्र हुए।

वैदिक नामों से तत्कालीन मनुष्यों के नाम रखे जाते थे। अदिति के बारह पुत्र आदित्य हुए। इनके नाम भी दिये हैं--

धाता, मित्र, अर्यया, इन्द्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा, विष्णु।

दक्ष की दूसरी कन्या थी दिति। इसके (कश्यप से) एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ। नाम था हिरण्यकशिपु। (महा भा० आदि—६५–१७)

कुछ पुराणों में दिति के दो पुत्र लिखे हैं। दूसरे का नाम हिरण्याक्ष कहा है।

दिति के पुत्र दैत्य कहलाये। भाग्य से दिति के पुत्र स्वभाव के और कर्म के अति कूर तथा दुराचारी थे। इस कारण दैत्य नाम के अर्थ ही दुराचारी, क्रूर स्वभाव और कर्म वाले हो गये।

हमने यह मानव सृष्टि की उत्पत्ति रामायण, महाभारत, पुराण और भागवत् महापुराण में से वर्णन की है। ये सब ग्रन्थ इतिहास पुराण और धर्म ग्रंथ हैं। इतिहास उस वृत्तान्त को कहते हैं जो वास्तव में घटा हो। पुराण घटना का कारण और उसके परिणामों को बताते हैं। धर्म शास्त्र उस ग्रन्थ को कहते हैं जिसमें मानव कल्याण के कर्मों का उल्लेख हो। उक्त ग्रन्थ इन सब गुणों को रखते हैं। हमने इतिहास अंश को ही यहां लिखने का यत्न किया है।

महाभारत में लिखा है :—

अस्मिन्नर्थश्च धर्मश्च निखिलेनोपदिश्यते।
इतिहासे महापुण्ये बुद्धिश्च परिनैष्ठिकी।।
(महा भा०—आदि० ६२–१७)

अर्थात्—महाभारत में पूर्ण रूप से धर्म और अर्थ का उपदेश है। इसमें इतिहास भी है। महापवित्र मोक्ष दिलाने वाली बुद्धि का भी उपदेश है।

विद्वान पुरुषों को इनको पृथक् पृथक् कर समझना चाहिये।

ब्रह्मा में अमैथुनीय सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति थी। उस काल के कुछ अन्य ऋषियों में भी यह शक्ति थी। मरीचि का पुत्र कश्यप भी अमैथुनीय उपज था। या तो उस समय पृथिवी पर ऐसी स्थिति थी कि पंच महाभूत स्वयमेव एकत्रित हो शरीर निर्माण करते थे और उनमें आत्मायें आकर निवास पा जाती थीं अथवा यह मानना पड़ेगा कि ब्रह्मा, मरीचि इत्यादि

विशेष सामर्थ्य के स्वामी थे और वे ऐसी सृष्टि कर सकते थे।

मानव के उत्पन्न होने की कथा और मानवों के वंश चलने की बात वेदों में नहीं है। जगत् रचना की कथा अवश्य वेदों में है। पृथिवी नक्षत्र इत्यादि के बनने का वृत्तान्त भी है। इस पृथिवी पर के मानवों का इतिहास वेदों में नहीं है। मानव का इतिहास कुछ तो ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है और कुछ पुराणादि ग्रन्थों में है।

मानवों के जैसे कुछ नाम वेदों में मिलते हैं। परन्तु वहाँ ये नाम जगत् रचना के कुछ पदार्थों के लिये प्रयुक्त हुए हैं। वास्तव में मनुष्यों के नाम उन वेद शब्दों पर रखे गये हैं। इसका प्रमाण हम मनुस्मृति में से दे चुके हैं।

भारतीय प्राचीन साहित्य में तीन प्रकार के देवताओं का उल्लेख मिलता है। एक देवता हैं जिनका वर्णन हम ऊपर (ऋ० —१०-७२-८) कर आये हैं। दूसरे देवता हैं जिनका उल्लेख मनुस्मृति (१-१३) में आया है। जब हिरण्य-गर्भ विखण्डित हुआ तो पृथिवी (नक्षत्रादि) और देवता बने। ये देवता सूर्य, मरुत, इन्द्र वरुण इत्यादि थे। तीसरे देवता थे दक्ष कन्या अदिति के बारह आदित्य पुत्र। इनमें इन्द्र, वरुण, विष्णु आदि थे।

यहां पर यह समझने की आवश्वकता है कि तीनों देवता भिन्न भिन्न हैं। अदिति के पुत्र इन्द्र, विष्णु इत्यादि देवता मानवों के पूर्वज हैं। ●

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

●

श्री आदित्य

पृथिवी पर मानव सृष्टि के आरम्भ से ही देवासुर संग्राम चल रहा है। जब देवता अथवा दानव युद्ध करते करते थक जाते हैं तो कुछ काल के लिये शान्ति स्थापित हो जाती है। परन्तु ज्यों ही दानव विश्राम कर पुनः शक्ति-संचय कर लेते हैं, युद्ध की भेरी बजने लगती है।

यह युद्ध भेरी कौन बजाता है ? असुर अथवा देवता ? देवताओं के सिर पर कोई सींग नहीं होते। जो युद्ध की भेरी बजाता है, वह निस्सन्देह असुर ही है।

सन् १९६८ ईसवी, तदनुसार विक्रमी सम्वत् २०२५ अथवा कलि सम्वत् ५०६९ और सृष्टि सम्वत् १,९७,२९,४०,०६९ में पुनः दानवों ने युद्ध भेरी बजायी है और देवता नींद से जाग करवट ले रहे प्रतीत होते हैं।

इस वर्ष के आरम्भ में एक छोटे से देश चैकोस्लोवाकिया ने यह अनुभव किया कि देश के पढ़े-लिखे विद्वानों पर राजनीति का अंकुश नहीं होना चाहिये। वे मानवता के प्रतिबन्धों में रहकर स्वेच्छा से विचार कर सकते हैं और अपने विचारित मत को प्रकट भी कर सकते हैं।

पिछले बीस वर्ष से यह स्वतन्त्रता वहां नहीं थी। देश के सैनिक गुट्ट ने सोवियत रूस की सहायता से यह स्वतन्त्रता छीन रखी थी। रूस अपने देश की अन्य समस्याओं में उलझ रहा प्रतीत होता था और चैकोस्लोवाकिया का सैनिक गुट्ट अकेला इस नियन्त्रण को रखने में अशक्त हो रहा था। विद्वानों को स्वतन्त्रता दी जाने लगी तो रूस ने यह अनुभव किया कि यह स्वतन्त्रता एक भावना है जो छूत से फैल सकती है और कालान्तर में उनके अपने देश के विद्वान् भी वही स्वतन्त्रता मांगने लगेंगे।

विद्वानों को स्वतन्त्रता देने का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि सैनिक गुट्ट जिसे क्षत्रिय वर्ग के नाम से हम जानते हैं, विद्वानों (ब्राह्मणों) की सम्मति

से काम करने लगता है। सैनिक स्वेच्छा से तो कदाचित् नहीं मानता, परन्तु यह विद्वानों का काम है कि देश में ऐसी शक्तियों का निर्माण करें जो देश के क्षत्रियों को विद्वानों के अधीन कार्य करना स्वीकार करा लें ।

असुर प्रवृति के लोग सदा मूढ़ता करने पर तत्पर रहते हैं और यही बात सोवियत रूस ने की है । सोवियत रूस ने एक 'वारसा पैक्ट' के नाम से करार किया था । उस करार में रूस, बलगारिया, रूमानियां, पोलैण्ड और पूर्वी जर्मनी सम्मिलित हैं । इस करार में मुख्य बात यह है कि पश्चिमी युरोप यदि इन देशों में से किसी भी देश पर आक्रमण करे तो ये सब देश मिलकर पश्चिमी युरोप का विरोध करेंगे ।

चैकोस्लोवाकिया पर न तो किसी ने आक्रमण किया था और न ही चैकोस्लोवाकिया ने वारसा करार से पृथक् होने का विचार प्रकट किया था । हां, विद्वानों द्वारा स्वतन्त्रता से लिखे गये लेखों से सोवियत रूस की राज्य पद्धति जो चैकोस्लोवाकिया में चलती थी, बदलने लगी थी । इस देश की 'प्रेज़िडियम' ने यह स्वीकार कर लिया था कि सरकारी सत्ताधारी दल के अतिरिक्त भी दल राजनीति में बन सकते हैं ।

रूस यह समझता है कि राजनीति में एक ही दल होना चाहिये । यही दल अपने प्रतिनिधि राज्य-संचालन के लिये भेज सकता है । वहाँ सरकारी दल के अतिरिक्त अन्य किसी दल के बनने की न तो आवश्यकता है और न ही स्वीकृति ।

रूस में सत्ताधारी दल की सदस्यता पूर्ण जनता की ४ प्रतिशत है । अभिप्राय यह कि शेष ९६ प्रतिशत जनता अपना किसी प्रकार का भी राजनीतिक संगठन नहीं बना सकती ।

यही बात चैकोस्लोवाकिया में थी और वहां पर विद्वानों (लेखक वर्ग) के प्रचार से सरकार को यह समझ आया कि यह अन्याय हो रहा है । अतः वह देश राजनीति में भिन्न दल बनने की स्वीकृति देने जा रहा था । यह स्वतंत्रता रूस को पसन्द नहीं आयी और उसने घोषणा कर दी कि चैकोस्लोवाकिया ने वारसा करार को भंग किया है और पीछे रूस, बलगारिया, पोलैण्ड तथा पूर्वी जर्मनी ने मिलकर चैकोस्लोवाकिया पर आक्रमण कर दिया और उस पर अधिकार कर पुनः उसी सैनिक गुट्ट का प्रभुत्व करा दिया है, जिसका राज्य इस उदार नीति के पहले था ।

इस आक्रमण का चैकोस्लोवाकिया सरकार ने तो विरोध किया नहीं ।

जनता की ओर से अवश्य विरोध हुआ है; परन्तु सेना का विरोध सेना से अथवा बौद्धिक विकास से होता है। निहत्थी जनता किसी सैनिक गुट्ट का विरोध नहीं कर सकती।

सरकार की ओर से आक्रमण का विरोध तब तक असम्भव था, जब तक रूस का और वारसा शक्तियों का विरोधी धड़ा उनकी सहायता पर न आ जाता। यह धड़ा 'नाटो' के नाम से विख्यात है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि चेकोस्लोवाकिया की सरकार ने न तो वारसा गुट्ट को छोड़ा और न ही यह नाटो 'ग्रुप' में सम्मिलित होना चाहता था। इस कारण चैकोस्लोवाकिया को छोटी सी सैनिक शक्ति दैत्यराज रूस और उसके साथियों की प्रबल शक्ति का विरोध नहीं कर सकी। सरकार मौन रही। जनता ने अपने विरोध का संकेत तो दिया; परन्तु वह सफल नहीं हो सकती थी और न ही हुई।

परिणाम यह हुआ है कि रूस और उसके साथियों की सेना अभी तक चैको-स्लोवाकिया में विद्यमान है। एक विशेष बात यह हुई है कि रूमानियां, जो वारसा में भागीदार है, चैकोस्लोवाकिया के आक्रमण में सम्मिलित नहीं हुआ। रूस इस को वारसा करार का भंग मानता है और रूमानियां ऐसा नहीं मानता। रूमा-नियां की सरकार कह रही है कि वारसा करार पर हस्ताक्षर करने वाले देश अपने भीतरी प्रबन्ध में स्वतन्त्र हैं। रूस कहता है कि उनको इतनी ही स्वतन्त्रता है कि वे शासन चला सकते हैं, परन्तु शासन रूस की पद्धति पर ही होना चाहिये। वह शासक दल समाजवादी दल होगा और अन्य किसी दल को स्वीकृति नहीं।

यद्यपि अभी रूमानियां में, सत्ताधारियों के विरुद्ध कोई दल बनाने की स्वीकृति नहीं है, इस पर भी रूमानियां इस बात को मानने को तैयार नहीं कि और दल बन नहीं सकते।

अतः यह भय है कि रूमानियां पर भी वैसा ही सैनिक अभियान हो सकता है जैसा चैकोस्लोवाकिया पर हुआ था। रूमानियां में सोवियत सेनायें पहुंचीं तो फिर टर्की और यूनान, बलगारिया और यूगोस्लाविया भी रूस के अंगूठे के नीचे आ जायेंगे।

यह भय वास्तविक प्रतीत होता है। चैकोस्लोवाकिया के आक्रमण के उपरान्त रूस ने दो बातें और की हैं। एक तो अपना नौबेड़ा भूमध्य-सागर में सुदृढ़ कर दिया है। वैसे रूसी बेड़ा सिकन्द्रिया के बन्दरगाह पर पहले ही आता जाता रहता है। अब इस बेड़े को और अधिक सुदृढ़ कर दिया गया है।

इसके अतिरिक्त भूमध्य सागर के मुख पर जबराल्टर के मुकाबले में रूस परस-अल-कबीर पर अधिकार कर लेने का संकेत कर रहा है।

परस-अल-कबीर भूमध्य सागर के तट पर अलजीरिया की एक बन्दरगाह थी और सन् १९६२ के 'ईवन समझौते' के अनुसार फ्रांस को इस बन्दरगाह पर १५ वर्ष तक अधिकार रखना था, परन्तु सन् १९६७ में ही फ्रांस ने इसे छोड़ दिया था। आजकल अलजीरिया रूस के साथ घी-शक्कर हो रहा है। अरब देशों के साथ साथ यह भी रूस से अस्त्र-शस्त्र भारी मात्रा में ले रहा है। पीछे रूसी नौ सेना के अधिकारी इस बन्दरगाह को देखने भी गये थे।

दूसरी ओर असुर शक्तियों के विरोधी देवता लोग भी करवट ले रहे प्रतीत होते हैं। अमरीका ने भी अपने कुछ और सैनिक जहाज भूमध्य सागर में अपने छठे बेड़े में भेज दिये हैं। अमरीका के 'दो क्रूजर' आजकल कृष्ण सागर की भी सैर कर रहे हैं।

नाटो (इंग्लैण्ड फ्रांस, इटली, टर्की, स्वीडन, नारवे, पश्चिमी जर्मनी) ने ब्रसल्ज में अपनी कान्फरेन्स की थी। अभी तक फ्रांस नाटो से तटस्थ हो रहा प्रतीत होता था। अब वह पुनः सक्रिय भाग ले रहा दिखायी देने लगा है।

मध्य पूर्व एशिया में अरब देश और इस्राईल में झड़पें हो रही हैं। सन् १९६७ में इस्राईल ने अरब देशों के दांत बुरी तरह खट्टे किये थे। उस समय यद्यपि युद्ध का श्रीगणेश अरब देशों ने किया था परन्तु जीत इस्राईल की हुई थी। अब अरब देश अपनी हार का बदला लेना चाहते हैं और सीरिया तथा जोर्डन में से छापामार सैनिक इस्राईल क्षेत्र में आ-आकर लूट-मार कर रहे हैं। इनके विपरीत इस्राईली भी आक्रमण करते रहते हैं।

कोई बड़ा युद्ध होगा ?

लक्षण ऐसे प्रतीत होते हैं कि तुरन्त ही एक भयंकर देवासुर संग्राम आरम्भ होने वाला है। यह देखा गया है कि कभी कभी देवता हार भी जाते हैं, परन्तु ये हारते तभी हैं जब कि इनमें जीवन का मोह आ जाता है। जो आस्तिक हैं, आत्म तत्त्व को मानते हैं और जन्म तथा मरण को ऐसे समझते हैं जैसे कपड़ा बदलना हो, वे कभी परास्त नहीं होते। कुछ काल के लिये दब अवश्य जाते हैं, परन्तु एक एक के सौ सौ बनकर ये पुनः युद्ध करते हैं और विजय प्राप्त करते हैं।

देखना यह है कि आजकल के देवता कैसे हैं ? उनका जीवन से कितना मोह है ? यह सम्भव है कि वे देवता होने का केवल अभिनय करते हों। ●

नागरिकों के मूल अधिकार

श्री सचदेव

संसद सदस्य श्री नाथ पाई ने संसद में एक बिल उपस्थित किया है, जिस का आशय है कि संविधान के खण्ड III में दिये गये मूलाधिकारों में संसद परिवर्तन कर सकती है ।

इस पर प्रवर कमेटी ने कुछ परिवर्तन किये हैं । इन परिवर्तनों का आशय यह है कि वे परिवर्तन राज्य विधान परिषदों से भी स्वीकार कराये जायें ।

यह झगड़ा आज स्वराज्य मिलने के २१ वर्ष उपरान्त इस कारण उठ खड़ा हुआ है कि पिछले वर्ष सर्वोच्च न्यायालय ने एक गोलकनाथ की अपील पर बहुमत से यह निर्णय दिया था कि नागरिकों के मूलाधिकार बदले नहीं जा सकते । न ही उनमें कमी की जा सकती है ।

श्री नाथ पाई का बिल संसद में उपस्थित है और इस पर ले-दे हो रही है । यह हम नहीं जानते कि जब तक हमारा यह लेख पाठकों तक पहुंचेगा, तब तक नाथ पाई का बिल संसद द्वारा स्वीकार हो जायेगा अथवा अस्वीकार कर दिया जायेगा । इस पर भी हम इस विषय पर अपनी सम्मति पाठकों के ज्ञान-वर्धन के लिये लिख रहे हैं ।

यह एक सिद्धान्त का झगड़ा आ उपस्थित हुआ है । इस झगड़े के निर्णय से भारत के नागरिकों के भविष्य पर एक भारी प्रभाव पड़ने वाला है । विवादास्पद बात यह है कि जनता द्वारा निर्वाचित संसद क्या जनता के मूलाधिकारों को शून्य करने का अधिकार रखती है ?

आइये, देखें वर्तमान संविधान का मत क्या है ?

पहली बात यह है कि पूर्ण संविधान में, यह बात कहीं नहीं लिखी मिलती कि संसद एक सर्वसत्तात्मक संस्था है । संविधान के खण्ड V में अध्याय II संसद के विषय में है । इसमें भी कहीं इस बात का उल्लेख नहीं कि संसद सर्वसत्तात्मक संस्था है ।

संविधान में सर्वसत्तात्मक यदि कोई है तो वह यहां की जनता है और जनता के मूलाधिकार संविधान ने निश्चय किये हैं । प्रश्न यह उत्पन्न होता है

कि जनता के प्रतिनिधि जनता के मूलाधिकारों को निःशेष कर सकते हैं अथवा नहीं ?

आज से पहले कई बार मूलाधिकारों में परिवर्तन अथवा संकुचन हुआ है। कई बार सर्वोच्च न्यायालय ने भी उन परिवर्तनों को स्वीकार किया है, परन्तु गोलकनाथ की अपील पर निर्णय देते हुए बहुमत से सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने उन संशोधनों और न्यायालय के उन विषयों को गलत घोषित किया है।

सर्वोच्च न्यायालय को इस विषय में मत-परिवर्तन का पूर्ण अधिकार है और सर्वोच्च न्यायालय ने इस परिवर्तन में युक्ति भी दी है। प्रथम युक्ति तो यह है कि देश के नागरिक ही सर्वसत्ता सम्पन्न हैं। देश के नागरिकों द्वारा निर्वाचित संसद के अधिकार नागरिकों से अधिक नहीं हो सकते। नागरिकों ने संविधान में संसद को कुछ विषयों पर विचार करने और कानून बनाने के अधिकार दिये हैं। ये अधिकार परिशिष्ट सात सूची I और III में विषयों की सूची में बताये हैं।

इनमें भी संविधान में दिये मूलाधिकारों का विषय नहीं है। एक विषय है जो मूलाधिकारों को स्पर्श करता है। उदाहरण के रूप में सूची III में संख्या ४२ में शब्द हैं—

Acquisition and requisitioning of property अर्थात् सम्पत्ति का ग्रहण करना अथवा ले लेना। परन्तु यह संविधान में संशोधन करने का अधिकार नहीं देता।

अतः संविधान में संशोधन के लिये संविधान सभा ही सक्षम है। ऐसी संविधान सभा का निर्वाचन संशोधन के नाम पर ही किया जाना चाहिये।

अभिप्राय यह कि संविधान के संशोधन का अधिकार संविधान सभा को ही होना चाहिये। संसद को नहीं है।

परन्तु इससे पूर्व जो भी संशोधन तथा संकोचन किये गये थे, वे संविधान की धारा ३६८ के अन्तर्गत किये गये थे। धारा ३६८ इस प्रकार है—

Sec. 368. An amendment of this Constitution may be initiated only by the introduction of a Bill for the purpose in either House of Parliament, and when the Bill is passed in each House by a majority of the total membership of that House and by a majority of not less than two thirds of the

members of that House present and voting, it shall be presented to the President for his assent and upon such assent being given to the Bill the Constitution shall stand amended in accordance with the terms of the Bill.

इसका अर्थ यह है कि संविधान में संशोधन के हेतु संसद के किसी एक सदन में विधेयक उपस्थित किया जा सकेगा। वह विधेयक उस सदन के पूर्ण सदस्य संख्या के बहुमत से और कम से कम उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के २।३ संख्या से अधिक से स्वीकार होने पर, राष्ट्रपति के पास भेजा जायगा और राष्ट्रपति की स्वीकृति होने पर संविधान में संशोधन स्वीकार समझा जायेगा।

इस धारा के प्रभाव से संविधान की कई धाराओं को मुक्ति दी गयी है। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में युक्ति यह थी कि उक्त धारा ३६८ से मूलाधिकार भी मुक्त हैं। उनका कहना है कि मूलाधिकारों के खण्ड III की धारा १३-(२) में दी गयी है। यह १३ (२) धारा इस प्रकार है—

Sec. 13 (2) :--The state shall not make any Law which takes away or abridges the rights conferred by this part and any Law made in contravention of this clause shall, to the extent of the contravention, be void.

अर्थात् राज्य कोई ऐसा कानून नहीं बनायेगा, जिससे इस खण्ड में दिये अधिकार छीने जायें अथवा संकोचन हो। कोई भी कानून जो इस खण्ड में दिये अधिकारों का विरोध करेगा वह अथवा उसका वह भाग जो विरोध करेगा, अमान्य होगा।

सर्वोच्च न्यायालय का कहना है कि धारा ३६८ के अनुसार जो बिल उपस्थित होगा और पारित होगा और जब उसे प्रधान की स्वीकृति हो जायेगी, वह कानून ही होगा। अतः धारा १३—(२) इस कानून के विषय में भी है।

यह स्पष्ट है कि मूलाधिकारों को विधान की अन्य धाराओं से पृथक रखा गया है और इस खण्ड के आरम्भ में ही राज्य को इसमें हेर-फेर करने से मना कर दिया है, परन्तु शेष संविधान के विषय में संशोधन की प्रक्रिया धारा ३६८ में है।

यह स्थिति है वर्तमान संविधान के अनुसार। यद्यपि कई न्यायिक वर्तमान निर्णय के पक्ष में नहीं हैं और वे संविधान के संशोधन वाली धारा ३६८ को पूर्ण संविधान पर लागू मानते हैं, परन्तु जो लोग मूलाधिकारों को पवित्र

मानते हैं, वे कहते हैं कि संविधान के किसी अन्य भाग को संविधान से पृथक कर असंशोधनीय नहीं कहा गया। केवल मूलाधिकारों के खण्ड III को ही ऐसा कहा गया है। इससे प्रकट होता है कि यह खण्ड विशेष है।

ऐसा प्रतीत होता है कि यह दावा कि संसद सर्वसत्तात्मक संस्था है, एक भ्रम है। संसद सर्वसत्ता सम्पन्न संस्था नहीं है। इस पर प्रतिबंध हैं। संविधान की धारा १३—(२) भी एक प्रकार का प्रतिबन्ध है।

श्री नाथ पाई के विधेयक का पक्ष वे सब लोग लेते हैं, जो या तो वाम पन्थी हैं अथवा वाम पंथ की ओर झुके हुए हैं। सत्य बात तो यह है कि कम्युनिस्ट यह चाहते हैं कि ये मूलाधिकार न रहें। इस ओर चीन में ऐसे मूलाधिकार नहीं हैं। वे यहां भी यही चाहते हैं।

जवाहरलाल जी के शासन काल में इतनी बार मूलाधिकारों में संशोधन इस कारण हुआ क्योंकि वे महानुभाव हृदय से कम्युनिस्ट थे।

कुछ लोग कहते हैं कि यदि संविधान में संशोधन का अधिकार न दिया गया तो बदल रहे समाज की प्रगति रुकेगी और फिर क्रान्ति हो जायेगी।

यही तो हम कहते हैं कि ये लोग क्रान्ति संसद के द्वारा लाना चाहते हैं और यदि संसद को सब मूलाधिकारों का मूलोच्छेदन करने का अधिकार न दिया गया तो वे खूनी क्रान्ति से मूलाधिकारों को छीनने का प्रयत्न करेंगे।

यह तो ऐसे ही है जैसे कि कोई कहे कि दिल्ली में स्थिति ऐसी हो गयी है कि चोरों की संख्या अधिक हो गयी है और यदि चोरों को पकड़ने का यत्न किया गया अथवा उनको अपने काम से मना किया गया तो वे क्रान्ति कर देंगे।

ये लोग व्यक्ति के मूलाधिकारों पर डाका डालने की स्वीकृति चाहते हैं। और धमकी देते हैं कि यदि स्वीकृति नहीं दी गई तो खूनी क्रांति हो जायेगी।

हम समझते हैं कि देश एक मोड़ पर पहुंच गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जो प्रयत्न नक्सलबाड़ी में असफल रहा है, उसे अब संसद स्वेच्छा से करने जा रही है।

यदि संसद ने यह संशोधन स्वीकार किया तो इतिहास में यह दिन एक काले दिन के समान माना जायेगा। अभी तक संविधान के गलत अर्थ लगाये जा रहे थे और परन्तु इसके अनन्तर तो संविधान ही गलत कर दिया जा सकेगा। ●

आदि आर्य एवं साम्यवादी

●

श्री गुरुदत्त

हिंदुओं की ब्राह्मण समाज के अनेकानेक पापों का यह परिणाम है कि आज वेदों और शास्त्रों पर विधर्मियों के आघात हो रहे हैं। हिंदू विद्वान उन का उत्तर दे नहीं सकते।

ब्राह्मणों ने एक पाप यह किया कि वर्ण को जन्म से प्रचारित करना आरम्भ किया। तत्पश्चात् वेद का पठन-पाठन ब्राह्मणों तक सीमित कर दिया। तदनन्तर अन्य वर्ण वालों को नीच और पतित मान, उनको वेद-विद्या से वंचित कर दिया।

ब्राह्मणों ने वेदों पर अपना एकाधिकार बनाया तो जहां ब्राह्मणों का पतन हुआ, वहां वेद-विद्या भी लोप हुई। ब्राह्मणों ने जब देखा कि समाज के अन्य वर्ण वेदों से अनभिज्ञ हो गये हैं और उनकी परीक्षा लेने वाला कोई नहीं रहा तो उन्होंने स्वयं भी वेदाध्ययन छोड़ दिया।

इससे वेद-विद्या का लोप हुआ और देश विदेशियों के पंजे में फंस गया। परिणामस्वरूप समाज का पतन आरम्भ हुआ। महाभारत काल में बहुत अंश तक पतन हो चुका था। वेद मत में विकृति आ चुकी थी। महर्षि व्यास वेदों का उद्धार करने का यत्न कर रहे थे, परन्तु उनकी बात कोई मानता नहीं था।

जब पाण्डवों को लाक्षागृह में जलाने का यत्न किया गया तो व्यास जी धृत-राष्ट्र को यह बताने आये कि पाण्डव जीवित हैं, परन्तु दुर्योधन और धृतराष्ट्र की मानसिक दुर्व्यवस्था देख, वे बिना बताये ही चले गये।

इस प्रकार जब जुए में हराकर भीष्म इत्यादि के सामने ही द्रौपदी का अपमान किया गया, तब विदुर जैसे साधु प्रवृत्ति के लोगों ने समझाया, परन्तु दुर्योधन नहीं माना और उसने पाण्डव राज्य को आत्मसात कर लिया।

इससे यह प्रकट होता है कि महाभारत के युद्ध का कारण ही यह था कि

उस समय कौरव और पाण्डव दोनों वेद-विद्या में हीन हो चुके थे। यही कारण है कि सात्त्विक बुद्धि रखते हुए भी पाण्डवों को गीता के उपदेश सुनाने की आवश्यकता पड़ी। स्थान स्थान पर युधिष्ठिर को समझाने के लिये कृष्ण, भीष्म एवं अन्य ऋषि-मुनि उसके पास जाते रहे।

उस समय वर्ण-व्यवस्था जन्मगत हो चुकी थी और क्षत्रिय वर्ग वेद-विद्या से वंचित हो चुका था। परिणामस्वरूप भयंकर युद्ध हुआ। उस युद्ध से हुई हानि की पूर्ति नहीं हो सकी। युधिष्ठिर जैसे मोटी बुद्धि के व्यक्ति को राज्य मिला। छत्तीस वर्ष तक वह राज्य करता रहा, परन्तु न तो वेद के तत्त्व जानने वाले ब्राह्मण बन सके और न ही वीर क्षत्रिय उत्पन्न हो सके। परीक्षित की हत्या एक नागराज से इसी कारण सम्भव हो सकी कि वहां क्षत्रियों में पतन हो चुका था।

उस समय ब्राह्मणों की अवस्था भी निन्दनीय थी। ब्राह्मण धन के लोभ में अपना कर्त्तव्य पालन करना भूल जाते थे।

ऐसी पतितावस्था में वाम-मार्ग का प्रादुर्भाव हुआ। वाम-मार्ग लिंगायत-वाद के रूप में प्रकट हुआ और जब इन लोगों ने देखा कि वेद के समझने वाले तो रहे ही नहीं परन्तु वेदों की महिमा पूर्ण समाज में विद्यमान है, तो उन्होंने समाज की इस मानसिक प्रवृत्ति से लाभ उठाकर अपने वाम-मार्ग को वेदों में वर्णित बता दिया। इस अनृत भाषण से कितने लोग वाम-मार्गी बने, यह गणना हमारे पास है नहीं, परन्तु यह सत्य है कि इतिहास में एक समय आया जब वाम-मार्ग वेद का मत ही जाना जाने लगा था।

इसकी प्रतिक्रिया हुई बौद्ध मत और जैन मत। इन्होंने वेदों का त्याग कर दिया। यहां तक कि उनकी निन्दा भी की। बौद्ध और जैन मतावलम्बियों ने स्वतंत्र रूप से वेद तो पढ़े नहीं, हां, उनकी निंदा करते रहे।

जब जैन और बौद्ध मतावलम्बियों ने वेदों की निन्दा आरम्भ की तो प्रति-क्रिया स्वरूप ब्राह्मणों ने (गुप्तकाल में) वेद समझने का यत्न किया, परंतु वेद का वास्तविक रूप निखर नहीं सका। गुप्तकालीन विद्वान, यदि वेदों का भावार्थ समझने की जो विधि प्राचीन ऋषियों ने समझायी थी, उसके अनुसार वेदोद्धार का यत्न करते, तो बहुत अंशों तक वेद का यथार्थ अर्थ पता चल सकता। वेद भाषा के तत्त्व को न समझने के कारण, वे वेद का यथार्थ अर्थ नहीं कर सके।

उसके उपरान्त अद्वैतवादियों का काल आया। अद्वैतवाद बौद्ध और जैन

मत से अनीश्वरवाद की प्रतिक्रिया थी । जहां जैन तथा बौद्ध आत्म तत्त्व को नहीं मानते थे, वहां अद्वैतवादियों ने ब्रह्म को ही एकमात्र तत्त्व मान, पूर्ण चराचर जगत् की उत्पत्ति उसी से वर्णन कर दी ।

एक ब्रह्म ही है, दूसरा कुछ भी नहीं । यह अद्वैत मतावलम्बी वेदों में से सिद्ध नहीं कर सके तो उन्होंने वेदों को केवलमात्र कर्म-काण्ड की पुस्तक मान त्याज्य घोषित कर दिया तथा उनके स्थान पर उपनिषदों को स्थापित कर दिया ।

जो ह्रास महाभारत युद्ध से पूर्व वर्णों को जन्मगत मानने से आरम्भ हुआ था, वह पहले ब्राह्मण और क्षत्रियों के पतन का कारण बना । पीछे वेद-विद्या के लोप होने में कारण हो गया । तदनन्तर वाम-मार्ग, बौद्ध एवं जैन मत तदुपरांत वैष्णव मत और पीछे अद्वैतवादी प्रचलित हुआ । ये सबके सब मत एक अंगीय थे । परिणाम यह हुआ कि समाज में पतन बढ़ता गया और अंत में देश विदेशीय आक्रमणों के सामने पराजित हो गया ।

जो मत मतान्तर भारत भूमि पर ही उत्पन्न हुए उनको दो शाखाओं में बांटा जा सकता है । एक में वे मत हैं जो अपने को वेदानुकूल मानते थे अर्थात् अपने मत की बात वेदों में से ही ली गई बताते थे जैसे वाम-मार्ग, वैष्णव मत और अद्वैतवादी, विशिष्ट-अद्वैतवाद इत्यादि । दूसरी शाखा में जैन और बौद्ध मत गिनाये जाते हैं । इन्होंने वेद का त्याग किया और अपना पृथक् दर्शन बनाने का यत्न किया ।

इन सब मतों में अद्वैतवाद सबसे अधिक पतन का कारण हुआ था । इस मत की दो बातें विशेष हानि पहुंचाने वाली सिद्ध हुईं । एक है अकर्म से मोक्ष की प्राप्ति—अर्थात् संसार का त्याग । संसार का त्याग तो हो नहीं सका परन्तु त्याग का बहाना बना है, कठोर कार्य का त्याग और तपस्या से पलायनता का जन्म हुआ ।

इसके साथ-साथ इन्होंने तीनों वेदों को, कर्म-काण्ड के ग्रंथ कहकर उनका त्याग कराया और उनके स्थान पर उपनिषदों को स्थापित किया । उपनिषद सुगमता से समझ में नहीं आ सकते । अतः समाज के घटकों का बौद्धिक स्तर गिरने लगा ।

उपनिषदों का स्थान गीता तथा पुराणों ने ले लिया । इस सबसे घोर पतन हुआ ।

इस समय इस्लाम की आंधी आयी और उसने यत्र तत्र कुरान के अतिरिक्त अन्य ग्रंथों का नाश आरम्भ कर दिया । इस्लाम दुनियां भर के देशों

में तबाही मचाता आ रहा था। उसने स्पेन के अतिरिक्त अन्य किसी भी देश में कुरान को छोड़कर अन्य किसी पुस्तक को रहने नहीं दिया। हिंदुस्तान में भी इसका यत्न किया गया, परन्तु यहां कई कारणों से वे पूर्ण रूप में विनाश कर नहीं सके और इस्लामी राज्य के समाप्त होते होते वेदों के विषय में पुनः बातचीत होने लगी।

जब अंग्रेज आये तो पूर्ण जाति में वेद-शास्त्र, पुराण गीता आदि शास्त्रों की महिमा गान होती थी। अंग्रेजी राज्य की सन् १७५७ में नींव रखी गयी और उसके कुछ ही उपरान्त अंग्रेज अपना शासन सुदृढ़ करने लगे। एक यह कि शासन पूर्ण देश में फैल जाये। इसके लिये अंग्रेजों ने फूट डलवाने की राजनीति चलायी। उसमें वे सफल हुए, परन्तु इतने बड़े देश में वे अपने राज्य को किस प्रकार स्थित रख सकेंगे ? यह विचार होने लगा। इसके लिये यहां ईसाई धर्म का प्रचार चलने लगा।

ईसाइयों की दाल हिन्दू समाज में गलती प्रतीत नहीं हुई तो उन्होंने हिन्दू समाज को अपनी आधारशिला अर्थात् वेद शास्त्रों से विचलित करने की योजना बना ली। एक ओर तो देशवासियों की शिक्षा को, देश की मान्यताओं एवं संस्कृति के विरुद्ध करने के लिये सरकार ने अपने हाथ में ले लिया और दूसरी ओर शास्त्रों के विकृत अर्थ कर, उनको निन्दनीय और हास्यापद बना दिया।

इन मिथ्यावादियों का भण्डा फोड़ने के लिये देश में स्वामी दयानन्द सरस्वती उत्पन्न हो गये। उन्होंने ईसाइयों और राज्य कर्मचारियों का, वेद शास्त्रों पर आघात होते देखा तो जाति को इनके पन्जे से निकालने के लिये मैक्समूलर इत्यादि वेद निन्दकों का खण्डन करना आरम्भ कर दिया। स्वामी जी ने उन्हें चुनौती दी कि वे वेद का जो अर्थ करते हैं, वह अशुद्ध है। वे लोग वेद भाषा को नहीं जानते।

अंग्रेजी सरकार ने स्वामी दयानन्द की अवहेलना की और उनके कथन को शिक्षा केन्द्रों में घुसने नहीं दिया, परन्तु दुर्भाग्य यह हुआ कि हिन्दू समाज के प्रमुख वर्गों ने ही स्वामी दयानन्द का घोर विरोध करना आरम्भ कर दिया। एक वर्ग था ब्राह्मणों पुजारियों का। उनके पूजा-पाठ, श्राद्ध-तर्पण का स्वामी जी की वेद-व्याख्या से खण्डन होता था। दूसरा वर्ग था सरकारी स्कूल, कालिजों में शिक्षितों का। उनका भी हलुवा-माण्डा स्वामी दयानन्द जी की बात मानने से छिनता था।

इसके साथ ही एक बात यह हुई है कि अंग्रेजी सरकार और तदनन्तर

स्वराज्य सरकार के वेदों में प्रतिपादित वास्तविक ज्ञान के विरोधी होने के कारण तथा देश की शिक्षा पर सरकार का पूर्ण अधिकार होने के कारण पढ़े-लिखों के मन में मैक्समूलर इत्यादि वेद-निन्दकों की तो महिमा बन गयी और वेद की रक्षा करने वाले स्वामी दयानन्द इत्यादि विद्वानों की महिमा घट गयी।

ईसाइयों का और अंग्रेजी सरकार की शिक्षा का वेदों पर यह आघात, बौद्ध, जैन और मुसलमानों के आघात से भी प्रबल सिद्ध हुआ है।

इसी शिक्षा की उपज हैं आज के मार्क्सवादी, जिन्होंने वेदों में साम्यवाद की गंध लेनी आरम्भ कर दी है। भारत के एक दो प्रमुख साम्यवादियों ने इस पर लेख भी लिखे हैं। इनमें श्रीपाद अमृत डांगे तथा एक इनके ही शिष्य श्री वाचस्पति गैरोला प्रमुख हैं। श्री डांगे ने एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम है '**आदिम साम्यवाद से दास प्रथा तक का इतिहास**' और गैरोला साहब ने कौटिल्य के अर्थ शास्त्र का अनुवाद करते समय इसकी भूमिका में डांगे साहब का समर्थन किया है।

यों तो (साम्यवाद प्रवर्तक) मौर्गन, कार्ल मार्क्स और ऐंजिल ने मानव के इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या में लिखा है कि आरम्भ में साम्यवाद से ही मानव समाज का आरम्भ हुआ था। पीछे धन-सम्पत्ति में वृद्धि हो जाने से राज्य-नियन्त्रण नहीं रह सका और पूँजीवाद का जन्म हो गया। इससे अब वैज्ञानिक साम्यवाद की आवश्यकता पड़ी है।

हम ऐंजिल आदि की अनर्गल कल्पना पर मगज पच्ची न करते, यदि डांगे इत्यादि अपने गुरुओं के मिथ्यावाद को वेद और शास्त्रों से निकालने का यत्न न करते। डांगे इत्यादि ने यह देखा कि हिन्दू समाज की वेदों पर श्रद्धा आज भी है। यहां तक कि स्वामी दयानन्द के भक्त और वेदों के विचार के नाम पर रुपया बटोरने वाले भी, मैक्समूलर इत्यादि पाश्चात्यों का मान करते हैं। आज भी भारत की राजधानी में मैक्समूलर भवन बना है।

वेदों में लोगों की अपार श्रद्धा देख साम्यवादियों के मुख में भी लार टपक आई कि अपने मिथ्यावाद को वे वेदों में से निकालने का प्रयास करें। उनका विचार है कि जब मैक्समूलर जैसे वेद निन्दकों की हिन्दू प्रशंसा करते हैं तो उनके, वेदों के मिथ्या अर्थ करने पर भी, हिन्दू मार्क्सवाद की प्रशंसा करेंगे।

आज भारत में अर्थ के बँटवारे पर झगड़ा करने वाले तो मार्क्स के नाम की माला जपते हैं। डांगे जी यह चाहते हैं कि वेद-भक्त मार्क्सवाद की प्रशंसा

के पुल बांधने आरम्भ कर दें ।

हम इस लेख द्वारा यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि आज ये मार्क्सवादी हैं, कल मैक्समूलर थे और उससे पहले सायण और अद्वैतवादी थे । सबने वेदों के भ्रष्ट अर्थ करने का यत्न किया है, परन्तु यह तब तक ही हो सका है जब तक वेदों को ब्राह्मण वर्ग ने पिटारी में बन्द कर रखा था । अब स्वामी दयानन्द ने वेदाध्ययन की कुंजी प्रकट कर दी है । उन्होंने वेदों के अध्ययन की विधि बताई है । अतः हमें विश्वास है कि अब यूरोप के उच्छिष्ट-भोजियों की वह चाल नहीं चल सकेगी जैसे पहले चलती रही है ।

हम डांगे और गैरोला के कथनों का कि वेदों में साम्यवाद का मूल है, मिथ्यात्व प्रकट करना चाहते हैं । डांगे इत्यादि को समझने से पूर्व उनके गुरु मौर्गन और ऐंजिल को समझ लेना चाहिये । (क्रमशः)

अस्तित्व की रक्षा

श्री विद्यानन्द विदेह

हिन्दु और हिन्दुस्थान—इन दो नामों पर कुछ आपत्तियाँ प्राप्त हुई हैं। उनका यहाँ समाधान करना मेरी इस लेख-माला के सन्दर्भ में उपादेय होगा। जैसा कि मैंने प्रथम लेख में लिखा है, ये दोनों नाम एक हजार वर्ष से अधिक पुराने नहीं हैं। एक सुविद्वान् का यह लिखना कि मेरे उस लेख से यह ध्वनि निकलती थी कि यह भारतीयों का प्राचीन.........नाम है, सही नहीं है। भाषाविशारदों ने हिन्दु शब्द की व्युत्पत्ति जहाँ सिन्धु नदी के नाम के साथ जोड़ी है, वहां वेदों के कतिपय विद्वान् इसे वेद के इन्दु शब्द का वर्धित रूप मानते हैं। ये दोनों ही मान्यतायें मुझे अपील नहीं करती हैं।

हिन्दु नाम कितना पुराना है, यह एक नितान्त गौण प्रश्न है। मुख्य प्रश्न यह है कि यह नाम किस की देन है और वह किस अर्थ में दिया गया था। हिन्दुस्थान में मुस्लिम बादशाहों के जीवनचरितों तथा शाहनामों में हिन्दु और हिन्दुस्थान नामों का कहीं भी गर्हित अर्थों में प्रयोग नहीं हुआ है। यहां के मुस्लिम शासकों के इतिहास में कहीं लेश मात्र यह ध्वनि नहीं है कि ये नाम मुस्लिम शासकों की हेयभावनाजन्य देन हैं।

भारत पर सर्वप्रथम मुस्लिम आक्रमण आज से नौ सौ वर्ष पूर्व सुबक्तगीन ने किया था। उससे पूर्व तथा पश्चात् अरब, ईरान और काबुल के जितने पर्यटक तथा साहित्यकार हमारे देश में आये, उन पर्यटकों के विवरणों और उन साहित्यकारों की रचनाओं में कहीं एक शब्द भी इस मान्यता का पोषक नहीं है कि हिन्दु तथा हिन्दुस्थान नाम आक्रान्ता मुस्लिमों की देन है और वह भी गन्दे अर्थो में। उन विवरणों तथा रचनाओं से यह भी प्रकट होता है कि सुबक्तगीन के आक्रमण से पूर्व भी यह जाति हिन्दु और यह देश हिन्दोस्तान के नाम से उल्लिखित है। इन दोनों नामों का प्रयोग उनमें अहतराम के साथ किया गया है। किसी-किसी ने तो इस देश को पाक सर जमीने हिन्द लिखा

है। 'अहदे सुबक्तगीन' में दोनों नाम आदर के साथ लिखे गये हैं।

गत महीनों में वीर सावरकर की रचनाओं के अवलोकन ने इस विषयक मेरे चिन्तन तथा मान्यता को ऐसा झकझकोरा कि मेरी आँखों के सामने इतिहास अपने वास्तविक स्वरूप में आ खड़ा हुआ। सन्त विनोबा भावे के इस विषय पर कतिपय लेखों ने भी मेरे विचार-परिवर्तन में पर्याप्त प्रभाव डाला है। मैं पूर्णतः विश्वस्त हूँ कि चर्चित दोनों ही नाम न विदेशी मुस्लिमों की देन हैं, न उन्होंने कभी कहीं इनका प्रयोग हेय शब्दों में किया है। जिन दो मुस्लिम मुल्लाओं ने अपने-अपने लुगत में हिन्दु शब्द के निन्दित अर्थ किये हैं, उन्होंने अपने अर्थों की न कोई धातुपरक व्युत्पत्ति पेश की है, न उनका इतिहास दिया है। किसी भी शब्द के बेबुनियाद अर्थ कोई अर्थ नहीं रखते हैं।

यदि हिन्दु शब्द 'मेरुतन्त्र' के अतिरिक्त अन्य किसी पुराने ग्रन्थ में उल्लिखित नहीं है तो यह संस्कृत के साहित्यकारों की बौद्धिक कुण्ठा का सबूत है। एक हजार वर्ष से पूर्व के संस्कृत ग्रन्थों में इस शब्द का न होना स्वाभाविक है। संस्कृत इस देश की अपनी ही भाषा है और उसमें देश तथा जाति के सहस्राब्द से प्रचलित नामों का उल्लेख न होना गौरव का नहीं, लज्जा का विषय है। एक ओर अंगरेजी है जो संसार के लाखों शब्दों को पचा चुकी है और अपने शब्दभंडार में प्रतिवर्ष बीस हजार शब्द पचा लेती है। दूसरी ओर संस्कृत है जो स्वदेश के दो व्यापक शब्दों को न पचा सकी, जब कि उसकी धातुओं तथा व्याकरणों में इतनी क्षमता है कि विश्व की किसी भी भाषा के किसी भी शब्द को वह सहजतया अपने रूप से रूपित कर सकती है।

जिस प्रकार डेढ़-दो सौ वर्षों के अंगरेजी राज्य में हमने विदेशी शासकों द्वारा प्रदत्त 'इण्डिया' तथा 'इण्डियन' शब्दों को स्वीकार कर लिया, वैसे ही मुस्लिम शासकों द्वारा प्रदत्त हिन्दु और हिन्दुस्थान नामों को हमने स्वीकारा होगा,—यह तर्क टिकाऊ नहीं है। इण्डिया तथा इण्डियन नामों को इस देश की सम्पूर्ण तो क्या, अधिकांश जनता ने भी स्वीकार नहीं किया है। इन नामों का प्रचलन देश के उन कुछ सहस्र अथवा लाख व्यक्तियों तक ही सीमित है जो अपना सब काम-काज अंगरेजी में ही करने के अभ्यस्त हैं। साथ ही यह बात भी है कि इन दोनों नामों के अर्थ किसी भी प्रकार से हेय नहीं किये जाते हैं। फिर, ये शब्द भी 'हिन्दु' के ही तो रूपान्तर हैं।

विचारणीय मूल प्रश्न यह है कि विश्व के इतिहास में क्या कहीं कोई एक

भी उदाहरण ऐसा है कि किसी देश ने विदेशियों द्वारा प्रदत्त, जाति और देश के गर्हित अर्थ वाले नामों को एक दिन के लिए भी स्वीकार किया हो ? निश्चय ही इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट और निश्चित 'नहीं' है। हिन्दु शब्द कब, कैसे, किस प्रकार प्रचलित हुआ और संस्कृत-व्याकरण की दृष्टि से उसकी व्युत्पत्ति तथा अर्थ क्या-क्या हैं, यह खोज का विषय हो सकता है। आज जब कि निश्चित मान्यताओं तक की नये सिरे से खोजें हो रही हैं, इस शब्द की नये सिरे से ऊहापोह कदापि आपत्तिजनक नहीं। पर इस साधारण-सी बात पर उत्तेजना क्यों ? मेरे आदिम लेख की निम्नोद्धृत पंक्तियों पर विद्वान आलोचकों ने ध्यान दिया होता तो उनकी ओर से कटुता तथा उत्तेजना का प्रदर्शन न होता, 'मैं मानता हूं कि हमारा आदि नाम आर्य है और आर्य शब्द हिंदु शब्द की अपेक्षा कहीं अधिक प्रेरक तथा व्यापक है। यह भी निश्चय है कि अन्ततः यह देश आर्यावर्त ही कहलायेगा और यह जाति आर्य जाति ही कहलायेगी। पर वस्तुस्थिति यह है कि इस जाति के अस्तित्व की रक्षा के लिये जिस सुसंगठन की आवश्यकता है वह आज हिन्दु नाम से ही सिद्ध होगा, अन्यथा नहीं। आर्य जनों से मैं कहूंगा कि वे गौण बातों को पीछे करके मुख्य समस्याओं पर अपने विचारों को केन्द्रित करें।'

मैं पुनः दोहराता हूं कि हिंदु नाम के बुरे अर्थ होते तो विदेशियों से निरन्तर लोहा लेने वाले आर्य वीर अपने आपको हिंदु और अपने देश को हिंदुस्थान कहलाना कदापि स्वीकार न करते। फिर, जिस नाम को जाति-की-जाति स्वीकार कर चुकी है, उसके विषय में अपावन भावनाओं का द्योतन जातीयता की दृष्टि से किसी भी प्रकार हितकर न होगा। इस सम्बंध में यह सूचना कुतूहलपूर्ण है कि गत मासिक 'जन-ज्ञान' में एक उद्धरण प्रस्तुत किया गया है जिसमें महर्षि दयानन्द द्वारा हिंदु और हिंदुत्व की गरिमा का वर्णन किया गया है। यह बात भी दिलचस्पी से खाली नहीं है कि स्वयं आलोचक भी अपने लेखों तथा वक्तव्यों में हिंदु शब्द का उसी प्रकार प्रयोग करते हैं जिस प्रकार अन्य सब हिंदु। हिन्दुस्थान कहलाने से ठीक पूर्व यह देश और इसके निवासी क्या कहलाते थे, गवेषकों द्वारा इस तथ्य की गवेषणा भी करणीय है। ●

समाचार समीक्षा

अयूबशाही को चुनौती

कुछ मास पूर्व पाकिस्तान में जुल्फिकार अली भुट्टो को बन्दी बनाये जाने के उपरांत पाकिस्तान में अयूबशाही के विरुद्ध चल रहे अभियान और आन्दोलन अब स्पष्टतया उभर कर सम्मुख प्रकट होने लगे हैं। एक के बाद एक इस प्रकार से पाकिस्तान के पाँच प्रमुख व्यक्तियों ने इन दिनों जो वक्तव्य प्रकाशित किये हैं वे इस बात के स्पष्ट एवं सुपुष्ट प्रमाण हैं। भुट्टो की पाकिस्तानी पीपुल्स पार्टी के स्थानापन्न अध्यक्ष जे० ए० रहमान ने कहा है कि 'जब तक पाकिस्तानी जनता को मौलिक अधिकार और नागरिक स्वतन्त्रतायें उपलब्ध न हो जायें हमारा आंदोलन जारी रहेगा।' पाकिस्तान के भूतपूर्व वायुसेनाध्यक्ष असगर खां ने तो यहाँ तक कह डाला है कि "अयूबशाही को उखाड़ने के लिए भारत के स्वाधीनता संग्राम के ढंग का कोई व्यापक आन्दोलन करना होगा।" पूर्वी पाकिस्तान के भूतपूर्व गवर्नर जनरल आजमशाह ने लाहौर में एक वक्तव्य देते हुए कहा कि "मैं न तो कोई नया राजनीतिक दल बनाना चाहता हूं और न ही किसी दल में सम्मिलित होना चाहता हूं। परन्तु मैं इस सरकार को बदलने के लिये सारे देश की जनता का सहयोग प्राप्त करूंगा।" यह बात विचार करने की है कि ये शब्द उन आजमशाह साहब के हैं जो १९५८ में अयूब द्वारा भूतपूर्व राष्ट्रपति इस्कन्दर मिर्जा को देश से बाहर भेजने के षडयन्त्र में तथा कुमारी फातिमा जिन्ना के विरुद्ध चुनाव लड़ने वाले मार्शल अयूब के दाहिने हाथ कहे जाते थे।

इन दो सैनिक अधिकारियों के अतिरिक्त एक अन्य उल्लेखनीय व्यक्ति हैं पूर्वी पाकिस्तान हाई कोर्ट के भूतपूर्व न्यायाधीश महबूब मुर्शद। अपने एक वक्तव्य में उन्होंने कृष्णनगर में कहा "मुल्क में जिस तेजी के साथ राजनीतिक गिरावट आती जा रही है, वह देखकर मुझे बड़ी तकलीफ हो रही है। जिस बेरहमी से विरोधी विचारों को दबाया जा रहा है, वह बड़े दुःख की बात है। पर अगर इस बुराई के विरुद्ध सब लोग मिल कर लड़ें तो मुझे पूरी आशा है कि एक दिन सच्चाई और ईमानदारी की जीत अवश्य होगी। जिस निर्ममता

और अवैध तरीकों से आज पाकिस्तान में स्वतन्त्र विचारों का दमन किया जा रहा है, मैं जोर से उसकी निन्दा किये बिना नहीं रह सकता।"

पूर्वी पाक नेता मौलाना अब्दुल हमीद खां मसानी ने कहा, "हम आम हड़ताल करके संसार को दिखा देना चाहते हैं कि हम अयूब की दमनकारी सरकार के विरुद्ध हैं।" भूतपूर्व पाक रक्षामन्त्री मियां मुमताज दौलताना ने भी दमन और बल प्रयोग का विरोध करते हुए जनतन्त्र की पुनः स्थापना की माँग की है।

पाकिस्तान की आज की वस्तुस्थिति को देखते हुए यह अनुमान लगाना सहज है कि अयूब के उत्तराधिकारी का चुनाव न तो अयूब स्वयं करेगा और न पाकिस्तान की जनता अथवा राजनीतिक दल ही कर पावेंगे। उसके चुनाव में उन तीन देशों का, अमेरिका, चीन और रूस, जिनसे उसने प्रचुर सहायता ली है, कम हाथ या प्रभाव नहीं होगा। उदाहरणार्थ जिस भुट्टो को अयूब ने अपने भारत विरोधी अभियान का मुखिया बनाया था और जिसने चीन की प्रचुर सामरिक सहायता का विवरण भी दिया है, उस भुट्टो की गिरफ्तारी की चीन में तीव्र प्रतिक्रिया हुई है। हाल ही में अयूबशाही के विरुद्ध हुए छात्रों के प्रदर्शनों को चीनी दूतावास के किसी कर्मचारी ने चीनी प्रधानमन्त्री चाउ-एन-लाई के कथनानुसार "प्रतिगामी तत्वों का उपद्रव" बता दिया था। परन्तु जिसका तुरन्त चीनी संवाद समिति द्वारा खण्डन किया गया। चीन को यह आशा तो नहीं है कि पाकिस्तान में कभी चीन की समाजवादी नीति चल सकेगी, पर भारत और रूस को मारने के लिए एक डण्डे के रूप में वह पाकिस्तान का उपयोग तभी तक कर सकता है जब तक कि वहाँ उसका कोई कठपुतला विद्यमान रहे।

रूस ने यद्यपि अभी तक अपनी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की है पर उसके समाचार पत्रों में चीन द्वारा अपने मुस्लिम नागरिकों पर किये जाने वाले जुल्मों के जो विवरण छापे और छपवाये जाते हैं उनसे स्पष्ट है कि वह चीनी कठपुतले के मुकाबले में अयूब का समर्थन करना ही पसन्द करेगा। यह भी आवश्यक है कि वह किसी अमरीकी उम्मीदवार को भी स्थान ग्रहण करने नहीं देगा।

तीसरी शक्ति अमरीका की रह जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका रुझान इस समय असगर खां की ओर अधिक है। इसका कारण यह है कि असगर खां न अमेरिका विरोधी रहे हैं और न वर्तमान में ही ऐसे हैं।

अमेरिका [illegible] पाकिस्तान ही नहीं, बजाते खुद अयूब भी उसे अपने राजनीतिक उत्तराधिकारी के रूप में स्वीकार कर लेगा। अमरीकी समाचार पत्रों के साथ-साथ भारत और ब्रिटेन के अनेक पत्रों ने भी ऐसी ही राय व्यक्त की है।

कोऊ नृप होय :

पाकिस्तान इस समय हमारा निकटतम पड़ौसी, प्रतिद्वन्दी, प्रतिस्पर्द्धी एवं प्रतिक्रियावादी देश है। वहाँ घटित होने वाली घटनाओं में हमारी अधिकाधिक रुचि रहना स्वाभाविक है और उचित भी। इस समय यद्यपि वह क्षुब्ध और युद्धोन्मत्त है तदपि हमें एक क्षण के लिए भी इसमें भ्रम नहीं रहना चाहिए कि अयूब का कोई भी उत्तराधिकारी कभी भी भारत का मित्र हो सकता है। आज भी पाक अधिकारी अपने देश की जनता की गरीबी, बेकारी, पिछड़ापन आदि आदि दूर न कर सकने का सारा उत्तरदायित्व भारत-कश्मीर सम्बन्धी तथा विशेषतया कश्मीर समस्या पर थोप रहे हैं और खुले आम नये शस्त्रास्त्र जुटा कर भारत पर पुनः आक्रमण की तैयारी में लगे हैं। अनेक देशों से उन्होंने इस प्रकार की सामग्री एकत्रित की है। अपनी तीनों सेनाओं में वे निरन्तर बढ़ोतरी कर रहे हैं। इस स्थिति में अयूब का कोई भी उत्तराधिकारी हो, भारत पाक सम्बन्धों में कोई अन्तर आवेगा इसकी सम्भावना कदापि नहीं है।

देशद्रोहिता के सहयोगी दूतावास :

यह सर्वत्र विख्यात है कि चीनी दूतावास इस देश में अराजकता उत्पन्न करने का कोई अवसर अपने हाथ से नहीं खो रहा है। वह ऐसे कार्यों के लिए अपने एजेन्टों को उकसाता ही नहीं अपितु उन्हें साधन-सम्पन्न भी बनाता है। केवल माओवादी साहित्य के पैकेट ही नहीं करैंसी नोट भी उसके द्वारा बांटे जाते देखे गये हैं। यह सब कुछ देखने समझने के बाद भी चीनी दूतावास अभी तक भी अपनी गतिविधियों के लिए स्वतंत्र है।

भारत के नक्सलवादियों से चीनी दूतावास का सीधा एवं निकट का सम्पर्क है। दूतावास का एक अधिकारी उनसे पत्र-व्यवहार करता रहता है और वे पत्र पकड़े भी गए हैं। संसद में सरकार ने यह आश्वासन भी दिया है कि वह चीन-पाक दूतालयों की ऐसी गतिविधियों की जांच करेगी और उस पर उचित कार्यवाही करेगी। हम यह नहीं समझ पा पहे हैं कि इस प्रकार की घटनायें घटित होने पर भी ये जांच के सिलसिले कब तक जारी रहेंगे।

प्रतिकूल देशों की इस प्रकार की राष्ट्रविरोधी ही नहीं अपितु राष्ट्रघाती गतिविधियों के प्रति इतना असावधान क्यों रहा जाता है ?

उधर कश्मीर में पकड़े गये पाकिस्तानी गिरोहों की भी यही स्थिति है। स्पष्ट है कि पाकिस्तान न तो कश्मीर के मामले में चुप है और न उसकी एतद्विषयक गतिविधियों में किसी प्रकार की कमी आई है। उधर कश्मीर सरकार पाकिस्तानी एजेंटों पर पर पूरी तरह काबू नहीं पा सकी है। वे जंगलों में नहीं अपितु कश्मीर की घनी बस्तियों में रहते हैं और आराम से अपना दुष्कृत्य करते हैं। उनका आतिथ्य सार्वजनिक संस्थाओं और मसजिदों में ही नहीं अपितु बड़े बड़े ऊंचे अधिकारियों के घरों में भी होता है। कश्मीर की जेल से मृत्युदण्ड प्राप्त पाक समर्थकों का भाग जाना कोई साधारण घटना नहीं है। जब जेलों में पाक एजेंट सक्रिय हैं तब साधारण जन समाज तथा राज्य के सरकारी कर्मचारियों तक पहुंच कर प्रशासन को ठप्प करने से उनको कौन रोक सकता है ? क्या इसे निर्मूल और आशंका मात्र कह कर टाला जा सकता है ?

जो स्थिति चीनी दूतवास की है ठीक वही पाकिस्तानी दूतवास की भी है। यह समझ में नहीं आता कि जब सबूत सामने हैं, तोड़ फोड़ हो रही है, विद्यार्थियों को भड़काया जा रहा है और जेलों के कैदी तक भागने में सफल हो गये हैं तब भी हमारी सरकार यह कहने में नहीं हिचकती कि इस प्रश्न पर जनता की जवाबदेही पहले है। इसके विपरीत जब जनता अपनी जवाबदेही का अनुभव करती है और उस पर कार्यवाही करके स्वयं को संकट में डालती है तो सरकार न उसे प्रोत्साहन देती है और न उसकी सुरक्षा का प्रबन्ध ही करती है। मन्त्री ने स्वयं लोक सभा में कहा है कि पाकिस्तानी एजेटों का पता देने वालों को पुरस्कृत करने के लिए उनके पास रुपया फालतू नहीं है। किसी देश के गृहमन्त्री के लिये यह कथनीय नहीं और न ही शोभनीय है। किंतु फिर भी यह कहा जा रहा है और सहा जा रहा है।

संविधान के साथ खिलवाड़

गृहमन्त्री चव्हाण ने दस दिसम्बर को लोक सभा में संविधान का २२ वां संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया। इस बिल पर भाषण करते हुए वयोवृद्ध नेता आचार्य कृपलानी ने कहा कि भारत में यह एक प्रकार से रेकार्ड है। इतनी बार कहीं भी संविधान में संशोधन नहीं किये गये। २१ वर्ष के

कांग्रेस तन्त्र में २२ बार संविधान में संशोधन किया जा चुका है। उनका कहना है कि इस पर मतदान के समय सभी सदस्यों को पार्टी के अनुशासन से मुक्त कर स्वतन्त्र रूप से मत देने की छूट देकर यदि देश में स्वतन्त्र रूप से मत संग्रह कर लिया जाय तो जनता इस बिल के विरोध में मत देगी। यही नहीं, यदि उससे पूछा जाय तो वह पूरे मन्त्रिमंडल के विरुद्ध भी मत देने के लिये तैयार है। चैकोस्लोवाकिया पर रूसी आक्रमण के समय ही यह सिद्ध हो गया था और उस समय यदि मतसंग्रह होता तो भारी बहुमत सामने आ जाता।

कराघाती कांग्रेस शासन :

आज इक्कीस वर्ष के शासन में प्रजा पर करों (टैक्सों) का किस प्रकार आघात हो रहा है इसकी व्याख्या करते हुए हाल ही में नई दिल्ली में आय-कर और बिक्री-कर वकीलों के एक सम्मेलन में उच्चतम न्यायालय के श्री जे० सी० शाह ने कहा कि देश में कर इस प्रकार लगे हैं कि अब नये करों को लगाने से पूर्व सोचना पड़ता है कि वे कहां लगाये जावें। मनुष्य के जीवन में कर तो भगवान की तरह व्याप्त हो गया है।

श्री शाह ने कहा, "लगता है कि हमारी संसद ने सम्पत्ति पर कर लगाने, सम्पत्ति बनाने के साधनों पर कर लगाने और सम्पत्ति के उत्पादन की प्रक्रिया पर कर लगाने तथा आय पर हर-स्तर पर कर लगाने की नीति को मान लिया है। मनुष्य जो कुछ जमा करता है उस पर सम्पत्ति कर लगाता है, जो कुछ कमाता है उस पर आय-कर लगता है, जो कुछ वह खर्च करता है अथवा उपभोग करता है उस पर व्यय कर लगता है। यदि वह किसी को कुछ देता है तो उस पर उपहार कर लगता है और मृत्यु के उपरान्त जो कुछ वह छोड़ जाता है उस पर उसके उत्तराधिकारियों को मृत्यु कर चुकाना पड़ता है। जो वस्तुयें उत्पन्न की जाती हैं उन पर उत्पादन शुल्क लगता है, जो चीजें बेची जाती हैं उन पर बिक्री कर लगता है। आयातित और निर्यातित वस्तुओं पर शुल्क लगता है। अब कदाचित सोचने से भी किसी को कर लगाने की कोई राह न मिले।

किन्तु क्या यह सम्भव है? यह कराघाती कांग्रेस जो न करे वही थोड़ा। ●

साहित्य समीक्षा

●

कौशिक

आदर्श शासन पद्धति--लेखक एवं प्रकाशक : श्री बिशन चन्द्र सेठ, प्रकाशन स्थल- सेठ कालीचरण मार्ग, शाहजहांपुर उ० प्र०, मूल्य २ रुपये ।

लेखक का कथन है कि उन्होंने शासन सम्बन्धी अपने विचारों को लिपिबद्ध कर पुस्तकाकार में प्रस्तुत किया है। सेठ जी का कथन है कि "इस लघु पुस्तिका में भारतीय धार्मिक परम्परा एवं उसकी पवित्र संस्कृति को मौलिक आधार मान कर हृदय पटल पर युग से संचित विचारों को क्रमबद्ध कर उन्हें 'आदर्श शासन पद्धति' के रूप में अंकित करने का प्रयास किया गया है।"

इसमें सन्देह नहीं कि ८६ मणिकाओं से मण्डित यह लघुमाला आकार-प्रकार में लघु होने पर भी महत्वपूर्ण एवं परमोपयोगी बन पाई है। शासन प्रणाली सदृश क्लिष्ट एवं नितान्त महत्वपूर्ण विषयों से प्रारम्भ कर कृषि, उद्योग, व्यवसाय, भाषा, शिक्षा, समाचार, हस्तकला, नारी उत्थान, नगरशोभा, जन-परिवार, खेलकूद संघ सदृश शासन पद्धति के लिये उपयोगी एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयों तक का प्रतिपादन इस पुस्तिका में पाठकों को प्राप्य हो सकता है।

लेखक के इस मत से किसी की भी असहमति नहीं हो सकती कि "कांग्रेस ने देश के संविधान से लेकर छोटी बड़ी सभी योजनायें अभारतीय शैली, सभ्यता एवं संस्कृति को मान्यता देकर उधार ली हैं। विचार करने की बात है कि जिस भारत ने समग्र संसार का गुरु-पद युगों तक सम्हाला और आज भी भौतिकवाद छोड़ आध्यात्मिकता, धार्मिकता एवं सामाजिक जीवन की ओर देखें तो यह कहने में हमें गर्व है कि संसार के सभी राष्ट्रों का इन क्षेत्रों में पथप्रदर्शन करने में हम आज भी समर्थ हैं। परन्तु वर्तमान भौतिक एवं आर्थिक युग की शृंखला में भारत के पिछड़ जाने से हमारी यह दशा हो गई कि अन्य देशों के समक्ष हम उपहासास्पद बन गये।"

न केवल राजनीति के विद्यार्थी के लिये अपितु किसी भी भारतीय के लिये यह पुस्तिका नितान्त उपयोगी एवं दिशासूचिका बन सकती है। इस प्रकार सेठ जी का यह प्रयास सराहनीय है और भविष्य में हमें सेठ जी से अपेक्षा है कि वे इन्हीं विषयों का विशद वर्णन अपने किसी अन्य ग्रन्थ द्वारा करेंगे जो केवल दिशासूचक न रहकर पथ-प्रदर्शक भी बन सके। ●

राष्ट्रीय एकता—हल या समस्या

श्री ग्रानन्दकुमार ग्रग्रवाल

'ग्राजकल तेरे मेरे प्यार...............' यह गाना ग्राज जितना लोकप्रिय नहीं उससे भी कहीं ग्रधिक राष्ट्रीय एकता की चर्चा सुनाई पड़ती है ठीक उसी गाने की लय पर। रेडियो खोलिये या समाचारपत्र बस राष्ट्रीय एकता पर लेख, वक्तव्य, भाषण, टिप्पणी की बाढ़ सी ग्रा जाती है। हर राजनीतिज्ञ बस एक ही चिन्ता में दुबला हुग्रा जा रहा है कि वह राष्ट्रीय एकता पर किस ढंग का विचार प्रस्तुत करे जो चुटकी में उसके दल ग्रौर उसको जनता में सर्वाधिक लोकप्रिय बना दे।

राष्ट्रीय एकता के लिए शासकीय ग्रौर ग्रशासकीय दोनों स्तर पर प्रयत्न चल रहे हैं परन्तु ग्रब तक के परिणामों से ऐसा लगता है कि जब इसके लिए किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं होता था तब कहीं ज्यादा एकता थी बजाय ग्राज के। राष्ट्रीय एकता परिषद ने श्रीनगर में ग्रीष्मकाल में राष्ट्रीय एकता के लिए सर्व राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों का सम्मेलन ग्रायोजित किया। वह सफल कैसे होता ? ग्रन्तर्राष्ट्रीयतावाद के नाम पर ग्रन्तर्राष्ट्रीय कृत्यों में योगदान देने के समर्थक भी वहां पर राष्ट्रीय एकता करने पहुंचे थे।

राष्ट्रीय एकता परिषद की स्थाई समिति की ग्रभी गत दिनों हुई बैठक में श्री जयप्रकाशनारायण ने एक नई पुड़िया छोड़ दी। उन्होंने 'हिन्दू राष्ट्रवाद' का विरोध ग्रौर 'भारतीय राष्ट्रीयता' के प्रचार का बीड़ा उठाया। बड़े-बड़े विश्लेषण एवं छानबीन की बात समझ में न ग्राती हो तो छोड़ो पर इतना तो समझ में ग्रा ही जाता होगा कि जर्मनी का रहने वाला जर्मन, तुर्किस्तान का निवासी तुर्क, ग्रफगानिस्तान का नागरिक ग्रफगान हो सकता है तो हिन्दुस्तान का निवासी हिन्दू क्यों नहीं होगा ? हिमालय से हिन्दु (हि+न्दु) पर्यन्त के भूखण्ड में निवास करने तथा उस भूखण्ड के प्रति मातृवत् स्नेह रखने वाले यदि हिन्दु राष्ट्रवाद के समर्थक हों तो यह साम्प्रदायिकता है ऐसा विचार इस राष्ट्रीय एकता परिषद् द्वारा प्रगट किया जाना इस बात का प्रमाण है कि राष्ट्रीय एकता के लिए प्रारम्भ किए गए महायज्ञ की प्रथमाहुति के रूप में

उद्देश्य ही समर्पित हो गया। प्रथम बैठक में ही टीका टिप्पणी, आलोचना का कार्य शुरू हो गया। जनसंघ पर साम्प्रदायिकता का आरोप मढ़कर (कम्युनिस्ट अपनी अन्तर्राष्ट्रीय एवं मुस्लिम लीग अपनी साम्प्रदायिक गतिविधियों में संलग्न हों तो कोई आपत्ति नहीं) यह प्रदर्शित किया गया कि इससे राष्ट्रीय एकता को खतरा है। इससे यह सिद्ध हो गया कि जनसंघ से खतरा राष्ट्रीय एकता को है या नहीं इनकी चालू नेतागिरी को अवश्य हो गया है।

राष्ट्रीय एकता सभाओं, जलूसों, प्रस्तावों, बैठकों, भाषणों से नहीं होने की। इस देश के अतीतकाल में अनेकता में एकता का अत्यन्त अनुकरणीय एवं सुखदायी प्रसंग कैसे विद्यमान था! जब योगशिला से मानसर तक एक राष्ट्र की अनुभूति होती रही। तब इसके लिए कोई भी परिषद, सभा, संघ, समिति नहीं बनी थी। इसके पीछे यही तथ्य था कि तब इस कृषि प्रधान देश के लिए अत्यन्त उपयोगी गाय को माता सदृश मानकर उसमें सम्पूर्ण तैंतीस कोटि देवताओं का निवास, उसके गोबर में लक्ष्मी और मूत्र में गंगा की विद्यमानता पर अटल विश्वास उत्पन्न कर उसे अनन्य श्रद्धा का स्थान दिया जाता था। आज गौ माता की क्या दशा है किसी से छिपी नहीं।

उत्तर में गंगोत्री के जल को ले जाकर सुदूर दक्षिण के रामेश्वरम् में चढ़ाने की परम्परा क्या बताती है? चारों धाम की यात्रा, सातों तीर्थों का दर्शन, सप्त सिंधु स्नानादि की निष्ठा के पीछे क्या उद्देश्य है? आज भी देश-विदेश में जहां भी इस भूखण्ड का निवासी रहता है उसके द्वारा स्नान करते समय एक लोटे जल को सिर पर डालते हुए 'गंगा गोदावरी कृष्णा...' भूतल को अन्नोत्पादक बनाने के लिए अत्यन्त उपयोगी नदियों का आह्वान करना क्या दर्शाता है? आज इन्हीं नदियों के पानी के लिए झगड़े का भाव विभिन्न प्रान्तों में आ गया है; लेकिन तब इस श्रद्धा के कारण एक प्रांत से दूसरे प्रान्त को एकता के सूत्र में बांधने वाली नदियों के प्रति इस प्रकार की भावना उत्पन्न नहीं होती थी।

पाश्चात्य देशों में किसी पर्व की सफलता उसके पर्याप्त प्रचार पर निर्भर करती है परन्तु हमारे देश में कुम्भ मेले की तिथि पंचांग के एक कोने में लिख देने मात्र से ही लक्षावधि लोग क्या उत्तर क्या दक्षिण सब स्थानों से आकर इसमें सम्मिलित होकर अपने को धन्य मानते हैं।

चाहे दक्षिण में गोदावरी हो या उत्तर में गंगा, मानव तन के अन्तिम अवशेष क्षार को इनकी पावन धारा में प्रवाहित कर इस भूमि के हर क्षेत्र का निवासी सद्गति की कल्पना करता है। भगवान शंकर की तपस्थली हिम-

मण्डित कैलाश शिखर से माता पार्वती की तपोभूमि (वर्तमान विवेकानन्द शिला) तक एक ही विश्वास, एक ही निष्ठा, आशा, श्रद्धा का स्वर गूंजता था। तब विना प्रयत्न किए स्वसंस्कृति के प्रति आत्मीयता का भाव अपने हृदयों में धारण कर लोग सर्वोत्सर्ग के लिए तत्पर रहते थे। आज इन मान्यताओं को साम्प्रदायिकता, रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास की श्रेणी में गिनने वालों से एकता की क्या अपेक्षा की जाए? राष्ट्रीय एकता का महान कार्य तब तक सम्भव नहीं जब तक उपरोक्त प्रकार से भारतवासी के मस्तिष्क में विचारों का आन्दोलन न होता रहे। सूखे गढ़े में मछली डालकर उसके जीवित रहने की आशा करना या हाथी गुमने पर रसोई घर के मिर्च मसाले के डिब्बों में उसे ढूंढना कहां तक लाभप्रद होगा? यह राष्ट्रीय एकता परिषद अथवा इस ओर प्रयत्नशील संस्थाएं स्वयं विचार करें।

राष्ट्रीय एकता आज की फूटपरस्ती और अलगाव की परिस्थिति में एक राष्ट्रहितार्थ हल के रूप में न होकर जब स्वयं ही एक समस्या बनती जा रही है तब निराशा के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं लगने वाला है। ●

चाणक्य-परिषद्

(राजनीति-शास्त्र-विभाग) भारतीय साहित्यकार संघ

चा०/६५३—सा० सं०/बौद्धिक सर्वेक्षण

महोदय !

स्वदेश के प्रबुद्ध तथा वरिष्ठ शिक्षित जनों का विचार-संदर्भ एवम् दृष्टि-भाव समझने के लिए निम्नलिखित प्रश्न प्रेषित हैं। कृपा करके इसका उत्तर यथा शीघ्र ही भेज दें जिससे निष्कर्ष मुद्रित किया जा सके। उत्तर के लिए इस पत्रक के साथ अतिरिक्त कागज लगाकर भेज दें।

सुशील कुमार जोशी,

संयोजक :—चाणक्य-परिषद्, ७/१३५, रमेश नगर, नई दिल्ली।

प्रश्न **उत्तर**

१. क्या भारतवर्ष और हिंदुस्तान पर्यायवाची हैं ?

२. भारतीय संस्कृति के विकास में किस जाति का योगदान है ?

३. आपके विचार से हिन्दू धर्म का आधार वैज्ञानिक है या नहीं ?

४. भारत की राष्ट्रीयता के विकास में किस तत्त्व का सर्वाधिक महत्व है ?

५. क्या धर्म और सम्प्रदाय एक हैं ?

६. हिन्दू इतिहास के किन-किन कालों को भारतीय इतिहास कहा जाएगा ?

७. भावात्मक एकता में क्या धर्म बाधक है ?

८. भावात्मक एकता के लिए क्या स्वदेश के ८५% हिन्दुओं के परिवेश को अस्वीकार करना आवश्यक है ?

९. क्या भारतीयता और भारत राष्ट्र का अस्तित्व हिन्दू चिन्तन और संस्कृति से रहित हो सकेगा ?

१०. क्या संस्कृति और सभ्यता में अन्तर है ?

हस्ताक्षर उत्तरदाता..........

दूरभाष पूरा पता..........

भा० सा० सं०/चाणक्य प०—६५३—६९ बौ० स० वि—१

सुशील कुमार जोशी संयोजक चाणक्य-परिषद द्वारा प्रसारित/उत्तर-संकलन-तिथि ३१ जनवरी, १९६९।

नटराज पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	मूल्य
नकटी नानी	श्री माणिकचन्द्र	२.००
नलिनी	,,	२.००
अधूरा स्वप्न	श्री संजय	२.००
छोटे बड़े मनुष्य	,,	२.००
साम्यवाद से संघर्ष	च्यांग काई शेक	२.००
बदलती करवटें	श्री मनमोहन सहगल	१.००
टूटा टी सैट	भगवती प्रसाद वाजपेयी	२.००
दो मार्ग	प्रकाश भारती	२.००
मोपला-गोमान्तक	श्री सावरकर	३.००
धरती है बलिदान की	श्री शान्ताकुमार	१.००
शक्तिपुत्र शिवाजी		१.५०
सत्यकाम सोक्रातीज (प्लेटो संवाद)		१.५०

पाकेट माला में श्री गुरुदत्त की रचनाएं

पुस्तक	मूल्य
अन्तिम यात्रा	१.००
एक और अनेक	३.००
एक मुंह दो हाथ	३.००
कामना	२.००
खेल और खिलौने	२.००
गुण्ठन	३ ००
चंचरीक	१.००
छलना	२.००
जमाना बदल गया-१	२.००
,, ,, ,, -२	२.००
,, ,, ,, -३	२.००
,, ,, ,, -४	२.००
,, ,, ,, -५	२.००
,, ,, ,, -६	२.००
,, ,, ,, -७	२.००
,, ,, ,, -८	३.००
,, ,, ,, -९	३.००
जीवन ज्वार	३.००
देश की हत्या	३.००
दो भद्र पुरुष	२.००
द्रष्टा	२.००
धरती और धन	३.००
धर्म तथा सामाजवाद	३.००
नयी दृष्टि	३ ००
निष्णात	२.००
निर्मल	२.००
पाणिग्रहण	३.००
प्रेरणा	३.००
बहती रेता	३.००
मानव	३.००
मायाजाल	३.००
यह संसार	३.००
यह सब झूठ है	२.००
युद्ध और शान्ति-१	३.००
,, ,, ,, -२	३.००
लालसा	३.००
लोक परलोक	२.००
विडम्बना	३.००
विद्यादान	२.००
वीर पूजा	१.००
संस्खलन	२.००
सभ्यता की ओर	२.००
सम्भवामि युगे युगे-१	२.००
,, ,, -२	२.००
साहित्यकार	२.००
सुमति	२.००

कुछ विशेष प्रचारित साहित्य

पुस्तक	लेखक	संस्करण	मूल्य
भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम पृष्ठ भाग—१	ले० श्री सावरकर		२.५०
भाग—२	,,		२.२५
भाग—३	,,		४.००
१८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य समर	,,		१८.००
हिन्दू पद पादशाही	,,		६.५०
हिन्दुत्व	,,		३.५०
मोपला (उपन्यास)	,,		४.००
गोमान्तक ,,	,,		४.००
मोपला-गोमान्तक	,,	संयुक्त पाकेट संस्करण	३.००
अमर सेनानी सावरकर : जीवन झाँकी	ले० शिवकुमार गोयल		२.५०
भारत और संसार	श्री बलराज मधोक		५.००
भारत की सुरक्षा	,,		४.००
भारत की विदेश नीति एवं राष्ट्रीय समस्याएँ	,,		३.००
श्यामाप्रसाद मुखर्जी : जीवनी	,,		६.००
हिन्दू राष्ट्र	,,		१.५०
अन्तिम यात्रा	श्री गुरुदत्त	सजिल्द	२.००
अन्तिम यात्रा	,,	पाकेट संस्करण	१.००
धर्म संस्कृति और राज्य	,,		८.००
धर्म तथा समाजवाद	,,	सजिल्द संस्करण	६.००
धर्म तथा समाजवाद	,,	पाकेट संस्करण	३-००
देश की हत्या (उपन्यास)	,,	सजिल्द	६.००
देश की हत्या	,,	पाकेट संस्करण	३.००
जमाना बदल गया	,,	सजिल्द ४ भाग	४०.००
जमाना बदल गया	,,	पाकेट ९ भाग	२०.००
मेरे अन्त समय का आश्रय : श्रीमद्भगवद्गीता	भाई परमानन्द		५.००
धरती है बलिदान की	श्री शान्ता कुमार	सजिल्द	३.००
धरती है बलिदान की	,,	पाकेट संस्करण	१.००
हिमालय पर लाल छाया	,,		१२.००
शक्तिपुत्र शिवाजी	श्री सीताराम गोयल		१.५०

भारती साहित्य सदन (बिक्री विभाग)

३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

भारतीय संस्कृति परिषद के लिए प्रकाशक गोविन्द द्वारा संपादित एवं युगान्तर प्रेस, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

फरवरी १९६९ वर्ष ६–अंक २ रजि० सं० [illegible]/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

१.	सम्पादकीय	—	३
२.	इतिहास में भारतीय परम्पराएं	श्री गुरुदत्त	१०
३.	अन्तर्राष्ट्रीय हलचल	श्री आदित्य	१६
४.	महर्षि दयानन्द की परम्परा में	श्री गुरुदत्त	१९
५.	अस्तित्व की रक्षा	श्री विद्यानन्द 'विदेह'	२४
६.	आदि आर्य एवं साम्यवाद	श्री गुरुदत्त	२६
७.	विद्यार्थियों में अशान्ति	श्री सत्यदेव	३४
८.	वेद में इन्द्र का स्वरूप	श्री रामशरण वसिष्ठ	३९

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

●

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

●

सम्पादक
अशोक कौशिक

●

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१

●

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

जब से गांधी जी ने इस देश की राजनीति में पदार्पण किया, तब से ही साम्प्रदायिकता को दूर करने के लिये एक विशेष ढंग से प्रयास आरम्भ होने लगा है। वह विशेष ढंग गांधी जी के 'परम' भक्त एवं प्रिय शिष्य जवाहरलाल जी नेहरू, अपने स्वरचित जीवन चरित्र में इस प्रकार लिखते हैं :

Long ago, right at the commencement of non-cooperation or even earlier, Gandhiji had laid down his formula for solving the communal problem. According to him, it could only be solved by goodwill and the generousity of the majority group and so he was prepared to agree to everything that the Muslims might demand. He wanted to win them over, not to bargain with them. With foresight and a true sense of values he grasped at the reality......

(An Autobiography— John Lane The Bodley Head London, Feb. 1947 p. 136.)

अर्थात्— बहुत पहले, असहयोग आन्दोलन के आरम्भ होने के समय अथवा उससे भी पहले, गांधी जी ने साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने की एक योजना उपस्थित की थी। उनका कहना था कि यह समस्या केवल बहुसंख्यक समुदाय की सद्भावना और उदारता से ही सुलझाई जा सकती है। अत: वे मुसलमानों की प्रत्येक मांग मानने को तैयार थे। वे उनको अपने साथ कर लेना चाहते थे। उनसे सौदेबाज़ी करना नहीं चाहते थे। वे अपनी दूर दृष्टि से वास्तविकता को समझ परिस्थिति का ठीक मूल्यांकन कर रहे थे।

यह बात गांधी जी ने सन् १९२० में अथवा उससे भी पहले कही थी। इसके उपरांत गांधी जी का वैचारिक साम्राज्य कांग्रेस पर और हिन्दू समुदाय पर हो गया। कांग्रेस वस्तुतः हिन्दुओं की प्रतिनिधि संस्था हो गयी थी। स्वराज्य के उपरांत से अब तक कांग्रेस का बहुमत चल रहा है और उनकी नीति ही चलती है।

सन् १९२० से ही कांग्रेस महात्मा जी से बताये मार्ग पर चलती रही है और मुसलमानों की प्रत्येक बात मानती चली आयी है। सिवाय इस बात के कि पूर्ण हिन्दू समाज मुसलमान नहीं हो गया अथवा पूर्ण देश पाकिस्तान बनने नहीं दिया गया, अन्य प्राय: सब बातें कांग्रेस ने मानी हैं। इस नीति का अवलम्बन करते हुए ४८ वर्ष हो चुके हैं। इस पर भी यह साम्प्रदायिकता अभी तक दूर नहीं हुई।

इसी नीति के अधीन सन् १९१६ में विख्यात हिन्दू-मुस्लिम पैक्ट स्वीकार हुआ था, सन् १९२० में खिलाफत आन्दोलन में सहयोग दिया गया था, सन् १९२२ में मोपला विद्रोह के अवसर पर मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर अत्याचार होते देख कांग्रेस ने आंखें मूंद ली थीं। सन् १९२४ से '२७ तक हिन्दू-मुसलमानों के बलवों में हिन्दुओं के लूटे-पीटे जाने पर भी कांग्रेस एक सर्वदलीय सम्मेलन बुला बैठी थी। इसके असफल होने पर भी, सन् १९३२ में मुसलमानों को कोरा चैक देने के लिये गांधी जी तैयार हो गये थे। कांग्रेस ने अल्प-सख्यकों की मांगों को स्वीकार करते हुए मुसलमानों में राष्ट्रीय तत्त्वों की भी अवहेलना की थी। इस नीति की पराकाष्ठा पाकिस्तान स्वीकार करने में हुई। मुसलमानों का अपना राज्य बन जाने पर भी, साढ़े चार करोड़ मुसलमानों को भारत में यत्नपूर्वक रखा गया। पाकिस्तान द्वारा संचालित कश्मीर के आक्रमण को कबाइलियों का आक्रमण कह कर गांधी जी की नीति का ही अवलम्बन किया गया। पाकिस्तान को पचपन करोड़

रुपया दिलवाने के लिये गांधी जी ने जीवन का भय मोल ले लिया, जबकि भारत ने पाकिस्तान से तीन सौ करोड़ लेना था और पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान की सेनायें लड़ रही थीं। इसी मनोवृत्ति का परिणाम था कि स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या हो जाने पर गांधी जी ने यह कह दिया था कि 'ऐसा होना ही था' और कांग्रेस शोक प्रस्ताव भी पारित न कर सकी थी।

ये सब बातें और अनेकों अन्य ऐसी बातें, जिनसे गांधी जी की तुष्टीकरण की नीति का भास होता है, चलायी गयीं। स्वराज्य के उपरान्त भी इस नीति का अवलम्बन करते हुए आज इक्कीस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, परन्तु साम्प्रदायिकता समाप्त नहीं हुई।

गांधी जी की इस नीति का अनुमोदन करने के लिए पूर्ण भारत सरकार लगी हुई है। उसके साथ ही जनता में इसकी प्रतिष्ठा बनाने के लिये कांग्रेस का छोटा-बड़ा प्रत्येक नेता, कांग्रेस के बाहर बाबू जयप्रकाश नारायण और सी० राजगोपालाचार्य जैसे वयोवृद्ध नेता तथा गांधी के मानस पुत्र विनोबा भावे और कांग्रेसी समाचार-पत्र-पत्रिकाएँ घोर प्रचार में लगे हैं।

इस पर भी क्या साम्प्रदायिकता मिट गयी है? यह नहीं गयी। यह कम भी नहीं हुई। अभी अभी पहली जनवरी सन् १९६९ को एक साधारण सी घटना पर इन्दौर में साम्प्रदायिक झगड़ा खड़ा हो गया था और वहाँ 'कर्फ्यू आर्डर' लगाना पड़ा था।

इस कारण यदि हम यह कहें कि साम्प्रदायिकता समाप्त करने के लिए गांधी जी की नीति असफल सिद्ध हुई है तो यह गलत नहीं होगा। गांधी जी की, कांग्रेसी संस्था की तथा कांग्रेसी सरकार की नीति इस कार्य के लिए गलत है। यह एक निर्विवाद सत्य है। हमारा यह दावा है कि गांधी जी का यह कहना कि साम्प्रदायिकता को दूर करने का एक मात्र उपाय अल्पसंख्यक समुदाय की प्रत्येक बात को स्वीकार कर लेना है, एक मिथ्या सिद्धान्त है।

जिस बात की परीक्षा पिछले अड़तालीस वर्ष से की जा रही है और जो सफल नहीं हुई, उसको बार बार दोहराना, दो ही बातें प्रकट करता है। या तो इस नीति को दोहराने वाले लोग महामूर्ख हैं अथवा वे महा धूर्त हैं। जिसकी परीक्षा हो चुकी है और जो असफल सिद्ध हो चुकी है, उसको कहना, अब बहुसंख्यक समुदाय से अन्याय और अत्याचार करना है।

आइये हम देखें कि गांधी जी की इस नीति में दोष क्या है? इसमें अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक दो समुदायों को मान लिया गया है और बिना इस

बात का विचार किये कि कौन न्यायप्रिय है, कौन शान्तिप्रिय है और कौन देश तथा जाति के लिये हितकर है, बहुसंख्यक को अल्पसंख्यक की प्रत्येक बात मानने के लिये कहा गया है। साथ ही उस अल्पसंख्यक समुदाय की क्या मांग थी और है, इसका न तो कहीं उल्लेख है और न ही कहीं गणना। इसी को तो मूर्खता कहते हैं।

अभी अभी दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में साम्प्रदायिकता उन्मूलन के लिये एक कान्फरेन्स बुलायी गयी थी। भारत के गृह-मन्त्री उसमें व्याख्यान झाड़ आये। सी० राजगोपालाचार्य ने एक वक्तव्य दिया है कि कश्मीर को ब्रिटेन, अमेरिका और रूस के हाथ में दे दिया जाये और बीस वर्ष उपरान्त कश्मीर में मत-संग्रह कराया जाये कि कश्मीर पाकिस्तान के साथ जाना चाहता है अथवा भारत के साथ? अथवा यह स्वतन्त्र रहना चाहता है? एक वक्तव्य श्री जयप्रकाश नारायण ने भी दिया है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ के साथ राजनीतिक ढंग से व्यवहार किया जाये। भारत के गृह-मन्त्री कह रहे हैं कि हिन्दू राष्ट्र की भावना साम्प्रदायिक है, इसे कुचल डाला जायेगा। इसी प्रकार के अनर्गल वाक्य यत्र तत्र गांधी जी के चेले कह रहे हैं।

भला इनसे पूछा जाये कि क्या इंग्लैण्ड एक साम्प्रदायिक राज्य नहीं है? क्या रूस में साम्प्रदायिकता नहीं है और क्या अमेरिका पिछले पच्चीस वर्ष से मूर्खता पर मूर्खता नहीं करता रहा? तो इन स्वार्थी, साम्प्रदायिक और मूर्ख देशों से ये लोग किस भलाई की आशा करते हैं? भला हिन्दू राष्ट्र में क्या दोष है जो उक्त राष्ट्रों में नहीं है?

प्रश्न है कि साम्प्रदायिकता में क्या दोष है, जिसके कारण इसकी निन्दा की जा रही है और इसे अवांछनीय माना जा रहा है? यह कहा जाता है कि इससे दंगे होते हैं। इसी कारण इसे बुरा माना जाता है। परन्तु इस समय हिन्दू-मुसलमानों के अतिरिक्त भी तो लोग दंगे कर रहे हैं। पिछले महीने विद्यार्थियों ने, विशेष रूप में एस० एस० पी० समर्थित विद्यार्थियों ने बनारस विश्वविद्यालय में, नक्सलवादियों ने केरल और आन्ध्रप्रदेश में, नागाओं ने तथा मीजो ने असम प्रदेश में, माओवादी कम्युनिस्टों ने असम और नक्सलबाड़ी में दंगे किये हैं। क्या उनको समाप्त करने के यत्न नहीं होने चाहिएं? कम्युनिस्ट और वे कम्युनिस्ट जो संसदीय उपायों में विश्वास नहीं रखते, संसद में दनदनाते रहते हैं। वे तो खुले आम कहते हैं कि हम हिंसात्मक उपायों से ही अपनी बात मना सकने में विश्वास रखते हैं।

तत्त्व की बात

आखिर हिन्दू-मुसलमान दंगों में क्या विशेषता है जो नक्सलवादियों में, कम्युनिस्ट विद्यार्थियों, नागाओं और अकालियों के दंगों में नहीं है ? वास्तव में वर्तमान सरकार और प्रायः राजनीतिक दलों के लोग एक तत्त्व की बात नहीं समझते। वह तत्त्व की बात यह है कि सब युद्धों में, सब पारिवारिक, अन्तर्जातीय और अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों में, तथा सब प्रकार के उपद्रवों में एक सैद्धान्तिक भूल होती है। जो लोग उस भूल को नहीं समझते अथवा स्वयं वही भूल करने लगते हैं, वे इन झगड़े, फ़साद और युद्धों में सफलता प्राप्त नहीं करते, वरंच दब जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं और अपमानित, अप्रतिष्ठित होते हैं।

सन् १९३३ से लेकर सन् १९३९ तक अंग्रेजों, फ्रांसीसियों और कुछ अन्य युरोपियन जातियों ने यही भूल की थी, जब उन्होंने हिटलर, मुसोलीनि तथा स्टालिन को झगड़े का मूल कारण नहीं समझा था और पीछे जाकर ये देश ही युद्ध में पैंतालीस लाख मानवों की हत्या का कारण बने थे और फिर हिटलर तथा मुसोलीनि से भी अधिक भयंकर एक क्रूर शत्रु के पञ्जे में फंस गये थे। सन् १९४५ में संधि करते समय अमेरिका ने भूल की कि वह च्यांगकाई शेक और माओ में अन्तर नहीं समझ सका और अल्पसंख्यकों को अपना बनाने की अभिलाषा में कम्युनिस्ट चीन का साम्राज्य बनाने में साधन बन गया था।

गांधी जी की इसी भूल के कारण पाकिस्तान बना। दस लाख हिन्दू-मुसलमानों की हत्या हुई, सहस्रों स्त्रियों का शील भंग हुआ, सहस्रों का अपहरण हुआ।

साम्प्रदायिकता को समाप्त करने वालों को उस भूल का पता करना चाहिए। जब तक यह पता नहीं चलेगा कि साम्प्रदायिकता क्या है और इसमें कौन सी बात है, जिसका विरोध करना होगा, तब तक यह समाप्त नहीं होगी।

हमारे मत में साम्प्रदायिकता सम्प्रदाय से एक भिन्न बात है। सम्प्रदाय, समान सिद्धान्तों में विश्वास रखने वालों के समूह को कहते हैं। यह मनुष्यों में एक स्वाभाविक और वांछनीय गुण है। वह गुण इस प्रकार से कहा जा सकता है कि एक ही प्रकार से विश्वास रखने वाले, एक प्रकार की प्रथाओं और सिद्धान्तों को मानने वाले जब इकट्ठे होकर रहें तो उसे सम्प्रदाय कहते हैं। यह अवगुण नहीं है। यह स्वाभाविक है, न्याय-संगत भी है।

मनुष्य एक विचारशील प्राणी है। यह अपने विचारों को दूसरों पर प्रकट करता है। इसी के लिये परमात्मा ने इसे बोलने की शक्ति दी है। जब मनुष्य विचारों का आदान-प्रदान करते हैं तो इसका यह एक स्वाभाविक परिणाम होता है कि सम विचार वाले परस्पर सहानुभूति रखें। बस ऐसे लोगों का समूह सम्प्रदाय कहलाता है। यदि सम्प्रदायों को भंग करने का यत्न किया गया तो विचारहीनों की समाज बननी आरम्भ हो जायेगी। जहां भी विचारशील मनुष्य होंगे, वहां ही समान विचार के लोगों का एक स्थान पर एकत्रित होना निश्चय है। जहां इस पर प्रतिबन्ध होगा, वहां मनुष्यों में विचारहीनता आयेगी।

अतः यह स्वाभाविक है कि विचार और सिद्धांतों के आधार पर जन समूह बनेंगे और इन समूहों को ही सम्प्रदाय कहते हैं।

इस पर भी यह साम्प्रदायिकता नहीं है। इससे किसी को भय करने की आवश्यकता नहीं। भय करने की आवश्यकता तब होती है, जब कोई सम्प्रदाय अधर्मयुक्त विचार और आचार रखे। अधर्मयुक्त विचार क्या है?

एक महान नीति विशारद ने एक ही श्लोक में अधर्म और धर्म की व्याख्या कर दी है। उसने लिखा है —

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

अभिप्राय यह कि जो व्यवहार अपने अनुकूल प्रतीत न हो, उसको दूसरों के साथ व्यवहार में लाना अधर्म है। ऐसा प्रचार करना, ऐसा विचार करना और ऐसे विचार के लोगों का संगठन बनाना; जो जैसा अपने साथ व्यवहार पसन्द नहीं करते, वैसा दूसरों के साथ करने को कहते हैं अथवा करने की प्रेरणा देते हैं अथवा करना ठीक मानते हैं, वे साम्प्रदायिक हैं। साम्प्रदायिक होना अधर्म है।

जिन सम्प्रदायों के सिद्धान्त और विचार जब तक ऐसे हैं कि वे दूसरों से वह व्यवहार पसन्द करते हैं जैसा कि वे अपने साथ किया जाना पसन्द करते हैं, वे सम्प्रदाय धर्मयुक्त हैं और आपत्तिजनक नहीं और जो सम्प्रदाय दूसरों के साथ एक व्यवहार रखते हैं और अपने साथ दूसरा व्यवहार पसन्द करते हैं, वे साम्प्रदायिक हैं।

इस कसौटी पर, यदि वर्तमान भारत में उपस्थित सम्प्रदायों पर दृष्टिपात करें तो सबसे भयंकर कम्युनिस्ट दिखाई देंगे। इनमें माओवादी और उग्रवादी कम्युनिस्ट भी हैं। उनसे उतर कर मुसलमान हैं। फिर ईसाई हैं।

हिन्दू तो इसमें कहीं आते ही नहीं। हिन्दू न तो कोई सम्प्रदाय है और न ही ये साम्प्रदायिक हैं। यह इस कारण कि हिन्दुओं में अनेक विचारों, अनेक सिद्धान्तों और अनेक क्रियाकलापों के लोग सम्मिलित हैं। अर्थात् हिन्दुओं में कई सम्प्रदाय हैं। हिन्दू एक राष्ट्र है। राष्ट्र सम्प्रदाय नहीं होता। यह एक सांस्कृतिक और राजनीतिक ईकाई है।

हिन्दू साम्प्रदायिक भी नहीं। कारण यह कि वे ऐसा नहीं मानते कि जैसा अपने को पसन्द नहीं, वैसा किसी से भी व्यवहार किया जाये।

इससे एक बात स्पष्ट है कि कम्युनिस्ट, मुसलमान, ईसाई और इसी प्रकार मुन्नेत्र कषगम वाले तथा कांग्रेसी और कांग्रेस के बाहर गांधी के चेले जहाँ अपना अपना सम्प्रदाय बना रहे हैं वहाँ वे साम्प्रदायिक भी हैं।

जैसा कि हमने ऊपर बताया है कि जो व्यक्ति अथवा समुदाय दूसरों के साथ वह व्यवहार करता है जो वह अपने साथ पसन्द नहीं करता, वह साम्प्रदायिक है। तो उक्त सब समुदाय साम्प्रदायिक ही कहे जायेंगे। कम्युनिस्ट यह कहते हैं कि हिंसात्मक क्रान्ति से ही मुक्ति सम्भव है। मुसलमानों का क्या विचार है, हम नहीं बताना चाहते। हम यह पसन्द नहीं करते कि हमारी पत्रिका ज़प्त हो अथवा हम साम्प्रदायिकता के झूठे लांच्छन से युक्त मुकद्दमे में घसीटे जायें। इतना अवश्य पूछेंगे कि कब किसी मुसलमान ने अपनी शरा, जिसे हज़रत उमर ने चलाया था, से इन्कार किया है और वह शरा पाठक स्वयं पढ़ लें। सम्भव है कि कुछ मुसलमान हृदय से उस शरा को गये ज़माने की बात मान छोड़ चुके हों। परन्तु उस अवस्था में उन मुसलमानों को इस बात की घोषणा करनी चाहिए।

साम्प्रदायिकता रखने वालों में कांग्रेसियों की भी गणना की जा सकती है। गांधीजी भी साम्प्रदायिकों को गले लगाते थे, उनके चेले भी यही कर रहे हैं।

संक्षेप में हमारा कहना यह है कि ये सब साम्प्रदायिक हैं। भारत में, जो सही अर्थों में असाम्प्रदायिक हैं, उन लोगों के पीछे ये सब लट्ठ लिये हुए पड़े हैं। श्री राजगोपालाचार्य, श्री जयप्रकाश नारायण, श्री विनोबा भावे और गांधी जी का पूर्ण मानस परिवार जब हिन्दू राष्ट्र को कुचल देने की बात करता है तो वास्तव में वह साम्प्रदायिकों की सेना में भरती हो, हिन्दू जो सर्वथा असाम्प्रदायिक हैं, को कुचलने की बात करता है।

कोई भी सम्प्रदाय तब साम्प्रदायिक होता है, जब वह दूसरों के साथ वैसा व्यवहार करने लगता है, जैसा अपने साथ किया जाया पसन्द नहीं करता। हिन्दू एक राष्ट्र है। यह सम्प्रदाय नहीं है।

★

इतिहास में भारतीय परम्पराएं

●

श्री गुरुदत्त

वर्तमान चतुर्युगी के आरम्भ में ब्रह्मा ने मानव सृष्टि चलायी। इसको आरम्भ हुए ३८ ९३,०९९ वर्ष हो चुके हैं। सतयुग में क्या होता रहा है, बहुत कम विदित है। कारण यह है कि सतयुग के अन्त में और त्रेता युग के आरम्भ में इस पृथिवी पर एक बहुत भारी जल-प्लावन हुआ था। इस जल-प्लावन के उपरान्त मनु से पुनः मानव सृष्टि आरम्भ हुई थी।

प्लावन के विषय में सब पुराणों में, शतपथ ब्राह्मण और महाभारत में भी वर्णन आता है। इस प्लावन के विषय में विदेशों के साहित्य में भी वर्णन मिलता है। कालडिया, सुमेरु, यहूदी, दक्षिणी अमेरिका, चीनी साहित्य में भी इस प्लावन का उल्लेख मिलता है।

महाभारत में इसके प्लावन का काल और इसमें क्या क्या हुआ, इस सबका भी वर्णन है। यह हम सब आगे चलकर लिखेंगे।

पुराणादि ग्रन्थों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस प्लावन के पूर्व और चतुर्युगी आरम्भ के बीच के काल में इस पृथिवी पर मानव और जीव जन्तु थे।

मानवों के विषय में पूर्व के लेखों में लिखा जा चुका है कि उनका आरम्भ कैसे हुआ? प्रथम पीढ़ी के मानव अयोनिज थे। ये दस थे। इनके नाम हम लिख चुके हैं। इनमें छः ऋषि थे। इनके अतिरिक्त भी कुछ थे जो उत्पन्न हुए। उनमें लड़कियाँ भी थीं।

दक्ष इन दस अयोनिज मानवों में से एक था। इसका विवाह प्रसूति से हुआ था। इन दोनों ने बहुत लड़कियां उत्पन्न कीं। इनकी गणना पचास कही जाती है। इनमें से तेरह कन्यायें मरीचि ऋषि के पुत्र कश्यप से विवाही गईं। कश्यप भी आयोनिज था।

कश्यप ने अदिति से बारह पुत्र उत्पन्न किये। इनके नाम थे—

धाता, मित्र, अर्चना, इन्द्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान, पूषा, सविता, त्वष्टा, विष्णु ।

कश्यप का दिति से एक पुत्र उत्पन्न हुआ—हिरण्यकशिपु । हिरण्यकशिपु की पाँच सन्तान हुईं—प्रह्लाद, संह्लाद, अनुह्लाद, शिवि, वाष्कल ।

प्रह्लाद के तीन पुत्र थे—विरोचन, कुम्भ, निकुम्भ । विरोचन का पुत्र था बलि और बलि का बाण । कश्यप के दनु से चौंतीस पुत्र विप्रचित्ति, सूर्य, चन्द्र, इत्यादि हुए । यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि मानवों के नाम देवताओं के नाम पर भी रखे जाते थे । सूर्य, चन्द्र इत्यादि अन्तरिक्ष के देवता हैं और उन्हीं के नामों से इन दानवों के नाम सूर्य, चन्द्र इत्यादि रखे गये थे ।

इसी प्रकार चौथी पत्नी काला से कश्यप की तीन सन्तान हुईं । विनाशन अनेक तथा भृगु । भृगु का पुत्र था शुक्राचार्य ।

इस प्रकार दक्ष प्रजापति से और कश्यप से मानव सृष्टि हुई । इस लेख में सबकी पूर्ण वंशावली स्थानाभाव के कारण नहीं दी जा सकती । इतना समझ लेना चाहिये कि त्रेता के आरम्भ में प्लावन तक पृथिवी मानवों से भर गई थी । सब का सविस्तार इतिहास यहां तक कि राजा—महाराजाओं का इतिहास भी देना कठिन है । बहुत कुछ तो प्लावन के कारण विनष्ट हो गया था । मनु के साथ जो ऋषि बचे थे, उनकी अपनी स्मृति से, तब का इतिहास पुराण ग्रन्थों में लिखा गया है ।

यह सिद्ध है कि आरम्भ में (आदि सतयुग में) लोग प्रायः धर्मात्मा थे, परन्तु पीछे राज्य और मोह के अधीन वे अधर्माचरण करने लगे और तब नीति शास्त्र का निर्माण हुआ तथा राज्य की कल्पना की गई ।

ऐसा लिखा मिलता है :—

नियतस्त्वं नरव्याघ्र शृणु सर्वमशेषतः ।
यथा राज्यं समुत्पन्नमादौ कृतयुगेऽभवत् ॥
न वै राज्यं न राजाऽऽसीन्न च दण्डो न च दाण्डिकः ।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम् ॥
पाल्यमानास्तथान्योन्यं नरा धर्मेण भारत ।
खेदं परमुपाजग्मुस्ततस्तान् मोह आविशत् ॥
ते मोहवशमापन्ना मनुजा मनुजर्षभ ।
प्रतिपत्तिविमोहाच्च धर्मस्तेषामनीनशत् ॥

नष्टायां प्रतिपत्तौ च मोहवश्या नरास्तदा ।
लोभस्य वशमापन्नाः सर्वे भरतसत्तम ।।
विप्लुते नरलोके वै ब्रह्म चैव ननाश ह ।
नाशाच्च ब्रह्मणो राजन् धर्मो नाशमथागमत् ।।
(महा भा०—शान्ति०—५९-१३, १४, १५, १६, १७, २१)

अर्थात्—सतयुग में राजाओं की उत्पत्ति इस प्रकार हुई । आदि सतयुग में न कोई राज्य था और न राजा, न दण्ड था और न दण्ड देने वाला। समस्त प्रजा धर्म के द्वारा ही एक दूसरे की रक्षा करती थी । सब मनुष्य धर्म के द्वारा परस्पर पालित और पोषित थे । कुछ काल के उपरान्त सब लोग परस्पर संरक्षण के काम में महान् कष्ट का अनुभव करने लगे और फिर उन सब पर मोह छा गया । जब बहुत लोग मोहवश हो गये, तब धर्म का ज्ञान नहीं रहा ।

इस प्रकार धर्म डूब गया । तब वेदों के स्वाध्याय का लोप हो गया। धर्म तथा यज्ञादि कर्मों का भी लोप हो गया ।

इस प्रक्रिया में कितना काल लगा होगा, कहना कठिन है । इतना स्पष्ट है कि बहुत वर्ष नहीं लगे होंगे । सम्भवतः यह सब सौ दो सौ वर्ष में ही हुआ होगा । सृष्टि के आरम्भ में फल, कन्द मूल और अन्य भोज्य सामग्री इतनी अधिक थी कि परस्पर संघर्ष की आवश्यकता नहीं थी । इस पर भी सब मानवों में परिश्रम करने की सामर्थ्य, बुद्धि और कार्य करने में रुचि एक समान नहीं थी । हो सकती भी नहीं थी । मनुष्य पूर्व के कर्म फलों को लेकर इस लोक में उत्पन्न हुए थे और सबके कर्म फल समान नहीं थे ।

परिणाम यह हुआ कि आरम्भ काल में ही सुख और सम्पन्नता में अन्तर आने लगा था। सम्पन्न और अभावग्रस्त आरम्भ में ही होने लगे थे। जब बस्तियाँ बन गयीं और वन कुछ दूर हो गये, तब भोज्य पदार्थों के लिये भी परिश्रम करने की आवश्यकता अनुभव हुई । सबसे बड़ी बात थी निवास स्थान और पत्नी की उपलब्धि । जो पुरुषार्थी और बुद्धि सम्पन्न थे, वे कम परिश्रमी और कम बुद्धि रखने वालों से अधिक सुखी और जीवन से सन्तुष्ट रहने लगे। जो उतना कुछ प्राप्त करने में असमर्थ हुए, उन्होंने छीना-झपटी आरम्भ कर दी और फिर धर्म से परस्पर रक्षा में कठिनाई हो गयी ।

ऐसी अवस्था में सब बुद्धिशील और राग मोह से मुक्त लोगों ने एक सभा में एकत्रित हो विचार करना आरम्भ कर दिया कि क्या किया जाये ? उस सभा के प्रधान थे ब्रह्मा ।

इसी से यह सिद्ध होता है कि राग मोह का उद्रेक सत युग के आरम्भ अर्थात् मानव सृष्टि के होने के कुछ ही पीछे हुआ था। ब्रह्मा को कितना भी दीर्घ जीवी क्यों न मान लिया जाये, तब भी यह छीना-झपटी आरम्भ से कुछ सौ वर्ष से भीतर ही हुई माननी चाहिये।

बाइबल में आदम, जो आदि पुरुष स्वीकार किया गया है, की आयु ९३० वर्ष लिखी है। आदम कश्यप ही हो सकता है।

जब उक्त सभा बुलायी गयी, उस समय कश्यप के पिता ब्रह्मा जीवित थे।

इस सभा में देवताओं (भले लोगों) ने ब्रह्मा से कहा :—

भगवन् नरलोकस्थं ग्रस्तं ब्रह्म सनातनम्।
लोभमोहादिभिर्भावैस्ततो नो भयमाविशत्॥
ब्रह्मणश्च प्रणाशेन धर्मो व्यनशदीश्वर।
ततः स्म समतां याता मर्त्यैस्त्रिभुवनेश्वर॥
अत्र निःश्रेयसं यन्नस्तद् ध्यायस्व पितामह।
त्वत्प्रभावसमुत्थोऽसौ स्वभावो नो विनश्यति॥

(महा भा०–शा०–५९–२४, २५, २७)

(भगवन्! मनुष्य लोक में लोभ, मोह आदि दूषित भावों ने सनातन वैदिक ज्ञान को विलुप्त कर डाला है। इस कारण बहुत बड़ा भय हो गया है। वैदिक ज्ञान का लोप हो जाने से यज्ञ धर्म नष्ट हो गया है। इस कारण हम देवता भी (उन) मनुष्यों के समान हो गये हैं।

अतः जिस उपाय से हमारा कल्याण हो सके, वह सोचिये। आपके प्रभाव से जो हमें दैवी स्वभाव(श्रेष्ठ स्वभाव)मिला था, वह विलुप्त हो रहा है।)

यह एक इसी प्रकार का सम्मेलन था, जैसे आज कल की सरकारें राष्ट्र पर भीर आ पड़ने पर किया करती हैं अथवा विद्वान लोग बुलाया करते हैं।

ब्रह्मा ने इसको सुन यह कहा :—

तानुवाच सुरान् सर्वान् स्वयम्भूर्भगवांस्ततः।
श्रेयोऽहं चिन्तयिष्यामि व्येतु वो भीः सुरर्षभाः॥
ततोऽध्यायसहस्राणां शतं चक्रे स्वबुद्धिजम्।
यत्र धर्मस्तथैवार्थः कामश्चैवाभिवर्णितः॥
त्रिवर्ग इति विख्यातो गण एष स्वयम्भुवा।
चतुर्थो मोक्ष इत्येव पृथगर्थः पृथग्गुणः॥

(महा भा०–शा०–५०–२८, २९ ३०)

(उस सम्मेलन में सब देवताओं की बातों को सुनकर ब्रह्मा ने कहा, 'सुरगण! तुम्हारा भय दूर हो जाना चाहिये। मैं तुम्हारे कल्याण का मार्ग विचार करूंगा।' तब ब्रह्मा जी ने लाख अध्याय (श्लोक) का एक नीति शास्त्र लिखा, जिसमें धर्म, अर्थ और काम का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। यह नीति शास्त्र त्रिवर्ग कहलाया। चौथा वर्ग मोक्ष का है। वह पृथक् रखा और उसके गुण भी पृथक् हैं।

इसी नीति शास्त्र में राजा और राज्य का भी वर्णन है। जब यह नीति-शास्त्र लिखा गया, तब देवताओं ने इसको चलाने के लिये राजा की कामना की।

राजा बनने योग्य व्यक्ति की खोज होने लगी। परमात्मा की कृपा से एक विरजा नाम के व्यक्ति का पता चला। लोग उसके पास पहुंचे और उसे राजा बनाना चाहा। परन्तु उसने इन्कार कर दिया। तब विरजा के पुत्र कीर्तिमान को कहा गया। उसने भी राजा बनना अस्वीकार कर दिया। कीर्तिमान के पुत्र कर्दम ने भी इस पद को स्वीकार नहीं किया। कर्दम के पुत्र अनंग ने राजा बनना स्वीकार किया। यह मानव लोक का पहला राजा हुआ। इसके विषय में महाभारत में लिखा है :—

प्रजा रक्षयिता साधुर्दण्डनीतिविशारदः ॥ (शा०—५९-९१)

(वह साधु स्वभाव प्रजा की रक्षा करने में समर्थ और दण्डनीति का जानने वाला था।)

अनंग का पुत्र था अतिबल। यह शौर्यवान् तो था परन्तु इन्द्रिय-लोलुप हो गया। इसकी एक पत्नी थी सुनीता। उससे वेन उत्पन्न हुआ। वेन राग और द्वेष के अधीन प्रजाओं को दुःख देने लगा। इस पर ऋषियों ने मन्त्रपूत कुशों द्वारा उसको मार डाला। तदनन्तर उन्होंने वेन के पुत्र पृथु को राज्य गद्दी पर बैठा दिया।

इसने शपथ ली कि वह अधर्मियों को अपने बाहुबल से पराजित करेगा। सब प्राणियों के प्रति समभाव रखेगा और ब्राह्मणों का मान करेगा।

महाराज पृथु ने समाज को बहुत उन्नति दी। समाज में वर्णाश्रम धर्म की स्थापना की।

वेन और पृथु के काल के विषय में वायु पुराण में संकेत मिलता है। वहां लिखा है :—

चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वत पुनः।
वेन्येनेयं मही दुग्धा यथा ते कीर्तितं मया ॥ (वायु – ६३–१६)

इसका अर्थ है कि चाक्षुष मन्वन्तर के व्यतीत हो जाने के उपरान्त वैवस्वत मन्वन्तर में वेन पुत्र पृथु ने पृथिवी में से (अन्न–अनाज) ऐसे उत्पन्न किया, जैसे दुग्ध दुहा जाता है। ऐसा करने से वह कीर्तिमान हुआ था।

महाभारत में भी उल्लेख आता है कि वेन पुत्र पृथु ने पृथ्वी को दोह कर चौदह प्रकार के अन्न उत्पन्न किये थे।

चाक्षुष मन्वन्तर वैवस्वत मन्वन्तर से पहले माना गया है। वैवस्वत मन्वन्तर की २७ चतुर्युगियां व्यतीत हो जाने पर वर्तमान चतुर्युगी अट्ठाईसवीं है। इस श्लोक में वैवस्वत मन्वन्तर लिखा है। इससे यह ही प्रतीत होता है कि वेन पुत्र पृथु वर्तमान चतुर्युगी के सतयुग के आरम्भ में हुआ था।

पृथु के पीछे राज वंश चला।

युग गणना के अनुसार सत युग १७,२८,००० वर्ष तक रहा। इसमें मनुष्य दीर्घजीवी थे और वहुत अधिक सन्तान उत्पन्न करते थे। इस काल में युद्ध भी होते थे। वे युद्ध देवासुर संग्रामों के नाम से प्रसिद्ध हैं। देवासुर संग्राम त्रेता युग में भी चलते रहे। वास्तव में ये आजकल भी चलते हैं।

देवता और असुर किन्हीं जातियों के नाम नहीं थे। ये नाम गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार दिये जाते थे। यह प्राचीन आर्यों का मत था कि पूर्व जन्म के कर्म, इस जन्म के माता–पिता, शिक्षा-दीक्षा और देश का वातावरण मनुष्य के गुण, कर्म और स्वभाव पर प्रभाव डालता है। इस पर भी मनुष्य का मूल्य उसके गुण, कर्म और स्वभाव से ही लगाया जाता था। भले ही वे पूर्व जन्म के कर्म से बने हों, माता-पिता की संगत से बने हों अथवा शिक्षा-दीक्षा से बने हों।

अतः देवता उनको कहते थे, जो अपने कर्म और अपना स्वभाव वेदानुकूल, धर्मानुकूल रखें और सबसे समभाव रखते हों। असुर उनको कहते थे, जो जीवन को जन्म से मरण पर्यन्त मानने वाले, आत्म-तत्त्व से रहित और कर्म फल को न मानने वाले होते थे। इन्द्रिय सुखों में लीन असुर कहे जाते थे।

दोनों प्रकार के मानवों में झगड़े और युद्ध होते थे। कभी असुर विजयी हो जाते थे और कभी देवता।

सत युग में की कुछ घटनायें हम आगे चल कर लिखेंगे। यहाँ तो हम परम्पराओं का ही वर्णन लिख रहे हैं।

परम्परा यह है कि सतयुग का इतिहास बहुत संक्षेप में और उन ऋषियों की स्मरण शक्ति द्वारा लिखा गया है, जो प्लावन में बच गये थे। ●

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

●

श्री आदित्य

दिसम्बर मास में एक सैद्धान्तिक समस्या संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् के सम्मुख उपस्थित हुई थी और खेद है कि यह संस्था पुनः इस बार अपने कर्त्तव्य के पालन में असफल रही है।

कुछ दिन हुए दो अरब युवकों ने यूनान की राजधानी ऐथन्ज में एक इस्राईली हवाई जहाज पर आक्रमण कर उसको हानि पहुंचायी थी और ये अरब युवक लैबिनान में से होकर ऐथन्स में पहुँचे थे।

इस पर इस्राईली सरकार ने लैबिनान सरकार को चेतावनी दी थी कि इसका हरजाना दे अन्यथा उनको इसका दण्ड भोगना पड़ेगा।

इस्राईली सरकार तथा इस्राईली देश के विरुद्ध अरब गोरिल्ला छुट-पुट आक्रमण कर रहे हैं। जोर्डन को उन्होंने अपना केन्द्र बनाया हुआ है। ऐथन्स में इस्राईली हवाई जहाज पर आक्रमण करने वाले भी इन्हीं गोरिल्लों में से थे।

इस घटना के साथ यह भी स्मरण कर लेना चाहिए कि जून सन् १९६७ में अरब और इस्राईल में पाँच दिन तक युद्ध हुआ था और उन पाँच दिनों में इस्राईली सेना ने बहुत-सा अरब क्षेत्र अपने अधिकार में कर लिया था। तब संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् के कहने पर युद्ध-विराम हो गया था। युद्ध विराम के उपरान्त इस्राइलियों से कहा गया था कि वे युद्ध में अधिकार किया क्षेत्र वापिस कर दें। इस्राईल का कहना था कि वे तब ही यह करेंगे, जब अरब राज्य इस्राईल के अस्तित्व को स्वीकार करेंगे। और स्वेज नहर से उसके जहाजों को आने जाने के लिये मार्ग देंगे। अरब राज्य इन दोनों बातों को मानने के लिये तैयार नहीं और इस्राईल अधिकृत क्षेत्र वापिस लौटाने को तैयार नहीं।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस्राईल को एक राज्य के रूप में स्वीकार किया हुआ है, परन्तु यह अरबों से इसे स्वीकार नहीं करा सका। युद्ध विराम संधि को भी अरब भंग कर रहे हैं। अरब गोरिल्ले इस्राईल पर छुट-पुट आक्रमण

करते रहते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ इन आक्रमणों को बन्द नहीं करा सका। उन आक्रमणों के बदले में इस्राईल भी प्रत्याक्रमण करता रहता है।

इसी सन्दर्भ में ऐथन्स के गोरिल्लों के कार्य के प्रतिकार में इस्राईल ने बैरुत के हवाई अड्डे पर हैलीकौप्टरों से आक्रमण कर दिया और वहाँ लेबिनान के तेरह-चौदह के लगभग हवाई जहाजों को आग लगा फूंक दिया।

लेबिनान ने संयुक्त राष्ट्र के समक्ष शिकायत की और संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस्राईल के कार्य की निन्दा की है और कहा है कि लेबिनान सरकार हानि-पूर्ति का अधिकार रखती है।

इसके समर्थन में फ्रांस ने लेबिनान को हथियार देने बन्द कर दिये हैं। यह कहा जाता है कि कई करोड़ रुपये मूल्य का सामान जिसका दाम फ्रांस को दिया जा चुका है, जाने से रोक दिया गया है।

इसमें सैद्धान्तिक भूल यह है कि संयुक्त राष्ट्र संघ अपने निर्णयों को मनवाने की सामर्थ्य तो रखता नहीं। शक्तिशाली इसको कई बार अंगूठा दिखा चुके हैं। आततायी इसका कहा नहीं मानते। भले राज्य जब कहा मान जाते हैं तो आततायी इन से इसी प्रकार व्यवहार करने लगते हैं, जैसे अरब इस्राईल के साथ कर रहा था। अथवा उत्तरी वियतनाम दक्षिणी वियतनाम से कर रहा है। अरब गणराज्य की सहायता सोवियत रूस कर रहा है और अरब गणराज्य इस्राईल से सुलह करनी तो दूर, उससे बात करने के लिये भी तैयार नहीं।

यह कहा जाता है कि अमेरिका और ब्रिटेन इस्राईल की सहायता कर रहे हैं। फ्रांस को भी इस्राईल के पक्ष में समझा जाता था, परन्तु सुरक्षा परि-षद् के वर्तमान सर्वसम्मत निर्णय से यह बात गलत सिद्ध हुई है।

इस्राइलियों ने सुरक्षा परिषद् का निर्णय नहीं माना। इस्राइलियों का कहना है कि अरब गोरिल्ला युद्ध बन्द कर पक्की संधि के लिये बातचीत करें तो वे भी प्रत्याक्रमण करने बन्द कर देंगे। सुरक्षा परिषद् गोरिल्लों के आक्रमण बन्द नहीं करा सका था।

यही बात पाकिस्तान ने कश्मीर में सन् १९६५ में की थी। भारत सरकार शिकायतें करती थी। संयुक्त राष्ट्र संघ से नियुक्त निरीक्षक भी कहते थे कि पाकिस्तानी युद्ध-विराम रेखा पार कर कश्मीर में उपद्रव कर रहे हैं, परन्तु संयुक्त राष्ट्र संघ कुछ नहीं कर सका और जब पाकिस्तान और भारत में युद्ध होने लगा तो युद्ध बन्द करने की बातें करने लगा था।

संयुक्त राष्ट्र संघ की भूल यह है कि इसे हुक्म नहीं देने चाहियें जब

तक उन हुक्मों को मनवाने की सामर्थ्य न हो। साथ ही किसी को दोषी तब तक घोषित नहीं करना चाहिए, जब तक दोष की न्यायिक जांच न की जाये। अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों में अथवा व्यक्तिगत झगड़ों में भी, दोषी और निर्दोष का इस प्रकार निश्चय नहीं होता कि किसको कम हानि हुई है और किसको अधिक ? युद्ध में जिसको कम हानि हुई हो, वह निर्दोष नहीं भी हो सकता।

अतः यही कहा जा सकता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ संस्था प्रभावहीन है। यह न्याय ही करेगी, यह विश्वास नहीं रहा। साथ ही संसार में राष्ट्रों की स्थिति ऐसी हो गयी है कि कोई राष्ट्र किसी दूसरे की बात तब तक मानता नहीं, जब तक उसको विवश न कर दिया जाये।

यही स्थिति लीग आफ़ नेशन्स की थी। इटली जर्मनी और रूस मनमानी करते थे और लीग आफ नेशन्स की बात मानते नहीं थे। लीग आफ नेशन्स के पास भी न तो इस बात के साधन थे कि वह अपने न्यायपरायण होने का विश्वास दिला सके और न ही यह न्यायप्रिय थी। यही अवस्था अब हो गयी है। उस समय द्वितीय विश्व युद्ध हुआ था और अब भी एक ऐसा ही युद्ध हो सकता है। इस समस्या का सुझाव कुछ है क्या ?

हमारा सुझाव है कि मानव सम-बुद्धि वाले हों। इसका अभिप्राय यह है कि अपने-पराये का विचार छोड़ कर, गुणी को गुणी और अवगुणी को अवगुणी, दोषी को दोषी और निर्दोषी को निर्दोषी मानें। तब ही संसार में भले लोग संगठित हो सकेंगे। राष्ट्र व्यक्तियों के समूह का नाम है। जब मनुष्य न्याय दृष्टि रखने वाले होंगे तो राष्ट्र भी न्यायप्रिय हो जायेगा।

तब रूस और अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस, चीन और भारत और इसी प्रकार अन्य प्रतिद्वन्दी दो भागों में बंट जायेंगे। वे देश जिनकी प्रकृति धर्मयुक्त है एक पक्ष में होंगे और दूसरे जिनकी प्रकृति अधर्म युक्त है दूसरे पक्ष में होंगे।

यह माना जाता है कि राष्ट्रों को स्वार्थवश न्याय-अन्याय की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। यह बात गलत है। वास्तव में मानव स्वार्थी है। राष्ट्र तो उनका प्रतिबिम्ब मात्र ही होते हैं।

इस प्रकार संसार में राष्ट्रों के भी दो गुट्ट हो जायेंगे। वे राष्ट्र जिनमें धर्म, न्याय और आस्तिक्य की प्रवृत्ति होगी एक पक्ष में होंगे और दूसरे पक्ष में वे राष्ट्र होंगे जिनमें स्वार्थ, धोखा-धड़ी और भोग-विलास की प्रवृत्ति होगी। यदि न्यायप्रिय गुट्ट शक्तिशाली हो सका तभी संसार में शान्ति रह सकेगी और यदि कहीं

(शेषांश पृ० २३ पर)

महर्षि दयानन्द की परम्परा में

श्री गुरुदत्त

जहां मुसलमान राजाओं ने अपने राज्य को सुदृढ़ करने के लिए मुसलमानों की जन-संख्या में वृद्धि के हेतु छल, बल, धन और स्त्री का प्रयोग किया है, वहां अंग्रेजों ने अपने राज्य को चिरायु करने के लिए हिन्दु समाज की संस्कृति और धर्म-निष्ठा पर आघात किया है।

लार्ड मैकॉले ने अंग्रेजी भाषा में शिक्षा का चलन किया। उसने सरकार की ओर से ऐसे स्कूल तथा कालेज खोलने की योजना बनाई, जिनमें अंग्रेजी साहित्य और आचार-विचार के गुण गाये जा सकें और भारतीय आचार-विचार की निन्दा की जा सके। इतने से सन्तोष न कर मैकॉले जब इंग्लैंड गया तो उसने 'मैक्समूलर' के एक लेख को पढ़कर यह विचार बनाया कि हिन्दुस्तान के स्कूलों तथा कालेजों में भारतीयता की निन्दा करने के लिए हिन्दू शास्त्रों को निकृष्ट और फूहड़ सिद्ध करना आवश्यक है। इसके लिए मैक्समूलर उसे एक बहुत बड़ा सहायक समझ में आया। उसने मैक्समूलर को ऑक्सफोर्ड विश्व-विद्यालय में स्थान दिला दिया।

मैक्समूलर आक्सफोर्ड के 'इन्डोलोजिस्ट' विभाग का अध्यक्ष बना। इस विभाग में उसने कई सहयोगी रखे और हिन्दू धर्म शास्त्रों की अंट-संट व्याख्याएँ लिखीं।

जब स्वामी दयानन्द को मैक्समूलर के कार्य का पता चला तो उन्होंने घोषणा की कि मैक्समूलर वैदिक संस्कृति को नहीं जानता और जो कुछ भी वह वेद आदि ग्रन्थों के लिये कर रहा है, सब मिथ्या है।

इसके उपरान्त स्वामी जी तो अधिक काल तक जीवित न रहे, परन्तु उनके विचारों की परम्परा आर्य समाज में चलती रही। इस परम्परा में पं० भगवद्दत्त ने बहुत सहयोग दिया है।

पं० भगवद्दत्त के माता-पिता अमृतसर के रहने वाले थे। वे स्वामी दयानन्द तथा आर्य-समाज के प्रभाव में आये और अपने माता-पिता से लिए

हुए संस्कारों का ही फल था कि पं० भगवद्दत्त, जो स्कूल में उर्दू और फारसी पढ़ते रहे और एफ० एस-सी० में साइंस पढ़ने लगे थे, जब बी० ए० में प्रविष्ट हुए तो संस्कृत का अध्ययन किया और नियत समय में ही संस्कृत विषय लेकर बी० ए० पास कर लिया।

तदनन्तर पंडित जी कुछ वर्ष तक संस्कृत का और शास्त्र का अध्ययन करते रहे और फिर डी० ए० वी० कालेज, लाहौर के अनुसंधान विभाग में कार्य करने लगे।

पंडित जी का यह कहना था कि मैक्समूलर इत्यादि अनेकानेक यूरोपीय विद्वानों ने वेद आदि शास्त्रों के मिथ्या अनुवाद करके बहुत भ्रम फैलाया हुआ है। इस भ्रम को दूर करने के लिए वह कटिबद्ध हो गये और यूरोपीय "इन्डो-लोजिस्ट" के लेखों का खंडन करने लगे।

यूरोपीयन विद्वानों ने न केवल शास्त्रों के मिथ्या अर्थ किये थे, वरन् भारतीय इतिहास को भी विकृत करके रख दिया था। उदाहरण के रूप में यूरोपीय विद्वान मानते हैं कि आर्य लोग भारत के मूल निवासी नहीं हैं। ये कहीं बाहर से भारत में बसने के लिए आये थे। इस देश के मूल निवासी भील गोंड इत्यादि वन जातियां हैं। यूरोपियन विद्वानों का यह भी कहना है कि वेद ईसा से तीन-चार सहस्र वर्ष पहले कहे गये। वेदों के कहने वाले मध्य एशिया की तरफ से आये थे और पंजाब के मैदानों में रहते हुए उन्होंने वेद कहे। वेदों में अन्य देवी-देवताओं की पूजा का वर्णन है और उनमें बच्चों की सी कहानियां हैं। इन विद्वानों का यह भी कहना है कि रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में सत्य घटनाओं का उल्लेख नहीं है। ये ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं हैं। अधिकांश में ये ग्रन्थ काल्पनिक कथा-कहानियों के हैं।

इन यूरोपियन लेखकों की इन मिथ्या बातों के खंडन का कार्य सुगम नहीं था। महर्षि स्वामी दयानन्द ने तो इस ओर केवल संकेत ही किया था, खंडन करने के लिए विस्तृत सामग्री एकत्रित करनी आवश्यक थी। इसके लिए डी० ए० वी० कालेज के अन्वेषण विभाग ने यत्न किया। एक बहुत बड़ा, शास्त्रों का संग्रहालय निर्माण किया गया और सहस्रों की संख्या में हस्तलिखित अप्राप्य ग्रन्थ उपलब्ध किये गये तथा अन्वेषण का कार्य आरम्भ हो गया। अन्वेषण विभाग में काम करने वाले पं० विश्वबन्धु, पं० भगवद्दत्त और पं० राम गोपाल शास्त्री इत्यादि लोग थे।

पं० भगवद्दत्त जी ने हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह का कार्य बहुत लगन

से किया । इतिहास एवं वेद आदि शास्त्रों की व्याख्या के संशोधित ग्रन्थ लिखे जाने लगे ।

पं० भगवद्दत्त जी कई वर्ष तक अन्वेषण का कार्य इस संस्थान में करते रहे । उन दिनों इन्होंने कई ग्रन्थ लिखे । यथा—'ऋग्वेद पर व्याख्यान,' 'बृहस्पति के सूत्र की भूमिका,' 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास-तीन भागों में,' 'भारतवर्ष का बृहद् इतिहास-दो भागों में ।' कुछ वर्ष डी० ए० वी० कालेज के अन्वेषण विभाग में कार्य करते हुए इन्होंने अनुभव किया कि इनके कुछ सहयोगी इनसे ईर्ष्या और द्वेष करते हैं । पंडित जी महर्षि स्वामी दयानन्द की वेद-भाष्य करने की शैली को स्वीकार करते थे और इनके एक सहयोगी स्वामी जी की शैली में दोष मानते थे । पं० भगवद्दत्त जी पाश्चात्य विद्वानों के वेद-विरोधी प्रवचनों और लेखों को राजनीतिक उद्देश्यों से किया गया मानते थे । इनके सहयोगी ऐसा नहीं मानते थे और कहते थे कि यूरोपीय विद्वानों ने बहुत मेहनत और योग्यता से हिन्दू शास्त्रों पर कार्य किया है । इस प्रकार के मतभेदों के कारण पंडित जी को डी० ए० वी० कालेज का अन्वेषण-विभाग छोड़ना पड़ा और वे स्वतन्त्र रूप से कार्य करने लगे । इस रूप में भी इन्होंने वह कार्य किया है जो लाखों की सम्पत्ति रखने वाले संस्थान भी नहीं कर सके ।

वैसे तो देश के कई अन्य स्थानों पर भी भारतीय शास्त्रों पर कार्य हो रहा है । उदाहरण के रूप में पूना के भंडारकर इंस्टिट्यूट ने बहुत काम किया है । परन्तु इन संस्थाओं के कार्य से वैदिक शास्त्रों का वह स्वरूप नहीं निकल सका, जो महर्षि स्वामी दयानन्द वर्णन करते थे । स्वामी जी का यह कहना है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं । वेदों का मनुष्य को मिलना देवताओं द्वारा हुआ है । अग्नि, वायु और आदित्य से वेद इस पृथिवी पर भेजे गये और इस भूतल पर ऋषियों ने उन वेद-वाक्यों को सुना और मानव-भाषा में गाया । अग्नि, वायु और आदित्य अंतरिक्ष के देवता हैं । वे निरन्तर अपनी रश्मियों के द्वारा वेद-ज्ञान पृथ्वी पर भेज रहे थे, जो ऋषियों ने सुना, समझा और वर्णन किया ।

युरोपियन विद्वान ऐसा नहीं मानते । उनका कहना है कि वेद ग्वालों और गडरियों के गीत हैं । इस वाद के खंडन का श्रेय स्वामी दयानन्द को मिला । उसके उपरान्त योगीराज अरविन्द घोष ने भी इस दिशा में प्रयास किया । पं० भगवद्दत्त भी स्वामी दयानन्द की परिपाटी पर कार्य करने वाले विद्वान थे । पंडित जी ने अपने 'वैदिक वाङ्मय के इतिहास' में स्वामी दयानन्द

के भाव को स्पष्टता से और प्रमाण से सिद्ध किया है। पंडित जी यह मानते थे कि मूलरूप से संसार की सब विद्याएँ वेदों में लिखी हैं। कैमिस्ट्री, फिजिक्स, ज्योतिष, भूगर्भशास्त्र इत्यादि सब विद्याओं का मूल वेदों में उपस्थित है। पंडित जी ने अपने देहावसान से कुछ मास पूर्व एक पुस्तक "दि स्टोरी आफ क्रियेशन ऐज़ सीन बाई सीअरस" लिखी है और उसमें वेद आदि शास्त्रों तथा प्राचीन आर्ष ग्रन्थों से वर्तमान विज्ञान के मूल सिद्धान्तों का खंडन-मंडन किया है।

'भारत के वृहद् इतिहास' में उन्होंने भारतवर्ष के इतिहास के सम्बन्ध में यूरोपियन विद्वानों की मान्यताओं का सप्रमाण खंडन किया है। उदाहरण के रूप में— विक्रमादित्य, जिसका सम्वत् चलता है, को वे गुप्त परिवार का विख्यात सम्राट मानते हैं। इस विषय में उन्होंने अनेक अकाट्य प्रमाण और युक्तियाँ भी दी हैं। इसी प्रकार वे मानते थे कि मेगस्थनीज चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्य में नहीं आया। उसका चन्द्रगुप्त के साथ किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं था। पंडित जी मानते थे कि महाभारत-युद्ध की घटना सत्य इतिहास है, यह कल्पना नहीं है, और इस घटना को हुए आज पाँच हजार वर्ष से अधिक हो चुके हैं।

यूरोपियन विद्वान प्रायः यह मानते हैं कि महाभारत का युद्ध हुआ ही नहीं; और यदि हुआ है तो बहुत छोटे स्तर पर हुआ था। पंडित जी ने भारतीय परम्पराओं का आश्रय लेकर यह सिद्ध किया है कि महाभारत का युद्ध हुआ था और कलियुग तथा द्वापर युग की सन्धि पर हुआ था। इसी प्रकार जल-प्लावन, जिसमें प्रायः पृथ्वी जल-मग्न हो गई थी, एक सत्य घटना है। प्रायः सब प्राचीन जातियों की पुस्तकों में इस प्लावन का उल्लेख है। पंडित जी के विचार से मनु, जिसे बाइबल में 'नूह' के नाम से स्मरण किया गया है, एक वास्तविक व्यक्ति था, जो इस प्लावन में बच गया था।

पं० भगवद्दत्त जी के तमाम प्रयासों का प्रभाव तो हुआ है। विश्व-विद्यालयों के इतिहास और पुरातत्व के विद्वान अपनी पूर्व धारणा को छोड़ प्राचीन भारतीय परम्परा की ओर भागते हुए दिखाई देने लगे हैं।

पं० भगवद्दत्तजी ने अपना कार्य सन् १९१७-१८ में आरम्भ किया था और मरणपर्यन्त नवम्बर सन् १९६८ तक निरन्तर करते रहे। यह मनीषी भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं परम्पराओं पर अपनी अमिट छाप छोड़ गया है। यदि इनकी शैली पर कार्य होता रहा तो वह दिन दूर नहीं, जब यूरोपियन विद्वानों के मूढ़तापूर्ण लेखों का प्रभाव वेग-युक्त वायु के सम्मुख धुएँ के बादलों

की तरह छिन्न-भिन्न हो जायेगा। वेद आदि शास्त्रों की महिमा उज्ज्वल होगी और भारतीयों की प्राचीन संस्कृति एवं धर्म पर निष्ठा संसार भर में विख्यात होगी।

मेरा पं० भगवद्दत्त जी से परिचय सन् १९१३ से है। मैं डी० ए० वी० कालेज की एफ० एस-सी० की श्रेणी में प्रविष्ट हुआ था तो पं० जी बी० ए० में पढ़ते थे। वे भी उसी 'ट्यूटोरियल ग्रुप' में थे जिसमें मैं था। हमारे ट्यूटर श्री सी० बी० पुरानी एक देशभक्त प्राध्यापक थे और हम दोनों ने उनके चरणों में बैठकर देशभक्ति की शिक्षा ग्रहण की थी।

मैं तब से उनके मरणपर्यन्त उनके सम्पर्क में आता रहा हूँ। बीच में कुछ वर्ष के लिये जब लाहौर छोड़कर आ गया था, यह सम्पर्क टूटा था, परन्तु देश-विभाजन के उपरान्त, जब वे दिल्ली में आये, तब से पुनः सम्पर्क बन गया। पिछले दो वर्ष से तो मैं उनके घर के समीप ही रहने लगा था, और इन दो वर्षों में मेरा उनसे नित्य मेल-मिलाप होता था और शास्त्रचर्चा चलती थी। इन वर्षों में मैंने अनुभव किया है कि पंडित जी वेदों के प्रकाण्ड विद्वान और आर्य एवं वैदिक सभ्यता, धर्म और संस्कृति पर अगाध श्रद्धा रखते थे। ●

(पृष्ठ १८ का शेषांश)

धोखा-धड़ी करने वाले और भोग-विलास में रत लोगों का गुट्ट शक्तिशाली हो गया तो महान उपद्रव होने लगेंगे। सुख और शान्ति नहीं होगी।

इस्राईल और अरब राज्यों में संघर्ष चल रहा है। अरब अपने गोरिल्लों को इस्राईल राज्य में उपद्रव करने से रोक नहीं सकते। कदाचित् वे रोकना चाहते नहीं। इस्राईली इन गोरिल्लों का बदला अरब देशों पर बम्बबारी कर लेते हैं। मध्यपूर्व की स्थिति अति भययुक्त हो रही है।

अभी-अभी समाचार मिला है कि इस्राईली हवाई जहाजों ने जॉर्डन के देहातों पर बम्बबाजी की है, जिससे फसल को भारी हानि पहुंची है। इन दोनों में इस प्रकार सुलह नहीं हो सकती। सुलह के दो ही उपाय हैं। या तो सुरक्षा परिषद् को सुदृढ़ किया जाये अन्यथा अरब और इस्राईलियों को लड़ लेने दिया जाये। जब ये लड़ कर थक जायेंगे तो सुलह हो सकेगी।

इस प्रकार की सुलह सन् १९६७ के युद्ध के उपरान्त हो सकती थी, परन्तु रूस अपने स्वार्थ के लिए अरबों को अस्त्र-शस्त्र देकर सुदृढ़ कर रहा है। इसी कारण इस्राईली और अरब संघर्ष चल रहा है। ●

अस्तित्व की रक्षा

श्री विद्यानन्द 'विदेह'

हमारी मातृभूमि का हजारों मील का जो खण्ड चीन ने अपहृत किया हुआ है, उसका जो भूभाग पाकिस्तान ने दबाया हुआ है, हम उसे किसी भी प्रकार वापिस लेकर ही दम लेंगे, ऐसी भावना देश की जननियां गर्भ से ही हिन्दुस्थान की भावी सन्ततियों में संस्काररूपेण अंकित करेंगी, तब ही हमारा खण्डित देश पुनः अखण्ड बन पायेगा।

देश के विभाजन से पाकिस्तान का निर्माण जहां हमारे राजनीतिक दिवालियापन का प्रमाण था, वहां वह हिन्दु प्रजा की अक्षमता तथा कायरता का भी प्रमाण था। किसी भी देश का विभाजन, विश्व इतिहास में, सम्बन्धित देश के नेताओं तथा नागरिकों की सहमति से नहीं हुआ। कोरिया, वियतनाम, जर्मनी आदि का विभाजन अन्तर्राष्ट्रीय बलात्कार से हुआ था, न कि उनके नेताओं तथा नागरिकों की स्वीकृति से। पर हमारे देश का विभाजन हुआ स्वयं हमारे नेताओं तथा नागरिकों की स्वीकृति से। घावों पर नमक छिड़कना यह कि हमारे अन्तर्राष्ट्रीय नीति-विशेषज्ञ नेता उपर्युक्त विभक्त देशों के एकीकरण के तो समर्थक हैं, किन्तु वे विभक्त हिन्दुस्थान के एकीकरण की चर्चा को पागलपन से भरी **साम्प्रदायिकता** की संज्ञा देते हैं। इस पृथिवी के सम्पूर्ण इतिहास में हम ही वे बेगैरत हैं, जिन्होंने स्वयं अपनी स्वीकृति से, अपनी आखों के सामने, बिना किसी प्रतिकार के, अपनी मातृभूमि के टुकड़े-टुकड़े होने दिये, जिन्होंने देश के विभाजन पर जलसे किये और जशन मनाये, जिन्होंने विभाजन की पीड़ा से सिसकती हुई मातृभूमि की छाती पर शराब पी-पी-कर नृत्य किये, जिन्होंने मातृभूमि के घावों पर खुशी से दीप जलाये।

तभी से अन्तर्विभाजन का दुश्चक्र निरन्तर घूम रहा है। कश्मीर के विभाजन के उपरान्त हैदराबाद राज्य का विभाजन हुआ, मद्रास राज्य का, फिर बम्बई राज्य का और फिर पंजाब राज्य का। अब स्वीकृति दी जा चुकी है असम राज्य के विभाजन की। दक्षिण में आवाज उठ रही है मुस्लिम जिलों के निर्माण की। पंजाब में तैयारियां हो रही हैं सर्वतन्त्र स्वतन्त्र सिक्खिस्थान

के निर्माण की, तो तमिलनाड से गूंज उठ रही है सर्वतन्त्र स्वतन्त्र द्रविड़स्थान के निर्माण की। यह सब अनिष्टसूचक और भविष्य-रोधक है।

सब व्याधियों की एकमात्र चिकित्सा है हिन्दुस्थान के जन-जन में देशप्रेम तथा राष्ट्रनिष्ठा की भावना का संचार। यदि स्वतन्त्रता की प्राप्ति के क्षण से ही शासन और शासित इस दिशा में कुछ कारगर कदम उठाते तो आज यह दुरवस्था न होती। मुझे इस दिशा में आशा की एक कोर भी दिखाई नहीं देती कि यहां का अहिन्दु-वर्ग सामूहिक रूप से निकट भविष्य में देशभक्त और राष्ट्रनिष्ठ बन सकेगा। अहिन्दु-वर्ग में अपवादरूपेण इने-गिने व्यक्ति देश-भक्त और राष्ट्रनिष्ठ हुए हैं, आज भी हैं और कल भी होंगे। मेरी मान्यता तो यह है कि हिन्दु हों या मुसलमान, ईसाई हों या पारसी, कोई भी क्यों न हों, जिन्हें देश की वेशभूषा, भाषा तथा जीवनपद्धति से लगाव और प्यार नहीं है, जिन्हें देश की मिट्टी, नदी-नालों, वन-पर्वतों तथा पूर्वजों में निजता की अनुभूति नहीं है, उनसे देशप्रेम और राष्ट्रनिष्ठा की आशा करना आशा का उपहास करना है। जिन्हें 'वन्दे मातरम्' गान तथा झण्डाभिवादन में तो बुतपरस्ती की बू आती है, किन्तु जो कब्रपरस्ती को बुतपरस्ती नहीं समझते, उनमें देशभक्ति तथा राष्ट्रनिष्ठा कैसे स्थापित होगी—यह एक विकट समस्या है। अंग्रेजी भाषा तथा वेशभूषा की ऐंठ में जो अपने देशवासियों को हेयता के साथ हिन्दी-वाला और धोती-पायजामा-वाला कहकर पुकारते हैं, उन्हें कैसे देशप्रेम तथा राष्ट्रनिष्ठा से अलंकृत किया जाये, यह एक पहेली है। करोड़ों हिन्दु जो पेट भरने और धन बटोरने के लिये रात-दिन भ्रष्टाचार और अनाचार में लथपथ हैं, उन्हें देशप्रेम तथा राष्ट्रनिष्ठा से कैसे दीक्षित किया जाये, यह गहन चिन्तन का विषय है। देश की जिन राजनीतिक पार्टियों का एकमात्र धन्धा या लक्ष्य अशान्ति फैलाना, वोट बटोरना और शासन हथियाना है, उनके सभ्य-सभ्याओं को कैसे देश का दीवाना और राष्ट्र का परवाना बनाया जाये, यह एक कठोर प्रश्न है। और सर्वातिशय गर्हित प्रश्न तो यह है कि हिन्दुस्थान में रहकर जो यहां पाकिस्तान की हुकूमत कायम करने के षड्यन्त्र रच रहे हैं उनके मानस को कैसे पलटा जायें।

जब मैं यह हिसाब लगाने लगता हूँ कि मेरी मातृभूमि के पचास-पचपन करोड़ पुत्र-पुत्रियों में से कितने हैं जिन्हें वास्तव में देशभक्त और राष्ट्र-निष्ठ कहा जा सकता है तो मेरी आंखों के सामने अंधेरा-सा छाने लगता है। तथापि समस्या का समाधान तो खोजना ही होगा। —क्रमशः

आदि आर्य एवं साम्यवाद

श्री गुरुदत्त

[हिन्दुओं का पतन आरम्भ हुआ ब्राह्मणों की स्वार्थपरता के कारण। ब्राह्मणों ने वर्ण-व्यवस्था को जन्म से मानकर वेदों के पठन पर एकाधिकार प्राप्त कर लिया और कालान्तर वेदज्ञान का लोप होने लगा। इस पर भी वेदों के प्रति श्रद्धा व उनकी प्रतिष्ठा बनी रही।

इस श्रद्धा और प्रतिष्ठा को समाप्त करने के लिये मेक्समूलर प्रभृति विदेशियों ने वेदों के मिथ्या अर्थ करने आरम्भ कर दिये। इसके साथ ही साथ भारत पर अपना राज्य स्थिर रखने के लिए अंग्रेजों ने सम्पूर्ण शिक्षा को अपने नियंत्रण में ले लिया। शिक्षा जड़वादी बनाने का कारखाना बन गई।

इसी शिक्षा की उपज हैं आज के मार्क्सवादी। साधारण जनता की वेदों के प्रति (अन्ध) श्रद्धा देख मार्क्सवादियों ने भी वेदों में साम्यवाद ढूँढना आरम्भ कर दिया है।

इस भूमिका के बाद, साम्यवादियों की मिथ्या विवेचना का मिथ्यात्व सिद्ध करने के लिये हमारे विज्ञ लेखक श्री गुरुदत्त प्रस्तुत अंश में कम्युनिस्टों के गुरु मौर्गन तथा एंजिल के वाद की आलोचना प्रस्तुत करते हैं।]

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या

मौर्गन ने मनुष्य के विकास में निम्न युगों की कल्पना की है।

(१) जंगल युग :—यह वह युग है जिसमें मनुष्य पशु की भाँति खाता था और यौन-सम्बन्ध से ही सन्तुष्ट रहता था। यह जंगलों में सम्भवतः उष्ण कटिबन्ध (tropic zone) अथवा अर्ध उष्ण कटिबन्ध (temperate belt) में निवास करता था और जंगली हिंसक जन्तुओं से बचने के लिये पेड़ों पर रहता था। आरम्भ में यह हाथों का भी, पांव की भाँति प्रयोग करता था, परन्तु पीछे किसी कारण से यह सीधा हो चलने लगा।

जंगल युग में तीन अवस्थायें थीं। प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य और पशु में अन्तर नहीं था।

इस युग की मध्यम अवस्था वह थी जब मनुष्य वनस्पतियां खाने के साथ-साथ मछलियां और केंकड़े-घोंघे भी खाने लगा था। इस समय यह जंगलों को छोड़ नदियों के तटवर्ती देशों में रहने लगा।

मनुष्य में बोलने की शक्ति आयी और वाणी में उन्नति करने से यह परस्पर राय करने लगा। इसी काल में मनुष्य ने आग का आविष्कार किया। तब यह मछलियों और जानवरों को भून-भून कर खाने लगा। इस युग में उसने पत्थर के मोटे मोटे भद्दे शस्त्र बनाने भी आरम्भ कर दिये थे। जंगल युग में उन्नत अवस्था तब हुई, जब मनुष्य पशुओं का आखेट करने लगा और उसका भोजन मांस बन गया। इस काल में इसने धनुष-बाण का आविष्कार किया। यह जंगल युग की तृतीय अवस्था थी।

अभी तक मनुष्य पशुओं मछलियों इत्यादि के मांस से तथा नर मांस से निर्वाह करता था।

(२) मौर्गन के विचार से इस समय दूसरा युग आरम्भ हुआ, जिसे उसने वर्बर युग का नाम दिया है।

इसकी भी तीन अवस्थायें बतायी गई हैं। प्रथम अवस्था में मिट्टी के बर्तन बनाने का ढंग मनुष्य ने सीखा। कदाचित् पहले लकड़ी के प्राकृतिक अथवा बनाये बर्तनों में वस्तुएँ गरम करने पर पता चला होगा कि जलने से बचाने के लिये उन पर मिट्टी का लेप करना चाहिये और पीछे पता चला होगा कि वह लेप की हुई मिट्टी पक जाती है और फिर लकड़ी के जल जाने पर भी वह मिट्टी बर्तन के आकार में बनी रहती है।

इसी युग की दूसरी अवस्था हुई, जब मनुष्य पशु-पालन और वनस्पतियों को उगाने का ढंग सीख गया। तब यह पशु-पालन और खेती-बाड़ी करने लगा। वह नदियों के किनारों से हट कर परिश्रम करने लगा। यह कल्पना की गयी है कि पशु-पालन पहले सीखा होगा और अन्न-अनाज उत्पन्न करना पीछे।

पशु-पालन और अन्न पैदा करने से मनुष्य मिलकर एक स्थान पर रहने लगे। यह बर्बर युग की तीसरी अवस्था थी। अभी मकान और झोंपड़े नहीं बने थे। इस पर भी मनुष्य अपने जंगल युग को भूल गया था और इस वर्बर युग वाले स्थान को ही अपना आदिम स्थान मानने लगा था।

इस युग में माँस तथा दूध मुख्य भोज्य पदार्थ थे। पीछे अन्न उगाया जा सका।

बर्बर युग की उन्नत अवस्था वह है जब कच्ची धातुओं (ores) को पिघलाकर लोहा और अन्य धातुएँ निकाली गयीं। तब लोहे के शस्त्र बनने लगे।

(३) सभ्यता का काल :—इसमें मनुष्य ने मकान बनाये और सुख-आराम के साधन बनाये। बर्बर युग का अन्तिम और उन्नत काल का आरम्भ, आदि साम्यवाद का काल माना जाता है। यही वेदों का काल कहा जाता है।

दूसरे शब्दों में मानव इतिहास मनुष्य के भोजन, वस्त्र, निवास-स्थान और यौनतृष्णा की पूर्ति का इतिहास है। यह मार्क्सवादियों का कहना है। श्री डांगे लिखते हैं :—

'मार्क्सवादी यह मानते हैं कि समाज के पास जितनी उत्पादन शक्ति, एक विशेष युग में होती है, वही उस समाज की अवस्था या दिशा का निश्चय करती है।

इस मत का आधार खोखला है।

उक्त पूर्ण कथन में प्रमाण कुछ भी नहीं है। एक बैठक-घर में बैठ कर निराधार कल्पना की गयी है। इसमें सब से प्रथम बात तो यह समझनी चाहिये कि इस विचार की आधार शिला डार्विन का विकासवाद है और डार्विन का विकासवाद तो स्वयं एक असिद्ध बात है। उस असिद्ध वाद को आधार बना कर उक्त कपोल कल्पना की गई है।

विकासवाद का यदि विश्लेषण करें तो वह इस प्रकार होगा :—

(१) जड़ से सर्व प्रथम सूक्ष्म जीव 'अमीबा' का बनना। जड़ उसको कहते हैं जिसमें चेतन शक्ति नहीं है। इसको अंग्रेजी में (Inert) कहते हैं। निर्जीव जड़ है और जन्तु चेतन है। वह जीवित माना जाता है। विकासवाद का प्रथम काल्पनिक कथन यह है कि जड़ से चेतन बना।

हम डांगे साहब अथवा जो कोई भी इसको मानता है, को यह चुनौती देते हैं कि वे जड़ से चेतन बन रहा दिखा दें। तब तो यह सिद्धान्त है अन्यथा कल्पना मात्र है। डांगे साहब के गुरुपद पर स्थित रूस राज्य अरबों रुपये व्यय कर चुका है और वह यह सिद्ध नहीं कर सका कि जड़ से चेतन बना है। चेतन का अस्तित्व कहां से शरीर में आता है, यह अभी तक कोई नहीं बता सकता।

वैज्ञानिक कल्पनायें तो करते हैं, परन्तु ठोस प्रमाण नहीं दे सकते।

हम एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक की बात बताते हैं। डांगे जैसे अज्ञानियों की बात पर विश्वास करने वालों से हम कहेंगे कि इसको पढ़ लें।

सर ऑलिवर लौज और उनके छः अन्य साथियों ने परस्पर वाद-विवाद के उपरान्त एक पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक का नाम है 'Science and Religion'। इस पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है :—

To sum up this part of our argument we can say that scientific study must certainly show us the presence in this physical universe of an order, stability, directing power and intelligibility and capability of being understood by us. These qualities are not spontaneously produced. They do not come by chance. They are not the result of mere accident. They always imply thought and intelligence. This universe is not merely a thing ; it is a thought, and thought implies and necessitates a thinker. Hence there is in this universe a Supreme Thinker or Intelligence of which our own intelligence is but the faint copy and image.

(वैदिक सम्पत्ति V-I पृष्ठ-१४५ से उद्धृत)

इसका अर्थ है :—

इस विषय पर युक्तियों का निष्कर्ष लिखते हुए हम कह सकते हैं कि विज्ञान का अध्ययन निश्चय रूप में यह बताता है कि इस भौतिक जगत् में एक नियम है, व्यवस्था है, स्थायित्व है, निर्देशन शक्ति है और हमें समझ में आ सकने योग्य बात है। ये सब गुण स्वयमेव उत्पन्न नहीं हो जाते। न ही ये अकारण हुए हैं। ये घटनावश भी नहीं। इनके पीछे विचार और बुद्धि दिखाई देती है। यह जगत् केवल वस्तु ही नहीं है, वरंच इसमें विचार भी है। विचार का स्वाभाविक कारण विचार करने वाला होता है।

अतः इस जगत् में एक महान विचारक उपस्थित है जिसकी तुलना में हमारी विचार शक्ति एक बहुत धीमी सी परछाईं है।

एक अन्य वैज्ञानिक डाक्टर गॉल हैं। वे Phrenology' (मस्तिष्क शास्त्र) के जन्मदाता हैं। वे लिखते हैं :—

In my opinion there exists but one single principle which sees, hears, feels, loves, thinks, remembers etc. But this principle requires the aid of various material instru-

ments, in order to manifest the conscious functions.

(वै०-स०-पृ०-१५७ से उद्धृत)

डाक्टर गॉल के कथन की पुष्टि उपनिषद् में इस प्रकार है :—

एषा हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मंता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः।

(प्रश्न०-४/९)

प्राणी में देखने वाला, छूने वाला, सुनने वाला, सूंघने वाला, मनन करने वाला, समझने वाला और कार्य करने वाला एक विज्ञानात्मा पुरुष है।

सर औलिवर लौज अपनी पुस्तक 'Science and Religion' में लिखते हैं :—

Once you realise the consciousness is something greater, something outside the particular mechanism which it makes use of, you realise that survival of existance is natural, is the simplest thing. It is unreasonable that the soul should jump out of existance, when the body is destroyed. We ourselves are not limited to the few years that we live on this earth. We shall go on without it. We shall certainly continue to exist, we shall certainly survive. Why do I say that ? I say it on definite scientific grounds.

(Science and Religion P. 24 वै०-स० पृ०—१५७-५८ से उद्धृत)

(एक बार तुम समझ लो कि चेतना, यन्त्र से जिसमें यह काम करती है, बड़ी है और पृथक है तो तुमको यह पता चल जायेगा कि उसका मरने के पीछे रहना स्वाभाविक है, सरल है। यह अयुक्तिसंगत है कि शरीर के मरने पर आत्मा का अस्तित्व नहीं रहता। पृथिवी पर कुछ वर्ष के जीवन तक ही हम सीमित नहीं हैं। हम इसके उपरान्त भी चलते रहेंगे। निश्चय ही हम पीछे भी जीवित रहेंगे। हम मरने के उपरान्त रहेंगे। मैं यह क्यों कहता हूं क्योंकि इस का आधार वैज्ञानिक है।)

कोई भी वैज्ञानिक जो ईमानदार है और अनर्गल बात करने से बचता है तो वह यह माने बिना नहीं रह सकता कि जीवन तत्व जड़ तत्व से पृथक् है और दोनों के संयोग को प्राणी कहते हैं।

अतः विकासवाद की प्रथम बात कि जड़ से ही चेतन बना है, असिद्ध है, कल्पना मात्र है।

विकासवाद की दूसरी कड़ी है कि एक प्रकार के जन्तु से दूसरे प्रकार का जन्तु बनता है। यह बात भी कल्पना की दौड़ ही है। इस का प्रमाण संसार भर के वनस्पति शास्त्र के ज्ञाता और जन्तु शास्त्र के ज्ञाता आधी शताब्दी से अधिक के प्रयास से भी सिद्ध नहीं कर सके। जन्तुओं की योनियां होती हैं। एक योनि के जन्तु से दूसरी योनि का जन्तु उत्पन्न नहीं होता। एक योनि के पेड़ की पैबन्द दूसरी योनि के पेड़ से नहीं लग सकती।

उदाहरण के रूप में अमरूद और नीम्बू भिन्न भिन्न योनियों के पेड़ हैं। अतः किसी ने अमरूद के पेड़ से नीम्बू की पैबन्द लगाकर कोई फल प्राप्त नहीं किया। इसी प्रकार लौकाट के पेड़ में कटहल की पैंबन्द नहीं लग सकती। परन्तु एक योनि में उपयोनियां होती हैं। उपयोनियों में एक से दूसरे में बच्चा उत्पन्न हो सकता है अथवा पैबन्द लग सकती है, परन्तु यह भी प्रकृति पसन्द नहीं करती। नींबू और सन्तरा तथा गुलाब के भिन्न भिन्न प्रकार के फूल उपयोनियों में माने जाते हैं। इसी प्रकार कुत्ता और गीदड़ उपयोनियां हैं। गधा और घोड़ा उपयोनियां हैं। इनके समागम से नये प्रकार के जन्तु बनते हैं। गधे और धोड़े के संयोग से खच्चर पैदा होते हैं। इसी प्रकार अनेक प्रकार के सन्तरे और आम उत्पन्न किये जाते हैं।

परन्तु प्रकृति उनकी नसल भी चलने नहीं देती। खच्चर की नसल नहीं चलती। इसी प्रकार कुत्ते और गीदड़ से बना जन्तु अपनी सन्तति नहीं चला सकता। दो उपयोनियों के समागम से नया फल तो बन जाता है परन्तु उस फल के बीज से उसकी सन्तति नहीं चल सकती। प्रायः उनमें बीज होता ही नहीं। कभी होता है तो वह पेड़ नहीं बना सकता।

यह कभी कहीं किसी ने देखा नहीं कि एक योनि से दूसरी योनि उत्पन्न हो जाये। विचित्र बात यह है कि विज्ञान यह कहता है, परन्तु अवैज्ञानिक राजनीतिज्ञ और ऐतिहासिज्ञ इसे सिद्धान्त मान कल्पना कर रहे हैं।

विकासवाद की तीसरी कड़ी है जंगली मनुष्य से सभ्य मनुष्य का बनना। यदि इसको मान लें तो यह मानना होगा कि मनुष्य में उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है। यह भी देखने में नहीं आता।

विकासवादी मानते हैं कि प्राचीन मनुष्य हाथों और पांवों के बल चलता था। उसका मस्तिष्क छोटा था और सरल प्रकार का था। उसकी कमर टेढ़ी थी इत्यादि। यह भी अप्रमाणित बात है। मनुष्य की सब प्रकार की शक्तियों में विकास नहीं, ह्रास हो रहा है।

मिश्र, इब्रानियन, खताई और अन्य प्राचीन जातियों का साहित्य पढ़ने

से पता चलता है कि मनुष्य के पूर्वज बृहद कामदेव थे। वे बुद्धि और बल में भी वर्तमान मनुष्य से अधिक थे। वेदादि शास्त्रों का सहस्रों वर्ष पूर्व लिखा जाना और वेदादि शास्त्रों में ज्ञान-विज्ञान की अद्भुत बातों का उपस्थित होना जिनके समझने के लिये वर्तमान युग के मनुष्यों के पास न समझ है, न बुद्धि, यह प्रकट करता है कि मनुष्य की प्राकृतिक शक्तियों में ह्रास हुआ है।

भाषा का अपभ्रंश होना भी यही प्रकट करता है कि मनुष्य की शक्तियों में ह्रास हुआ है। वैदिक भाषा में कई अक्षर ऐसे हैं जिन्हें वर्तमान मनुष्य उच्चारण नहीं कर सकता। प्राचीन भाषायें अधिक मधुर, भावमय और अधिक उच्चारणों वाली थीं। वर्तमान भाषायें दिन प्रतिदिन कटु, भद्दी और भाव विहीन होती चली जाती हैं। कोई भी प्राचीन भाषा सुगमता से और कम कथन से वह भाव प्रकट कर सकती है जो वर्तमान युग की भाषा बहुत लम्बे कथन में ही प्रकट करने की सामर्थ्यय रखती है। इस विषय में एक भाषा विशेषज्ञ का उदाहरण दिया जाये तो ठीक होगा।

भाषा विज्ञान के विद्वान श्री वैण्ड्रियस लिखते हैं :—

Certainly modern languages such as English and French rejoice in an extreme suppleness, ease, and flexibility ....But can we maintain that the classical tongues like Greek or Latin are inferior to it ? ....It (Greek) is a language whose very essence is godlike. If we have once acquired the taste for it, all other languages seem insipid or harsh after it..... The outward form of the Greek is in itself a delight to the soul.........Never has a more beautiful instrument been fashioned to express human thought.

(भाषा विज्ञान-- भगवद्दत्त से उद्धृत)

अर्थात्—निश्चय ही अंग्रेजी, फ्रैंच आदि वर्तमान भाषायें बहुत कोमल, सरल, लचकदार कही जाती हैं। पर यह कोई कह सकता है क्या कि ग्रीक लैटिन सदृश भाषायें इनसे घटिया हैं ? – – –ग्रीक भाषा का सत्त्व देव तुल्य है। यदि एक बार इसके प्रति रुचि हो जाये तो दूसरी सब भाषायें नीरस और कठोर लगने लगती हैं। – – –ग्रीक भाषा का बाह्य रूप साक्षात् आत्मा का आनन्द है। मानव विचार को व्यक्त करने के लिये इससे अधिक सुन्दर उपकरण कदापि नहीं बनाया गया।

एक अन्य विद्वान विलियम जोन्स अपने एक लेख में लिख गये हैं :—

The Sanskrit language, whatever be its antiquity, is of a wonderful structure ; more perfact than the Greek, more copious thau the Latin and more exquisitely refined than either ; (भाषा विज्ञान—भगवद्दत्त से उद्धृत)

अर्थात्—संस्कृत भाषा–कितनी भी प्राचीन् मानी जाये—आश्चर्यजनक बनावट वाली है। यह ग्रीक की अपेक्षा अधिक पूर्ण, लैटिन से अधिक विस्तार वाली और दोनों की अपेक्षा अधिक परिमार्जित है।

यह तो है वस्तु स्थिति। परन्तु यह क्यों है ? इसका भी निम्न लेख से पता चलता है।

एक कम बुद्धि रखने वाले विद्वान जैस्पर्सन अपनी पुस्तक के पृष्ठ—४१८–१९ पर लिखते हैं:—

We observe everywhere the tendency to make pronounciation more easy, so as to lesson the muscular effort ; difficult combinations of sounds are discarded ...... Modern researeh has shown that the Proto-Aryan sound system was much more complicated than was imagined in the reconstruction of the middle of the ninteenth century. (भाषा विज्ञान में उद्धृत)

इसका अर्थ है कि उच्चारण को अधिक सरल करने की रुचि सर्वत्र रही है, जिससे मुख की पेशियों को कम प्रयत्न करना पड़े। ध्वनियों के कष्ट-साध्य योग त्यागे जाते हैं। वर्तमान खोज ने बताया है कि पूर्व आर्य ध्वनि-प्रकार अधिक क्लिष्ट था।

इससे जैस्पर्सन ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्राचीन लोगों को बोलने में बहुत कष्ट होता होगा। यह तो 'अन्धे को अन्धेरे में बड़ी दूर की सूझी' वाली बात है। वास्तविक बात यह है कि बोलने वालों की शक्ति में ह्रास होने से जो पहले सहज बोला जा सकता था, वह अब नहीं बोला जा सकता। यह सिद्ध है कि भाषाओं को सरल करने की रुचि इसी कारण हो रही है कि मनुष्य नित्यप्रति दुर्बल होता जाता है।

हमने लेख के इस अंश में यह बताया है कि विकासवाद असिद्ध सिद्धान्त है। मनुष्य की प्राकृतिक शक्तियों में उन्नति और विकास नहीं हो रहा, वरंच ह्रास हो रहा है। अतः यह कल्पना कि मनुष्य पहले जंगली पशु था, फिर मछलियाँ और घोंघे खाने वाला बना, फिर धीरे धीरे मिट्टी के बर्तन बनाने लगा और अन्त में रहने वाला सभ्य हो गया, सब कल्पना मात्र है। ★

विद्यार्थियों में अशान्ति

श्री सचदेव

कोई दिन ऐसा नहीं जाता जिस दिन कहीं न कहीं विद्यार्थियों से अहिंसात्मक उपद्रव किये जाने का समाचार न आये। पञ्जाब से लेकर असम तक और कश्मीर से लेकर केरल तक यह वर्ग नित्य कहीं न कहीं घेराव, पथराव, अग्नि-काण्ड अथवा तोड़-फोड़ करता सुना जाता है।

हमारे बुद्धिमान शासक, समाचार-पत्र और संसद सदस्य इस अशान्ति और उपद्रव को देखते हैं और सरकार को शान्ति न रख सकने पर कोसते हैं। यदि वे कुछ दूर की बात करें तो कहने लगते हैं कि शिक्षा की योजना में भूल हो रही है। सरकार ऐसी शिक्षा दे रही है कि जिसके लिये देश में मांग नहीं है। सरकार इञ्जीनियर बना रही है और इञ्जीनियर बेकार घूम रहे हैं। सरकार डाक्टर बना रही है और डाक्टरों के पास न तो औषधियां हैं और न ही जनता के पास उन औषधियों को क्रय करने की शक्ति है। सरकार क्लर्क बना रही है और क्लर्कों के लिये इतनी नौकरियां नहीं हैं।

परन्तु जब कालेजों में प्रवेश लेने के दिन आते हैं तो विद्यार्थियों की भीड़ कालेजों में लगी दिखायी देती है, जिनको प्रवेश नहीं मिल रहा होता। जिनके अंक उस सीमा रेखा से ऊपर होते हैं जो सीमा रेखा कालेज की पढ़ाई के लिये निर्धारित होती है, वे भी प्रवेश नहीं पा सकते और वे भी नहीं, जिनके अंक इस सीमा रेखा से नीचे होते हैं। सब भाग दौड़ करते दिखाई देते हैं और प्रवेश पाने के लिये सिफारिशी चिट्ठियां भी चलती देखी जाती हैं। क्या ये दोनों बातें परम्परा विरोधी नहीं हैं? हमारे बुद्धिमान् विधायक जहां सब प्रत्याशियों के लिये कालेजों के द्वार खुलवाने के लिए हाय-तौबा मचाते हैं, वहां यह कहते भी नहीं थकते कि कालेजों की पढ़ाई योजना-बद्ध नहीं अथवा दोषपूर्ण योजना के साथ है। यदि यह बात है तो फिर जो इस आयोजित अथवा अशुद्ध संयोजित शिक्षा में प्रवेश दिलाने की वे चिन्ता क्यों करते हैं?

देखा जाये तो विदित होगा कि शिक्षा में दोष तो है, परन्तु दोष वह नहीं, जो प्रायः समाचार-पत्रों में लेख लिखने वाले प्रकट किया करते हैं अथवा संसद में विपक्षी सदस्य प्रायः कहते रहते हैं। इन लोगों के प्रायः दो लक्ष्य होते हैं। कुछ तो यह कहकर बात टालना चाहते हैं कि दोष सरकार का है जो मिथ्या योजना बनाती है और जो पढ़े लिखों की नौकरी का प्रबन्ध नहीं करती। दूसरे हैं जो विद्यार्थियों में अशान्ति का कारण विपक्षियों पर डालते रहते हैं यह कह कर कि वे उनको भड़काते हैं। ये दोष हो सकते हैं, परन्तु ये रोग का मूल कारण नहीं हैं।

वास्तविक बात यह है कि यह शिक्षा जिस पर अरबों रुपये प्रति वर्ष व्यय किये जा रहे हैं, शिक्षा ही नहीं। जो शिक्षक इसके लिये नियुक्त हैं, वे स्वयमेव शिक्षित नहीं और शिक्षक बनने के योग्य नहीं। वे लोग जो इसका प्रबन्ध करते हैं वे नौकर-पेशा क्लर्क मात्र हैं।

शिक्षा के विभाग में तीन स्तर के लोग हैं। सरकारी स्तर के, प्राध्यापक स्तर के और तीसरे इन दोनों से ऊपर योजनायें बनाने वाले। ये तीनों वर्ग शिक्षा का प्रबन्ध कर रहे हैं और ऐसा प्रतीत होता रहा है कि शिक्षा क्या है इसकी समझ किसी को भी नहीं।

सर्वप्रथम योजना बनाने वालों की बात देखिये। शिक्षा पर नवीनतम रिपोर्ट कोठारी कमीशन की है। यह कमीशन सन् १९६४ में नियुक्त की गयी थी और सन् १९६६ में इसकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई। सन् १९६७ में इस पर संसद ने विचार किया।

तनिक देखें कि यह रिपोर्ट शिक्षा को क्या समझती है ? रिपोर्ट का प्रथम अध्याय है "शिक्षा और राष्ट्रीय उद्देश्य"। शब्द हैं Education and National Objective'.

'नैशनल ऑबजेक्टिव" अर्थात् राष्ट्रीय उद्देश्य क्या है ? इस विषय में रिपोर्ट के इसी अध्याय के पैराग्राफ १.-०४ में लिखा है —

...But education cannot be considered in isolation or planned in a vacume. It has to be used as a powerful instruement of social, economic and political change and will therefore have to be related to the long term national aspiration, the programme of national development on which the country is engaged.

ये महानुभाव शिक्षा का यह उद्देश्य समझे हैं। हमारा यह कहना है

कि यह उद्देश्य मिथ्या है। पेड़ के पत्तों को पानी देने के समान है। शिक्षा के सम्मुख यह समस्या नहीं है।

शिक्षा का उद्देश्य है श्रेष्ठ, सबल, सतर्क, सजग और बुद्धिमान् मानव निर्माण करना। ऐसे मानव जो न केवल सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन लाने में शक्तिशाली साधन हों, वरंच इन परिवर्तनों की आवश्यकता और दिशा पर विचार करने की भी क्षमता रखते हों। देश में ऐसे मानव निर्माण करना शिक्षा का उद्देश्य है जो न केवल राष्ट्रीय भावनाओं को पूर्ण कर सकें, वरंच राष्ट्रीय भावनाओं के बनाने अथवा समाप्त करने की भी योग्यता रखते हैं।

उक्त रिपोर्ट वाले यह समझकर चले हैं कि उनकी राष्ट्रीय भावना क्या है, उन्होंने क्या क्या सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, परिवर्तन करने हैं और उनको करने के लिए वे महानुभाव शिक्षा की योजना बनाने बैठे हैं।

यही सबसे बड़ी भूल है। शिक्षा मूर्खों द्वारा निर्मित उद्देश्यों को फलीभूत करने के लिये कठपुतलियाँ निर्माण करना नहीं है। यह ऐसे मनुष्य निर्माण करने के लिये है जो इतनी सूझ-बूझ रखते हों कि वे स्वयं विचार करें कि क्या परिवर्तन उचित है और क्या उचित नहीं।

पूर्ण कोठारी रिपोर्ट को पढ़ जाने पर पता चलेगा कि रिपोर्ट के लिखने वाले प्रजातन्त्र, समाजवाद, तकनीकी उन्नति और जीवन स्तर को ऊंचा करना जाति का उद्देश्य मान चुके हैं और उन्होंने इसकी पूर्ति के लिये शिक्षित समाज का निर्माण करना है। यह गलत दिशा है। शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिये कि सजग, सजीव, बुद्धिमान एवं शरीर से सुदृढ़ मानव निर्मित हों। ऐसे मानव यह विचार करेंगे कि प्रजातन्त्र ठीक है अथवा किसी और प्रकार का राजनीतिक ढांचा; आर्थिक समस्या समाजवाद से सुलझेगी अथवा किसी अन्य प्रकार के समाज से। शिक्षा उक्त बातों के लिये नहीं है। शिक्षा मानव कल्याण के लिये है और यह मानव कल्याण मानवों ने ही करना है। इस कारण सब प्रकार से योग्य मानव निर्माण करना ही शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये।

यह तो बात है योजना बनाने वालों की। अब शिक्षा विभाग के दूसरे स्तर के लोगों की बात पर विचार करें। वे हैं वाईस चान्सलर से लेकर प्राइमरी स्कूल के अध्यापक तक। इनकी पढ़ा सकने की योग्यता पर हम सन्देह नहीं करते, परन्तु ये सब वेतन के लिये काम करने वाले लोग हैं और जहां से वेतन

ता है, उनके कहने के अनुसार कार्य करने वाले हैं। सबसे बड़ी संस्था इनको नौकर रखने वाली सरकार है। जब से सरकार डांवाडोल हुई है, तब से ही अध्यापकों में हलचल देखने में आती है। यह हलचल पञ्जाब में हो चुकी है, दिल्ली में हो चुकी है, उत्तर प्रदेश में हो रही है, बिहार और बंगाल में भी है। इसी प्रकार देश के प्रायः सब राज्यों में है। इस हलचल का कारण ऐसा है, जैसे किसी बड़ी व्यापारिक कम्पनी का मालिक दुर्बल और वृद्ध हो जाये और उसका स्थान लेने वाले बहुत से प्रत्याशी हों तो कम्पनी के कर्मचारी अपनी उन्नति की आशा में भिन्न-भिन्न प्रत्याशियों के पास पहुंच, उनकी खुशामद करने लगते हैं तथा दूसरे प्रत्याशियों की निन्दा करने लगते हैं। और कभी-कभी काम छोड़ बैठते हैं यह कहकर कि जब तक मालिक का निश्चय नहीं हो जाता, वे क्या करें, क्यों करें, किसकी पसन्द का करें ?

होना यह चाहिये कि ये अध्यापक स्वतन्त्र हों, सरल सादा जीवन व्यतीत करने वाले हों। इनकी महिमा इनके जीवन स्तर के अनुसार न हो, वरंच इनकी विद्वत्ता के अनुसार हो। लाखों की संख्या में, वेतनों पर पलने वाले, शिक्षा का कार्य कर रहे हैं और वे अपने मालिकों को प्रसन्न करने में संलग्न हैं। विद्यार्थी क्या सीखते हैं और क्या नहीं सीखते, यह उनका उत्तरदायित्व नहीं होता। अधिक से अधिक वे यह देखते हैं कि उनके कार्य से उनके मालिक प्रसन्न हैं अथवा नहीं ?

शिक्षा विभाग के तीसरे स्तर पर आती है सरकार। सरकार से हमारा अभिप्राय है प्रधान मन्त्री, मुख्य मन्त्री तथा मन्त्री गण, विधान परिषदों और संसद के सदस्य, इनके साथ ही शिक्षा विभाग के निर्देशक इत्यादि। ये सब लोग शासक दल का रूप होते हैं और होने भी चाहियें। यहां तक कि बड़े से बड़े विश्वविद्यालय का वाईस-चान्सलर, विश्वविद्यालय में शान्ति रखने के लिये शिक्षा मन्त्री और प्रधान मन्त्री का मुख देखता है। वह शिक्षा को दिशा देने के लिये भी सरकारी मन्त्रियों और निर्देशकों की आज्ञा का पालन करता है। सरकार शिक्षा पर इतना छा रही है कि विश्वविद्यालयों में एक चपरासी तक की रक्षा के लिये शिक्षण संस्था के बड़े से बड़े अधिकारी का अपमान कर सकती है।

कहने का अभिप्राय यह है कि पूर्ण ढांचा ही दोषपूर्ण है। तब इस ढांचे में से निकलने वाले विद्यार्थियों से आप क्या आशा कर सकते हैं ? वास्तव में देखा जाये तो जैसा देश है वैसा ही विद्यार्थी समाज बन रहा है। प्रायः राजनीतिक दल वाम-पंथी हैं। ये दल बलपूर्वक अपनी बात मनवाने

का अपना अधिकार मानते हैं। इस कारण ये देश में अव्यवस्था उत्पन्न करते रहते हैं। विद्यार्थी इनका अनुकरण करते हैं।

वर्तमान शिक्षा का उद्देश्य बुद्धिशील मानव बनाना नहीं, वरंच प्रजातन्त्रात्मक समाजवादी क्लर्क और कर्मचारी निर्माण करना है। अतः विद्यार्थी राजनीतिक दलों की अंगुलियों पर नाचते हैं। वे विचार ही नहीं कर सकते कि जो कुछ वे कर रहे हैं वह हितकर है अथवा अहितकर? जो कोई उनकी भावना को भड़का देता है, वही वे करने लगते हैं। कारण स्पष्ट है कि वे अपने चारों ओर हो रही बातों पर विचार करने की योग्यता ही नहीं रखते। उनमें विचारशीलता उत्पन्न करने का यत्न ही नहीं किया गया। स्कूल, कालेज इन्जीनियर, वैज्ञानिक, डाक्टर बनाने के लिये खोले जा रहे हैं। शिक्षा में श्रेष्ठ मानव निर्माण करने की न तो योजना है और न ही प्रयास।

हमारा यह मत है कि शिक्षा में आमूल-चूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है। शिक्षा-केन्द्रों का घनी आबादी में बनाना भूल है। इन केन्द्रों में शारीरिक सुख-सुविधायें देकर छात्रों को कोमल और दुर्बल बनाना अपराध है। इन पर भाषाओं का भारी बोझा डालना मूर्खता है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और चेतन तत्व के विकास की अवहेलना कर किसी प्रकार की व्यवसायिक क्षिक्षा को लक्ष्य बनाना जातीय और व्यक्तिगत हत्या का कार्य है।

सबसे पहले शिक्षा को दो भागों में बांटना चाहिये। पहला भाग हो मानव निर्माण करना। शरीर से, मन से, बुद्धि एवं इन्द्रियों से सुचारु रूप से कार्य कर सकने की शिक्षा सर्वप्रथम कार्य है। बिना मानव निर्माण किये किसी प्रकार की वैज्ञानिक (scientific) अथवा व्यवसायिक (technical) शिक्षा देना न केवल निरर्थक है, वरंच हानिकर भी है। ये कार्य दूसरे दर्जे के हैं और पीछे आने चाहियें।

प्रथम कार्य है मनुष्य की कार्य शक्तियों का विकास करना। ज्ञान वृद्धि तो उन शक्तियों के विकास के उपरान्त ही हो सकेगी। ये दोनों अंग साथ साथ चलें अथवा एक दूसरे के उपरान्त, विचारणीय है। इतना निर्विवाद है कि शिक्षा के दूसरे भाग के लोभ में प्रथम की हत्या अथवा प्रथम कार्य में न्यूनता घातक है।

वर्तमान शिक्षा में विद्यार्थियों को वैज्ञानिक अथवा व्यवसायिक बनाने के लोभ में मानव बनाने की शिक्षा की अवहेलना हो रही है। *

वेद में इन्द्र का स्वरूप

श्री रामशरण वसिष्ठ

अग्नि के पश्चात् वेद में इन्द्र की प्रधानता है। अग्नि की न्याईं यह भी वेद मन्त्रों में कई स्थानों पर परमात्मा का वाचक है। जैसे **इन्द्रं मित्रं-वरुणमग्निमाहुर--'** (ऋ० १-१६४-४६); **'त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।'** (ऋ०--६-४७-११); **'एतोन्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना।'** (ऋ०--८-९५-७); **सक्तुसु नो मघवन्निन्द्र मृलयाधा पितेव नो भव।** (ऋ०--१०-३३-३); **'अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः** (ऋ०--१०-४३-१); **'समानमिन्द्रमवसे हवामहे'** (ऋ०—८-९९-८); **'इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।** (ऋ०—७-३२-२६)।

इसी प्रकार—**'यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः।** (ऋ—८-७०-५) और **'न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति।** (ऋ०—६-२४-७)। वेद मन्त्रों में इन्द्र शब्द परमात्मा का वाचक है। ईश्वर के नामों में इन्द्र भी है। परमात्मा हमारा रक्षक है, शक्तिशाली है। हम यज्ञों में उसका आवाहन करते हैं। हम शुद्ध साम-गायन से उसकी स्तुति करते हैं। हे कृपालु प्रभु! तू हम पर कृपा कर। पिता की न्याईं हमारी सहायता कर। हे इन्द्र, परमात्मा! हम आपकी स्तुति करते हैं। हम आपको पुकारते हैं। हे प्रभु! आप सबके लिए समान हैं। हम आपसे याचना करते हैं। हे प्रभु! आप हमें ज्ञान दें जैसे पिता पुत्र को देता है। प्रभु की महानता को दिखलाते हुए वेद कहता है :—

'यदि सौ सूर्य हों और सौ पृथिवी हों तो भी वह आपकी तुलना नहीं कर सकते। हे इन्द्र! आपको न वर्ष, न मास, न दिन बूढ़ा करते हैं और न दुबला करते हैं। आप सदा एकरस हैं।

इसी प्रकार और बहुत से मन्त्र हैं, जिनमें इन्द्र ईश्वर का वाचक है।

इन्द्र कई वेद मन्त्रों में जीवात्मा का भी वाचक है। जैसे यजु०—१३-३३ में 'इन्द्रस्य युज्यः सखा—'

ऋ०—१-८०-३ में इन्द्र राजा व सेनापति का वाचक है। 'इन्द्र! तुझे कोई नहीं जीत सकता—तू आगे बढ़ और शत्रु को परास्त कर।' इसलिये इन्द्र को वेदों में—पुरुतमः, पुरुणाम्—रथीतमं स्थीवां—मंहिष्ट-शुष्यिन्तम् ओजिष्ट—सुश्रुवस्तमः श्रेष्ठ—ज्येष्ठतम्—नृतम्—विप्रतम्-इवतमः—पितृतमः पितृणाम्—नृतमः—वृहन्तम्—वरिष्ठ—वृषन्तमः-वृत्तक्रतु और मघवत्र कहा है—जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन्द्र शक्तिशाली और महान् है।

यजुर्वेद १०—२८ में 'इन्द्रोऽसि विशौजा' इन्द्र राजा का द्योतक है। राजन्! तेरी शक्ति प्रजा से है। यजु० -२५ में भी इन्द्र राजा का वाचक है। इन्द्र बड़ा शक्तिशाली वीर है (ऋ०—१-८०-२)। इन्द्र के विचित्र कारनामे कई मन्त्रों में वर्णन किये गये हैं। 'इन्द्र ने दस्यु को मारा और प्यासे तृता को जल दिया। इन्द्र ने अपाला की बीमारी दूर कर दी। उसका रोग जाता रहा। (ऋ०—८-८०-६)। इन्द्र आर्यों की वीरता का आदर्श है। वह उनका सरदार है। उसकी वीरता का एक नमूना है जो मनुष्यों के लिये आदरणीय है (ऋ०—२-१२-९)। वेद मनुष्यों को आज्ञा देता है कि इन्द्र की न्याई वीर बनो (ऋ०—१०-१०३-६)। एक स्थान पर मन्त्र आते हैं जिनमें इन्द्र स्वयं कहता है, 'मैं इन्द्र हूँ। मेरा धन मुझसे कोई छीन कर नहीं ले सकता। मैं मरता नहीं—मैं सब धनों का स्वामी हूं। मुझे मनुष्य पिता कहते हैं। जो मुझे दान देता है, मैं उसे सुख देता हूँ। मैं अपना वचन कभी नहीं तोड़ता—सदा पूरा करता हूँ। मुझसे धन प्राप्ति की प्रार्थना करो।' (ऋ० - १०—४८)।

कहा गया है कि इन्द्र श्वेत घोड़ों के रथ पर चलता है। (ऋ० ६-३९-४)।

भाव यह है कि बिजली की चमक श्वेत होती है।

कई मंत्रों में इंद्र से प्रार्थना की गई है कि वह युद्ध में हमारी जीत करावे। हमें धन व बल दे। इन्द्र हमारी सहायता करे कि हमें ज्ञान, प्रकाश, जल, वायु, उत्तम शरीर व आयु दे। (ऋ—६-४६-४) हे इन्द्र! हमारे शत्रु को मारो। हमें शान्ति और सुख दो। इन्द्र! आपके समान कोई बलवान् व बड़ा नहीं। (ऋ-६-३०-४) हे इन्द्र! आपसे सब भय खाते हैं। (ऋ-६-३१-२)

इन्द्र ! हम आपकी सहायता से शत्रु को काबू में करते हैं और उसको भगाते हैं। (ऋ—६-२५-२) हे इन्द्र ! हम दस्यु को हरावें। युद्ध में हमारी रक्षा करो। (ऋ—६-२६-१)

हे इन्द्र ! हम आपके बल को—धनको पूर्णतया नहीं जानते। (६-११-१५) हे इन्द्र ! हमें यश प्राप्त हो। (ऋ—६-१५-१२) शत्रु से हमारी रक्षा करो—हे इन्द्र ! हमें सुखदायक घर दो—जो पक्का हो। (६-४६-१५) हे इन्द्र सोम पान करो—हमें बलकारक भोजन दो। हमारे शत्रु को समाप्त करो। (६-१७-३) हे इन्द्र ! अपनी कृपा का हाथ व साया हमारे ऊपर करो। युद्ध में हमारे चारों ओर रहो और हमारी रक्षा करो—हमारी हानि न हो (ऋ—६-१६-३)। युद्ध में हमारी जीत हो (६-२६-१)।

इन मन्त्रों में भी इन्द्र शब्द परमात्मा का वाचक है। एक दैवीय शक्ति है जो संसार में कई काम करती रही है और करती है। इस शक्ति के कार्यों का वर्णन भी कई वेद मन्त्रों में आता है। हम कुछ मन्त्रों का संक्षेप से वर्णन करते हैं। (ऋ० — २-१७-५ में) लिखा है कि इन्द्र ने भूमि और अन्तरिक्ष को स्थिर किया और गिरने से बचाया। इसी प्रकार ऋ०—६-४४-२४ और ३-३०-६ में लिखा है कि इन्द्र ने अपने बल से पृथ्वी और अन्तरिक्ष को थामा। ऋ० — १०-११३-४ में आया है कि इन्द्र ने नरक लोक को भी स्थिर किया। ऋ० — १-१११-५ में यह है कि इन्द्र ने सूर्य की सहायता से पृथ्वी और अन्तरिक्ष लोक को फैलाया। (ऋ० — २-१७-४)

पहले पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सूर्य सब पास पास ही थे। इन्द्र ने सूर्य को ऊपर करने का कार्य किया। ऋ०-१-७-३। फिर (ऋ०— १-५१-४ में भी) जब इन्द्र ने वृत्र को मारा तब सूर्य ऊपर को गया। ऋ०—८-८६-७ में भी यही है कि इन्द्र ने सूर्य को ऊंचा किया। इन्द्र ने अन्तरिक्ष को थामा है और आकाश को विस्तृत किया है (ऋ०-१०-१५३-३ ऋ०-१०-१११-३)।

इन्द्र शब्द कई वेद मन्त्रों में विद्युत व बिजली के अर्थ में भी आता है। (ऋ० — १०-१५३-४) इन्द्र बादलों में चमक देता है और वर्षा कराता है। इन्द्र वर्षा करके पृथ्वी पर जल-थल कर देता है। सब नदी-नाले भर जाते हैं। जंगलों को हरा भरा करता है। (ऋ०—४-१६-३) इन्द्र ने अन्तरिक्ष और द्युलोक को एकत्रित कर रखा है। वह रात्रि के अन्धेरे को दूर करता है। यहाँ पर इन्द्र सूर्य का वाचक है। (ऋ०—६-३६-४) इन्द्र ने उषा काल में प्रकाश किया।

इन्द्र कुछ मन्त्रों में सोम का प्यारा है। (ऋ०...१०-१६०) सोम रस का सेवन करता है। सोम इन्द्र को बल देता है। इन्द्र सोम करके बहुत प्रसन्न होता है। इन्द्र ने सोम के तीन कलस पिये। (ऋ०--५-- इन्द्र बहुत बलवान् हो गया। उसने दानव वृत्र, अहि आदि को गिराया। वज्र मार कर उसके दुर्ग तोड़ डाले। इन्द्र के भय से पृथिवी उठी--पहाड़ फट गये। (ऋ०--२-११-५,) इन्द्र ने उस शत्रु का माल सब छीन लिया। (ऋ०--३-१२-५) इन्द्र ने दस्यु को मार डाला-- सब समाप्त कर दिये। जो इन्द्र के काम में विघ्न डालते थे, उनको दिया। (ऋ०--६--४४-१७) अहि जो मेघों में हुआ था और वर्षा रोकता उसको मार डाला। वेद इन्द्र को एक वीर सेनापति तथा योद्धा की वर्णन करता है। बार-बार उसमें बल-पराक्रम और शक्ति की प्र करता है।

इन्द्र उसकी सहायता नहीं करता जो उसकी पूजा नहीं कर (ऋ०--४-४७-१७) इन्द्र अपने भक्तों की सहायता व रक्षा करता है। (६- ७) इन्द्र उन सबको परे करता है जो प्रार्थना नहीं करते। (८-५३-१) उनको कुचल देता है जो यज्ञ, दान आदि नहीं करते। (८-५३-२, ४-२८ इन्द्र उनसे प्रसन्न होता है जो उसको सोम पान कराते हैं। (ऋ०--१०-४८ इन्द्र उनको सन्तान देता है जो उसकी स्तुति करते हैं। (ऋ०--४-२०) अवश्य उनका सहायक होता है जो उसको पुकारते हैं और यज्ञों पर आवा करते हैं। इन्द्र के तीर कमान सदा भरे रहते हैं। वह अपने शत्रु को मारता है और चारों ओर से तीर मारता है।

उसके बल से सब भय खाते हैं। पृथिवी, पहाड़ सब कांप जाते हैं। (१२-१३) इन्द्र उसको बलवान् करता है जो उसको हवि देते हैं। इन्द्र उ मित्र होता है जो मनुष्य दान करता है। योद्धा उससे युद्ध में जीत मांगते हैं सहायता माँगते हैं इसी कारण वेद में ऐसे कई मन्त्र आते हैं, जिनमें वह व सेनापति का वाचक है। जैसे (ऋ०--१०-१७३, १७४, २८०) सूक्तों में (ऋ०- ७-४६-२) में भी इन्द्र राजा के लिये आता है।

यही नहीं, परन्तु वेद बताता है कि इन्द्र अपने भक्तों का निवारण करता है। इस कारण मनुष्यों को चाहिये कि वह प्रभु की किया करें।

नटराज पुस्तकें

नकटी नानी	श्री माणिकचन्द्र	२.००	टूटा टी सैट	भगवती प्रसाद वाजपेयी	२.००
नलिनी	,,	२.००	दो मार्ग	प्रकाश भारती	२.००
अधूरा स्वप्न	श्री संजय	२.००	मोपला-गोमान्तक	श्री सावरकर	३.००
छोटे बड़े मनुष्य	,,	२.००	धरती है बलिदान की	श्री शान्ताकुमार	१.००
साम्यवाद से संघर्ष	च्यांग काई शेक	२.००	शक्तिपुत्र शिवाजी		१.५०
बदलती करवटें	श्री मनमोहन सहगल	१.००	सत्यकाम सोक्रातीज (प्लेटो संवाद)		१.५०

पाकेट माला में श्री गुरुदत्त की रचनाएं

अन्तिम यात्रा	१.००	नयी दृष्टि	३ ००
एक और अनेक	३.००	निष्णात	२.००
एक मुंह दो हाथ	३.००	निर्मल	२.००
कामना	२.००	पाणिग्रहण	३.००
खेल और खिलौने	२.००	प्रेरणा	३.००
गुण्ठन	३ ००	बहती रेता	३.००
चंचरीक	१.००	मानव	३.००
छलना	२.००	मायाजाल	३.००
जमाना बदल गया-१	२.००	यह संसार	३.००
,, ,, ,, -२	२.००	यह सब झूठ है	२.००
,, ,, ,, -३	२.००	युद्ध और शान्ति-१	३.००
,, ,, ,, -४	२.००	,, ,, ,, -२	३.००
,, ,, ,, -५	२.००	लालसा	३.००
,, ,, ,, -६	२.००	लोक परलोक	२.००
,, ,, ,, -७	२.००	विडम्बना	३.००
,, ,, ,, -८	३.००	विद्यादान	२.००
,, ,, ,, -९	३.००	वीर पूजा	१.००
जीवन ज्वार	३.००	संस्खलन	२.००
देश की हत्या	३.००	सभ्यता की ओर	२.००
दो भद्र पुरुष	२.००	सम्भवामि युगे युगे-१	२.००
द्रष्टा	२.००	,, ,, -२	२.००
धरती और धन	३.००	साहित्यकार	२.००
धर्म तथा सामाजवाद	३.००	सुमति	२.००

कुछ विशेष प्रचारित साहित्य

पुस्तक	लेखक	संस्करण	मूल्य
भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम पृष्ठ भाग—१	ले० श्री सावरकर		२.५०
भाग—२	,,		२.२५
१८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य समर	,,		१८.००
हिन्दू पद पादशाही	,,		६.५०
हिन्दुत्व	,,		३.५०
मोपला (उपन्यास)	,,		४.००
गोमान्तक ,,	,,		४.००
मोपला-गोमान्तक संयुक्त पाकेट संस्करण	,,		३.००
अमर सेनानी सावरकर : जीवन झाँकी	ले० शिवकुमार गोयल		२.५०
भारत की सुरक्षा	श्री बलराज मधोक		४.००
भारत की विदेश नीति एवं राष्ट्रीय समस्याएँ	,,		३.००
श्यामाप्रसाद मुखर्जी : जीवनी	,,		६.००
हिन्दू राष्ट्र	,,		१.५०
अन्तिम यात्रा	श्री गुरुदत्त	सजिल्द	२.००
अन्तिम यात्रा	,,	पाकेट संस्करण	१.००
धर्म संस्कृति और राज्य	,,		८.००
धर्म तथा समाजवाद	,,	सजिल्द संस्करण	६.००
धर्म तथा समाजवाद	,,	पाकेट संस्करण	३-००
देश की हत्या (उपन्यास)	,,	सजिल्द	६.००
देश की हत्या	,,	पाकेट संस्करण	३.००
जमाना बदल गया	,,	सजिल्द ४ भाग	४०.००
जमाना बदल गया	,,	पाकेट ६ भाग	२०.००
मेरे अन्त समय का आश्रय : श्रीमद्भगवद्गीता	भाई परमानन्द		५.००
धरती है बलिदान की	श्री शान्ता कुमार	सजिल्द	३.००
धरती है बलिदान की	,,	पाकेट संस्करण	१.००
हिमालय पर लाल छाया	,,		१२.००
शक्तिपुत्र शिवाजी	श्री सीताराम गोयल		१.५०

भारती साहित्य सदन (बिक्री विभाग)

३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

भारतीय संस्कृति परिषद के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं शक्तिपुत्र मुद्रणालय, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

मार्च १९६९ वर्ष १ अंक ३ ६६८९/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

१. सम्पादकीय	—	३
२. पाकिस्तान की वर्तमान हलचल	श्री अश्लेष	७
३. अन्तर्राष्ट्रीय हलचल	श्री आदित्य	११
४. अस्तित्व की रक्षा (७)	श्री स्वामी विद्यानन्द 'विदेह'	१५
५. जीने का अधिकार	श्री सचदेव	१८
६. एक भ्रम निवारण	—	२३
७. आदि आर्य एवं साम्यवाद	श्री गुरुदत्त	२९
८. प्राण	श्री रामशरण वशिष्ठ	३६
९. साहित्य समीक्षा	—	३९
१०. समाचार समीक्षा	—	४२

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक [illegible]

सम्पादकीय

मध्यावधि चुनाव

सन् १९६७ के पंच-वर्षीय आम चुनावों में सात राज्यों में कांग्रेस का बहुमत समाप्त हो गया था। इनमें से तीन राज्यों में तो स्थायी सरकार बन गयी, परन्तु अन्य चार राज्यों में स्थायी सरकार नहीं बन सकी। वहां संयुक्त विधायक दल बने और उन्होंने राज्य सत्ता अपने हाथ में ले ली। चुनावों के कुछ काल उपरान्त मध्य प्रदेश और हरियाणा प्रदेश में भी कांग्रेस का बहुमत क्षीण हो गया और वहां भी संयुक्त विधायक दल सत्ता सम्पन्न हो गये। इस प्रकार नौ ऐसे राज्य हो गये, जिनमें कांग्रेस-विरोधी-दल वालों का राज्य हो गया।

संयुक्त विधायक दल प्रायः असफल रहे। सबसे पहले हरियाणा में यह दल टूटा और वहाँ पर राज्यपाल का शासन स्थापित हो गया। तदनन्तर बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार और पंजाब में भी राज्यपाल शासन लाना पड़ा। इन सब स्थानों पर संयुक्त विधायक दल के सदस्य परस्पर झगड़ते रहे और अन्त में ये दल टूट गये। मध्य प्रदेश में संयुक्त विधायक दल अभी तक विद्यमान है, परन्तु समाचारों से यह ज्ञात होता है कि उसकी स्थिति भी दुर्बल ही है और किसी भी समय वह टूट सकता है।

परिणामस्वरूप वहां भी पहले राज्यपाल शासन स्थापित होगा, तदनन्तर मध्यावधि चुनाव होगा।

दिल्ली में जनसंघ सत्तारूढ़ है। कांग्रेस ने यत्न तो बहुत किया है कि जनसंघ को पराजित कर पुन: काँग्रेस का शासन स्थापित किया जाये, परन्तु अभी तक यह सम्भव नहीं हो सका। मद्रास और केरल में भी राज्य पलटने के काँग्रेस के सब प्रयत्न अभी तक विफल रहे हैं।

अब पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल इन चार राज्यों में मध्यावधि चुनाव हुए हैं। इनमें पहिले संयुक्त विधायक दल बने थे और उनका राज्य स्थापित हुआ था। नागालैंड में भी चुनाव हुए परन्तु वे साधारण चुनाव थे।

सिद्धान्त रूप में इन मध्यावधि चुनावों से स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। पंजाब और बंगाल में तो कांग्रेस और भी पिछड़ गई है। सन् १९६७ में पंजाब में कांग्रेस के ४८ सदस्य थे और इस वर्ष सन् १९६९ में इसने केवल ३८ स्थानों पर विजय प्राप्त की है। इस पर भी कांग्रेस को मत अधिक प्राप्त हुए हैं। सन् १९६९ में लगभग सोलह लाख मत कांग्रेस को मिले थे और इस वर्ष लगभग अट्ठारह लाख चौंतीस हज़ार मत प्राप्त हुए हैं।

बंगाल में सब स्थान २०८ हैं। इनमें कांग्रेस को केवल ५३ स्थान मिले हैं। इन दोनों राज्यों में संयुक्त विरोधी दलों के राज्य बनने की आशा है। पंजाब में अकाली दल और जनसंघ मिलकर राज्य बना सकेंगे और बंगाल में कम्युनिस्ट, बंगला कांग्रेस और एस० एस० पी० मिलकर राज्य बना सकेंगे। किन्तु ये राज्य कितने सफल होंगे कहना कठिन है। इस पर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि बंगाल में संयुक्त विधायक दल में फूट की अधिक सम्भावना है और पंजाब में कम। कारण स्पष्ट है कि पंजाब में अकाली दल और जनसंघ, दोनों हिन्दू समाज की शाखायें मात्र हैं और बंगाल के संयुक्त विधायक दल में कम्युनिस्टों का बहुमत है। कम्युनिस्ट राज्य सत्ता सम्भालने पर राज्य चलाने का संकल्प नहीं रखते। वे राज्य की नींव खोदने का विचार रखते हैं।

सन् १९६७ में भी बंगाल का संयुक्त विधायक दल कम्युनिस्टों की करनी से ही टूटा था। इन लोगों ने राज्य के आश्रय अराजकता फैलाने का प्रयत्न किया था, जिसके कारण दल में मतभेद हो गया और फिर सरकार टूट गई। कम्युनिस्टों में भारत के संविधान के लिए किसी प्रकार की भी प्रतिष्ठा नहीं है। इससे यह अनुमान ठीक ही प्रतीत होता है कि संयुक्त विधायक दल के सत्तारूढ़ होते ही बंगाल भर में अराजकता का सूत्रपात हो जायेगा और

यदि केन्द्रीय सरकार में कुछ भी साहस हुआ तो वहां पर पुनः राज्यपाल का शासन स्थापित होगा। इस बार कम्युनिस्ट केन्द्र से युद्ध करने का यत्न करेंगे और यदि चीन ने बंगाल सरकार की सहायता के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग किया तो दो राज्यों में युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। यह अति भयंकर स्थिति होगी, परन्तु इस स्थिति को उत्पन्न करने में कांग्रेस का सबसे अधिक हाथ है और तदनन्तर देश के हिन्दुओं का भी। कांग्रेस सन् १९२६ से इस देश में गृह-युद्ध के स्वप्न देख रही है। कांग्रेस के मान्य नेता जवाहरलाल नेहरू फ्राँस और रूस जैसी क्रान्ति भारतवर्ष में लाने के स्वप्न देखते रहे हैं। कांग्रेस और गांधी सन् १९२७ के उपरान्त श्री नेहरू जी को चार बार कांग्रेस का प्रधान बना चुके हैं और सत्रह वर्ष तक भारतवर्ष का प्रधान मन्त्री स्वीकार कर चुके हैं। इन समस्त वर्षों में जवाहरलाल नेहरू और उनके अधीन कांग्रेस देश में समाजवाद का और साम्यवाद का प्रभाव बढ़ाने में अनथक यत्न कर चुके हैं।

हिन्दू भी इस दिशा में कम दोषी नहीं हैं। जब जब भी हिन्दुओं को और हिन्दू 'नेताओं' को यह बताया जाता है कि समाजवादी और साम्यवादी दोनों देश में प्रजातन्त्रात्मक पद्धति के विरोधी हैं और देश की जनता को दासता की शृंखलाओं में बांधने के लिए कटिबद्ध हैं तो वे इस बात को मानने से इनकार कर देते हैं। बंगाल में सन् १९६७ की घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि कम्युनिस्ट पूर्ण समाज की व्यवस्था को उलट-पुलट कर देने में कभी भी संकोच नहीं करेंगे। अब भी बंगाल ने कम्युनिस्टों को भारी संख्या में मत देकर यह सिद्ध कर दिया है कि यदि इस बार सरकार बनाकर कम्युनिस्टों ने पुनः नक्सलबाड़ी जैसा आन्दोलन किया तो दोषी वहां की जनता होगी। कम्युनिस्टों ने तो अपनी नीयत और उद्देश्य को कभी छिपा कर नहीं रखा। इन निर्वाचनों में एक बात और प्रकट हुई है कि जनसंघ का ह्रास हुआ है, विशेष रूप में पंजाब और उत्तर प्रदेश में। बिहार में जनसंघ ने कुछ ही प्रगति की है।

इस ह्रास का कारण जनसंघ के नेता क्या समझते हैं, हम कह नहीं सकते। कारण यह कि देश में अधिकांश राजनीतिक दल समझदारी से काम लेते हों, इसमें सन्देह है। जनसंघ भी अन्य दलों के पद चिन्हों पर चलता हुआ प्रतीत होता है। इस बार तो जनसंघ के नेताओं ने वह कमाल कर दिखाया है कि कांग्रेस के करतब भी विस्मृत हो गये हैं। यह घोषित किया जा रहा था कि जनसंघ उत्तर प्रदेश में बहुमत में आयेगा। चुनावों के उपरान्त और मत-गणना से पहले जनसंघ के उत्तर प्रदेश के सर्वेसर्वा श्री नाना देशमुख का यह

वक्तव्य निकला था कि जनसंघ उत्तर प्रदेश में सरकार बनायेगा और स्थिति यह है कि जनसंघ सन् १९६७ में चुनावों की स्थिति भी स्थिर न रख सका। ४८ स्थान पर ही यह विजयी हुआ है। सन् १९६७ में जनसंघ को ९८ स्थान मिले थे।

पंजाब में भी जनसंघ का ह्रास हुआ है। सन् १९६७ में इसे नौ स्थान मिले थे और इस बार आठ मिले हैं।

नागालैंड में पूर्वसत्तारूढ़ दल ही बहुमत में आ गया है। इस प्रकार हमारा यह मत है कि सन् १९६९ के मध्यावधि चुनावों से देश की स्थिति सुधरने की अपेक्षा कुछ बिगड़ी ही है। इस बिगाड़ का कारण विचारणीय है। हम समझते हैं कि देश में राष्ट्र हिन्दू है, परन्तु हिन्दू राष्ट्र पिछले एक सहस्र वर्ष से नेता विहीन है। परिणाम यह हो रहा है कि हिन्दू जन समूह एक पशुओं का बाड़ा बन गया है, जिसमें जो भी लाठी लेकर आता है वह भेड़ों को हांक कर ले जाता है। कोई ऐसा लक्ष्य हिन्दू समाज के सन्मुख नहीं रहा, जिस पर पूर्ण समाज अपना ध्यान केन्द्रित कर सके।

जब जनसंघ बना था तो कुछ आशा की जाती थी कि यह दल हिन्दू समाज का नेतृत्व करेगा, परन्तु सहज सफलता प्राप्त करने के लोभ में इस दल ने अपने को हिन्दू नाम और हिन्दू धारणाओं से पृथक् रखने का (कम से कम प्रकट में) प्रयास किया है। यह कहना कि जनसंघ का हिन्दू नाम और विचार से पृथक् होना केवल मात्र दिखावा है और वास्तव में जनसंघ के नेता और दल हिन्दुओं से कुछ अतिरिक्त नहीं हैं, सारहीन प्रतीत होता है। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दू समाज को नेतृत्व प्रदान करने का प्रयास जनसंघ नहीं कर सका। यह दल अपने आपको साम्प्रदायिक कहे जाने से डरता है। जितना यह डरता है उतना ही इसके विपक्षी इसको हिन्दू साम्प्रदायिक दल घोषित करके, इसकी निन्दा करने में उग्र होते जा रहे हैं। इस दल के नेताओं में यह कहने का साहस नहीं है कि हिन्दू समाज असाम्प्रदायिक समाज है। अपने आपको हिन्दुओं से पृथक् मान और भारतीय घोषित कर यह हिन्दुओं को साम्प्रदायिक समाज सिद्ध करने का अनजाने में यत्न कर रहा है और इनके विपक्षी यह देख कि जनसंघ हिन्दू और साम्प्रदायिक कहे जाने से डरता है, इसको अधिकाधिक साम्प्रदायिक और हिन्दू कह कर निन्दा करते हैं।

यों तो देश में होने वाले चार पंच-वर्षीय चुनावों और इस वर्ष के वृहद् मध्यावधि चुनाव ने यह सिद्ध कर दिया है कि हिन्दू समाज अनेकानेक दलों में विभक्त हो चुका है। पंजाब में मुसलमान और ईसाइयों की संख्या बहुत कम है। इसमें प्रायः हिन्दू ही रहते हैं और इस मध्यावधि चुनाव में

(शेष पृष्ठ ३८ पर)

पाकिस्तान की वर्तमान हलचल

श्री अश्लेष

कुछ महीनों से पाकिस्तान में वर्तमान राज्य का सक्रिय विरोध होने लगा है। इस विरोध में दो विचार हैं। एक विचार तो व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं पर आधारित है। दूसरा विचार पाकिस्तान का बुनियादी आधार है।

महत्त्वाकांक्षाओं से उत्पन्न होने वाले संघर्ष भूमण्डल के सब देशों में और सर्वत्र उत्पन्न होते रहते हैं। भारत में स्वराज्य प्राप्ति के पूर्व एवं उपरान्त ये संघर्ष चलते रहे हैं। अन्य देशों में भी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा यह संघर्ष उत्पन्न कर रही है और कदाचित् संसार के अन्त तक करती रहेगी। इन महत्त्वाकांक्षाओं का आधार सदैव अनियन्त्रित राजसी बुद्धि पर टिका होता है। परन्तु व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षायें अकेली कभी भी महान् आन्दोलन खड़ा नहीं कर सकतीं। इस कारण महत्त्वाकांक्षा रखने वाले व्यक्ति किसी सैद्धान्तिक आधार का आश्रय लेने लगते हैं। भारत के एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

जवाहरलाल नेहरू एक बहुत ऊंची महत्त्वाकांक्षा रखने वाले व्यक्ति थे। यह देश में बिना सर्वोच्च पद प्राप्त किये सन्तुष्ट नहीं हो सकते थे, परन्तु जब तक कोई वैचारिक आधार नहीं बना पाये, यह राजनीति में निम्न कोटि के नेता ही बने रहे। सन् १९२३–२४ में जब कांग्रेस में फूट पड़ गयी थी, तब जवाहरलाल नेहरू दोनों पक्षों में सुलह कराने का यत्न करते रहे थे। एक ओर इनके पिता थे और दूसरी ओर राजगोपालाचार्य। इनके पिता कांग्रेस की असहयोग-नीति में परिवर्तन चाहते थे। राजगोपालाचार्य गांधी जी की नीति में किसी प्रकार का परिवर्तन करने के लिये तैयार नहीं थे। उस समय गांधी जी जेल में बन्द थे। जवाहरलाल जी स्वयं लिखते हैं कि वे दोनों पक्षों में समझौता कराने का यत्न कर रहे थे, परन्तु इनकी कोई सुनता नहीं था।

सन् १९२६ में यह दो तीन दिन के लिये मास्को गये और वहाँ से एक वैचारिक आधार लेकर भारत लौटे। रूसी सरकार ने इनको बहुत सी पुस्तकें दीं और जवाहर लाल नेहरू उन पुस्तकों के अनुसार विचारधारा बना, उस विचारधारा के कन्धों पर सवार हो अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति में लग गये। तब से ये नेता बनने लगे और फिर महत्त्वाकांक्षा और विचारधारा के परस्पर सहयोग से भारत के प्रधान मन्त्री बन गये और सत्रह वर्ष तक बने रहे।

यही बात पाकिस्तान के वर्तमान संघर्ष में दिखाई देती है। पाकिस्तान की भी एक विचारधारा है। यह विचारधारा है, पूर्ण संसार को इस्लामी झण्डे के तले लाना। इस अर्थ पाकिस्तान के मुसलमान जहाँ यह यत्न कर रहे हैं कि वे पूर्ण इस्लामी जगत् के नेता बन जायें, वहाँ इनका यह भी प्रयत्न है कि सर्वप्रथम भारत इनके अधिकार में आ जाये। इसी विचारधारा को लेकर हज़रत मुहम्मद साहब के अनुयायी हज़रत उमर संसार विजय करने के लिये निकले थे। इसी विचाराधीन मध्य एशिया के मुसलमान चार-पाँच सौ वर्ष तक हिन्दुस्तान की सीमाओं पर हलचल मचाते रहे। आक्रमण के उपरान्त आक्रमण होते रहे और अन्त में सीमाओं की बाधा तोड़ ये आक्रमण करने वाले सन् ११०० में दिल्ली पर अधिकार कर बैठे। तदनन्तर, सन् ११०० से लेकर सन् १८०० तक, भारतवर्ष में इसी विचार को पूर्ण करने का प्रयास चला। बीच बीच में इस विचार में हीनता आती रही, परन्तु विचार स्थिर रहा और जब भी इस विचार को किसी महत्त्वाकांक्षा रखने वाले का आश्रय मिला, यह विचार उग्र हुआ और प्रगति करने लगा। हिन्दुस्तान की समाज इस्लामी विचारधारा के प्रसार का विरोध करती रही। यह संघर्ष सात सौ वर्ष तक चलता रहा।

भारत में अंग्रेज़ों ने सन् १७५७ में अपना राज्य स्थापित किया और एक सौ वर्ष में उस राज्य को पूर्ण देश में विस्तार दे दिया। सन् १८४८ में कश्मीर के राजा गुलाब सिंह से सन्धि करने पर अंग्रेज़ी साम्राज्य कश्मीर से कन्या-कुमारी तक तथा अफ़गानिस्तान की सीमा से आसाम की पूर्वी सीमा तक स्थापित हो गया। इस काल में मुसलमानों का वैचारिक पक्ष दुर्बल हुआ। हिन्दु जो हिन्दुस्तान की समाज थे, इस्लाम के हीन हो जाने से प्रसन्न थे। परन्तु अंग्रेज़ी राज्य को हिन्दु समाज से भय लग गया। अंग्रेज़ी राज्य यह समझने लगा कि हिन्दु समाज इस्लाम से पराजित नहीं हुआ। अतः वह ईसाई विचारधारा से भी पराजित नहीं होगा।

इस कारण ईसाई विचारधारा ने इस्लामी विचारधारा के साथ गठबन्धन किया और दोनों ने मिलकर हिन्दु-समाज को निःशेष करने की योजना बनायी। इस अर्थ ब्रिटिश नीतिज्ञों की सहायता से सन् १८७६ में अलीगढ़ में इस्लामी कालेज खोला गया। सन् १८८६ में अलीगढ़ कालेज अंग्रेजी सरकार से इस्लाम के लिये विशेषाधिकार मांगने की कूक लगाने लगा। ब्रिटिश सरकार इस अलीगढ़ आन्दोलन में सहायक हो गयी और सन् १६०६ में हिन्दुस्तान के वाइसराय ने मुसलमानों को आश्वासन दिया कि यथाशक्ति उनको अधिकार एवं सुविधायें दी जायेंगी।

सन् १६०६ में सरकार ने इस ओर सक्रिय पग उठाया। सरकार के भक्त कांग्रेसियों ने सन् १६१६ में मुसलमानों के इन विशेषाधिकारों को स्वीकार किया। इस्लाम के हिन्दुस्तान में विशेषाधिकार उस दिन से आरम्भ हुए, जब कि इस्लामी आक्रान्ता सन् ११०० में भारत में राज्य स्थापित कर सके थे। तबसे मुसलमान न्यूनाधिक, इस्लाम के अनुयायी होने के कारण विशेषाधिकारों का भोग कर रहे थे। अब पुनः वे इसी की लालसा करने लगे हैं।

इसी प्रवृत्ति की पूर्ति में इन्होंने ब्रिटिश सरकार की सहायता से पाकिस्तान निर्माण किया। सन् १८७६ से लेकर, जब अलीगढ़ कालेज की नींव रखी गयी थी, सन् १६४७ तक जब पाकिस्तान निर्माण हुआ, इस केन्द्रीय विचार को, कि भारत में इस्लामी राज्य बने, मुलसमानों में महत्वाकांक्षा रखने वाले नेता सहायता देते रहे हैं। वे अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति में इस इस्लामी विचार से सहायता लेते रहे हैं। ऐसे लोगों में सर सैय्यद अहमद, सर आगा खां, निजाम हैदराबाद और मिस्टर जिन्ना उल्लेखनीय हैं।

पाकिस्तान इन लोगों की महत्वाकांक्षा और इस विचार को लेकर कि हिन्दुस्तान में इस्लाम का राज्य स्थापित करना है, बना है। केवल मुस्लिम नेताओं की महत्वाकांक्षा पाकिस्तान के निर्माण में सफल नहीं हो सकती थी और न ही यह विचार कि हिन्दुस्तान में इस्लामी राज्य स्थापित करना है, बिना महत्वाकांक्षी लोगों का आश्रय लिये सफल हो सकता था। दोनों मिलकर पाकिस्तान बनाने में सफल हुए। महत्वाकांक्षा रखने वाले नेताओं की महत्वाकांक्षा तो पूरी हुई, परन्तु हिन्दुस्तान में इस्लामी राज्य की बात पूर्णरूप में सफल नहीं हो सकी। अतः पाकिस्तान बनने के उपरान्त भी यह महत्वाकांक्षा रखने वाले नेता और हिन्दुस्तान में इस्लामी राज्य स्थापित करने का विचार परस्पर आश्रय लेते हुए चले जा रहे हैं। मुहम्मद अली जिन्ना ने कश्मीर पर आक्रमण कर इस दिशा में यत्न किया था। लियाकत अली खां ने पूर्वी पाकि-

स्तान के हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का प्रयास इसी नीयत से किया। पाकिस्तान के वर्तमान प्रधान अयूब अली खां ने भी अपनी महत्वाकांक्षा को इस्लामी राज्य के विस्तार के विचार का आश्रय लेकर पहले कच्छ पर आक्रमण किया, तदनन्तर कश्मीर पर आक्रमण किया और उसके साथ ही भारत पर भी आक्रमण किया।

ताशकन्द के समझौते के उपरान्त रूस ने अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति में पाकिस्तान पर प्रतिबन्ध लगा दिया। अब अयूब खां साहब अपनी महत्वाकांक्षा को स्थिर रखने के लिये इस्लामी राज्य में प्रसार का आश्रय लेने के अयोग्य हो गये। इस पर पाकिस्तान में अन्य लोग जो अपने आपको ताशकन्द समझौते से बँधा हुआ नहीं मानते, उच्च महत्वाकांक्षा बना बैठे हैं। इनमें हजरत भुट्टो सबसे आगे हैं। ये ताशकन्द के समझौते के समय पाकिस्तान के डिप्टी सदर थे और अयूब खां से भी बढ़-चढ़ कर भारत को गालियां देने में लीन हुए थे। ताशकन्द समझौते ने इनके मुख पर भी ताला लगाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि भुट्टो साहब, सदर पाकिस्तान को ताशकन्द समझौता तोड़ने की सम्मति देते रहते थे और अयूब साहब रूस से डरते हुए अथवा किसी अन्य कारण से ऐसा करने में संकोच अनुभव करते थे। दोनों में मतभेद हुआ और अयूब साहब ने भुट्टो साहब को पदच्युत कर दिया।

जुंल्फिकार अली भुट्टो साहब कुछ देर तो चुप रहे, परन्तु अपनी महत्वाकांक्षा को चिरकाल तक दबा नहीं सके। उसने जोर मारा और भुट्टो साहब खुले आम ताशकन्द समझौते की अवहेलना कर भारत पर आक्रमण करने का आन्दोलन करने लगे। अयूब साहब इसका विरोध करते थे और इसको मानने के लिये तैयार नहीं हुए। दोनों में तू-तू, मैं-मैं हुई और मियां भुट्टो साहब कैद कर लिये गये।

वे लोग जो पाकिस्तान से कूद कर समस्त भारत पर छा जाने के स्वप्न देखा करते हैं, वे भुट्टो साहब के कैद किये जाने का विरोध करने लगे हैं। यह विरोध भी संसार के समस्त आन्दोलनों की भांति दो टांगों पर खड़ा है। एक टाँग है भुट्टो और उसके सहयोगियों की महत्वाकांक्षा और दूसरी है यह विचार कि इस्लाम ने सारी दुनियां पर छा जाना है। यह महत्वाकांक्षा तो अयूब खां में भी है, परन्तु वह सन् १९६५ के उपरान्त, इस्लामी विचार की पुष्टि उतने बल से नहीं कर सके जिस बल से भुट्टो इत्यादि चाहते हैं। परिणाम यह हो रहा है कि पूर्ण पाकिस्तान की मुसलमानी जनता में अयूब के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा हो गया है। अयूब खां इसे सेना के बल से

(शेष पृष्ठ ४१ पर)

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

श्री आदित्य

अन्तर्राष्ट्रीय डकैती का एक और ढंग निकला है। पिछले वर्ष इसराइली हवाई जहाज़ को कुछ अरब नवयुवकों ने विवश किया था कि वह अल्जीरिया में उतर जाये। वे नवयुवक हवाई जहाज़ में सवार हो गये थे और जब हवाई जहाज़ भूमध्य सागर के ऊपर उड़ रहा था, तो उनमें से एक युवक जहाज़ के चालक के पास पिस्तौल निकाल कर खड़ा हो गया और बोला कि इसे अमुक हवाई अड्डे की ओर ले चलो। दूसरा नवयुवक पिस्तौल लेकर सवारियों के सामने खड़ा हो गया और बोला कि यदि किसी ने भी किसी प्रकार की गड़बड़ी की तो वह उसे गोली का निशाना बना देगा। जहाज़ अल्जीरिया के एक हवाई अड्डे पर उतारा गया और वहां अल्जीरिया सरकार ने जाँच-पड़ताल करने के लिए उसे रोक लिया। बाद में राजनयिक (Diplomatic) कार्यवाही से जहाज़ और उसके यात्री छोड़ दिये गए थे।

पिछले दिनों प्रशान्त महासागर में उड़ते हुए कई हवाई जहाज़ों को विवश कर क्यूबा ले जाया जा चुका है। ढंग वही प्रयोग में लाया गया है जो अरब नवयुवकों ने प्रयुक्त किया था। अभी तक कोई ऐसा समाचार नहीं मिला कि क्यों उन हवाई जहाज़ों को विवश कर क्यूबा ले जाया गया और क्यों उनको वहां रोक रखा और न ही इस बात का पता चला है कि वे नवयुवक जो इस प्रकार इन जहाज़ों को अपने निश्चित मार्ग को जाने से रोक कर क्यूबा ले गये थे, कौन हैं?

यह निश्चित है कि क्यूबा में कम्युनिस्ट सरकार है। यह भी निश्चित है कि अरब नवयुवकों पर कम्युनिस्ट विचारधारा का प्रभाव बढ़ रहा है। इससे यह अनुमान लगाना कठिन नहीं कि प्रशान्त महासागर पर उड़ते हुए हवाई जहाज़ों को विवश कर क्यूबा ले जाने वाले नवयुवक भी कम्युनिस्ट विचारधारा से प्रभावित हैं। इसका अभिप्राय यह निकलता है कि जैसे भारत में कम्युनिस्ट धींगा मस्ती कर रहे हैं, वैसे ही ये लोग अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी

अपने मन की बात मनवाने के लिए बल-प्रयोग कर रहे हैं। जैसे भारत मेंउनको रोकने की सामर्थ्य भारत सरकार में नहीं है, वैसे ही अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्रसंघ एक सामर्थ्यहीन संस्था बन चुकी है। यदि यह स्थिति चलती रही तो वह दिन दूर नहीं जबकि पूर्ण भूमण्डल पर कुछ बलशाली स्वनिश्चित मार्ग का अवलम्बन करते हुए शासन करेंगे और हिरण्यकशिपु की भांति पूर्ण पृथ्वी को रसातल में डुबो देंगे।

यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई तो संसार के भले लोगों के लिए केवल दो मार्ग रह जायेंगे। एक मार्ग तो दासता का है। 'नहुष के वाहन को ऋषि लोग उठाकर नहुष का शचि से विवाह सम्पन्न करने चल पड़गें'। यह अति भयंकर स्थिति होगी। मानव सभ्यता और संस्कृति का विनाश होकर असुर संस्कृति का प्रसार सर्वत्र हो जायेगा।

जब किसी देश में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाये, जिसमें कोई भी बल-शाली अपनी बात बल से मनवाने लगे तो वह देश अराजकता में ग्रस्त हो, घोर नरक-स्थान बन जाता है। आज यह स्थिति केवल मात्र किसी एक देश की नहीं है। पूर्ण भूमण्डल में इसका अनुभव हो रहा है। हमारा ऐसा मत है कि इसका कारण वर्तमान युगीन प्रजातंत्रात्मक राजपद्धति है।प्रजातन्त्र में राज्य के प्रत्येक प्रकार के कार्य चलाने की सामर्थ्य उन लोगों के हाथ में चली जाती है जो राज्य-कार्य के योग्य नहीं होते।

भारत की दशा पर ही विचार किया जा सकता है। पूर्ण देश में हलचल मची हुई है। केरल में नक्सलपंथियों ने उपद्रव मचाया था। कुछ लोग पकड़े गये, परन्तु केरल की सरकार उनको छोड़ देने के लिए व्याकुल हो रही है। तमिलनाड में किंचित् मात्र बहाना लेकर विद्यार्थी उठ खड़े होते हैं और लूट-मार अथवा अग्निकाण्ड करने लगते हैं। कहीं रेडियो ने अंग्रेजी में समाचार प्रसारित करने का समय पन्द्रह मिनट आगे - पीछे कर दिया, इससे विद्यार्थियों को क्या हानि पहुंची, स्पष्ट नहीं है, परन्तु तमिलनाड में बीसियों स्थान पर इस परिवर्तन को बहाना बनाकर उपद्रव किये गये हैं। सरकारी और गैर सरकारी सम्पत्ति विनष्ट की गई है और स्कूलों, कालेजों तथा विश्वविद्या-लयों को बेकार बना दिया है।

कुछ दिन पूर्व दिल्ली विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने हड़ताल करने की धमकी दी थी। उनकी माँग यह थी कि विश्वविद्यालयों का टाइमटेबल उनकी सम्मति से बने, पढ़ाई के घण्टे उनसे पूछ कर नियत किये जायें। परी-क्षाओं में उपस्थिति की संख्या नियत करने में उनकी सम्मति ली जाये और

कालेज की अकैडेमिक कौन्सिलों में उनको बैठने और सम्मति देने का अधिकार हो। इत्यादि।

अनेक स्थानों पर भूमिविहीन कृषकों ने बलपूर्वक भूमि पर अधिकार कर लिया है और सरकारी अथवा गैर सरकारी भूमि को अपने अधीन करके उस पर खेती-बाड़ी करनी आरम्भ कर दी है।

कुछ दिन हुए केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी और इस प्रकार सरकार को विवश करके अपनी मांगे स्वीकार करा लीं।

ये सब अनियमित बातें दो कारणों से हो रही हैं। एक तो अनधिकारी अपना अधिकार मान रहे हैं कि प्रत्येक कार्य में सम्मति दें अथवा अपने विचारानुसार कार्य करायें। दूसरा कारण, जो इस अराजकता को उत्पन्न कर रहा है, सरकार के उच्च पदों पर अयोग्य अधिकारियों का निर्वाचित हो जाना है। ये दोनों बातें वर्तमान युग की प्रजातंत्रात्मक पद्धति का सीधा परिणाम हैं।

इस पद्धति में देश का प्रत्येक नागरिक जिसकी आयु २१ वर्ष की हो गयी है, वह संसद अथवा विधान परिषदों को सदस्य चुनने का अधिकार रखता है। परिणामस्वरूप संसद और विधान सभाओं के सदस्य वे बन जाते हैं, जो जन साधारण की भावनाओं की तुष्टि एवं इच्छाओं की पूर्ति करने की साम्थर्य रखते हैं। जन साधारण देश की वर्तमान स्थिति में महास्वार्थी हो गया है और इन स्वार्थियों की इच्छा देश के अहित में ही होती है। यही कारण है कि जहाँ जहाँ भी निर्वाचन होते हैं, वहां रुपया बंटता है, शराब पिलायी जाती है, भंग और चरस वितरण की जाती है और निर्वाचनों के गुर्गों को स्त्रियाँ भोग-विलास के लिए पहुंचायी जाती हैं। साथ ही सबको आश्वासन दिया जाता है कि सरकारी काम और धन वोट देने वालों में बांटा जायेगा। यह दशा न्यूनाधिक प्रजातन्त्र पद्धति पर चलने वाले प्रायः सब देशों में उपस्थित है।

अतः जब भी कुछ गुण्डे किसी प्रकार का उपद्रव करते हैं और उस उपद्रव से देश में अथवा भूमण्डल में युद्ध फूट पड़ने की सम्भावना होती है तो जन साधारण जो अपने वोट डालने का फल भोग रहा होता है, वह अपने देश की सरकार को उपद्रव करने वाले गुण्डों के साथ नर्मी का व्यवहार करने के लिये कहने लगता है। वह गुण्डों की उच्छ्रंखलता को अपनी मांग से उत्साहित करता है। यही बात उन समस्त देशों में हो रही है, जहां प्रजातन्त्रात्मक पद्धति

का चलन है। परिणामस्वरूप समस्त भूमण्डल में बलपूर्वक बात मनवाने वालों का बाहुल्य होता जाता है और शान्तिप्रिय सज्जनों की संख्या कम हो रही है।

किसी बड़े युद्ध से पहले ऐसी ही स्थिति उत्पन्न होती है। बलपूर्वक अपनी बात मनवाने वालों को प्रोत्साहन मिलता है और वे बलशाली अपने बल प्रयोग में आगे बढ़ते हैं। परिणाम स्वरूप युद्ध तो होता ही है, लाखों की संख्या में लोग मारे जाते हैं; करोड़ों, अरबों रुपयों की वस्तुओं का नाश होता है, संसार की गति अवरुद्ध हो जाती है। युवक मरते हैं, युवतियां पतनावस्था को प्राप्त होती हैं और पूर्ण मानव जाति की नैसर्गिक शक्तियों में ह्रास होता है। यह प्रजातन्त्रात्मक पद्धति पुनः चलती है पुनः युद्ध की स्थिति उत्पन्न कर देती है। प्रथम विश्व युद्ध जो सन् १९१४ से १९१८ तक चला और द्वितीय विश्व युद्ध जो सन् १९३९ से '४५ तक चला, इनमें यही प्रक्रिया हुई है और अब फिर वही परिस्थितियां उत्पन्न की जा रही हैं जिनसे कि निकटभविष्य में पुनः युद्ध होने की सम्भावना है।

प्रथम विश्व युद्ध में लगभग बीस लाख युवक मरे थे और द्वितीय विश्व-युद्ध में पैंतालीस लाख से ऊपर सैनिकों की हत्या हुई और इनके अतिरिक्त नागरिक भी बहुत बड़ी संख्या में मारे गये। यदि इस बार युद्ध हुआ तो ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि भूमण्डल की आधी जन-संख्या मृत्यु का ग्रास बनेगी। नगरों के नगर भूमिसात हो जायेंगे। इस युद्ध के उपरान्त क्या होगा, किस प्रकार के मानव इस पृथ्वी पर रहेंगे, कहना कठिन है।

यह हमारा विचारित मत है कि युद्ध सदैव दोषी राज्यों को दण्ड न देने से फूटते हैं। दुष्ट राज्य दुष्टता करते हैं और भले राज्य युद्ध से भयभीत दुष्ट राज्यों को क्षमा करते जाते हैं। परिणाम यह होता है कि दुष्ट राज्य यह समझने लगते हैं कि उनका पक्ष सत्य का है और वे इतने शक्तिशाली हैं कि अपने पक्ष को मनवाने में समर्थ हैं।

भले राज्यों की यह मनःस्थिति सीधी प्रजातन्त्रात्मक पद्धति की उपज है। साहसी दुष्टों की संख्या संसार में बहुत कम होती है। भले और शांतिप्रिय लोग सदैव बहुसंख्या में होते हैं। परन्तु जो लड़ने-मरने से डरते हैं, वे भले हों अथवा बुरे, सदा पराजित और पीड़ित होते हैं।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि भले और शान्तिप्रिय लोग संगठित हों, सुदृढ़ हों, उन्नत और सबल हों। इससे संसार में शान्ति स्थापित होगी। दुष्ट तो फिर भी रहेंगे, परन्तु वे सत्य के संगठित रूप को देख भयभीत रहेंगे और युद्ध रुके रहेंगे। (शेष पृष्ठ २२ पर)

अस्तित्व की रक्षा (७)

श्री स्वामी विद्यानन्द 'विदेह'

हताश होने से कम न चलेगा। विश्व के इतिहास में ऐसे असंख्य प्रसंग हैं, जहां जातियों ने सब कुछ खोकर फिर सब कुछ प्राप्त किया है और विनाशों की भस्म पर स्वर्णिम निर्माण किये हैं। विश्वेतिहास के अध्यायों में ऐसा ही एक नया अध्याय हमें जटित करना है।

निश्चय ही यह दोहराने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दी, हिन्दुस्थान, हिन्दु—इस त्रित के आश्रय से हिन्दु जाति में देशभक्ति और राष्ट्रनिष्ठा की अविलम्ब स्थापना की जा सकती है। और यह प्रत्यक्ष है कि हिन्दु जाति के सुसंगठित होकर देशभक्त और राष्ट्रनिष्ठ बन जाने पर यह जाति अजेय और अदम्य बन जायेगी। यह स्पष्ट ही है कि हिन्दु जाति के अजेय और अदम्य बन जाने पर ही इस देश में निवास करने वाले हिन्दुरक्त मुसलमान तथा ईसाई हिन्दु जाति के तनू में उसी प्रकार विलीन हो जायेंगे, जिस प्रकार नदियां समुद्र में विलीन हो जाती हैं।

इतिहास के इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि महाभारत के बाद के गत पांच हजार वर्षों के इतिहास में दयानन्द महान् प्रथम व्यक्ति था, जिसने इस देश में स्वराज्य की उद्घोषणा की थी और आर्यसमाज प्रथम संस्था थी जिसने समूचे हिन्दुस्थान में स्वतन्त्रता की भावना की संव्याप्ति की थी। यह भी एक ऐतिहासिक अकाट्य सत्य है कि आर्यसमाज के नितान्त शिथिल हो जाने पर ही ब्रह्मर्षि पं० मदनमोहन मालवीय तथा देवतास्वरूप भाई परमानन्द को हिन्दु-महासभा की स्थापना तथा प्रसाधना करनी पड़ी थी।

हिन्दु जाति को सुसंगठित करके राष्ट्रीयता के सूत्र में पिरोने का सुकार्य देश की किसी राजनैतिक पार्टी द्वारा कदापि न किया जा सकेगा। यह कार्य तो हिन्दुओं की समाजिक तथा धार्मिक संस्थाओं द्वारा ही किया जायेगा। नवोदित 'विश्व हिन्दु परिषद्' एक ऐसी संस्था है जिसमें हिन्दुओं के सभी वर्गों तथा सम्प्रदायों के व्यक्तियों का सहयोगात्मक समावेश है। सभी को उक्त परिषद् की शक्ति तथा आर्थिक स्थिति को सक्षम बनाने की दिशा में सक्रिय पग उठाने चाहियें।

हिन्दु राष्ट्रवाद की व्याप्ति के लिये हिन्दु-संगठन की दिशा में व्यापक पग उठाने चाहियें। हिन्दुओं की समस्त धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाओं का

सहकार अथवा सहचार इस सुसाधना का मूलाधार होगा। हिन्दुओं की किसी भी संस्था के स्वस्थ और निरापद कार्यक्रमों में सभी जातियों, वर्गों तथा मान्यताओं के हिन्दुओं को हृदय के सम्पूर्ण सौहार्द और मस्तिष्क के सम्पूर्ण औदार्य के साथ सम्मिलित होना चाहिये। संकीर्णता ने हमें विगठित और जीर्ण-शीर्ण कर दिया है।

दिल्ली के एक राममन्दिर में मेरा वेदोपदेश होना था। आर्यसमाज के कतिपय परिवार भी उनमें सम्मिलित हुए। वेदोपदेश के उपरान्त जब मैं पैदल अपने निवास-स्थान को जा रहा था तो एक आर्यसमाजी सभ्य मिले। 'आप मेरे वेदोपदेश में नहीं आये', मेरे इस वाक्य के उत्तर में उन्होंने कहा, मैं मूर्ति-पूजास्थलों में नहीं जाता हूँ।'

'क्यों ?'

'मूर्तिपूजा हमारे सिद्धान्त के विरुद्ध है।'

'तो आप वहां आकर वेदोपदेश श्रवण करते। कोई आपसे मूर्तिपूजा करने को कहता तो आप प्रेमपूर्वक कह देते कि वैसा करना आपकी मान्यता के अनुकूल नहीं।'

'वदां मूर्तियां जो रखी रहती हैं।'

'तो क्या हुआ ? मूर्तिपूजा में आपत्ति सही। मूर्ति के अस्तित्व और अवलोकन में आपत्ति क्यों ? बुद्ध और गान्धी की मिट्टी की मूर्तियां आपकी बैठक में भी सजी हुयी हैं। चांदनी चौक में स्वामी श्रद्धानन्द की मूर्ति स्थापित होने वाली है। उसके स्थापित होने पर क्या आप चांदनी चौक में जाना बन्द कर देंगे ? आर्यसमाजों में स्वामी दयानन्द के चित्र लगे होते हैं आप वहां भी तो जाते हैं।'

'आप मूर्ति और चित्र को एक-सा मानते हैं ?'

'मानने का प्रश्न क्या ? मूर्ति पत्थर या धातु की बनी है और भूमि पर रखी रहती है। चित्र या तस्वीर कागज की बनी मूर्ति ही है जो भूमि के बजाय दीवार पर रखी रहती है।'

'स्वामी जी के चित्र की पूजा नहीं होती है। उसके अवलोकन से प्रेरणा मिलती है।'

'मन्दिर में स्थापित राम, कृष्ण की मूर्ति के अवलोकन से भी प्रेरणा मिल सकती है। महापुरुष तो उन्हें आप मानते ही हैं।'

मैंने उन्हें समझाया, 'इस प्रकार की संकीर्णता से हिन्दु जाति का विराट् रूप खण्ड-खण्ड हो रहा है। आर्यसमाजियों और सनातनधर्मियों की विलगता से राष्ट्रीयता की अपार हानि हो रही है। सनातनधर्मी कितने उदार

हैं कि वे अपने मन्दिरों में आर्यसमाज के सन्यासियों और विद्वानों के उपदेश कराते हैं। आर्यसमाजियों को इतना उदार होना चाहिये कि वे मन्दिर में जाकर वेदोपदेश श्रवण करें।' भविष्य के लिये वह मान गये।

इस प्रकार की असंख्य संकीर्णतायें हैं जिनके कारण हमारी जाति के संगठन में दरारें पड़ी हुई हैं। क्रिश्चियन सम्प्रदाय के छहत्तर सम्प्रदायों में कभी परस्पर घोर विरोध था। वर्तमान पोप के पूर्ववर्ती पोप ने उन सभी सम्प्रदायों में ऐसा मेलमिलाप कराया कि वे सब मिलकर काम कर रहे हैं।

मैं स्वयं सदा से सभी धर्मस्थानों में वेदोपदेश करता रहा हूं। मण्डनात्मक ढंग से सर्वत्र वैदिक मन्तव्यों का खुलकर प्रचार करता हूँ। पूर्वज हमारे सब समान हैं। सभी महापुरुषों के जीवन के सुष्ठु प्रसंगों का मैं अपने वेदोपदेशों में यथाप्रसंग वर्णन करता हूं। राम, कृष्ण, शंकर, नानक, दयानन्द प्रभृति हिन्दुमात्र के श्रद्धास्पद हैं। महापुरुषों की प्रशस्ति सभी को प्रिय लगती है। आलोचना भी करनी हो तो अतिशय आदर और शालीनता के साथ की जानी चाहिये। पिछले दिनों आर्यसमाज के एक जोशीले व्यक्ति ने कुछ महापुरुषों को सनातनधर्म के भगवान् कहकर उनकी अश्लील आलोचना की। बदले में सनातनधर्म के एक विद्वान् ने महर्षि दयानन्द पर वह लेखमाला प्रकाशित की कि जिस आर्यसमाजी ने भी उसे पढ़ा, वही तिल-मिला उठा। मैंने उस विद्वान् से सादर निवेदन किया, 'एक गैरज़िम्मेदार व्यक्ति के कृत्य पर आपको इस सीमा तक नहीं जाना चाहिये था।'

फर्रुखाबाद में, सनातनधर्म सभा के तत्वावधान में, उन्हीं के सरस्वती-भवन में एक बार मेरी वेदोपदेशमाला चल रही थी। नित्य ही मेरे वेदोपदेश के उपरान्त 'सियावर रामचन्द्र की जय', 'उमापति महादेव की जय', 'पवनसुत हनुमान की जय', 'कृष्ण बलदेव की जय' बोली जाती थी। मेरे लिये उन जयकारों में कोई आपत्ति-वाली बात न थी, क्योंकि राम, महादेव, हनुमान और कृष्ण हम सबके समान पूजास्पद हैं। तीसरे दिन अपने वेदोपदेश के मध्य मैंने कहा, आप लोग महर्षि दयानन्द की जय क्यों नहीं बोलते? क्या दयानन्द ने हिन्दु जाति की कोई सेवा नहीं की? अनेक असहमतियों के बावजूद आपको यह मानना चाहिये कि दयानन्द ने हिन्दु जाति के अस्तित्व की ही नहीं, उसकी सभ्यता और संस्कृति की भी रक्षा की है।' और उसी दिन से सनातनधर्म के महान् विद्वान् पं० जुगलकिशोर उपर्युक्त जयघोषों के साथ 'महर्षि दयानन्द की जय' का घोष भी लगवाते रहे। 'सनातनधर्मियों के श्रद्धापूरित हृदय बड़े उदार हैं', मेरे इस कथन पर वे झूम-झूमकर दयानन्द की जयकार लगाने लगे।

(क्रमशः)

जीने का अधिकार

●

श्री सचदेव

भारत के संविधान में नागरिकों के जीने के अधिकार के विषय में एक धारा है। इस धारा के शब्द इस प्रकार हैं :

21. No person shall be deprived of his life or personal liberty except according to procedure established by law.

इसके अर्थ हैं कि कोई भी व्यक्ति अपने जीवन अथवा व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जायेगा, जब तक कि देश के किसी कानून से ऐसा करना स्वीकृत नहीं होगा।

'शाश्वत वाणी' के जनवरी मास के अंक में हमने एक लेख भारत के नागरिकों के मूलाधिकारों के विषय में छापा था। उन मूलाधिकारों में संविधान की धारा २१ भी आती है जो हमने ऊपर लिखी है।

इस धारा का अर्थ यह निकलता है कि कोई व्यक्ति अपना अथवा किसी अन्य का जीवन तथा उसकी व्यक्तिगत स्वतत्रता छीन नहीं सकता, जब तक उसे देश के कानून से ऐसा करने का अधिकार न हो।

संविधान के शब्द हैं कि कोई भी व्यक्ति उक्त दो बातों से वंचित नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ केवल यह नहीं है कि कोई व्यक्ति किसी दूसरे के जीवन अथवा उसकी स्वतन्त्रता को छीन नहीं सकता, वरंच यह भी हैं कि वह स्वयं को भी जीवन और स्वतन्त्रता से वंचित नहीं कर सकता।

यदि ये अर्थ इस धारा के हैं तो जो लोग अपने आपको किसी कारण-वश जला देना चाहते हैं अथवा भूखे रहकर अपना जीवन समाप्त कर देना चाहते हैं, वे भी संविधान की इस धारा का विरोध करते हैं।

कोई व्यक्ति अपने अथवा किसी अन्य के जीवन अथवा स्वतंत्रता का हनन कर सकता है, यदि वह देश के कानून के अनुसार व्यवहार करता हुआ ऐसा करे।

जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे का जीवन समाप्त करता है अथवा ऐसी

स्थिति उत्पन्न कर देता है कि जिससे किसी दूसरे के जीवन में बाधा खड़ी हो जाये और ऐसा करने का अधिकार उसे कानून से नहीं है तो वह व्यक्ति दण्डनीय है।

इस धारा में पांच बातें आयी हैं।

१. कोई किसी का जीवन समाप्त नहीं कर सकता अथवा कोई ऐसी बात नहीं कर सकता, जिससे कि किसी का जीवन चलना असम्भव हो जाये।

२. कोई व्यक्ति किसी दूसरे की स्वतंत्रता का हनन नहीं कर सकता अथवा ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं कर सकता, जिससे स्वतंत्रता का भोग करने में बाधा खड़ी हो जाये।

३. कोई व्यक्ति अपने जीवन को समाप्त नहीं कर सकता और न ही ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकता है, जिससे कि जीवित रहना असम्भव हो जाये।

४. कोई व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता का हनन नहीं कर सकता और न ही ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकता है जिससे कि उसके लिए स्वतन्त्रता का भोग असम्भव हो जाये।

५. उक्त चारों बातें की जा सकती हैं, यदि देश का कानून ऐसा करने की स्वीकृति दे और इसके लिए विधि-विधान बनाये। जो व्यक्ति बिना कानून की स्वीकृति के ऐसा करता है, उसके लिए सरकार दण्ड नियत करे।

भारत का दुर्भाग्य है कि देश के नागरिक संविधान की धारा २१ का विरोध करते हुए यह समझते हैं कि वे अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे हैं। उदाहरण के रूप में आज देश में किसी असन्तोष के कारण लोग लाठियां, छुरे, पिस्तौल और बन्दूकें लेकर अपनी बात मनवाने चल पड़ते हैं। सन् १९६८ में विद्यार्थियों द्वारा अथवा अन्य असन्तुष्ट लोगों के द्वारा कितने ही बलवे किये गये हैं और उन बलवों में निर्दोष लोगों की हत्या हुई है। कुछ दिन हुए कलकत्ता में एक अंग्रेज़ी समाचार-पत्र ने हज़रत मुहम्मद की तुलना महात्मा गांधी से कर दी और सहस्रों की संख्या में मुसलमान घरों से निकल कर उस सम्पादक की हत्या करने चल पड़े थे। वहां वे अपना कार्य सिद्ध न कर सकने पर लौटे तो बाजार में लूट-मार मचानी आरम्भ कर दी। ये सब लोग ऐसा करना अपना अधिकार मानते थे और संविधान के अनुसार यह उनका अधिकार नहीं था।

हज़रत मुहम्मद एक अति मानवीय पैगम्बर हुए हैं। परन्तु छुरे और लाठियां लेकर हज़रत के सम्मान की रक्षा करने वाले भारत के संविधान की धारा २१ का विरोध करते हैं।

एक अन्य उदाहरण लीजिए। तिलंगाना में कुछ लोगों को आन्ध्र सरकार से असन्तोष था और वे चलते-फिरते लोगों पर आक्रमण करने लगे थे, रेलों को रोकने लगे थे, यात्रियों को कष्ट देने लगे थे।

कई स्थानों पर विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी अपने अधिकारियों से असंतुष्ट होकर सड़क पर चलते-फिरते लोगों पर आक्रमण करने लगते हैं।

अपने जीवन को निःशेष करने के भी उदाहरण भारत में उपस्थित हुए हैं। इसकी परम्परा महात्मा गांधी ने आमरण भूख हड़तालों से आरम्भ की थी। वैसे तो इस प्रकार से आत्म-हत्या करना उस काल में भी वर्जित था जब कि वर्तमान संविधान अभी बना नहीं था।

सन् १९६५ में हिन्दी विरोधी आन्दोलन में दो अथवा तीन व्यक्तियों ने अपने को आग लगा, अपना जीवन समाप्त किया था। यह भी संविधान के विरुद्ध था। तदनन्तर सन्त फ़तेह सिंह का जल कर मर जाने की धमकी देना भी संविधान की इसी धारा का विरोध था।

इन सब बातों से यह प्रकट होता है कि या तो यह धारा अस्वाभाविक है अथवा देश की स्थिति अस्वाभाविक हो गयी है। हमारा विचार है कि दूसरी बात ठीक है। अर्थात् देश की परिस्थिति में अस्वाभाविकता आ गयी है। संविधान की धारा २१ सर्वथा युक्त है। कोई भी सभ्य सरकार इसके बिना शासन चला नहीं सकती, परन्तु भारत में इन सब घटनाओं के होते हुए भी सरकार इनको रोकने में सामर्थ्यवान् सिद्ध नहीं हुई। जब गांधी जी आमरण भूख हड़ताल घोषित करते थे तो जनता महात्मा जी के जीवन को बचाने के लिए हो-हल्ला मचा देती थी। एक ऐसी आमरण भूख हड़ताल गांधी जी ने सन् १९४८, जनवरी मास में की थी। तब स्वराज्य प्राप्त हो चुका था। गांधी जी का, तत्कालीन स्वराज्य सरकार से किसी बात पर मतभेद था और गाँधी जी ने अपने मत को मनवाने के लिए आमरण भूख हड़ताल आरम्भ कर दी थी। अंग्रेजी राज्यकाल में तो यह कहा जा सकता था कि सरकार उन लोगों के हक में है जो देश के लोगों से हित अथवा सहानुभूति नहीं रखते, परन्तु जब अपनी सरकार बन गयी और उस सरकार में बहुसंख्यक वे लोग थे जो गांधी जी के सहयोगी कहे जा सकते थे, तब अपनी बात मनवाने के निमित्त मरने की धमकी देना सर्वथा अनुचित था, परन्तु देश के लोगों ने वह हल्ला-गुल्ला मचाया कि सरकार भयभीत हो गयी और उन्होंने गांधी जी की बात मान ली। इसमें दोष गांधी जी का तो था ही, परन्तु समाचार-पत्रों का अथवा अन्य लोगों का, जो गांधी जी की बात मनवाने के लिए हल्ला-गुल्ला कर रहे थे, कम नहीं था। इनसे भी अधिक दोष मन्त्री-मण्डल का था, जो गांधी के

आमरण अनशन से डरकर अपना निर्णय बदल बैठा था। सन्त फ़तेहसिंह की जल कर मर जाने की धमकी भी इसी श्रेणी का कर्म था। इसमें भी सन्त फ़तेहसिंह तो दोषी हैं, परन्तु पूर्ण सिख समुदाय, जो सन्त फ़तेहसिंह को आत्म-दाह कर लेने के लिए सुविधा दे रहा था, कम दोषी नहीं था। सबसे अधिक दोषी भारत सरकार है, जिसने सन्त फ़तेहसिंह को उसके संविधान के विरोधी कार्य से रोकने के स्थान स्वयं उसकी बात मनवाने में सहयोग देने का आश्वासन दे दिया था।

हम समझते हैं कि वर्तमान काल की अराजकता में, यदि पूर्णरूप से नहीं तो पचहत्तर प्रतिशत दोष संविधान की इस धारा को लागू न कर सकने के कारण है। सरकार स्वयं लोगों की स्वतंत्रता को छीन लेती है और उस स्वतंत्रता के छीनने में जो संसद ने प्रतिबन्ध लगाये हैं, उन प्रतिबन्धों की अव-हेलना करती है। संविधान इस बात की स्वीकृति देता है कि जब किसी व्यक्ति से इस प्रकार की आशंका हो कि उसके कृत्यों से शान्ति भंग होने की सम्भा-वना हो, तब सरकार उसके कैद कर सकती है। अर्थात् उसकी स्वतंत्रता का हनन कर सकती है, परन्तु इस सम्भावना को सिद्ध करना सरकार का दायित्व है। इसके लिए संविधान ने सरकार पर कई प्रकार के उत्तरदायित्व नियत किये हैं। उदाहरण के रूप में जब सरकार किसी को पकड़ती है तो उसे पक-ड़ने के चौबीस घण्टे के भीतर किसी मैजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित करना पड़ता है और बताना पड़ता है कि इस व्यक्ति को दण्ड विधान की अमुक धारा के अनुसार पकड़ा गया है और इस पर अभियोग चलाया जायेगा। मैजिस्ट्रेट मुकदमा तैयार करने के लिए पुलिस को एक निश्चित अवधि का अवकाश देता है और साथ ही यह देखता है कि पकड़े हुए व्यक्ति को ज़मानत पर छोड़ा जा सकता है अथवा नहीं।

सरकार को यह भी अधिकार है कि जिस व्यक्ति से शान्ति भंग होने की सम्भावना हो, उसको बिना मुकद्दमा किए और बिना मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित किए कैद कर ले। परन्तु सरकार के इस अधिकार पर प्रतिबन्ध है। सरकार को एक निश्चित समय के भीतर शीघ्रातिशीघ्र पकड़े हुए व्यक्ति को बताना पड़ता है कि इससे किस प्रकार से और किस कारण से शान्ति भंग होने की सम्भावना थी। इसको 'grounds for arrest' (पकड़ने के कारण) का नाम दिया जाता है। इसके साथ ही पकड़े हुए व्यक्ति को अधिकार दिया जाता है कि वह किसी हाई कोर्ट अथवा सुप्रीम कोर्ट में सरकार के विचार का खण्डन कर सके। यदि कोई पकड़ा हुआ व्यक्ति हाई कोर्ट अथवा सुप्रीम कोर्ट

में अपने छूटने की प्रार्थना (habeas corpus petition) न करना चाहे तो भी सरकार पर यह पाबन्दी है कि सरकार एक 'advisory committee' (सलाहकार समिति) नियुक्त करे, जिसमें कम से कम एक हाई कोर्ट का जज हो और कोई विख्यात वकील हो। यह कमेटी सरकार को सम्मति दे कि अमुक व्यक्ति कैद में रखना चाहिए अथवा नहीं।

भारत के संविधान में नागरिकों के अधिकार सुरक्षित किए गए थे, परन्तु पिछले बीस वर्षों में बहुत से नागरिक मूलाधिकारों का संकोचन सरकार ने किया है। साथ ही सरकार ने इन मूलाधिकारों के विरोध करने वालों, विशेष रूप में धारा २१ की अवहेलना करने वालों को उचित दण्ड नहीं दिया है। जनता में भी यह भ्रम फैल चुका है कि बहुमत अथवा उच्छृंखलता जो कुछ करे, वही कानून है।

ये दोनों बातें गलत की गयी हैं। संविधान में नागरिक-मूलाधिकार अपरिवर्तनशील हैं। कांग्रेस सरकार ने और भ्रम में फंसे हुए संसद सदस्यों ने इन मूलाधिकारों को वह महिमा प्रदान नहीं की, जिनके कि यह अधिकारी हैं।

'शाश्वत वाणी' जनवरी मास के लेख में यह सिद्ध किया था कि संविधान में वर्णित मूलाधिकारों में संशोधन अथवा संकोचन करने का अधिकार संसद को नहीं है। इसका अधिकार केवलमात्र संविधान सभा को ही है जो जनता की सम्मति से किसी विशेष प्रश्न पर विचार करने के लिए निर्माण की जाए।

संविधान की धारा २१ का इतने खुले आम विरोध किया जा रहा है कि देश की स्थिति अराजकता के किनारे तक जा पहुंची है। इस स्थिति को सुधारने के लिए देश के लोगों के विचार करने के ढंग में मूल-चूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

(पृष्ठ १४ का शेष)

इसका उपाय भारतीय राजनीति में वर्णित है। और वह उपाय है:—

एवं यो धर्मविद् राजा ब्रह्मपूर्वं प्रवर्तते।
जयत्यविजितामुर्वीं यशश्च महदश्नुते ॥२१॥
(महा० - भा० - शा० — ७४-२१)

अर्थात्—धर्म परायण राजा को चाहिये कि ब्राह्मण (विद्वान) का आश्रय लेकर उसकी सहायता से राज्य कार्य में प्रवृत्त हो। ऐसा राजा बिना जीती हुई पृथ्वी को भी जीतकर महान् यश का भागी बनता है।

एक भ्रम निवारण

'शाश्वत वाणी' के जनवरी सन् १९६९ के अंक में श्री गुरुदत्त जी का एक लेख 'आदि आर्य एवं साम्यवाद' के शीर्षक से छपा था। उसमें एक वाक्य इस प्रकार था :—

'ब्राह्मणों ने एक पाप यह किया कि वर्ण को जन्म से प्रचारित करना आरम्भ किया...........।'

इस वाक्य पर कनखल (उ० प्र०) निवासी विख्यात विद्वान् श्रीयुत् आचार्य किशोरी दास जी बाजपेयी ने दि० ६-१-६९ के पत्र में यह आपत्ति की थी कि श्री गुरुदत्त जी ने ब्राह्मणों को गालियां सुनायी हैं। इस पर श्री गुरुदत्त जी और बाजपेयी जी में कुछ पत्र-व्यवहार हुआ और श्री बाजयेयी जी की इच्छा है कि उस पत्र-व्यवहार को 'शाश्वत वाणी' में प्रकाशित कर दिया जाये। अतः हम पत्र-व्यवहार को प्रकाशित कर रहे हैं।

श्री बाजपेयी जी का पत्र इस प्रकार है—

कनखल (उ० प्र०)
६-१-६९

भाई साहब गुरुदत्त जी,

नमस्ते।

'शाश्वत वाणी' के नये अंक में आपने निर्विशेष रूप से सभी ब्राह्मणों को गालियां सुनायी हैं। स्वामी दयानन्द का जहां उद्धारक रूप से नाम लिया है, वहां यह भी लिख देते कि ब्राह्मणों में एक स्वामी दयानन्द ही ऐसे हुए कि पांसा पलट दिया। यही नहीं, राजा राम मोहन राय जैसे समाज-सुधारक भी ब्राह्मण ही थे। क्षत्रियों और वैश्यों ने एक-एक नेता दिया, जो भेड़ों को अहिंसा सिखाने में लगे रहे। डॉ० हैडगवार, सावरकर आदि भी ब्राह्मण ही थे। लोकमान्य तिलक ने गीता का अर्थ समझाया, वे भी ब्राह्मण थे। इन सबकी प्रशंसा करते समय आप लोग 'ब्राह्मण' शब्द का उच्चारण नहीं करते।

वेदों को पढ़ना क्षत्रियों और वैश्यों को किसने कब मना किया? धन

कमाने में और आपस में लड़ने-झगड़ने में लगे रहें कि वेद पढ़ें ? वेद पढ़ना सबके बस का काम नहीं है। अब तो किसी के लिये कोई मना नहीं करता। कितने अब्राह्मण वेद पढ़ गये ? कितने पढ़ रहे हैं ? किसी भी गुरुकुल में जा कर देखिये, वेद पढ़ने वाले कितने हैं और उनमें अब्राह्मण कितने हैं ?

ब्राह्मणों ने वर्ण-व्यवस्था को पैदायशी नहीं बनाया, क्षत्रियों ने बहुत पहले बना कर पैदायशी और पुश्तैनी शासक बन गये थे। उन्हीं के हाथ में सब कुछ था। परन्तु आपने क्षत्रियों को नालायक कहीं नहीं कहा। बार-बार शत्रु को सेना ने पकड़ा और बार बार 'अन्तिम सम्राट' ने उसे माफ कर देने की मूर्खता की और देश को सात सौ वर्षों के लिये गुलाम बना दिया। परन्तु उसे आपने कुछ नहीं कहा। क्षत्रियों को गाली देने से मज़ा भी मिल सकता है। आप अच्छा संगठन कर रहे हैं।

—कि० दा० बाजपेयी,

इस पत्र के उत्तर में श्री गुरुदत्त जी ने श्री बाजपेयी जी से यह पूछा था कि 'शाश्वत वाणी' के कौन से अंक में उन्होंने कुछ ऐसी बात लिखी है कि जिससे बाजपेयी जी नाराज़ हो गये हैं ? श्री गुरुदत्त जी ने अनावश्यक समझ उस पत्र की प्रतिलिपि नहीं रखी। श्री गुरुदत्त जी के उस पत्र के उत्तर में और फिर प्रत्युत्तर में जो कुछ लिखा गया, वह हम यहां पर यथावत्-उद्धृत कर रहे हैं।

श्री बाजपेयी जी का दूसरा पत्र इस प्रकार है

कनखल (उ० प्र०)
१६-१-६६

प्रिय बन्धु,

नमस्ते।

आपका ता० १४ का पत्र मिला। उत्तर में निवेदन है कि :—

१. इसी जनवरी के अंक में आपने स्वयं 'ब्राह्मणों' को गालियां दी हैं।

२. आप गुण, कर्म से 'ब्राह्मण' आदि मानते हैं, सो ठीक; परन्तु वैसे निन्दित कर्म करने वालों को फिर 'ब्राह्मण' क्यों कहते हैं ?

३, आप जब निन्दित व्यापारियों के जघन्य कृत्यों की निन्दा करते हैं, तब उन्हें 'वैश्य' कह कर वैसा क्यों नहीं करते ? जब सैनिकों की और सेनापतियों की प्रशंसा आप करते हैं, तो 'क्षत्रिय' कह कर क्यों नहीं करते ?

४. 'ब्राह्मण' ने क्षत्रिय और वैश्य को कभी भी वेद पढ़ने से नहीं रोका, परन्तु ये 'द्विज' (क्षत्रिय तथा वैश्य) अपने लौकिक स्वार्थों में लगे रहे। वेद कौन पढ़ता ? वेद पढ़ना तपस्या है—सबके बस की बात नहीं। आर्य समाज में ही कितने व्यापारी (वैश्य) तथा सैनिक (क्षत्रिय) वेद पढ़ने में लगे ? वेद तो दूर, साधारण संस्कृतज्ञ ही कितने हैं ?

५. ब्राह्मण-वंश में बुरे भी हुए हैं। परन्तु हीरों की खान की इसी-लिये निन्दा नहीं की जाती कि उस (खान) में कोयले और कूड़ा-कर्कट भी निकलता है।

६. इस तरह ब्राह्मणों को गालियां देने से आप जाति-हित न करेंगे। संस्कृत का अध्ययन करने वाले छीज रहे हैं—लो भाई अब्राह्मणों, अब तुम वेदाध्ययन करो और वेदों की रक्षा करो।

किशोरी दास बाजपेयी,

इस पत्र के उत्तर में श्री गुरुदत्त जी ने लिखा—

दिनांक—१६-१-६६,

श्रीयुत् बाजपेयी जी,

नमस्ते।

आपका पत्र दि० १६-१-६६ का मिला। आपके पहले पत्र दि० ६-१-६६ को पढ़ते समय यह विचार नहीं आया था कि आप मेरे लेख 'आदि आर्य एवं साम्यवादी' के विषय में लिख रहे हैं। उस लेख में मैंने यह लिखा था, 'ब्राह्मणों ने एक पाप यह किया कि वर्ण को जन्म से प्रचलित करना आरम्भ किया।' इसी को आपने ब्राह्मणों को गाली देना समझ लिया है।

मेरा आपसे निवेदन है कि आप गाली और आलोचना में अन्तर नहीं समझते। मैंने आलोचना के भाव में उक्त बात लिखी थी। मुझे खेद है कि आपको इससे दुःख हुआ है। वास्तव में जिस किसी ने भी यह प्रचार किया कि वर्ण जन्म से होते हैं, उसने पुण्य तो किया कहा नहीं जा सकता और जो पुण्य नहीं, वह पाप ही माना जायेगा।

प्रश्न यह है कि क्या वर्ण जन्मगत हैं ? यह बात ब्राह्मणों के अति-रिक्त किसी अन्य ने प्राचारित की है अथवा नहीं ? मेरा अध्ययन यह बताता है कि इसमें दोषी ब्राह्मण ही हैं। वेद, स्मृति आदि ग्रन्थों में जो महा-भारत काल से पूर्व रचे गये, उनमें वर्ण जन्मगढ़ नहीं माना गया। यह बात उन स्मृतियों में जो महाभारत काल के उपरान्त लिखी गयीं, प्रचारित की गयी है। मनुस्मृति में भी जिसके बहुत से अंश महाभारत युद्ध के पहले से

लिखे हुए हैं, वर्ण गुण, कर्म और स्वभाव से माने हैं। गीता में भी ऐसा ही स्पष्ट लिखा मिलता है। महाभारत काल के पीछे जो पुराणादि ग्रन्थ लिखे गये, उनमें जन्म से वर्ण का उल्लेख आता है और यह सब पुराणादि ग्रन्थ एवं याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियां ब्राह्मणों की ही लिखी हुई हैं। किसी क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र ने नहीं लिखीं।

किसी छोटी जाति के हिन्दू के हाथ का बना खाना खाने से अशुद्धि होती है, यह बात ब्राह्मणों ने ही चलायी थी। विदेश में जाने से धर्म विनष्ट होता है और वहां से लौटने पर प्रायश्चित्त करना चाहिये, यह ब्राह्मणों ने ही प्रचलित किया था। मन गढ़न्त श्लोक पढ़ कर इति वेद वाक्यम् कहने वाले ब्राह्मण ही थे।

हिन्दू समाज में छूत-छात, ऊंच-नीच, जात-पात, मन्दिरों में प्रवेश वर्जित था। अनेकानेक कुप्रथायें ब्राह्मणों ने ही चलायी थीं। लड़की का विवाह रजस्वला होने से पूर्व ही हो जाना चाहिये, ब्राह्मणों द्वारा ही चलायी प्रथा थी। जिस माता-पिता की कुमारी कन्या को रजोदर्शन हो जाये, वह माता-पिता घोर नरक में जाते हैं, ब्राह्मणों द्वारा ही प्रचलित बात थी।

दक्षिण और बंगाल में जो उधम ब्राह्मणों ने मचाया था, वह वर्णनातीत है। बंगाल में भट्टारक नाम के ब्राह्मण थे। ये लोग सौ सौ कन्याओं से विवाह कर लेते थे। विवाह करने के उपरान्त कन्यायें माता-पिता के घर में रहती थीं और भट्टारक ब्राह्मण की पत्नी कहलाती थीं। यही बात नम्बूदरी पाद ब्राह्मणों की थी।

आप मुझे यह बताइये कि किस ब्राह्मण सभा ने आज तक इन समस्त कुप्रथाओं को निन्दनीय कहा है? मेरा कहने का अभिप्राय केवलमात्र यह है है कि जिस दिन से ब्राह्मण जन्म से माने जाने लगे थे, उस दिन से यह सब दोष समाज के अन्दर आये हैं। आपको इससे दुःख हुआ है, उसके लिये मुझे खेद है। पनन्तु भाई साहब! मैं इन प्रथा चलाने वाले ब्राह्मणों को पुण्यात्मा नहीं कह सकता, पापी ही कहूंगा।

आशा है कि आप नाराज नहीं होंगे। गम्भीरता-पूर्वक परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे। केवल मात्र किसी ब्राह्मण के घर में जन्म लेने से ही ब्राह्मण कहलाने वालों के लिये मैंने लिखा है, विद्वानों को मैंने नहीं कहा। आज कल विद्वानों को ब्राह्मण नहीं कहते। कारण यह है कि जन्मजात वैश्य और शूद्र भी विद्वान हो चुके हैं। डॉ० अम्बेदकर एक उदाहरण हैं।

एक अन्तिम निवेदन यह है कि जब किसी समुदाय में बहुत लोग अधर्मयुक्त व्यवहार रखें और कुछ थोड़े से धर्मयुक्त व्यवहार रखने वाले हों तो लोक प्रथा यही है कि समुदाय को निन्दनीय माना जाता है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि जो उस समुदाय में श्रेष्ठ व्यक्ति हैं, वे उस लोकोक्ति में आते हैं। जैसे आजकल के भारतवासियों के व्यवहार को देखकर यह कहा जा सकता है कि यहां सब स्वार्थी, रिश्वत खोर अथवा रिश्वत देने वाले भरे पड़े हैं तो यह कहने में ठीक ही प्रतीत होता है कि जो भले लोग भारतवर्ष में हैं, वे इस लोकोक्ति में नहीं आते। अतः मेरे कहने में गोलवलकर, स्वामी शंकराचार्य इत्यादि को नहीं मानना चाहिये।

आपके विषय में तो मेरे लिखे वाक्य नहीं हैं। आप जन्म से भी ब्राह्मण हैं और कर्म से भी। परन्तु आप अपने को उन ब्राह्मणों की श्रेणी में क्यों गिनते हैं जो केवल मात्र जन्म से ब्राह्मण बन गये ?

क्षमा करें। पत्र लम्बा अवश्य हो गया है, परन्तु अपने भाव प्रकट करने के लिये इतना लिखना आवश्यक था।

—निवेदक
गुरुदत्त

इस उत्तर पर सन्तुष्ट न हो श्री बाजपेयी जी ने इच्छा प्रकट की कि पत्र-व्यवहार प्रकाशित करा दिया जाये। पत्र इस प्रकार है—

कनखल (उ०-प्र०)
२१-२-६९

प्रियवर,

आपका ता० १९ का लिखा लम्बा पत्र मिला। उत्तर में निवेदन है कि मेरा आपके साथ जो पत्र-व्यवहार हुआ है, उसे अविकल रूप में 'शाश्वत वाणी' में प्रकाशित कर दें। इसीलिए यह कार्ड रजि० भेज रहा हूं।

आपकी यह स्थापना गलत आधार पर है कि जन्मनावर्ण-व्यवस्था ब्राह्मण वर्ग ने चलायी। जन्मना वर्ण-व्यवस्था क्षत्रियों की चलायी है। व्यवस्था यह की गयी थी कि जो रण में विजय प्राप्त करे, वही शासन भी करने लगे, यह ठीक नहीं। समाज में जो 'ब्रह्म' (ज्ञान-विज्ञान) के उपासक थे, सात्त्विक थे, उन (ब्राह्मणों) को शासन करने का काम सौंपा गया। युद्ध करना 'क्षत्रिय' को सौंपा गया। सर्वत्र 'क्षत्रिय' के लिये युद्ध करने की ही बात लिखी है,

शासन [illegible] अपने हाथ में ले लिया। शासन करना आता न था, इसीलिये 'ब्राह्मण' को मन्त्री बनाकर, गुलाम बना लिया। किसी ब्राह्मण को पुरोहित बना लिया। जैसा हम कहें वैसा शासन करो और जो कुछ हम करते हैं, उसे धर्म कहो। इसीलिये 'पुरोहित करम अति मन्दा', उन ब्राह्मणों ने कहा। जो फंसे नहीं और तपोनिरत होकर वेदाध्ययन तथा समाज-शिक्षण करते रहे. वेद-शास्त्रों की रक्षा कर ली अपने पुत्रों से कहकर कि इसी काम को करना। यह विस्तार से समझने की बात है। शास्त्र और शासन ब्राह्मण के काम थे।

—कि० दा० बाजपेयी.

श्री गुरुदत्त जी का अन्तिम पत्र इस प्रकार है—

दिनांक : २६-१-६६

श्रीयुत् बाजपेयी जी,

नमस्ते।

आपका कृपा कार्ड दि० २१-१-६६ का मिल गया है। रजिस्टर्ड भेजने का कष्ट आपने व्यर्थ किया है। आप तो ऐसे ही लिख देते तब भी आपके विचार 'शाश्वत वाणी' में छप जाते।

खैर, वर्ण-व्यवस्था जन्म से ब्राह्मणों ने चलायी अथवा क्षत्रियों ने चलायी, यह आपसे मतभेद का विषय हो गया है। जिसने भी चलायी, उसने पाप-कर्म किया है। उसका फल पूर्ण हिन्दु समाज भोग रहा है। मेरा तो केवल मात्र इतना स्पष्ट करना ही उद्देश्य था। मेरा क्षत्रियों अथवा ब्राह्मणों से मोह नहीं; जन्मजात वर्ण प्रथा से विरोध है।

मैंने आपके सब पत्र और उसमें अपने उत्तर प्रकाशित करने के लिये सम्पादक के पास भेज दिये हैं। वे अवश्य इसको छपवा देंगे। प्रथम मार्च को निकलने वाले अंक में वे छप सकेंगे।

—निवेदक,
गुरुदत्त.

आदि आर्य और साम्यवाद

●

श्री गुरुदत्त

(आधुनिक जड़वादी की शिक्षा की उपज हैं मार्क्सवादी। मार्क्सवाद का आधार है विकासवाद, जो कि केवल मात्र 'वाद' है, सिद्ध सिद्धान्त नहीं है। इस पर आधुनिक शिक्षा शास्त्री, इतिहासकार तथा वैज्ञानिक इसको सिद्धान्त कल्पित कर समाज के परिवर्तन को दिशा दे रहे हैं। यह एक पाप कर्म है। प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक सृष्टि उत्पत्ति में भारतीय मत वर्णन कर यह सिद्ध करते हैं कि सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य को ज्ञान ईश्वर ने दिया। अब मनुष्य ह्रास की ओर जा रहा है सम्पादक)

श्री डांगे इत्यादि की यह कल्पना मात्र है कि आदि आर्यों में साम्य तंत्र थे। उन्होंने वेदों के प्रमाणों से यह सिद्ध करने का यत्न किया है। वे प्रमाण हम एक एक कर लेंगे और आगे चलकर बतायेंगे कि उन वेद मन्त्रों में क्या लिखा है। यहाँ तो यही बताने से अभिप्राय है कि इतिहास की मार्क्सवादी विवेचना गलत है और उसके स्थान आर्य शास्त्रों में वर्णित इतिहास का वृत्तान्त ठीक है।

प्राचीन जातियों के लेख जो आजकल मिलते हैं, उनसे लगभग सृष्टि का एक सा ही इतिहास मिलता है। मिश्री, काल्डियन, फ़िनीशियन, खताई इत्यादि प्राचीन साहित्यों में, यहां तक कि यहूदी और ईसाइयों की बाईबल में भी लगभग वही वृत्तान्त मिलता है, जो प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में वर्णित है।

हम आर्ष ग्रन्थों के अनुसार इस पृथिवी, वनस्पति, पशु और फिर मनुष्य की उत्पत्ति का वर्णन लिखेंगे। परन्तु उससे पूर्व हम यह कहना चाहते हैं कि इन सब प्राचीन जातियों के साहित्य में लिखे को गलत मान, अप्रमाणित और अनुभव के विपरीत कल्पना को ठीक मानकर, उसके अनुसार सरल चित्त मानवों को पथ भ्रष्ट करना एक महान् पाप कर्म है जो सम्पन्न किया जा रहा है। इस पाप-कर्म को करने वाले युरोप के सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी के नास्तिक दार्शनिक ही हैं। नास्तिक हम उनको मानते हैं, जो पूर्ण जगद् को

केवल जड़ पदार्थ से उत्पन्न मानकर, प्राणी के जीवन को जन्म से मरण पर्यन्त मानते हैं और किसी आत्म (चेतन) तत्व के अस्तित्व को नहीं मानते। ये 'महापण्डित' आत्म-तत्व को तो अस्वीकार करते हैं, परन्तु किसी जड़ से चेतन के बनने को न तो युक्ति से और न ही परीक्षण से सिद्ध कर सके हैं।

वास्तव में भारतीय सृष्टि का इतिहास इस बात से ही आरम्भ होता है। सृष्टि का इतिहास जगत् के बनने और मनुष्य के उत्पन्न होने तक ही मानना चाहिए। मनुष्य के बनने के उपरान्त मानव इतिहास प्रारम्भ होता है। अतः भारतीय परम्पराओं के अनुसार इतिहास के दो अंग हैं। सृष्टि रचना का इतिहास और मानव का इतिहास। दोनों का परस्पर सम्बन्ध है। इस पर भी दोनों पृथक् पृथक् हैं। जिन नियमों से जगत् की रचना होती है, उन्हीं नियमों के अनुसार ही प्राणी जगत् और मानव का जीवन चल रहा है। इस पर भी दोनों में एक कालान्तर होने से दोनों पृथक् पृथक् हैं।

इस विषय में पहली बात इस प्रकार है :

१. जगत् सत्य है। इस कारण इसका मूल रूप भी सत्य है। परिणाम रूप मूल रूप से बना है। परिणाम रूप विनष्ट होता है, मूल नहीं। मूल रूप को मूल प्रकृति (primordial matter) कहते हैं।

२. मूल प्रकृति जड़ है। इसके परिणाम (transformed forms) भी जड़ हैं। जड़ से चेतन नहीं बनता।

३. अतएव चेतन पदार्थों (प्राणियों) में जड़ प्रकृति के अतिरिक्त कुछ अन्य भी है। उसे जीवात्मा कहते हैं।

४. प्राणी में चेतन तत्त्व (जीवात्मा) जगत् रचना करने में समर्थ नहीं। इससे यह सिद्ध होता है कि मूल प्रकृति से जगत् की रचना करने वाला कोई अति महान्, अति शक्तिमान्, व्यापक, अनन्त एक अन्य तत्त्व है। उसे परमात्मा कहते हैं।

उपनिषद् में इस का वर्णन इस प्रकार आता है :—

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ॥९।

(श्वेत०—१।९)

अभिप्राय यह है कि-(१) ज्ञानवान् (२) अज्ञानी ये दो अजन्मा (आत्म तत्त्व) हैं। ज्ञ (ज्ञानवान्) ईश है और अज्ञ (अज्ञानी) अनीश है। एक अन्य अनादि पदार्थ है। यह प्रकृति है। यह भोग करने वाले को भोग पदार्थ प्रस्तुत करती है। जो अनन्त आत्मा है, जिसे ज्ञानवान् कहा है और जिसे ईश कहा

है, वह विश्व को रूप देने वाला है। अर्थात् जगत् की रचना करने वाला है। विद्वान् आदमी इन तीन को ब्रह्म मानते हैं।

मूल प्रकृति से परमात्मा जगत् की रचना करता है। यह जानने योग्य दूसरी बात है।

१. मूल प्रकृति (primordial matter) अन्धकारमय (तम), अज्ञेय (इन्द्रियों से नहीं जानी जा सकने वाली), चिह्न रहित, निश्चल (सोये के समान) होती है।

२. परमात्मा जब इसमें परिवर्तन करता है, तो अनेकानेक प्रकार के परिवर्तनों के परिणामस्वरूप पृथिवी अंश और देव अंश बन जाते हैं। पृथिवी का अभिप्राय ठोस पदार्थ है। देव का अर्थ है कि दिव्य शक्ति सम्पन्न, अन्तरिक्ष में उपस्थित मरुत, इन्द्र, वरुण, आदित्य, सोम इत्यादि पदार्थ।

३. पार्थिव पदार्थ देवताओं से पृथक् हो जाते हैं और इनके भीतर के स्थान को द्युलोक कहते हैं।

४. इस लेख में इस सबकी व्याख्या के लिए स्थान नहीं। व्याख्या सहित देखने के लिए मनुस्मृति के प्रथम अध्याय का और साँख्य दर्शन का अध्ययन करना चाहिए। इस सबको बनने में एक परिवत्सर का काल लगता है जो ४,३२,००,००० मानव वर्ष होता है।

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवाऽऽत्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा ॥१२॥
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् ॥१३॥

(मनु०—१। १२, १३)

तीसरी बात

१. भूमि का अर्थ पृथिवी, नक्षत्रादि सब ठोस तत्व हैं। सूर्य इनमें नहीं। मरुत्, इन्द्र, वरुण, सोम इत्यादि देवता हैं। ठोस पदार्थों में हमारी पृथिवी है। अर्थात् जिस पर हम मनुष्य के रूप में उत्पन्न हुए हैं। इस पृथिवी के, जबसे यह बनी है, नौ रूप एक के उपरान्त दूसरा, बने हैं।

१. पृथिवी पहले फेन के रूप में थी। २. फेन से मृत् (कीचड़) के रूप में हो गई। ३. तदनन्तर (शुष्कापम) जल रहित सूखी हो गयी। ४. ऊष वाली (ऊसर) हो गई। ५. सिकता (धूलि) अथवा रेता की भान्ति, ६. शर्करा (कंकर) बन गयी। ७. तदनन्तर अश्मा (पत्थर) बने। ८. इसमें अयः हिरण्य (लोहा, सोना) इत्यादि धातुएं बनीं। ९. अन्त में इस पर वनस्पतियां इत्यादि उत्पन्न हुईं। इनसे पृथिवी ढप गयी।

स श्रान्तस्तेपानः फेनमसृजत । .... स श्रान्तस्तेपानो मृदं शुष्कापमूष सिकतं शर्कराम् अश्मानम् अयो हिरण्यम्-ओषधि-वनस्पति- असृजत । तेनेमां पृथिवीं प्राच्छादयत ॥१३॥

(शत०-ब्रा०— ६। १। १। १३)

चौथी बात

जब वनस्पतियां उत्पन्न हो गयीं तो पूर्व कल्प के अन्त समय जीवात्माओं के जैसे-जैसे कर्म थे, उनके अनुसार प्राणियों की सृष्टि हुई। मनुष्य, पशु, पक्षी, जलचर इत्यादि सब उत्पन्न हुए।

यं तु कर्मणि यस्मिन् स न्ययुङ्क्त प्रथमं प्रभुः ।
स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः ॥२८॥

(मनु०—१। २८)

जो जो पूर्व कर्म किए हुए थे, उनके अनुसार परमात्मा ने उनको उत्पन्न किया और वे अपने अपने स्वभाव अनुसार कर्म करने लगे। प्रत्येक कल्प के आरम्भ में ये भूत ग्राम (प्राणी) उत्पन्न होते हैं और कल्प के अन्त में विनष्ट हो जाते हैं। प्राणी विनष्ट होते हैं। अर्थात् जीवात्मा प्रकृति से पृथक् हो जाते हैं।

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥१८॥
भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमे वशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥१९॥

(भ०-गी०—८।१८-१९)

ब्रह्म दिन (कल्प) के आरम्भ होने पर अव्यक्त से व्यक्त बनता है। अभिप्राय यह कि मूल इन्द्रिय-अगोचर से इन्द्रियगोचर जगत् बन जाता है और फिर रात्रि आने (कल्पान्त) पर सब मूलरूप में विलीन हो जाता है।

जब व्यक्त जगत् बनता है तो प्राणियों की सृष्टि होती है। कल्प समाप्ति के समय सब प्राणी मूल तत्वों, प्रकृति और जीवात्माओं में विभक्त हो जाते हैं। ऐसा बार बार होता चला आ रहा है।

यह है जगत् रचना की भारतीय कल्पना। सब प्रकार के प्राणी एक साथ बने। सब युवा बने और उनमें अज्ञ जिन्हें आजकल जंगली मानव (Ape) कहते हैं और आजकल जैसे बुद्धिशील, जिन्हें सभ्य जन कहा जाता है, सब एक ही साथ बने और आदि सृष्टि से ही इस प्रकार चले आते हैं।

हुआ यह है कि जो दुर्बल मन और बुद्धि वाले तथा दोष पूर्ण शरीर

वाले जन्तु थे, वे संघर्ष में जीवित नहीं रह सके। उनकी सन्तान विलुप्त हो गई है और जो उन्नत प्रकार के जन्तु थे, वे जीवित रहे।

ये सब पूर्व कल्प के अन्त समय के कर्मों के फल के अधीन बने। भारतीय दर्शन शास्त्र यह मानता है कि अच्छे-बुरे, बुद्धिशील और निर्बुद्धि, दुर्बल और बलशाली अपने अपने कर्मों से बने, परन्तु पीछे वे योनियां जो संघर्ष में असफल होती गयीं, वे विलुप्त होती गयीं।

इसमें युक्ति

हमने प्राणी उत्पत्ति की दो प्रतिक्रियायें ऊपर लिखी हैं। एक भौतिकवादियों की है और दूसरी ईश्वरवादियों अर्थात् आत्म तत्व मानने वालों की है। भौतिकवादियों में भी वे जो डार्विन के विकासवाद पर विश्वास रखते हैं। अत: कौनसी प्रक्रिया ठीक है, वह इन आधारभूत सिद्धान्तों के ठीक अथवा गलत होने पर ही निर्भर करती है।

यदि तो यह मानें कि संसार में आत्म तत्व कोई नहीं, प्रकृति स्वयमेव रूप बदलती हुई चेतना प्राप्त कर लेती है, तो वह प्रक्रिया माननी पड़ेगी जो भौतिकवादी उपस्थित करते हैं। तब यह मानना कठिन हो जाता है कि एक ही समय में सब युवा प्राणी बने होंगे। परन्तु यदि यह मान लें कि कोई ईश्वर है जो इस जगत् को बनाने वाला है तब इस बात को मानने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती कि प्राणी युवा भी बन सकते हैं।

जहां तक भौतिकवाद के खण्डन का प्रश्न है, हम ऊपर कर आये हैं। आस्तिकवाद के मण्डन में एक युक्ति यह है, जो ब्रह्म सूत्र १-१-२ में दी गयी है।

जन्माद्यस्य यतः ॥२॥ (वे०-द०—१। १। २)

अर्थात्-जिससे जन्म होता है। अभिप्राय यह कि जो इस पूर्ण जगत् को बनाने वाला है। जगत् में कुछ भी बिना रचयिता के नहीं बनता। साथ ही बनाने वाले में ज्ञान और सामर्थ्य होनी चाहिए। ज्ञान, इच्छा और दिशा (discretion and direction) की सूचक है। यही चेतना के लक्षण हैं।

कोई जड़वादी जड़ प्रकृति से स्वयमेव कुछ बनता हुआ नहीं दिखा सका। इस कारण जड़वादियों से बतायी जगत् रचना और सृष्टि उत्पत्ति की रचना का वर्णन ठीक नहीं। कोई ज्ञानवान् सामर्थ्यवान् चेतन शक्ति है, जो इस जगत् की रचना करती है।

इसके अतिरिक्त आस्तिकवाद में दूसरी युक्ति है :—

शास्त्रयोनित्वात् ॥३॥ (वे०-द०—१। १। ३)

अर्थात्–शास्त्र अभिप्राय यह है कि ज्ञान देने वाला कोई है। बिना किसी के दिये ज्ञान प्राप्त नहीं होता। यदि प्राप्त हो सकता तो अफ्रीका के हब्शी बिना युरोप वालों के वहां गए ज्ञानवान् हो जाते। सहस्रों वर्षों से वे जंगली ही रहे थे और सौ डेढ़ सौ वर्ष के सभ्य जातियों के सम्पर्क से वे भी यन्त्र इत्यादि बनाने लगे हैं।

इस विषय में यदि हम एक अनीश्वरवादी समाज शास्त्री का वक्तव्य यहां दे दें तो उचित होगा। आर० एम० मैकिवर (R. M. Maciver) और चार्ल्ज़ एच० पेज (Charles. H. Page), 'Society' में लिखते हैं :

The dependence of man's human nature upon his membership in a society is supported by some evidence of a quasi-experimental kind. (Society-page. 44)

इसका अर्थ है कि मनुष्य की प्रकृति उसकी अपनी समाज पर निर्भर करती है। इस का प्रमाण अस्पष्ट परीक्षणों से मिलता है।

इसमें लेखक यह प्रकट करना चाहता है कि मनुष्य बिना समाज से सीखे कुछ सीख ही नहीं सकता। इसमें परीक्षण करने अति कठिन हैं। किसी बच्चे को बिना समाज के रखना अति कठिन है। इस पर भी लेखक कहता है कि घटनावश दो तीन परीक्षण हो गये हैं।

लेखक ने एक घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है :—

The famous case of Kaspar Hauser is peculiarly significant because this ill-starred youth was in all probability bereft of human contacts through political machinations and therefore his condition when found could not be attributed to a defect of innate mentality. When Hauser at the age of seventeen wandered into the city of Nuremberg in 1828 he could hardly walk, had the mind of an in fant, and could mutter only a meaningless phrase or two. Sociologically it is noteworthy that Kaspar mistook inanimate objects for living beings. And when he was killed five years later a post-mortem revealed the brain development to be subnormal. The denial of society to Kasper Hauser was a denial to him also of human nature itself. (Society pp. 44-45.)

कैस्पर हौजर का उदाहरण विशेष महत्व रखता है। कारण यह कि यह भाग्यहीन युवक राजनीतिक कारणों के सब मानवी सम्पर्कों से वंचित कर

दिया गया था। अतएव जब वह पाया गया तो उसकी अवस्था जन्मजात मानसिक दोषों के कारण नहीं कही जा सकती थी। जब हौजर सत्रह वर्ष की वयस् में न्यूरम्बर्ग नगर के बाजारों में सन् १८२८ में घूमता हुआ देखा गया, तो वह कठिनाई से चल सकता था। उसका वह मानसिक विकास बच्चे का सा था और वह कुछ अर्थहीन वाक्य ही बुरबुरा सकता था। यह उल्लेखनीय है कि हौजर निर्जीव वस्तुओं को जीवित समझता था। जब पांच वर्ष उपरान्त वह मारा गया तो उसकी शव परीक्षा हुई और उससे पता चला कि उसका मस्तिष्क घटिया प्रकार का था। समाज से वंचित होने से, वह मानवोचित गुणों से भी वंचित हो गया था।

लेखक ने इस घटना का ठीक ही परिणाम निकाला है कि बालक अपनी समाज से बहुत कुछ सीखता है और उसमें मानवोचित गुण भी समाज से सीख कर ही आते हैं।

परन्तु हम इससे एक परिणाम और निकालते हैं कि मनुष्य को यदि ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि के आदि में न मिलता तो वह कभी भी मनुष्य न बन सकता और आज तक वह पशु के समान ही रहता। क्योंकि हम मनुष्य को आज ज्ञानवान् पाते हैं इस कारण सृष्टि के आदि में इसको सत्य ज्ञान किसी ने कराया था।

सृष्टि के आदि में मनुष्य को सैद्धान्तिक ज्ञान था। यह हम वेदों के प्रमाणों से जान सकते हैं। वेद सबसे पुरानी पुस्तक है। यदि नास्तिक समाजवादियों की बात मानें तो वेदों में ज्ञान आजकल के ज्ञान से बहुत ही निकृष्ट होना चाहिये।

जो लोग वेद का यथार्थ अर्थ करना जानते हैं, वे वेदों में समाज-शास्त्र की और ज्ञान विज्ञान की अद्भुत बातें बताते हैं। एक दो उहाहरण दे कर हम बात को स्पष्ट करेंगे।

(क्रमशः)

शाश्वत वाणी

भारतीय संस्कृति, धर्म एवं इतिहास पर शुद्ध भारतीय दृष्टिकोण से विवेचना करने वाली यह एक मात्र हिन्दी की पत्रिका है। अतः हम प्रत्येक राष्ट्रवादी से इसके प्रसार एवं प्रचार की अपेक्षा करते हैं। अपने परिचितों, मित्रों तथा सम्बन्धियों को इसका पाठक बनाइये। वार्षिक शुल्क ५ रुपये एक साथ ४ पाठकों का शुल्क केवल मात्र १५ रुपये।

—सम्पादक

प्राण

●

श्री रामशरण वशिष्ठ

वैदिक साहित्य में प्राण का वर्णन बहुत अद्भुत और विस्तारपूर्वक है। सब का जीवन मूल होने के कारण से प्राण ईश्वर का वाचक है। अथर्व० ११-४-१० में प्राणो ह सर्वस्येश्वरो—प्राण सब का ईश्वर है। प्राणों ब्रह्मे छा० ४-१०-२५ में आता है। अथर्व वेद में प्राण सूक्त है, जिसमें प्राण के सम्बन्ध में २६ मंत्र हैं। उस में 'प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे' इत्यादि कई मंत्रों में प्राण के अर्थ ईश्वर के हैं।

प्राण जीवन शक्ति (Cosmic energy) है, जो सृष्टि के रचने में काम करती है। ईश्वर ने सृष्टि रचना की इच्छा की, तप तपा, उसी समय से इस 'जीवन शक्ति' का कार्य आरम्भ हो गया। यह जीव जन्तु सब में जीवन का आधार मूल है। इसके सहारे शरीर के अंग वा इन्द्रियां हरकत करती हैं। प्राण जीवन का आधार है।

श्वास कार्य में भी प्राण वायु शरीर में आता है और रक्त को शुद्ध करता है। यह शरीर में ५ नामों से अपने-अपने स्थान पर कार्य करता है। वहां यह प्राण, अपान, व्यान, समान वा उदान के नामों से कई कार्य करता है। इस शरीर के संचालन से प्राण का गहरा सम्बन्ध है। यदि प्राण सारे शरीर में पूर्ण रूप से न पहुंचे तो शरीर अस्वस्थ हो जाता है। यदि अपान बाहिर न निकले तो भी कई रोग हो जावें।

इसके अतिरिक्त प्राण आत्मा के अर्थ में भी पाया जाता है। जैसे 'प्रजापतिश्चरसि गर्भेत्वमेव प्रतिजायसे' इत्यादि और अथर्ववेद ११-४-५ में प्राण वर्षा का वाचक है। जैसे :

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद वर्षेण पृथिवीं महीम्।
पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ।।

वेद मंत्रों में प्राण और भी कई स्थानों पर आता है।

शरीर में प्राण, जीवन के साथ आत्मा और मन के साथ गर्भ में आता

है और मृत्यु के समय आत्मा के साथ ही जाता है। वह बहुत सूक्ष्म है। दिखाई नहीं देता।

जैमिनी उपनिषद् में 'प्राणो वै अन्तरिक्ष' आता है। अर्थात अन्तरिक्ष प्राण है। सब भूमण्डल में व्यापक है।

प्रश्नोपनिषद् में पिप्पलाद मुनि कहते हैं—रयिंच प्राण इत्ये तौ'। यहां पर प्राण नर शक्ति का द्योतक है।

कई मंत्रों में सूर्य को प्राण बताया गया है क्योंकि सूर्य से जीवन है। सूर्य जीवन की रक्षा करता है, यदि संसार में सूर्य न हो तो कुछ भी जीवित न रहे। कहा है 'सुर्यस्त्वं ज्योतिषांपति:।

प्राण और वायु में भेद है। चौह श्वास में वायु ही अन्दर जाता है। पर वायु में जो (Oxygen) है, वह ही प्राण है। उसी से जीवन कार्य चल रहा है। यदि प्राण का आना जाना बन्द हो जाये तो मृत्यु हो जावे।

यह प्राण सुषुप्ति में भी चलता रहता है। जब और सब इन्द्रियां और मन भी दीर्घ निद्रा में सोया होता है, प्राण फिर भी चलता रहता है।

प्राण की महानता का वर्णन करते हुए एक वार्ता है। एक समय शरीर की इन्द्रियों में वाद-विवाद हो गया कि हम में कौन बड़ी है। चक्षु, नासिका, कान सब डींग मारने लगे कि हम बड़ी हैं। ऋषि ने कहा, तुम में वह बड़ा है जिसके शरीर से चले जाने पर मृत्यु हो जाती है। पहले आँख गई, पर फिर भी मनुष्य जीवित रहा; इसी प्रकार बारी बारी सब इन्द्रियां जाती रहीं पर मनुष्य दुखी होकर भी जीवित रहा। फिर प्राण जाने लगा, तब सब इन्द्रियां मुर्दा-सी हो गईं। प्राण को जाने से रोकने लगीं। सो प्राण से ही जीवन है।

जब तक जीव मुक्त नहीं होता, तब तक प्राण जीव के साथ रहता है, फिर वह cosmic प्राण में मिल जाता है।

प्राण सामवेद की न्याई है। साम का गायन बिना प्रबल प्राण शक्ति के नहीं हो सकता।

वैदिक काल में प्राण काल बड़ा मान था। पिता जन्म के समय पुत्र को कहा करता था-'प्राणो भव'। तू प्राण हो। शक्तिशाली हो। वेदपाठी को इस शब्द के अर्थों का ध्यान रखना चाहिये। नहीं तो वेद मंत्र के ठीक अर्थ नहीं जाने जाते। जो मनुष्य प्राण विद्या को जानते हैं, उन की आयु दीर्घ होती है। प्राण मन की न्याई आत्मा का एक साधन है। कहते हैं कि मनुष्य की आयु निश्चित हैं। उसके प्राण निश्चित हैं। यदि वह प्राण को लम्बा कर सकता है तो इस तरह उसकी आयु दीर्घ हो जाती है।

प्राण द्वारा ही जीव गर्भ में जाता है, प्राण से पलता है। भोजन का जो सूक्ष्मतम भाग होता है, उससे प्राण बनता है। यहाँ पर प्राण 'बल अर्थात वीर्य' है, जो जीवन-पोषक होता है। प्राण तेजोमय है। प्राण से तेज आता है, यदि प्राण बलवान हो। प्रभु ने सृष्टि रचने की इच्छा की और तप तपा, उस ने आत्मा को प्राणमय बनाया। प्राण को द्युलोक के समान बताया है। उसको सामवेद की न्याई बताया है। सामवेद का गायन बिना प्राण शक्ति के नहीं हो सकता। प्राण का शरीर आश्रय जल है। जीवन जल का आश्रय है। चन्द्रमा प्राण का प्रकाशमय रूप है। प्रभु प्राण का भी प्राण है। वह प्राण नहीं लेता, पर प्राण उसी की कृपा से चलता है। वह प्राण को उत्पन्न करता है। प्राण भी उसी का आश्रय है। जब आत्मा मुक्त हो जाता है, उसका प्राण cosmic प्राण में मिलता है। उपनिषदों में प्राण की अनन्त महिमा है। प्राण ही वेद का स्रोत है। सामवेद का साम है और प्राण यजु है क्योंकि वह सब अंगों को शरीर में जोड़े रखता है। प्राण ही वीरभाव है। इसी लिये पिता जन्म होने पर पुत्र को कहता है 'प्राणो भव।'

अथर्ववेद में एकादश कांड में चौथा सूक्त प्राण सूक्त है। उस में प्राण की बड़ी महिमा बताई है। यह सारा संसार प्राण के वश में है। इस सूक्त में २६ मंत्र हैं। इनमें प्राण ईश्वर का वाचक है और कहीं वर्षा का, कहीं प्राणवायु का, कहीं सूर्य का।

इस लिये प्राण शब्द के विभिन्न अर्थ होते हैं। इन के जाने बिना वेद मंत्रों के अर्थ ठीक नहीं समझे जा सकते। वेद के विद्यार्थी को यह जानना आवश्यक है। पाश्चात्य भाष्यकार प्राण के केवल प्रचलित अर्थ करके भ्रम-जाल में फंस जाते हैं। ●

(पृष्ठ ६ का शेष)

चौदह दलों ने भाग लिया है। उत्तर प्रदेश की अवस्था भी इससे अच्छी नहीं। वहां पर भी हिन्दुओं की संख्या बहुत अधिक है और इस चुनाव में भाग लेने वाले लगभग बीस दल थे। यही अवस्था पूर्ण देश में है। यहां समाज हिन्दू है, राष्ट्र हिन्दू है, धर्म और संस्कृति भी हिन्दू है, परन्तु हिन्दू समाज में कोई हिन्दू नेता नहीं है और परिणाम यह हो रहा है कि कहीं भी कोई दस-बीस व्यक्ति मिल बैठते हैं तो वे अपना नया दल बना लेते हैं। जब तक राष्ट्रीयता के अनुसार दलों का निर्माण नहीं होता, तब तक देश में स्थायी और हितकर राजनीति चल नहीं सकती। जनसंघ की विफलता हिन्दूओं की आंख खोलने वाली सिद्ध होनी चाहिये। ●

साहित्य मीक्षा

नूतन रामकथा–ले० डा० रमानाथ त्रिपाठी; प्रकाशक–आनंद प्रकाशन, सौम्य कुटीर, १३/३५, शक्ति नगर, दिल्ली-७; पृष्ठ संख्या—२२०; मूल्य ६ रुपये।

रामकथा के अधिकारी विद्वान डॉ० त्रिपाठी की प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका सागर विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ० भगीरथ मिश्र ने लिखी है। उनके इस कथन से "यह 'राम कथा' नई रचना चाहे न हो, यह राम कथा की एक मनोरम, रोचक, मार्मिक एवं रचनात्मक व्याख्या अवश्य है।" राम कथा के पाठक का सहमत हो जाना स्वाभाविक है। मिश्र जी के इस कथन से भी हम सर्वथा सहमत हैं कि युगीन परिस्थितियों के अनुसार रामकथा के कभी किसी एक अंग पर और कभी दूसरे अंग पर बल देना आवश्यक है। इसमें भी किसी प्रकार का सन्देह नहीं कि तुलसी ने जिस परिस्थिति के वशीभूत रामचरित मानस की रचना की थी, वैसी ही (उससे किसी भी अंश में कम नहीं) परिस्थितियां एवं सामाजिक विकृतियां आज हमारे सम्मुख मुख बाये खड़ी हैं। इस स्थिति में डाक्टर त्रिपाठी का यह प्रयास सराहनीय है। हमें आशा है कि आज का भ्रमग्रस्त मानव-मन इससे कुछ त्राण पा सकेगा।

पुस्तक के प्रारम्भ में स्वामी परमानन्द सरस्वती एम० ए०, तथा डॉ० रामदरश मिश्र की सम्मतियां समाविष्ट की गई हैं। एक अध्यात्म पुरुष और दूसरे भाषाविद् द्वारा प्रदत्त ये सम्मतियां पाठकों के मार्गदर्शन में सहायक सिद्ध होंगी।

डॉ० त्रिपाठी जैसे राम कथा के मर्मज्ञ एवं प्रकाण्ड पण्डित तथा भाषा-विद् से भाषा-त्रुटि की अपेक्षा नहीं की जा सकती। किन्तु (किसी कारणवश) प्रस्तुत पुस्तक में यह त्रुटि यत्र-तत्र परिलक्षित होती है। इसके अतिरिक्त प्रूफ संशोधन की कमियां भी हैं। इन त्रुटियों की उपेक्षा करने के बाद, जो कि करनी ही चाहिये, पुस्तक पाठकों के लिये परमोपयोगी ही सिद्ध होगी।

यत्र-तत्र चित्रों द्वारा पुस्तक में कथा को काम्य बनाया गया है।

सुपाठ्य अक्षरों एवं सुवाच्य शब्दों तथा आकर्षक रूपसज्जा से आंखें सहसा पुस्तक की ओर आकृष्ट होती हैं। और फिर मन तन्मय हो जाता है। पुस्तक सभी वर्ग, आयु एवं व्यवसाय के व्यक्तियों के लिये पठनीय है।

हरिशतकम्—हिन्दी रूपान्तरकार - श्री गोपालदास गुप्त ; प्रकाशक उपरिलिखित ; पृष्ठ संख्या १९२ ; प्लास्टिक की जिल्द सहित मूल्य ५ रुपये।

श्री भर्तृहरि द्वारा रचित नीति, शृंगार तथा वैराग्य इन तीन शतकों का पद्यानुवाद गुप्त जी ने प्रस्तुत संग्रह में किया है। पुस्तक के एक पृष्ठ पर मूल संस्कृत श्लोक हैं तथा सामने के दूसरे पृष्ठ पर उनका हिन्दी पद्यानुवाद। इसकी भूमिका आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी ने लिखी है। "अनुवाद के नमूने मुझे बहुत रूचिकर जान पड़े। उन्होंने मूल का कोई भाव छूटने नहीं दिया, साथ ही हिन्दी भाषा की सहज स्वकीयता की उन्होंने उपेक्षा भी नहीं की।" आचार्यप्रवर द्वारा प्रस्तुत प्रमाण-पत्र के उपरान्त हम समझते हैं कि "हरिशतक" का आलोच्य, समालोच्य अथवा समीक्ष्य कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहता। उस पर फिर श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार, काका साहेब कालेलकर, वियोगी हरि, वेदमूर्ति (स्व०) सातवलेकर जी, हरिभाऊ उपाध्याय प्रभृति अनेक पण्डितों, विद्वानों एवं सन्तों की सम्मतियां इसमें संकलित हैं।

कपड़े की आधी जिल्द, उस पर आकर्षक आवरण और फिर सर्वोपरि प्लास्टिक का मण्डन। पुस्तक की रूपसज्जा जितनी नयनाभिराम है, पुस्तक के पृष्ठों पर प्रतिपादित पद्य भी उतने ही चित्ताकर्षक हैं। पुस्तक न केवल किसी पुस्तकालय की, प्रत्युत प्रत्येक घर के लिये शोभा की वस्तु है। संस्कृत एवं हिन्दी प्रेमी, सभी के लिये पुस्तक संग्रहणीय है।

हम हिन्दू हैं— रचयिता श्री विराज। प्रकाशक—साहित्य मन्दिर, ५२-ए कमला नगर, दिल्ली-७; पृष्ठ संख्या १६०; कपड़े की जिल्द सहित मूल्य ६ रुपये।

धर्मनिरपेक्षता और हिन्दुत्व पर्यायवाची शब्द होते हुए भी इस कांग्रेसी कलिकाल में परस्पर विरोधी एवं विद्वेषी शब्द बन गये हैं। कांग्रेस की साम्प्रदायिकता एवं धर्महीनता का नाम पड़ गया है धर्मनिरपेक्षता और हिन्दुत्व बन गया है बहुत बड़ी गाली का एक शब्द। किसी को बदनाम करना हो तो उसको कांग्रेसी "हिन्दू" कह देते हैं। २१ वर्षों के निरन्तर कांग्रेस के कुशासन की चक्की में पिसने के बाद भी जब कभी कहीं से सुनाई देता है—हम हिन्दू हैं— तो मन मुग्ध हो जाता है और तन पुलकित। समालोच्य काव्य पुस्तिका

को प्राप्त कर अपना तन-मन भी इसी प्रकार पुलकित हुआ।

काव्यपुस्तिका का प्रारम्भिक पद है :—

हम हिन्दू हैं, द्यावा पृथिवी की सबसे पहली सन्तानें।
हम उतरे हैं इस भूतल पर संस्कृति का शुभ यज्ञ रचाने।।

और अन्तिम पद हैं :—

हम हिन्दू हैं आओ मिलकर रचें एक संसार नया ही।
हर निर्दोष भले मानव के मन में सुख आल्हाद भरें हम।।

आदि और अन्त जैसे ही प्रेरक मध्य के पदों की एक बानगी-

दूर-दूर तक दिगदिगन्त में ध्वजा हमारी थी फहराती।
राह हमारी रोके इतनी चौड़ी थी न किसी की छाती।।
जहां हमारा शासन चलता वहां नियम सर्वोपरि होते।
सबलों का तर्जन रुक जाता, निर्बल की सिसकी थम जाती।।

इसी प्रकार के एक सौ अढ़तालीस पदों का यह सुन्दर संकलन है। पग-पग पर हिन्दुत्व की गौरव-गरिमा इस काव्य संग्रह में समाई हुई है। प्रत्येक पृष्ठ पर पद के अनुरूप रेखाचित्र भी अंकित है। प्रत्येक पृष्ठ दुरंगा है। भावों से परिपूर्ण होने के साथ साथ इसका अन्तर और बाह्य नितान्त आकर्षक ही नहीं, अपितु सार्थक भी है। आबाल-वृद्ध सभी के लिये यह काव्य पुस्तिका पठनीय एवं मननीय है।

कौशिक

(पृष्ठ १० का शेष)

दबाने का यत्न कर रहे हैं। अनेकों स्थानों पर मार्शल-ला घोषित कर दिया गया है।

इस संघर्ष में प्रजा सफल होगी अथवा अयूब खाँ ? हमारा विचार है कि वह पक्ष सफल होगा जिस ओर देश की सेना होगी। जब तक सेना अयूब खां साहब का समर्थन करती रहेगी, तब तक जनता का आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। जिस दिन सेना ने आंखें बदलीं, अयूब खां या तो स्वेच्छा से गद्दी त्याग देंगे अथवा उन्हें कैद कर राजनीतिक क्षेत्र से पृथक् कर दिया जायेगा। सम्भव यह भी है कि वह मार डाला जाये, परन्तु सेना को अयूब के विरुद्ध करने में भुट्टो इत्यादि नेतागण कहां तक सफल हुए हैं अथवा कहां तक सफल होंगे, यह कहना कठिन है। जीत उसकी होगी जिस ओर सेना होगी। ●

भाषण स्वतन्त्रता की ओट में :

भारत में भोले भाले आदि-वासियों, अनूसूचितजातियों तथा इसी प्रकार के अन्य वर्गों को ईसाइयत की ओर उन्मुख करने के लिए कृतसंकल्प विदेशी पादरी प्रचारक विदेश की धन-सम्पदा के सहारे तो इस अराष्ट्रीय कुकृत्य में निरत हैं ही, किन्तु कतिपय देशवासी भी उनके इस कुकृत्य में सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

उन भारतवासियों में कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो केन्द्रीय सरकार और प्रधानमन्त्री अर्थात् स्व० नेहरू और अब उनकी पुत्री देवी इन्दिरा के कृपा पात्र हैं। उनमें से प्रमुख हैं एंग्लो इंडियन समाज के तथाकथित नेता तथा केन्द्र द्वारा मनोनीत संसद सदस्य फ्रेंक एँथोनी। स्वतन्त्रता प्राप्ति से आरम्भ कर अद्य पर्यन्त जिनकी प्रत्येक गतिविधि राष्ट्रीय विचारधारा के व्यक्तियों को अराष्ट्रीय प्रतीत होती है, उन्हीं एंथोनी साहब ने एक अराष्ट्रीय कृत्य २८ जनवरी १९६९ को किया और उसमें सहायक हुई है केन्द्रीय सरकार और उसका संयन्त्र 'आकाशवाणी'।

२८ जनवरी १९६९ को सांयकाल दिल्ली 'बी' से प्रसारित होने वाले दैनिक कार्यक्रम 'सामयिकी' में एंथोनी साहब के विचार प्रसारित किए गये। मूल विचार सम्भवतया अंग्रेजी में होंगे। सामयिकी में उनका हिन्दी रूपान्तर किसी अन्य के मुख से सुनाया गया। उसमें उन्होंने फरमाया :—

१. भारत में हिन्दू राष्ट्रवाद जोरों से सिर उठा रहा है। यदि इसको तुरत न दबाया गया तो यह देश के लिए घातक सिद्ध होगा।

२. ये हिन्दू राष्ट्रवादी मुसलमान, ईसाई तथा सिखों को इस देश की ही उपज मानते हैं। और

३. अंग्रेजी भाषा के माध्यम से देश में ज्ञान का प्रसार हुआ है और एक मात्र अंग्रेजी ही ऐसी भाषा है जिससे प्रेरणा पाकर देश के नेताओं ने स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी है।

एंथोनी साहब का कथन स्वयं में स्पष्ट है, यह किसी प्रकार की व्याख्या नहीं चाहता। इसके साथ ही हम दि० २५ फरवरी को संसद में दिये गये श्री चाह्वाण के वक्तव्य को भी विचारार्थ प्रस्तुत करें तो यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि इस प्रकार के तत्वों से सांठगांठ कर कांग्रेस दल तथा कांग्रेस सरकार देश को किस दिशा की ओर मोड़ रहे हैं। भारत के प्रबुद्ध नागरिकों को इस पर गम्भीरता से मनन कर इसके निराकरण के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए।

शाश्वत वाणी मासिक

समाचार पत्र रजिस्ट्रेशन केन्द्रीय कानून १९५६ के ८वें नियम के अन्तर्गत 'शाश्वत वाणी' से सम्बन्धित जानकारी का विवरण।

प्रपत्र-४ (नियम सं० ८)

१—प्रकाशन स्थल	नई दिल्ली
२—प्रकाशन अवधि	मासिक
३—मुद्रक का नाम	अशोक वर्द्धन कौशिक
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली
४—प्रकाशक का नाम	अशोक वर्द्धन कौशिक
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली
५—सम्पादक का नाम	अशोक वर्द्धन कौशिक
६—स्वत्वाधिकारी	भारतीय संस्कृति परिषद्
पता	३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली

मैं, अशोक वर्द्धन कौशिक घोषित करता हूँ कि ऊपरलिखित विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के आधार पर सत्य है।

दिनांक १-३-१९६९

अशोक वर्द्धन कौशिक
(हस्ताक्षर प्रकाशक)

कुछ विशेष प्रचारित साहित्य

पुस्तक	लेखक	संस्करण	मूल्य
भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम पृष्ठ भाग—१	ले० श्री सावरकर		२.५०
भाग—२	,,		२.२५
१८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य समर	,,		१८.००
हिन्दू पद पादशाही	,		६.५०
हिन्दुत्व	,,		३.५०
मोपला (उपन्यास)	,,		४.००
गोमान्तक ,,	,,		४.००
मोपला-गोमान्तक संयुक्त पाकेट संस्करण	,,		३.००
अमर सेनानी सावरकर : जीवन झाँकी	ले० शिवकुमार गोयल		२.५०
भारत की सुरक्षा	श्री बलराज मधोक		४.००
भारत की विदेश नीति एवं राष्ट्रीय समस्याएँ	,,		३.००
श्यामाप्रसाद मुखर्जी : जीवनी	,,		६.००
हिन्दू राष्ट्र	,,		१.५०
अन्तिम यात्रा	श्री गुरुदत्त	सजिल्द	२.००
अन्तिम यात्रा	,,	पाकेट संस्करण	१.००
धर्म संस्कृति और राज्य	,,		८.००
धर्म तथा समाजवाद	,,	सजिल्द संस्करण	६.००
धर्म तथा समाजवाद	,,	पाकेट संस्करण	३.००
देश की हत्या (उपन्यास)	,,	सजिल्द	६.००
देश की हत्या	,,	पाकेट संस्करण	३.००
जमाना बदल गया	,,	सजिल्द ४ भाग	४०.००
जमाना बदल गया	,,	पाकेट ९ भाग	२०.००
मेरे अन्त समय का आश्रय : श्रीमद्‌भगवद्‌गीता	भाई परमानन्द		५.००
धरती है बलिदान की	श्री शान्ता कुमार	सजिल्द	३.००
धरती है बलिदान की	,,	पाकेट संस्करण	१.००
हिमालय पर लाल छाया	,,		१२.००
शक्तिपुत्र शिवाजी	श्री सीताराम गोयल		१.५०

भारती साहित्य सदन (बिक्री विभाग)

३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

भारतीय संस्कृति परिषद के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं शक्तिपुत्र मुद्रणालय दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

अप्रैल १९६९ वर्ष ६-अंक ४ रजि० क्र० ६६८६/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

१. सम्पादकीय	—	३
२. राष्ट्रीय एवं लोकतांत्रिक तत्व संगठित हों	श्री बलराज मधोक	८
३. अन्तर्राष्ट्रीय हलचल	श्री आदित्य	२१
४. नम्र निवेदन		२५
५. अस्तित्व की रक्षा	श्री विद्यानन्द विदेह	२८
६. समाचार समीक्षा	—	३०
७. ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर और उनका काल	श्री राजेन्द्रसिंह	३४

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत संस्कृति परिषद के प्रकाशन

१--धर्म संस्कृति और राज्य--लेखक श्री गुरुदत्त

तीनों विषयों की व्याख्या, इनका परस्पर सम्बन्ध तथा आज के युग की समस्याओं से इनका समन्वय इस पुस्तक का विषय है। अत्यन्त ही सरल भाषा में युक्तियुक्त विवेचना इसकी विशेषता है।

मूल्य आठ रुपये

२--धर्म तथा समाजवाद--ले० श्री गुरुदत्त

समाजवाद की युक्तियुक्त विवेचना, तथा धर्म के साथ उसका 'सम्बन्ध' इस पुस्तक का विषय है। समाजवाद के विषय में बहुत-सी भ्रामक धारणाओं का स्पष्टीकरण इस पुस्तक में है। राजनीति के प्रत्येक विद्यार्थी तथा समाजवाद व धर्म में रुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए पठनीय ग्रन्थ।

मूल्य सजिल्द पुस्तकालय संस्करण ६ : रुपये

३--भारत—गांधी-नेहरू की छाया में--ले० श्री गुरुदत्त

'जवाहरलाल नेहरू एक विवेचनात्मक वृत्त' का संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण। यह पुस्तक पिछले एक वर्ष से भारत भर में चर्चा का विषय रही है। नया संशोधित संस्करण छपकर तैयार है।

पृष्ठ संख्या ४४०

मूल्य सजिल्द पुस्तकालय संस्करण दस रुपये

सम्पूर्ण पाकेट ,, तीन रुपये

कृपया इस पुस्तक का आर्डर भेजते समय स्पष्ट लिखें कि कौन से संस्करण की पुस्तक भेजी जाए।

४--श्रीमद्भगवद्गीता--एक अध्ययन--ले० श्री गुरुदत्त

अत्यन्त ही सरल बोधगम्य भाषा में यह अध्ययन एकदम अनूठी रचना है। गीता के विषयों का क्रमवार विस्तृत एवं युक्तियुक्त विश्लेषण।

मूल्य (कपड़े की जिल्द सहित) १५ रुपये

प्राप्ति स्थान

भारती साहित्य सदन

बिक्री विभाग

३०/९० कनॉट सरकस, नई दिल्ली-१

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

हिन्दुओ चेतो

पिछले मास मध्यावधि चुनावों का निष्कर्ष निकालते हुए हमने यह लिखा था कि हिन्दुओं के देश में हिन्दू समाज का कोई नेता नहीं है। इस कारण जहाँ कहीं भी दस-बीस व्यक्ति मिल बैठते हैं, वहीं वे अपना एक पृथक् दल बना लेते हैं। हिन्दुओं में प्रत्येक व्यक्ति नेता बनना चाहता है, परन्तु अधिकांश नेता बनने वाले लोग न तो हिन्दू शब्द का अर्थ समझते हैं और न ही नेतागिरी का कर्तव्य। अतएव समस्या का मूल समाधान यही है कि हिन्दू, हिन्दू के अर्थ समझें और सुसंगठित समाज में रहने का ढंग सीखें।

महाबुद्धिमान् कहे जाने वाले हिन्दू विद्वान् भी हिन्दू शब्द की व्याख्या एवं अर्थ नहीं कर सकते। जब कभी उनसे पूछा जाता है कि हिन्दू किसको कहते हैं, तो उत्तर मिल जाता है 'भारतीय को' और इसका अंग्रेजी में अनुवाद कर देते हैं 'इण्डियन'। यदि कुछ और खोज की जाये तो कह देते हैं कि 'हम, तुम, यह, वह, सब'।

एक दिन भारतीय जनसंघ के एक नेता जो हिन्दू महासभा को छोड़ कर भारतीय

जनसंघ में आये थे, बताने लगे, 'मैं तो हिन्दू महासभा को इसलिये छोड़कर आया हूं कि वह एक मजहबी जमायत है और भारतीय जनसंघ एक समाजवादी संस्था'। कुछ समय पूर्व, भारतीय जनसंघ के नेतागण मुसलमानों को अपने दल में आकर्षित करने के लिए ऐसा भी लेख लिखने लगे थे कि भारतवर्ष पर आक्रमण करने वाले मुसलमान नहीं थे अपितु मुगल, तुर्क और पठान थे।

इसी प्रकार भारतीय जनसंघ के नेतागण यह मानने लगे थे कि जवाहर लाल नेहरू देश का एक महान् व्यक्ति था। एक समय जनसंघ के एक नेता के मुख से सार्वजनिक सभा में यह निकल गया कि जवाहरलाल नेहरू ने कश्मीर के विषय में देश के साथ द्रोह किया है तो उसके बाद जो अन्य नेता मंच पर आये, उन्होंने कह दिया कि जो कुछ पूर्व-वक्ता ने कहा है वह भारतीय जनसंघ की नीति नहीं है। एक अन्य समय भारतीय जनसंघ की कार्यकारिणी में यह विवाद का विषय बन गया था कि पंजाब के हिन्दुओं की भाषा हिन्दी है अथवा गुरुमुखी? अब एक और समस्या बनी हुई है। पंजाब के जनसंघी चण्डीगढ़ को पंजाब में सम्मिलित कराना चाहते हैं और हरियाणा के जनसंघी हरियाणा में। चण्डीगढ़ से निर्वाचित संसद सदस्य जनसंघी हैं और वह चण्डीगढ़ की वर्तमान अवस्था को स्थायी रखना चाहते हैं।

कुछ मास पूर्व दिल्ली की एक बस्ती लाजपत नगर में आयोजित जनसंघ की एक सभा में पंजाब के एक जनसंघी नेता बड़े बल से कहते सुने गये कि वे (जनसंघ) मुसलमानों को उतना ही अपना समझते हैं जितना कि हिन्दुओं को। उसके तुरन्त ही उपरान्त उसी सभा में जनसंघ के एक अखिल भारतीय नेता यह व्याख्यान देने लगे कि मुसलमानों ने भारत को बहुत हानि पहुंचायी है और जब तक वे अपना व्यवहार ठीक नहीं करते तब तक उनको देश में मानयुक्त स्थान नहीं मिल सकता।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी (पी० एस० पी०) और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी (एस० एस० पी०) दोनों समाजवादी दल हैं। दोनों में अधिकांश हिन्दू हैं और दोनों परस्पर झगड़ते हैं।

कलकत्ता में व्यापार और दस्तकारी प्रायः हिन्दुओं के हाथ में है। कलकत्ता की जनसंख्या में भी ६५ प्रतिशत हिन्दू हैं और वहां पर कितने ही हिन्दू दल हैं, परन्तु सबके सब कम्युनिस्टों के अधीन रहकर राज्य-कार्य करने के लिये तैयार हो गये हैं।

कांग्रेस में भी अधिकांश हिन्दू ही हैं और उसमें भी मार्क्सवादी कम्युनिस्ट विचारधारा के लोगों से लेकर तिलकधारी, यज्ञोपवीत पहनने वाले अथवा आर्यसमाज के नेता महर्षि दयानन्द सरस्वती के नाम की सौगन्ध खाने वाले

तक सम्मिलित हैं। कांग्रेस की परिधि के भीतर अनेक रंग-रूप तथा विचार वाले लोग भी सम्मिलित हैं। कांग्रेस में एक बात विशेष है कि ईसाई और मुसलमान इस पर विश्वास करते हैं और ये कांग्रेसी भी अपने को इनका विश्वासपात्र सिद्ध करने के लिये दिन-रात यत्न करते रहते हैं।

इन सबका परिणाम यह हो रहा है कि देश में न तो कोई सर्वमान्य नेता है और न ही कोई सिद्धान्त। ऐसा इस कारण है कि देश का बहुसंख्यक समाज (हिन्दू) अपने अस्तित्व को भूल चुका है। लोग अपने को हिंदू कहते हुए सकुचाते हैं। वे बड़े अभिमान से अपने को 'इण्डियन' अथवा कुछ दबी भाषा में 'भारतीय' कहने का साहस कर लेते हैं। कुछ काल तक गांधी और जवाहरलाल के नाम पर कांग्रेस ख्याति प्राप्त करती रही। उस समय कांग्रेस के नेता गांधी और जवाहरलाल माने जाते थे। परन्तु इनका नेतापन किसी ऐसे सिद्धान्त अथवा विचारधारा पर टिका हुआ नहीं था, जिसका कि जन-साधारण समझ कर अनुकरण करता। गांधी के अहिंसावाद और सत्य के प्रयोग की अर्थी तो गांधी के जीवन काल में ही निकल चुकी थी। इसी प्रकार जवाहरलाल नेहरू के समाजवाद का सिद्धान्त न उसके जीवन काल में किसी की समझ में समाया और न ही अब समा रहा है। इस पर भी ये दोनों नेता इसलिये माननीय थे, क्योंकि इन्होंने स्वयं को स्वराज्य प्राप्त करने में महान् त्याग करने वाला प्रकट किया था। ये दोनों इतने चतुर थे कि त्याग और तपस्या करने वाले अन्य व्यक्तियों को ढोंगी और मूर्ख सिद्ध करने में सफल हो जाते थे। स्वराज्य मिलने के समय इनके त्याग, तपस्या और बुद्धिमत्ता की देश में धूम थी। इस कारण इनके चारों ओर एक दल बन गया और उस दल ने इक्कीस वर्ष तक राज्य चलाया है। एक बात और हुई है कि ज्यों-ज्यों देश को गांधी और जवाहरलाल की नीतियों और सिद्धान्तों पर अविश्वास होता गया, ये लोग अपने दल में धन-सम्पद् तथा स्वार्थपरता को आकर्षण का केन्द्र बनाते गये और अहिंसा, त्याग, तपस्या, सत्य और समानता इत्यादि उच्च आदर्शों के मानने वालों को दल से बाहर निकाल कर धन-लोलुप, मान पद के इच्छुक और सुख भोगने वालों को दल के प्रति आकर्षित करते गये। फलस्वरूप आज कांग्रेस उद्योगपति, व्यापारी, साहूकार, भूमिपति तथा साथ ही सब प्रकार के ठग और चोरों का केन्द्र बन गई है।

ये लोग निर्वाचनों के समय जनता को सरकारी कोष से ऋण देते हैं, वजीफे देते हैं, ठेके देते हैं, लायसैंस देते हैं और देहातों में शराब, भांग और चरस बांटते हैं। इस प्रकार कांग्रेस की जय-जयकार करते हुए संसद में आ जाते हैं। दूसरे दल वाले भी इनका अनुकरण करना चाहते हैं, परन्तु साधन

न होने से ऐसा कर नहीं पाते। वे लोग झूठे वचन देकर मत प्राप्त करते हैं और इन वचनों के आधार पर आंशिक सफलता ही प्राप्त कर पाते हैं।

वस्तु स्थिति यह है कि कांग्रेस और देश के अन्य दल भी आज मरणासन्न हैं। इनका आधार किसी विचारधारा पर आधारित नहीं है। ये अपनी-अपनी विचारधारा घोषित करने का यत्न करते रहते हैं, परन्तु किसी प्रकार का वास्तविक आधार न होने के कारण वह विचारधारा जन-जन के मन को सन्तुष्ट नहीं कर सकती और परिणाम-स्वरूप देश में अति भयंकर दुर्व्यवस्था हो रही है। हाल ही में बंगाल के मुख्य मन्त्री श्री मुखर्जी ने यह घोषणा की है कि बंगाल का मन्त्री-मण्डल घेराव न डालने का वचन नहीं देता। स्पष्ट है कि घेराव डालने में उनको कोई आपत्ति प्रतीत नहीं हुई। इससे अधिक दुर्व्यवस्था और क्या हो सकती है? भारत की संसद के सवा पांच सौ सदस्य जहां नागरिकों के मूलाधिकार छिन जाने के लिये छटपटा रहे हैं, वहां इस दण्ड-विधान विरोधी घोषणा के विषय में मौन हैं। सब अपना-अपना भत्ता प्राप्त करने की चिन्ता में हैं। सबको यह चिन्ता है कि वे हजारों और लाखों रुपये व्यय करके संसद के सदस्य बने हैं और उनका यह सदस्य काल द्रुतगति से व्यतीत होता जा रहा है। उनको पुनः संसद सदस्य चुने जाने के लिये धन की आवश्यकता है और वे बेचारे इसी चिन्ता में देश, जाति और राज्य की चिन्ता करने में अशक्त हैं।

देश में कम्युनिस्ट शक्तिशाली होते जा रहे हैं। इसका कारण है कि उनका एक सिद्धान्त है। वह सिद्धान्त यह है कि धनवानों का धन छीन कर निर्धनों में बांट दिया जायेगा। और उनका यह प्रस्ताव पांच वर्ष के उपरान्त एक बोतल शराब अथवा एक तोला चरस के प्रलोभन से अधिक आकर्षक सिद्ध हो रहा है। न तो शराब और चरस बांटने में कोई धर्म का कार्य हो रहा है और न ही धनवानों का धन छीनकर निर्धनों में बांटने में। दोनों अधर्मयुक्त होते हुए भी उनमें से एक अधिक आकर्षक है, स्थायी है और सुखप्रद है। दूसरा सुखप्रद तो है, किन्तु अस्थायी। वास्तव में दोनों ही प्रलोभन द्रुतगति से नैतिक पतन लाने वाले हैं।

अभिप्रायः यह कि देश में न कोई नेता है और न कोई सिद्धान्त और क्योंकि देश में अपने को जनगणना में हिन्दू लिखाने वाले ८० प्रतिशत हैं, इस कारण हम कहते हैं कि हिन्दुओं का न कोई नेता है और न कोई सिद्धान्त।

सर्वप्रथम यही प्रश्न उपस्थित होता है कि इतना विशाल जन-समूह अपने को हिन्दू कहता ही क्यों है? कुछ बात तो है कि जिस कारण यह अपने को हिन्दू लिखता है और कहता है। परन्तु दुर्भाग्य यह है कि यह हिन्दू नाम का जन-समूह जानता नहीं कि हिन्दू शब्द के क्या अर्थ हैं।

देश में एक विश्व हिन्दू परिषद् नाम की संस्था कार्य कर रही है। वह यत्न कर रही है कि हिन्दू के लक्षण किये जायें और उसके नित्य-कर्म और कर्त्तव्यों का निर्णय किया जाये। ऐसा सुनने में आया है कि अनेक प्रयत्नों के उपरान्त भी परिषद् यह नहीं समझ सकी है और यदि समझ पाई है तो उसे व्यक्त नहीं कर पा रही कि हिन्दू क्या है? हमारी सम्मति में ये लोग भी उतने ही भटके हुए हैं जितना कि कोई सर्व-सामान्य हिन्दू। हमारा सुविचारित मत है कि हिन्दू के लक्षण होने चाहियें और उसके कर्त्तव्यों का भी निश्चय होना चाहिये। हम हिन्दू उसको मानते हैं जो कि हिन्दू धर्म और संस्कृति का मानने वाला हो। धर्म के अन्तर्गत वर्णाश्रम धर्म एवं राज्य-धर्म आ जाते हैं। वर्णाश्रम धर्म से पूजा-पद्धति का सम्बन्ध नहीं है और यदि हम यह मान लें कि वर्ण गुण, कर्म और स्वभाव से बनते हैं, जन्म से नहीं तो वर्णाश्रम धर्म हिन्दू समाज की एक अद्वितीय प्रथा बन जाती है। मनुष्य जीवन के ९० प्रतिशत कार्य वर्णाश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत आ जाते हैं। वर्ण अपनी योग्यता, कार्यकुशलता और स्वभाव (गुण, कर्म और स्वभाव) से बनते हैं। वर्णाश्रम धर्म को जानने के लिये एक संक्षिप्त संहिता होनी चाहिये जिसमें व्यापक धर्म जिसे हिन्दू धर्म का सारांश कहा जा सकता है, का ध्यान रखा जाये। वह व्यापक धर्म अर्थात् धर्म का सर्वस्व है :—

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

अर्थात्—मनुष्य जो व्यवहार अपने लिए अनुपयुक्त समझता है, उसे दूसरों के साथ भी न करे। दूसरों के साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जाये जैसा वह अपने साथ चाहता है।

इस प्रतिबन्ध के साथ वर्णाश्रम व्यवस्था का विधि-विधान बनना चाहिये। हमारा मत है कि मनुस्मृति अधिकांश में इस प्रकार की व्यवस्था बताती है।

हिन्दू संस्कृति में शेष दस प्रतिशत कार्य आत्मोन्नति एवं पूजा-पद्धति संबंधी कार्य हैं। इसमें भी एक व्यापक प्रतिबन्ध है। वह यह कि बिना किसी दूसरे को हानि पहुंचाये अथवा उसकी पूजा पद्धति में बाधा डाले, अपनी आत्मोन्नति और पूजा पद्धति में प्रत्येक घटक स्वतन्त्र है।

ये दोनों अर्थात् धर्म और संस्कृति ही हिन्दू समाज हैं, यही हिन्दू राष्ट्र है और इन्हीं बातों को स्वीकार कर लोगों का पथ-प्रदर्शन करने वाला व्यक्ति नेता हो सकता है। नेताओं का मूल्यांकन इन्हीं (धर्म और संस्कृति) के आधार पर करना चाहिये। हिन्दू समाज से हमारा आग्रह है कि स्वयं को पहचाने और एक दृढ़ निष्ठावान् हिन्दू के नेतृत्व में संगठित हो जाए।

राष्ट्रीय एवं लोकतांत्रिक तत्त्व संगठित हों

● प्राध्यापक बलराज मधोक, संसद सदस्य

(प्रस्तुत लेख लोकसभा के बजट अधिवेशन में राष्ट्रपति अभिभाषण पर प्रस्तुत धन्यवाद प्रस्ताव पर व्यक्त किए गए श्री मधोक के विचारों पर आधारित है। —सम्पादक)

महामहिम राष्ट्रपति के अभिभाषण पर लोक सभा में धन्यवाद का प्रस्ताव पेश करते हुए कांग्रेस के सदस्यों ने आर्थिक स्थिति का ढिंढोरा पीटा है। उस अभिभाषण में भी उसकी बहुत चर्चा है। मैं जानना चाहता हूं कि वह कैसी उन्नति है? कहा गया है कि खेती में हमारी उन्नति है, उपज बढ़ी है। वह इसलिए बढ़ी है कि पिछले वर्ष वर्षा अच्छी हो गई। जब वर्षा अच्छी हो जाए और उसके कारण खेती अच्छी हो जाय तो उसका श्रेय कांग्रेस को और जब वर्षा न हो, इन्द्र देवता नाराज हो जाए तो फिर कहते हैं हम क्या करें? 'मीठा-मीठा हप्प और कडुवा-कडुवा थू' की यह नीति नहीं चलेगी। अगर सरकार ने खेती के लिए कुछ किया होता तो आज राजस्थान के अन्दर अकाल की स्थिति न होती।

आज वास्तव में इस सरकार के ऊपर सबसे बड़ा आरोप यह है कि इसने २२ वर्षों के राज्यकाल में खेती की उपेक्षा की है। हमारे देश की बुनियादी इण्डस्ट्री खेती है, देश की खुशहाली का आधार खेती है। अगर किसान के पास पैसा होता है तो वह बाजार से माल खरीदता है, वह साईकिल खरीदता है, रेडियो खरीदता है, फलस्वरूप व्यापार चलता है फैक्ट्री चलती है। और जब किसान की जेब में पैसा नहीं होता तो न व्यापार चलता है और न फैक्ट्रियां चलेंगी। जब दो साल वर्षा नहीं हुई, खेती चौपट हो गई तो सारे देश में "रिसेशन" हो गया। वर्षा अच्छी हो गयी उसका श्रेय सरकार ले रही है। मेरा कहना है कि आज भी सरकार खेती की ओर जो ध्यान देना चाहिए, वह नहीं दे रही है।

चौथी योजना देखिए। १४,५०० करोड़ रुपया पब्लिक सैक्टर के लिए है और उसमें खेती के लिए ३,००० करोड़ भी नहीं है। इससे साफ जाहिर है कि खेती की ओर ध्यान नहीं दिया गया और आज भी नहीं दिया जा रहा

है। अगर खेती की ओर ध्यान दें, अगर हम खेतों को पानी देने का प्रबन्ध करें तो सारा देश समृद्ध हो सकता है। इसलिए आज यह दावा करना कि हम खेती की ओर ध्यान देते हैं इसलिए हमारी उपज बढ़ी है, गलत है। इसका श्रेय सरकार को नहीं जाता, बल्कि श्रेय इन्द्र देवता या किसान को है जिसने अपनी मेहनत से पैदावार बढ़ाई।

जहां तक उद्योगों का सम्बन्ध है, उन्नति की हालत यह है कि लगभग सारे सरकारी उद्योग घाटे में चल रहे हैं। अभी तक हमारी जो सरकारी उद्योगों पर लागत है, वह ३,००० करोड़ से अधिक है। अगर दस प्रतिशत न्यूनतम लाभ लगाया जाए तो हर साल तीस करोड़ की आमदनी होनी चाहिए। जिससे हम अपने कर्मचारियों का वेतन बढ़ा सकते हैं तथा देश के लिए उन्नति के अन्य अनेक काम कर सकते हैं। मगर बजाय ३०० करोड़ आमदनी होने के हर साल ४०-५० करोड़ रुपये का घाटा हो रहा है। कोई स्थान बताइये, जहाँ इतना इन्वेस्टमेंट किया गया हो। अगर प्राइवेट सैक्टर में ऐसा होता तो स्थिति भिन्न होती। लेकिन सरकारी उद्योगों की हालत अजीब है। आप यह भी नहीं कह सकते कि सरकारी उद्योगों के कर्मचारियों को आप बेहतर वेतन देते हैं, या उनको रहने का स्थान बेहतर देते हैं। फिर भी घाटा होता है और देश का नुक्सान होता है। कारण क्या है? कारण यह है कि सरकार की औद्योगिक नीति गलत है और जो रुपया सरकार के पास है उसको भी उचित ढंग से खर्च नहीं कर रही है। एक तरफ बेकारों के लिए ६ सौ करोड़ रुपया रख रहे हैं और दूसरी ओर राजस्थान कैनाल को पूरा करने के लिए आप कहते हैं कि हमारे पास पैसा नहीं है। एक तरफ महाराष्ट्र के अन्दर आप नई शूगर मिलें खोल रहे हैं और दूसरी तरफ उत्तर प्रदेश और बिहार के अन्दर मिलें बन्द हो रही हैं या उनकी जो इन्स्टाल्ड कैपेसिटी है, क्षमता है, उस पर पूरी तौर पर काम नहीं कर रही है। यह कोई औद्योगिक काम नहीं है। इस लिए यह कहना ठीक नहीं है कि हमारी औद्योगिक नीति सफल हुई है।

कहा गया है कि हम कृषि के लिए जल की व्यवस्था करने के लिए एक सिंचाई कमीशन बनायेंगे। बात अच्छी है। मगर सिंचाई की क्या हालत है, हमारे देश के अन्दर यह भी तो देखिए। जिस समय हमारे देश में पौंग डैम का काम शुरू हुआ था, उसी समय पाकिस्तान ने मँगला डैम शुरू किया था। पाकिस्तान ने मंगला डैम समाप्त कर लिया, वहां उससे सिंचाई हो रही है और हमारे यहां पौंग डैम आधा भी नहीं हुआ है। राजस्थान कैनाल शुरू हुए कितने साल हो गये हैं परन्तु अभी भी वह बनी नहीं। हमारे पास कोई

'सेंस ग्राफ प्रायरिटी' नहीं है, प्राथमिकता का विचार नहीं है। प्रधान मन्त्री के मकान के लिए ५० लाख रुपये निकल सकते हैं मगर देश के किसान ग्रौर मजदूर के लिए जो रुपया चाहिए उसके लिए कहते हैं कि रुपया नहीं है। यह कोई ग्रर्थ नीति नहीं है। यह न नीति है ग्रौर न नैतिकता है, यह एक खिलवाड़ किया जा रहा है।

विदेश नीति :—

राष्ट्रपति के भाषण में यह भी कहा गया है कि हमारी विदेश नीति बड़ी सफल रही है, मित्र बनाये हैं। मैं हैरान हूं कि क्या विदेश नीति है ? जिन नारों पर यह विदेश नीति १९४७ में बनी थी, वही नारे ग्राज भी चल रहे हैं जबकि देश की परिस्थिति बिल्कुल बदल गई है। पिछले एक साल के ग्रन्दर हमारे इर्द गिर्द के देशों के ग्रन्दर एक बहुत बड़ा परिवर्तन ग्राया है। कल तक रूस को हम ग्रपना मित्र मानते थे ग्राज उसकी नीति में एक बहुत बड़ा बदल ग्रा चुका है। रूस पाकिस्तान के ज्यादा निकट जा रहा है। मिडल ईस्ट के ग्रन्दर वह यू. एस. ए. ग्रौर यू. के. का स्थान ले रहा है। ग्राज सारे ग्ररब देश ग्रौर पाकिस्तान रूस के चंगुल में हैं। रूस की नीति में बदल क्यों ग्राया ? ज़ाहिर है कि हर देश ग्रपनी परिस्थितियों ग्रौर हितों को देखकर ग्रपनी विदेश नीति बनाता है ग्रौर इसके लिए दुनिया का कोई भी मुल्क किसी को दोषी नहीं ठहरा सकता। पाकिस्तान को ग्रमरीका ग्रौर चीन से हथियार मिले ग्रौर ग्रब रूस से भी हथियार मिल रहे हैं, ग्रौर परिणाम यह हुग्रा कि वह ग्ररब देश, जिनके पीछे हम भागते रहे हैं, ग्राज पाकिस्तान के निकट ग्रा रहे हैं। वे पाकिस्तान को एक ग्ररब देश मानने लगे हैं। उन सबका गुट बन गया है। जिस प्रकार यू. के. कभी मिडल ईस्ट के ग्रन्दर मुस्लिम भावना को जगाकर वहाँ के तेल का लाभ उठाना चाहता था, ग्राज रूस इस इलाके की मुस्लिम भावना जगाकर वहां के तेल ग्रौर ग्रन्य साधनों का फायदा उठाना चाहता है। उसकी नीति-परिवर्तन के कारण हमारे देश पर प्रभाव पड़ता है। ग्राज ग्ररब देश हमसे दूर जा रहे हैं, पाकिस्तान पहले ही उधर था, मगर हमारी नीति वही चल रही है। हमने सोचा नहीं कि यह जो बदल ग्राया है परिस्थिति के ग्रन्दर उसके ग्रनुसार हम भी ग्रपनी नीति बदलें।

ग्राज पश्चिम एशिया की स्थिति यह मांग करती है कि जो देश इस नीति के विरुद्ध हैं ग्रौर जो ग्रपने पांव पर खड़े हो सकते हैं उनके साथ हम मित्रता का हाथ बढ़ायें। ग्राज इज़राईल, जिसने सारे ग्ररबों को मुंह तोड़ जवाब दिया, जिसने यह सिद्ध कर दिया है कि उसे भी रहने का ग्रधिकार है, जो हमारा मित्र देश है जो ग्रभी भी हमको सहायता दे सकता है, उसे हम गालियां

देते हैं। ईराक में बेगुनाहों की हत्या होती है, हमारी जबान पर ताला लग जाता है, मगर इसराईल में कुछ भी होता है तो हम बोलने लगते हैं। यह कैसी नीति है ? आज हमें पश्चिम एशिया के बारे में अपनी विदेश नीति के अन्दर मूलभूत परिवर्तन करना चाहिए। मैं नहीं कहता कि अरबों से बिगाड़ करो, मगर यह जरूर कहता हूँ कि इसराईल से दोस्ती करो। ईरान के शहँशाह हमारे यहां आए थे, आज इसराईल के साथ उनके सम्बन्ध बहुत अच्छे हैं। यदि ईरान एक मुस्लिम देश होते हुए भी इसराईल के साथ बड़े निकट के सम्बन्ध रख सकता है तो हमें यह कहने वाले नासिर कौन होते हैं कि "क्योंकि तुम हमारे मित्र हो इसलिए इसराईल के मित्र नहीं बन सकते ?" अगर नासिर साहिब कह सकते हैं कि वह भारत, पाकिस्तान और चीन के दोस्त हैं तो उनसे क्यों नहीं कह सकते कि हम तुम्हारे भी दोस्त हैं और इसराईल के भी दोस्त हैं ? पश्चिम एशिया में रूस की बदलती हुई नीति के अनुसार आप को भी अपनी नीति बदलनी होगी। और अगर ऐसा नहीं करेंगे तो मार खायेंगे।

पाकिस्तान की शक्ति बढ़ रही है और पाकिस्तान के अन्दर जो हालात पैदा हो रहे हैं वे हमारे लिए भी खतरनाक हैं। आज पाकिस्तात के अंदर 'वार आफ एक्सेशन' चल रहा है, उत्तराधिकार का युद्ध चल रहा है। मुस्लिम देशों के अन्दर ऐसा होता रहा है। अपने देश के अन्दर जो असंतोष है, उससे जनता का ध्यान हटाने के लिए वहां का तानाशाह कभी भी अपनी सेना का मुंह भारत की ओर मोड़ सकता है। यह पाकिस्तान की अन्दर की हालत हमारे लिए खतरे की घंटी है। चीन और पाकिस्तान का गठबन्धन है, इसलिए वहां जो भी होता है, जो भी हालात होते हैं, उन पर चिन्ता करने की और अपनी शक्ति को बढ़ाने की जरूरत है तथा अपनी विदेश नीति में उचित परिवर्तन लाने की जरूरत है। वह हम नहीं कर रहे हैं।

पूर्व एशिया के अन्दर एक तनाव पैदा हो रहा। यू० के० वहां से निकल रहा है। यू० एस० ए० भी वहां से अलग हो रहा है, इंडियन ओशन से भी पीछे हट रहा है। फलस्वरूप वहां एक खल्ला पैदा हो रहा है। हमारी प्रधानमन्त्री कहती है कि मैं इस वैकुअम के सिद्धान्त में विश्वास नहीं करती। मुझे प्रधानमन्त्री की इस बात पर क्रोध नहीं आता बल्कि उन पर दया आती है। जितनी उनमें अकल है उसके अनुसार ही तो वह बात करेंगी। पूर्व एशिया में खल्ले की स्थिति पैदा हो रही है। अभी पिछले दिनों जब मैं दक्षिण वियतनाम गया था और वहां के प्रधानमन्त्री से मैंने पूछा कि उनकी

समस्या क्या है तो वह कहने लगे कि हमारी समस्या बड़ी साधारण है। उन्होंने कहा कि उनका देश भारत और चीन का मिलन स्थल है। भौगोलिक दृष्टि से हम चीन के निकट हैं और सांस्कृतिक दृष्टि से भारत के। फ्रांस के इन्डोचीन क्षेत्र से निकल जाने के कारण यहां शक्ति-शून्यता की स्थिति पैदा हो गई है। उस शून्य को या चीन भर सकता है और या भारत। चीन इसमें घुसने का प्रयत्न कर रहा है। हम उसका प्रतिरोध कर रहे हैं। अमरीका हमारी सहायता कर रहा है जिसके लिए हम उसके आभारी हैं, परन्तु अन्ततो-गत्वा इसको चीन या भारत ही भर सकते हैं। परन्तु खेद है कि भारत कहीं तस्वीर में नहीं है।

विएतनाम के प्रधानमन्त्री ने बताया कि एक वैकुअम पैदा हो रहा है। अब अगर हम उस वैकुअम को नहीं भरेंगे तो चीन भरेगा या और कोई भरेगा। वैकुअम चल नहीं सकता है। आज हम अकेले उस वैकुअम को नहीं भर सकते, इसलिए आवश्यक है कि हम क्षेत्रीय गठजोड़ करें। इंडोनेशिया, जापान, आस्ट्रेलिया और भारत को मिल कर चलना चाहिए। हमें आर्थिक मामलों में, राजनीतिक मामलों में और सैनिक मामलों में तालमेल बढ़ाना चाहिए। तभी जाकर यह जो वैकुअम पैदा हो रहा है, उसको हम भर सकेंगे और चीन व रूस को उसको भरने से रोक सकेंगे।

अब राजा दिनेशसिंह विदेश मन्त्री बने हैं। विदेशी मामलों के लिए अलग मन्त्री होना अच्छा है परन्तु लोगों का कहना है कि दिनेशसिंह तो प्रधानमन्त्री की जेब में हैं। अब कौन किसकी जेब में है, मैं नहीं जानता। शायद दोनों ही ब्रेझनेव की जेब में हैं। कौन किसकी जेब में है मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं है। लेकिन मुझे चिन्ता इस बात की है कि वे दोनों भारत के हितों की चिन्ता नहीं करते। आज देश का दुर्भाग्य यह है कि हमारी विदेश नीति हमारे देश के हितों का विचार करके नहीं बनाई जा रही है। आज हमारी विदेश नीति रूस के इशारे पर चलती है। यह ठीक नहीं है। रूस का रवैया क्या है ? रूस भारत का दोस्त नहीं है। अभी ''वेंगन डील'' के बारे में जो कुछ हुआ और बाकी बातों में जो कुछ रूस कर रहा है, उससे यह बात स्पष्ट है कि न रूस और न ही अमरीका भारत के दोस्त हैं। दोनों ही भारत को कमजोर देखना चाहते हैं। वे जानते हैं कि भारत ही एक ऐसा देश है जो कि सुपर पावर बन सकता है। उसकी ५० करोड़ की आबादी है। उसके पास साधन हैं। इसलिए वे मुल्क नहीं चाहते कि भारत महाशक्ति बने। और भारत महाशक्ति न बने' इसके लिए वे पाकिस्तान को इस्तेमाल करते हैं। कभी अमरीका पाकिस्तान को बिल्ड करता है, कभी रूस भारत का काउंटर

बैलेन्स करने के लिए उसे बिल्ड करता है। इसलिए हमें इस पर विचार करना होगा। मैं नहीं चाहता कि हमारी अमरीका से बिगड़े, मैं नहीं चाहता कि हमारी रूस से बिगड़े। हम दोनों से मित्रता चाहते हैं मगर मित्रता बराबर वालों में ही हुआ करती है। दो बराबरों में मित्रता होती है। मालिक और नौकर में मित्रता नहीं हुआ करती। आज जो हमारी रूस से दोस्ती है वह रूस से बराबरी की दोस्ती नहीं है बल्कि वह मालिक और नौकर की दोस्ती है। मैं चाहता हूं कि रूस से हमारी दोस्ती हो, लेकिन वह बराबरी की दोस्ती हो। भारत बलवान बने और वह सम्मान, हिम्मत व इज्जत के साथ अपने पैरों पर खड़ा हो। लेकिन अफसोस का विषय है कि ऐसा नहीं हो पा रहा है। हालत यह है कि आज भारत की रूस पर निर्भरता है। मैं चाहता हूं कि हम अपने पैरों पर खड़े हों। वैसे कहने को तो हम आत्मनिर्भरता की बात करते हैं, स्वदेशी की बात करते हैं, मगर व्यवहार में हम देख रहे हैं कि हमारी प्रत्येक पर निर्भरता बढ़ रही है।

राष्ट्रपति ने अपने अभिभाषण में कहा कि हमने पिछले साल अपने कर्ज पर ५१ करोड़ से अधिक डालर यानि ४०० करोड़ से अधिक रुपये सूद दिया है। आज भारत देश में जो बच्चा पैदा होता है वह अपने सिर पर कई सौ करोड़ रुपये के कर्ज का भार लेकर पैदा होता है।

प्रधानमन्त्री ने दो दिन पहले इसी सदन में कहा कि जो लोग कहते हैं कि हमने कोई प्रगति नहीं की है वे गलत कहते हैं। प्रगति की है, मगर आप की जो प्रगति है उसकी तुलना उस खर्च से कीजिए जो कि आपने किया है। हमने २५,००० करोड़ रुपये से अधिक खर्च किया है, १२,००० करोड़ का विदेशी ऋण लिया, ५-६ हजार करोड़ की सहायता ली। देश में इतने टैक्स बढ़ाये। उसकी तुलना में हमने क्या प्रगति है? प्रगति की तुलना हमेशा खर्च से करनी चाहिए। देखना आपको यह चाहिए कि हमने खर्चा क्या किया, प्रयत्न क्या किया और उसके मुकाबले में प्रगति क्या हुई। मेरा यह कहना है कि जितना रुपया हमने खर्च किया उसके मुकाबले में प्रगति कुछ भी नहीं हुई। जो मुल्क औद्योगिक और तकनीकी मामलों में हमसे पीछे थे, वे मुल्क भी हमसे आगे निकल गये हैं और हम पीछे रह गये हैं।

यह देखिये कि संसार के देशों में आर्थिक प्रगति के अनुपात में भारत कहां टिकता है? दुनिया को धोखा देना बन्द कीजिए। मैं चाहता हूं कि भारत आगे बढ़े लेकिन भारत को आगे बढ़ाने के लिए आपको भारत की नीतियों के अन्दर मूलभूत परिवर्तन करना होगा। हमें भारत को किसी भी देश का पिछलग्गू नहीं बनाना है। हमें अपने देश की नीतियां इस देश के हित

में और यहां की जनता के हित में बनानी होंगी और उसके अनुरूप ही अपनी विदेश नीति को ढालना होगा। अगर वैसा हम नहीं करेंगे तो फिर आर्थिक उन्नति होगी या नहीं होगी, वह तो एक और बात है लेकिन यह निश्चित है कि देश की एकता नहीं रहेगी।

आज पाकिस्तान और चीन में गठजोड़ है। वे मिलकर चल रहे हैं और देश के अन्दर जो उनके एजेंट हैं, आज उन में गठजोड़ है। उनका यह गठजोड़ खुल्लमखुल्ला काम कर रहा है। यह गठजोड़ न केवल केरल के अन्दर काम कर रहा है बल्कि वह सारे देश के अन्दर काम कर रहा है। इन चुनावों के अन्दर बिहार में क्या हुआ ? बंगाल में क्या हुआ ? यह एक साफ बात है। यह एक सबक है। मैं अपने कांग्रेसी भाइयों से कहूंगा कि यह जो देश के बाहर पाकिस्तान और चीन का गठजोड़ है, यह जो पिंडी-पीकिंग ऐक्सिस है, उसी के नमूने पर इस देश के अन्दर कम्युनिस्टों और मुस्लिम लीग में गठजोड़ चल रहा है। उसके परिणाम स्वरूप देश में राष्ट्र विरोधी शक्तियां इकट्ठी हो रही हैं और वह देश की एकता, सुरक्षा व प्रभुसत्ता के लिए एक बहुत बड़ा खतरा बन रही हैं। उस खतरे का मुकाबला करने के लिए आप क्या कर रहे हैं ?

हमारे राष्ट्रपति ने अपने अभिभाषण में कहा कि यहां पर कुछ इन्तहा पसन्द दल हैं जो कि लोकतन्त्र में विश्वास नहीं रखते, जो लोकतन्त्र को नष्ट करना चाहते हैं और हम उन्हें बर्दाश्त नहीं करेंगे। लेकिन हमारे राष्ट्रपति जी को उनका नाम लेने में जरा संकोच हुआ। जैसे एक पतिव्रता पत्नी अपने पति का नाम लेने में संकोच करती है उसी प्रकार इस सरकार को ऐसे दलों का नाम लेने में संकोच होता है। अगर सरकार को संकोच नहीं है तो फिर उन दलों का नाम क्यों नहीं लेती, जिनका कि लोकतन्त्र में विश्वास नहीं है ? कौन हैं जो कि यहाँ पर सशस्त्र क्रान्ति करना चाहते हैं ? कौन हैं जो केवल लोकतन्त्रीय पद्धति का लाभ उठाकर, लोकतन्त्रीय स्वतन्त्रता का लाभ उठाकर इस देश के अन्दर डैमोक्रेसी को खत्म करना चाहते हैं ? स्पष्ट है कि वह कम्युनिस्ट हैं और उन्होंने कभी इस बात को छिपाया भी नहीं है कि उनका लोकतन्त्र में विश्वास नहीं है। वास्तव में उनका विश्वास हिंसा में है। वह देश के अन्दर खूनी क्रान्ति चाहते हैं। वह लोकतन्त्र का लाभ उठाकर उसको एक्सप्लाइट करके देश की मूलभूत एकता को ही नष्ट करना चाहते हैं। आप उन पर रोक लगाने को तैयार नहीं, उनका नाम लेने को तैयार नहीं। अगर इस देश की एकता को बचाना है, इस देश की आजादी व प्रभुसत्ता को बचाना है, लोकतन्त्र को बचाना है तो ऐसी घातक व विघटनकारी शक्तियों को देश में पनपने नहीं देना चाहिए।

मैं यह मानता हूँ कि भारतीय लोकतन्त्र में हर एक व्यक्ति को अपने ढंग से काम करने का अधिकार है, पार्टी आदि संगठित करने का भी अधिकार है। लेकिन लोकतन्त्र के अन्दर किसी ऐसी पार्टी को जिसका कि वास्तव में लोकतन्त्र में विश्वास नहीं है, जो लोकतन्त्र को नष्ट करना चाहती है, काम करने का अधिकार नहीं हो सकता है।

राष्ट्रवाद !

राष्ट्रपति ने अपने अभिभाषण में कहा है कि हर एक व्यक्ति के अन्दर नेशनलिज्म की भावना पैदा करनी चाहिये। क्या आपने कभी गम्भीरता से सोचा है कि नेशनलिज्म होता क्या है? इस देश के अन्दर रट तो आप अवश्य नेशनलिज्म की लगाते हैं, लेकिन उसका दरअसल मतलब क्या है इसे भी क्या कभी आपने समझने की कोशिश की है? नेशनलिज्म कोई नई कल्पना नहीं है, कोई नया शब्द नहीं है। दुनिया भर में यह कंसेप्ट चलता है। आज के युग में नेशनलिज्म एक बहुत बड़ी शक्ति है। लेकिन क्या कभी आपने सोचा है कि उसका आधार क्या है? नेशनलिज्म का आधार यह होता है कि सभी लोग, चाहे वह किसी जाति, सम्प्रदाय या संस्था के हों, सभी को इस देश से प्यार हो। हर एक देशवासी को इस देश की संस्कृति व परम्परा से प्यार हो। उनका मज़हब कुछ भी हो, उनका प्रान्त कुछ भी हो, उनकी जाति कुछ भी हो, लेकिन वे सब देश से प्यार करें और ऐसा होने से वह एक राष्ट्र बनता है। इसलिए हर एक देशवासी की राष्ट्र के प्रति आस्था सर्वोपरि होनी चाहिये। एक राष्ट्र में कई गिरोह हो सकते हैं, पोलिटिकल पार्टियां होती हैं, प्रान्त, सम्प्रदाय व भाषाएँ होती हैं और ये सब हमारे देश में भी हैं। हर व्यक्ति का किसी पोलिटिकल पार्टी, सम्प्रदाय और प्रान्त से लगाव हो सकता है, विशेष सम्प्रदाय या भाषा के प्रति उसकी आस्था भी हो सकती है और होती है, लेकिन जहां तक राष्ट्र की एकता व उसके प्रति तमाम देशवासियों की आस्था का सवाल है, साधारणतया इन आस्थाओं का उसके साथ कोई टकराव नहीं होना चाहिये।

कोई व्यक्ति नैशनल है या कम्यूनल है, कोई पार्टी नैशनल है या कम्यूनल है, यह सवाल तब पैदा होता है, जब इन आस्थाओं में टकराव हो। हमारी पार्टी के हितों और देश के हितों में टकराव हो, हमारे सम्प्रदाय के हितों और देश के हितों में टकराव हो, हमारी भाषा और प्रान्त के हितों और देश के हितों में टकराव हो। उस समय यदि कोई पार्टी या कोई व्यक्ति यह कहे कि हमारा देश पहले आता है, हम देश के लिये जियेंगे और मरेंगे, हम देश के लिए अपनी पार्टी के हितों को, सम्प्रदाय के हितों को कुर्बान करने के

लिये तैयार हैं तो वह राष्ट्रवादी है, वह कौमपरस्त है और जो यह कहता है कि देश चूल्हे में जाये, हमारी पार्टी पहले है, हमारा सम्प्रदाय पहले है और अपने सम्प्रदाय या जाति के लिये देश के हितों को नुक्सान पहुंचाने के लिये तैयार हो, तो वह सम्प्रदायवादी है, वह कम्यूनल है, वह फिरकापरस्त है।

संसार भर में राष्ट्रीयता का यही एक आधार है, यही एक कसौटी है। जो राष्ट्र को आगे रखे, वह राष्ट्रवादी है और जो अपने दल को या अपने प्रान्त को या अपने सम्प्रदाय को आगे रखे, वह राष्ट्रवादी नहीं है, वह सम्प्रदायवादी है। यही कसौटी जर्मनी में लागू होती है और यही कसौटी फ्रांस में लागू होती है। यही कसौटी पूरे भारत में भी लागू की जानी चाहिए।

मैं चाहूँगा कि हमारे कांग्रेसी भाई इस कसौटी पर अपने आपको कसें और भारतीय जनसंघ को भी कसें। मुझे इस बात का गर्व है कि भारतीय जनसंघ ने अपने पिछले सत्रह साल के इतिहास में कभी भी देश के हितों को नुक्सान नहीं पहुंचाया है। हमारे लिये देश पहले आता है और दल बाद में। हमारे लिये दल केवल राष्ट्र-सेवा का एक माध्यम है। हमारे प्रवर्तक और हमारे निर्माता डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने देश की एकता के लिए कश्मीर में जाकर बलिदान दिया। हमारे लिये देश पहले है दल बाद में है। लेकिन मैं अपने कांग्रेसी भाइयों से पूछना चाहता हूं कि क्या कांग्रेस ने कदम-कदम पर अपने दलगत स्वार्थों के लिए देश के हितों को नुक्सान नहीं पहुंचाया है और आज भी नहीं पहुंचा रही है? क्या इस देश के अन्दर पृथकतावाद की भावना को, क्षेत्रवाद की भावना को कांग्रेस ने नहीं भड़काया है? आज पंजाब में क्या हो रहा है? पंजाब के अन्दर आप लोगों ने भाई-भाई के अन्दर फूट डाली। भारतीय जनसंघ को गर्व है कि आपने जिन भाइयों को अलग-अलग किया था, उसने उनको फिर जोड़ा है। आज कांग्रेस वाले फिर वहां पर सिख-नॉन-सिख का सवाल उठा रहे हैं, उनके अन्दर अलगाव की भावना पैदा कर रहे हैं। कभी हिन्दी के नाम पर ऐसा कर रहे हैं और कभी किसी और नाम पर। कदम-कदम पर अलगाव की भावना पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं। पिछले दिनों प्रधान-मन्त्री ने पंजाब का दौरा किया था। तब उन्होंने कहा था कि अगर कांग्रेस को वोट नहीं दिया गया तो कश्मीर भारत में नहीं रहेगा। मैं पूछना चाहता हूँ कि कश्मीर का इलहाक भारत के साथ हुआ है या प्रधान-मन्त्री के साथ हुआ है या कांग्रेस के साथ हुआ है? क्या यह कश्मीर की जनता को उकसाना नहीं है कि अगर कांग्रेस पावर में नहीं आई तो तुम अलगाव की अपनी मांग को उठाना?

आज कांग्रेस इज़राइल के साथ इसलिए दौत्य सम्बन्ध कायम नहीं कर रही है कि कहीं हिन्दुस्तान के मुसलमान वोटर उससे बिदक न जाएँ। यह मेरा कहना नहीं है, और लोगों का भी यही कहना है। राजस्थान यूनिवर्सिटी के डा० माथुर ने भारत के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर लिखी अपनी पुस्तक में भी यही लिखा है कि भारत सरकार इज़राईल को इसलिए मान्यता नहीं देती है कि कहीं यहां के मुसलमान वोटर्ज बिदक न जायें। जो पार्टी अपनी नीतियों और अपने कार्यक्रम बनाते समय साम्प्रदायिक दृष्टि से विचार करती है, साम्प्रदायिकता को उभारती है, वह जनसंघ को कम्यूनल कहे, इसी को कहते हैं, उल्टा चोर कोतवाल को डांटे। जो खुद शीशे के मकान में रहता है, वह हम पर पत्थर फैंके, जिसका मकान स्टील का बना हुआ है, तो इसका कोई भी नतीजा नहीं निकल सकता है। आज हिन्दुस्तान में कोई राष्ट्रवादी दल है तो वह भारतीय जनसंघ है। भारतीय जनसंघ का इतिहास इसका साक्षी है। इसलिए जो भारतीय जनसंघ को साम्प्रदायिक कहता है, चाँद पर थूकता है और जो चाँद पर थूकता है वह अपने मुंह पर थूकता है। भारतीय जनसंघ की राष्ट्रीयता की कल्पना तर्क संगत है और आपकी राष्ट्रीयता की कल्पना उससे भिन्न है। भारत में कई मजहबों के लोग बसते हैं। किसी दल में किसी खास मजहब के या मत के लोग आएँ तो ही वह दल राष्ट्रीय होगा, राष्ट्रवाद की यह परिभाषा कहीं भी नहीं मिलती। यह राष्ट्रीयता का आधार नहीं है। राष्ट्रीयता का अर्थ देखना हो तो उसका अर्थ आप डिक्शनरी में या एनसाइक्लोपीडिया में देखिये। ससार भर में राष्ट्रीयता का जो अर्थ लागू होता है, वही आप भारत में भी लागू करें। यदि आपने ऐसा किया तभी आप देश की राष्ट्रीयता को बचा पाएँगे।

आज भारत को राष्ट्रीयता की जरूरत है। भारत में जो अलगाव की शक्तियां बढ़ रही हैं, सिर उठा रही हैं, उनका मुकाबला करने के लिए राष्ट्रीयता ही आज कारगर हो सकती है। हमको राष्ट्रीयता को जगाना होगा। देश की राष्ट्रीयता तब जागी थी, जब चीन ने भारत पर हमला किया था, पाकिस्तान ने भारत पर हमला किया था और वह आपके द्वारा नहीं जागी थी, भारतीय जनसंघ के द्वारा उसको जगाया गया था। आज भी भारतीय जनसंघ राष्ट्रवाद का अग्रदूत है। आपसे कुछ नहीं बनने वाला है। भारतीय जनसंघ राष्ट्रवाद के लिए जो प्रयत्न आज तक करता रहा है, उनको वह जारी रखेगा। उनको वह आगे भी करता रहेगा और उसी के द्वारा भारत का राष्ट्रवाद पनपेगा।

राष्ट्रपति जी के अभिभाषण में सैक्युलरिज्म का जजबा पैदा करना

चाहिये, यह बात भी कही गई है। सैक्युलरिज्म का अर्थ क्या है? क्या आप सैक्युलर हैं? सैक्युलरिज्म का अर्थ यह नहीं होता है कि राज्य का कोई धर्म न हो। आज ब्रिटेन एक सैक्युलर स्टेट है, लेकिन वहां का राज धर्म है। वहां का राजा एंगलिकन चर्च का होता है और स्टेट फंड्स से चर्च के पादरियों को वेतन मिलता है। जिसका धर्म कोई न हो वही सैक्युलर है, यह सैक्युल-रिज्म का अर्थ नहीं है। सैक्युलरिज्म का अर्थ यह होता है कि जो राज्य है जो स्टेट है, वह अपनी जनता के बीच में, पूजा विधि के आधार पर, मजहब के आधार पर, पैट्रोनेज के मामले में, नौकरियों के मामले में, कानून के मामले में कोई भेदभाव न करे।

संसार भर में सैक्युलरिज्म का यही अर्थ माना जाता है। लेकिन क्या सरकारी दल और यह सरकार इस अर्थ को मानती है? नहीं, अगर वे सेक्युलर होते, तो क्या इस देश में हिन्दू के लिए एक मैरिज-लॉ और मुसलमान के लिए दूसरा मैरिज-लॉ होता? आप मुझे संसार का कोई ऐसा सैक्युलर देश बता दीजिए, जिसमें अलग-अलग वर्गों के लिए अलग-अलग मैरिज-लॉ हैं।

आपका माडल अशोक है, जो कि हमारे इतिहास में एक ही ऐसा राजा हुआ है जो सैकुलर नहीं था। हमारे देश के तीन विख्यात इतिहासकारों, रे-चौधरी, मौजूमदार और दत्त ने लिखा है कि अशोक ने हिन्दू राज्य का धर्म-निरपेक्ष होने का आदर्श छोड़ दिया। इस कारण देश में प्रतिक्रिया हुई और मौर्य साम्राज्य के पतन का यह एक मुख्य कारण बना।

हमारे इतिहास में जो एक राजा सैकुलर नहीं था, वह इनका मॉडल है। वास्तव में ये लोग सैकुलर नहीं है। मैं चाहता हूँ कि ये सैकुलर बनें। मैं और मेरी पार्टी सैकुलर हैं। हमारा मत है कि हिन्दुस्तान उसी प्रकार एक हिन्दू स्टेट है, जिस प्रकार यू० ए० आर०, सीरिया और सूडान मुस्लिम स्टेटस् हैं और ब्रिटेन क्रिश्चियन स्टेट है। सीरिया में १४%, सूडान में १४% और यू० ए० आर० में १२% नॉन-मुस्लिम हैं, लेकिन वहां पर किसी ने कभी रिलिजस माइनॉरिटी की बात नहीं सुनी, यद्यपि वे मुस्लिम स्टेटस् कहलाती हैं और अपने आपको सैकुलर कहती हैं। इस देश में इन लोगों की तरफ से सैकुलर स्टेट होने का दावा किया जाता है, लेकिन हर रोज रिलिजस माइनारिटी की बात उठाई जाती है। लोकतन्त्र में बहुमत और अल्पमत राजनैतिक होता है। आज कांग्रेस मैजारिटी में है और हम माइनारिटी में हैं। कांग्रेस का फर्ज है कि वह देश में स्वस्थ परम्परायें कायम करे। लेकिन

ये लोग एक तरफ तो अपने दलगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए मजहबी भावनाओं को उभारते हैं। दूसरी तरफ सैक्युलरिज्म की रट लगाते हैं और यह सैक्युलरिज्म की रट उस देश में लगाई जाती है, जिसमें कभी थ्यूरोक्रेसी (मजहबी राज्य) नहीं थी। मैं समझता हूँ कि भारत में सैक्युलरिज्म की बात करना भारत का अपमान करना है, भारत की प्राचीन परम्पराओं और संस्कृति का अपमान करना है। जैसा कि मैंने कहा हैं, भारत में कभी भी थ्यूरोक्रेसी नहीं थी और न ही होगी, जब तक कि यहां पर भारतीय और वैदिक सस्कृति रहेगी। प्रधान-मन्त्री तो कुछ पढ़ती-लिखती नहीं हैं। आप लोगों में से जो पढ़े-लिखे हैं, वे इन बातों का अध्ययन करें, इन शब्दों के अर्थ को समझें और तोते की तरह किन्हीं बातों की रट न लगायें। इन शब्दों के अर्थ को समझ कर वास्तविक अर्थों में सैकुलर बनने की कोशिश करें।

राष्ट्रपति के अभिभाषण में राज्यों के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने की बात भी कही गई है। लेकिन केन्द्रीय सरकार विभिन्न राज्यों के साथ कैसा व्यवहार कर रही है? वह कैसी लोकतन्त्रीय परम्पराओं को स्थापित कर रही है? लोकतन्त्र केवल संविधान के आधार पर नहीं चलता है वह ठीक और स्वस्थ परम्पराओं के आधार पर चलता है। लेकिन यह सरकार कैसी परम्परायें डाल रही है? हरियाणा में उसने कौन-सी परम्परा डाली है? असेम्बली में अपनी मैजारिटी बनाए रखने के लिए चार सदस्यों को निलम्बित कर दिया गया है। क्या यह लोकतन्त्र है? वहाँ पर एक विपक्षी सदस्य का अपहरण भी किया गया? क्या यह एक लोकतन्त्रीय परम्परा है?

दिल्ली के साथ केन्द्रीय सरकार क्या सलूक कर रही है? दिल्ली देश की राजधानी है, लेकिन चूंकि उसका प्रशासन जनसंघ के हाथ में है, इसलिए उसके साथ सौतेली मां का सा सलूक किया जा रहा है, उसको सब साधनों से वंचित किया जा रहा है। यह शर्म की बात है।

दिल्ली में जो सरकारी कर्मचारी हैं, आज उनकी हालत क्या है? आंकड़ों के अनुसार आज सरकारी कर्मचारियों की रीयल वेजिज (असली वेतन) १९४७ की तुलना में कम है। जहाँ तक दिल्ली की आवास समस्या का सम्बन्ध है, यहां पर लगभग दो सौ तथाकथित अनधिकृत बस्तियां हैं। लोगों ने अपने गहने बेचकर, तरह-तरह की मुसीबतें उठाकर अपने छोटे-छोटे मकान बनाए हैं। यह सरकार खुद तो किसी को मकान दे नहीं सकती है, लेकिन वह उन मकानों को तोड़ने पर तुली हुई है। वह देश की राजधानी में साधारण सुविधायें भी नहीं दे सकती है। यह ढंग नहीं है हुकूमत करने का। शासनारूढ़ दल यहां पर एक मैजारिटी पार्टी है। उसका कर्त्तव्य है कि वह

दूसरे दलों के लिए, देश के विभिन्न राज्यों के लिए, एक मॉडल पेश करे उनके लिए उदाहरण प्रस्तुत करे।

यह गांधी शताब्दी वर्ष है, इस अभिभाषण में उसका उल्लेख भी किया गया है। यह दुर्भाग्य की बात है कि कुछ लोग गांधी जी को राष्ट्रपिता कहते हैं। ऐसा करके वे उनका अपमान करते हैं। अगर गांधी आज जीवित होते, तो वह इन लोगों पर लानत भेजते कि ये क्या कर रहे हैं। गांधी जी इस देश के एक महान सपूत थे, वह इसके पिता नहीं थे। हमारा राष्ट्र १९२१ में नहीं बना। हमारा एक प्राचीन राष्ट्र है। गांधी जी इस देश के महान् सपूत थे, जैसे कि राम इस देश के महान सपूत थे। भारतमाता सब की मां है। उसका कोई बाप नहीं हो सकता है। गांधी जी को राष्ट्रपिता कहकर उनका अपमान नहीं करना चाहिए।

गांधी जी इस देश में क्या अवस्था चाहते थे? उन्होंने कहा था कि कांग्रेस को तोड़ डालो और उसमें जो अलग-अलग विचारधारा के लोग हैं वे अपने अलग.अलग दल बना लें। कांग्रेस ने गांधी जी की बात नहीं मानी। अब भी वक्त है कि कांग्रेस गांधी जी की बात को मान ले। कांग्रेस कोई एक पार्टी नहीं है, दो पार्टियां है: एक नेहरूवादी और दूसरी पटेलवादी। नेहरूवादी रूस का चरण-चुम्बन करते हैं, कम्युनिस्टों की तरफ देखते हैं। पटेलवादी लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, महामना मालवीय, विपिनचन्द्र पाल और सरदार पटेल की परम्पराओं पर चलते हैं। आज उनकी जबान बन्द है। अब समय आ गया है कि वे अपनी जबान खोलें। आज देश की एकता, प्रभुसत्ता और सुरक्षा खतरे में है। जिनके हाथ में उन्होंने हुकूमत दे रखी है, वे इस देश को बेचने पर तुले हुए हैं।

आज लड़ाई जनसंघ की और कांग्रेस की नहीं है, लेफ्ट और राइट की भी नहीं है। वास्तव में लड़ाई राष्ट्रवादियों की और राष्ट्रद्रोहियों की है, लोकतन्त्रवादियों और लोकतन्त्र के विरोधियों की है। आज लोकतन्त्र-विरोधी और राष्ट्र-विरोधी इकट्ठे हो रहे हैं। उनका गठजोड़ केरल में, बंगाल में और यहाँ इस सदन में भी दीख रहा है। इसलिए लोकतन्त्र-विरोधियों और राष्ट्र-विरोधियों के गठजोड़ का मुकाबला करने के लिए राष्ट्रवादी और लोकतन्त्रवादी शक्तियों को मिलकर काम करना होगा। आज जबकि देश पर संकट है, हमें इस बात पर विचार करना चाहिए। मुझे आशा है कि मैंने जो कुछ आलोचना की है, काँग्रेस के बन्धु और अन्य राष्ट्रवादी कांग्रेसी गम्भीरता से उस पर विचार करेंगे और उस पर अमल करने का प्रयत्न करेंगे।

* * *

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

श्री आदित्य

भूमण्डल की एक विशेष घटना जो पिछले मास में हुई, वह संयुक्त राज्य अमरीका के नव-निर्वाचित राष्ट्रपति श्री निक्सन का यूरोप भ्रमण है। इस भ्रमण में अमरीका के राष्ट्रपति का उद्देश्य यह था कि 'नाटो' के सदस्य राज्यों के उच्चाधिकारियों से विचार-विमर्श किया जाये। श्री निक्सन ने बैल्जियम की राजधानी ब्रसल्ज, इंगलैण्ड की राजधानी लन्दन, पश्चिमी जर्मनी की राजधानी बॉन तथा पश्चिमी बर्लिन, इटली की राजधानी रोम और फ्रांस की राजधानी पैरिस में वहां के उच्चाधिकारियों से बातचीत की। स्वाभाविक रूप में यह बातचीत उस बातचीत का प्रारूप है जो अमरीका और रूस के भीतर होने वाली प्रतीत हो रही है।

यूरोप में दो गुट हैं। एक नाटो गुट कहलाता है। इसमें उक्त पांच राज्यों के अतिरिक्त टर्की और यूनान भी हैं। दूसरा गुट वारसा-सन्धि के राज्य हैं। ये दोनों गुट परस्पर विरोधी हैं। यह विरोध द्वितीय विश्व-युद्ध के उपरान्त उत्पन्न हुआ था। उन दिनों जब युद्ध अभी चालू ही था, तब इंगलैण्ड, अमरीका और रूस के सर्वोच्च अधिकारियों में एक कान्फरेन्स हुई थी और उस कान्फरेन्स में यह निश्चय हुआ था कि पूर्वी यूरोप रूस के प्रभावाधीन रहेगा और पश्चिमी यूरोप अमरीका, इंगलैण्ड इत्यादि देशों के प्रभावाधीन। इसी प्रकार यह भी निश्चय हुआ था कि चीन रूस के प्रभाव में रहेगा। परन्तु इस प्रभाव का अर्थ यह नहीं था कि ये राज्य रूस अथवा अमरीका के दास बन कर रहेंगे। रूस का विचार दूसरा था। उसने इन राज्यों में अपना प्रभाव जमाये रखने के लिए अपने प्रभावाधीन राज्यों की राज्य पद्धति को बोलशिविक पद्धति के अनुसार बदल दिया।

बोलशिविक राज्य-पद्धति में मुख्य बात एक राजनीतिक दल का होना और राज्य संचालन के निमित्त अधिकारियों के निर्वाचन करने का अधिकार

केवल मात्र सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों को देना है। नाटो गुट के सब राज्यों में प्रजातन्त्रात्मक पद्धति से राज्य संचालन होता है। जब प्रभावाधीन क्षेत्रों का निश्चय हुआ था, तब यह बात नहीं थी कि उन क्षेत्रों में बलपूर्वक किसी एक प्रकार की राज्य पद्धति चालू कर दी जायेगी। प्रत्येक राज्य को अपने भीतर राज्य-पद्धति रखने में स्वतन्त्रता थी। रूस ने इस विषय में समझौते का यह अर्थ निकाला है कि सब प्रभावाधीन क्षेत्रों में राज्य-पद्धति रूस की इच्छानुसार स्वीकार की जायेगी। अत: रूस ने षड्यंत्र करके उन समस्त राज्यों में जो रूस के प्रभावाधीन स्वीकार किये गये थे, बोलशिविक पद्धति के अनुसार राज्य स्थापित करवा दिये। केवल इतने पर ही सन्तोष नहीं किया, वरंच इन राज्यों के विस्तार में भी सहायता देनी आरम्भ कर दी। पहले तो अमरीका, इंगलैण्ड इत्यादि रूस की इस दुर्नीति के परिणामों को समझ ही नहीं सके, परन्तु जब चीन के कम्युनिस्ट राज्य ने कोरिया पर आक्रमण कर दिया, तब अमरीका की समझ में आया कि जो कुछ उन्होंने समझौते से रूस को दिया था, उससे कहीं अधिक प्राप्त करने का रूस यत्न कर रहा है। अत: संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा चीन के कार्य को निन्दित घोषित करा कर कोरिया से चीन को निकालने का यत्न किया गया। वह यत्न पूर्णतया सफल नहीं हुआ। संयुक्त राज्य संघ एक ऐसी संस्था है, जिसमें न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित, सत्य-झूठ एवं हित-अहित का विचार न करके सामयिक शान्ति के लिए प्रयत्न किया जाता है। जब कोरिया से चीन को निकालने में कठिनाई अनुभव हुई तो चीन से सुलह कर ली गई। उत्तरी कोरिया चीन के प्रभावाधीन रहा और दक्षिणी कोरिया प्रजातन्त्रात्मक पद्धति वाला देश बना दिया गया।

इसी प्रकार रूस ने यूरोप में भी पांव पसारने आरम्भ कर दिये। बर्लिन आधा तो रूस के प्रभावाधीन रखा गया और आधा पश्चिमी जर्मनी के। बर्लिन की यह बँटवारे की स्थिति एक समझौते का परिणाम है। बर्लिन को रूस की सेनाओं ने विजय किया था, परन्तु बर्लिन के दक्षिण में बहुत सा क्षेत्र दूर पूर्व तक अमरीका के अधीन हो गया था। अंग्रेजी सेनायें बढ़ती हुई बर्लिन पर रूसियों से पहले पहुंच सकती थीं, परन्तु समझौते के अनुसार बढ़ती हुई अंग्रेजी सेनाओं को रोक दिया गया, जिससे बर्लिन पर रूसी अधिकार हो सके। रूसियों ने बर्लिन पर अधिकार करते ही बर्लिन से पश्चिम की ओर का क्षेत्र भी अपने अधीन करना आरम्भ कर दिया। इस पर स्थिति ऐसी हो गई थी कि द्वितीय विश्व-युद्ध में विजयी मित्र-राष्ट्र परस्पर लड़ने वाले प्रतीत होने लगे थे। इस कारण परस्पर संधि हुई। उस संधि के अनुसार अमरीका ने

बर्लिन के दक्षिण का बहुत सा क्षेत्र रूस को दे दिया और उसके प्रतिकार में आधा बर्लिन पश्चिमी जर्मनी के साथ मिला दिया गया। इस पर भी पश्चिमी बर्लिन और पश्चिमी जर्मनी के भीतर लगभग डेढ़ सौ मील का क्षेत्र रूसियों के हाथ में है और पश्चिमी जर्मनी से बर्लिन को जाने के लिए लगभग दो मील चौड़ा मार्ग दिया गया। इस मार्ग के दोनों ओर का क्षेत्र रूस के अधीन है।

रूस ने अपने अधीन पूर्वी जर्मनी राज्य को प्रोत्साहित कर पश्चिमी जर्मनी को पश्चिमी बर्लिन से संयुक्त करने के लिए निर्धारित मार्ग को कई बार अवरुद्ध करने का यत्न किया। इस पर पश्चिमी यूरोप के देशों को रूस से भय उत्पन्न हुआ और उन्होंने परस्पर मिलकर एक संधि की, जिसका नाम 'नाटो' है। अर्थात् (नार्थ एटलाण्टिक आर्गेनाइजेशन) उत्तरी एटलाण्टिक सागर के देशों का संगठन। इटली, टर्की और यूनान ये एटलाण्टिक देश नहीं हैं। इस पर भी रूस के कुचक्र से बचने के लिए ये 'नाटो' सन्धि में सम्मिलित हो गये। इस सन्धि के विरोध में रूस ने अपने प्रभावाधीन देशों के साथ वारसा में बैठकर सन्धि की। वारसा पोलैण्ड की राजधानी है। यह सन्धि वारसा-पैक्ट के नाम से विख्यात है।

रूस ने अपने प्रभावाधीन देशों में इतना प्रबल अधिकार जमा रखा है कि यहां पर राज्य-पद्धति में किसी प्रकार का भी परिवर्तन नहीं हो सकता। रूसी राज्य-पद्धति की नकल पर ही इन सब राज्यों में राज्य चलता है। वारसा-पैक्ट के देशों में रूस, पोलैण्ड, चैकोस्लोवाकिया, पूर्वी-जर्मनी, बलगारिया, रूमानियां तथा अल्बानियां देश हैं।

सन् १९५६ में हंगरी में क्रांति हो गई और वहां पर प्रजातन्त्रात्मक पद्धति का राज्य स्थापित करने की घोषणा कर दी गई। इस पर रूस ने अपनी सेना वहां भेज कर उन सब लोगों को, जिन्होंने क्रांति की थी, मरवा डाला और वहां पर पुनः बोलशिविक पद्धति का राज्य स्थापित कर दिया। रूस की सेना ने, ऐसा कहा जाता है कि, इस अभियान में ५६ हजार हंगरी निवासियों की हत्या की थी। सन् १९६८ में यही बात चैकोस्लोवाकिया में हुई है। वहां के लोग बोलशिविक राज्य-पद्धति को बदल कर प्रजातन्त्रात्मक पद्धति का राज्य स्थापित करने का विचार रखते थे। वे चाहते थे कि राज-नीतिक दल एक से अधिक हो सकते हैं और मतदान का अधिकार सब वयस्क नर-नारियों को हो। रूस ने अपने अधीनस्थ देशों की सेनाओं को साथ लेकर चैकोस्लोवाकिया पर अधिकार जमा लिया और वहां पर पुनः वही बोलशेविक पद्धति का राज्य स्थापित कर दिया।

इसके उपरान्त पूर्वी जर्मनी ने पश्चिमी बर्लिन वालों को कष्ट देना आरम्भ कर दिया। पश्चिमी जर्मनी के राष्ट्रपति का निर्वाचन पश्चिमी बर्लिन में होता रहा है। यद्यपि राज्य-कार्य बॉन में होता है, परन्तु बर्लिन के जर्मनी की प्राचीन राजधानी होने के कारण राष्ट्रपति का निर्वाचन यहां किया जाता रहा है। इस वर्ष मार्च मास में राष्ट्रपति का निर्वाचन होने वाला था और पूर्वी जर्मनी ने घोषणा कर दी कि इस बार वह निर्वाचन पश्चिमी बर्लिन में नहीं होने दिया जायेगा। पश्चिमी जर्मनी हठ कर रहा था कि निर्वाचन बर्लिन में ही होगा। ऐसा प्रतीत होता था कि पश्चिमी जर्मनी और पूर्वी जर्मनी में युद्धारम्भ होने वाला है।

ऐसी स्थिति में अमरीका के राष्ट्रपति निक्सन 'नाटो' के सदस्य देशों में घूम गये। वहां के उच्च राज्याधिकारियों से मिले और परस्पर कुछ बातचीत हुई जो प्रकट नहीं की गई। केवल इतना संकेत मिला है कि 'नाटो' राज्यों में अभी भी बहुत विषयों पर सहमति है। इसका अर्थ यह निकलता है कि यदि पूर्वी जर्मनी और पश्चिमी जर्मनी में युद्धारम्भ हो जाता तो एक ओर नाटो सन्धि के देश होते और दूसरी ओर वारसा सन्धि के और इस युद्ध की लपटें पूर्ण भूमण्डल के देशों को छूतीं।

कदाचित् निक्सन के भ्रमण का यह परिणाम हुआ है कि रूस अभी पश्चिमी बर्लिन पर अधिकार जमाने का विचार छोड़ बैठा है और पश्चिमी जर्मनी के राष्ट्रपति का निर्वाचन पश्चिमी बर्लिन में हो गया है। इन दिनों पूर्वी जर्मनी की सेनाओं ने कई बार बर्लिन के मार्ग को कई-कई घन्टों के लिए रोक दिया, परन्तु भीतर ही भीतर कुछ हुआ है, जिससे मार्ग फिर खुल गया और निर्वाचन निर्विघ्न सम्पन्न हुआ।

कई लोगों का विचार है कि पूर्वी जर्मनी और रूस ने अपने उच्छृंखल व्यवहार का प्रदर्शन इस कारण नहीं किया कि इन्हीं दिनों दूर पूर्व में मन्चूरिया की सीमा पर चीन ने इसी क्षेत्र में घुसकर सैंकड़ों रूसियों की हत्या कर डाली। रूसियों ने चीनियों का मुकाबला किया और एक पर्याप्त संख्या में चीनी भी मारे गये। यह युद्ध कई घण्टे तक जारी रहा। चीनी सम्भवतः अपनी दुर्बलता देखकर लौट गये और चीन तथा रूस के भीतर खिंचाव प्रबल हो गया। इस युद्ध के कारण, कहा जाता है कि रूस ने बर्लिन में युद्ध करना उचित नहीं समझा। यह कहा जाता है कि रूस अपनी दो सीमाओं पर एक

(शेष पृष्ठ २७ पर)

शाश्वत वाणी के प्रबुद्ध पाठकों एवं शुभ चिन्तकों से विशेष निवेदन

१. शाश्वतवाणी का प्रकाशन विगत आठ वर्षों से निरन्तर हो रहा है। हम सगर्व कह सकते हैं कि इस अवधि में हम अपने पथ पर दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ते रहे हैं। विद्वान लेखकों के अनेक लेख भिन्न-भिन्न विषयों पर प्रकाशित हुए हैं और वे अपने-अपने विषय पर अनूठे सिद्ध हुए हैं।

२. इन वर्षों में हमने दो विशेषांक प्रकाशित किये हैं। एक 'शाश्वत समाज शास्त्र' तथा दूसरा 'भारतीय राजनीति विभिन्न कालों में'।

३. कई ग्रन्थ तथा लेख धारावाहिक रूप में भी प्रकाशित हुए हैं। यथा—

(क) हिन्दू-राष्ट्र के सजग साधक साहित्यकार श्री गुरुदत्त द्वारा रचित — धर्म संस्कृति और राज्य, इतिहास में भारतीय परम्परायें, उपनिषद् कथासार, महाभारत की कथायें, श्रीमद् भगवद्गीता आदि आदि।

(ख) वेदों के व्याख्याता, साधक सन्त स्वामी अनिर्वाण जी द्वारा रचित—वेद मीमांसा और दिव्य-जीवन के प्रसंग में।

(ग) प्रख्यात इतिहासज्ञ एवं राजनीति विशारद प्रो० बलराज मधोक की भारतीय राजनीति एवं भारतीय विदेश नीति।

(घ) कम्युनिज्म की कपाल-क्रिया कर्त्ता, प्रमुख इतिहास वेत्ता श्री सीताराम गोयल प्रणीत—कम्युनिज्म तथा स्वदेश-प्रेम, मानदण्ड मीमांसा, तत्त्व-शास्त्र तुलना, भारतीय संस्कृति के सारभूत सिद्धान्त।

(ङ) प्रसिद्ध चिन्तक एवं लेखक श्री रामस्वरूप की कृति, बौद्धमत : हिन्दू धर्म का ही सम्प्रदाय तथा साम्यवादी चीन का भय।

इसके अतिरिक्त भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन में रत, श्री पुरुषोत्तम नागेश ओक, इतिहास और संस्कृति के अनुसंधान में ही अपने जीवन का सन्धान करने वाले स्व० पं० भगवद्दत्त जी, जैन विचारधारा के चिन्तक

श्री अमरचन्द नाहटा, आर्य-समाज के प्रख्यात नेता एवं कुशल आयुर्वेदिक चिकित्सक पं० रामगोपाल शास्त्री, इतिहास सदन के संस्थापक श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार, ईसाई मिशनरियों के कुचक्र के प्रति सजग लेखक श्री ब्रह्मदत्त भारती, इतिहास- लेखक श्री ज्वालाप्रसाद सिंहल आदि आदि तथा नवोदित लेखकों में श्री राजेन्द्रसिंह, श्री निरंजन मुखोपाध्याय, देवतास्वरूप भाई परमानन्द जी के सुयोग्य सुपुत्र भाई महावीर जी, श्री टेकचन्द्र शर्मा आदि आदि अनेक लेखकों की रचनायें पत्रिका में प्रकाशित होती हैं।

वैदिक संस्थान के संस्थापक वेदव्रती स्वामी विद्यानन्द जी विदेह की लेखमाला "अस्तित्व की रक्षा" गत वर्ष से निरन्तर प्रकाशित हो रही है।

४. शाश्वत वाणी शाश्वत संस्कृति परिषद् की पत्रिका है। परिषद् का उद्देश्य है— शाश्वत सत्य का साक्षात्कार करना और उसके सनातनत्व की स्थापना में संलग्न रहना।

५. परिषद् ने पिछले वर्षों में निम्न ग्रन्थ भी प्रकाशित किये हैं– धर्म संस्कृति और राज्य, जवाहरलाल नेहरू एक विवेचनात्मक वृत्त, धर्म तथा समाजवाद, श्रीमद्‌भगवद् गीता एक विवेचना। हाल ही में एक अन्य विवेचनात्मक कृति प्रकाशित हुई है—भारत गांधी नेहरू की छाया में। ये सभी ग्रन्थ विद्वान् पुरुषों द्वारा प्रशंसित हुए हैं और सर्वत्र चर्चा के विषय बने हैं।

६. तदपि बहुत कुछ करना अभी शेष है। परन्तु परिषद् के साधन सीमित हैं और उद्देश्य विस्तृत। हम अपने कार्य की गति बढ़ाना चाहते हैं। परन्तु अब ऐसा प्रतीत हो रहा है कि बिना अपने सहयोगी पाठकों के सक्रिय सहयोग के यह कार्य अति कठिन है। अतः हम कार्य को विस्तार देने के विचार से एक योजना प्रस्तुत कर रहे हैं जो इस प्रकार है—

परिषद् के सहयोगी संरक्षक सदस्य बनाये जाएं। प्रत्येक संरक्षक सदस्य को १०० रुपया शुल्क देना है जो उनकी धरोहर होगी और जब भी वे चाहें अपनी राशि वापिस मंगवा सकेंगे।

संरक्षकों को लाभ—१. प्रत्येक संरक्षक को आयुपर्यन्त या जब तक वे संरक्षक बने रहेंगे पत्रिका निःशुल्क प्राप्त होती रहेगी।

२. परिषद् का प्रत्येक आगामी प्रकाशन संरक्षक सदस्य को बिना मूल्य प्राप्त होगा।

इस चालू वर्ष में परिषद् लगभग २५ रुपये मूल्य के प्रकाशन प्रकाशित करेगी। अतः इस एक वर्ष की अवधि में उनको २५ रुपये (लगभग) मूल्य की

पुस्तकें तथा ५ रुपये वार्षिक मूल्य की पत्रिका, कुल ३० रुपये का लाभ होगा तथा इस प्रकार का लाभ उनको तब तक मिलता रहेगा जब तक वे संरक्षक बने रहेंगे।

३. परिषद् के अब तक प्रकाशित ग्रन्थ संरक्षकों को तीन चौथाई मूल्य पर प्राप्त हो सकेंगे। अब तक ३९ रुपये मूल्य की पुस्तकें छप चुकी हैं। यदि संरक्षक उसको मंगवाना चाहेंगे तो २५ प्रतिशत छूट प्राप्त कर, १० रुपये का लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

४. उनका १०० रुपया उनकी धरोहर है। जब भी वे चाहें, अपना धन वापिस ले सकते हैं। इस प्रकार उनको किसी प्रकार से भी हानि नहीं होगी।

हमें विश्वास है हमारे सहयोगी पाठक हमारे इस आयोजन में सहयोग प्रदान करेंगे और न केवल स्वयं संरक्षक बनेंगे, अपितु अपने मित्रों तथा परिचितों को भी इसके लिए प्रेरित करेंगे।

परिषद् के प्रत्येक संरक्षक का नाम, पता तथा चित्र यदि उनको आपत्ति न होगी तो पत्रिका में प्रकाशित किया जायेगा। अतः अपना धन भेजते समय कृपया अपना परिचय तथा अपना चित्र अवश्य भेजें। धन मनीआर्डर द्वारा अथवा ड्राफ्ट द्वारा 'शाश्वत वाणी' को भेजा जा सकता है।

(पृष्ठ २४ का शेष)

साथ युद्ध करना पसन्द नहीं करता था। इस कारण उसने पश्चिमी जर्मनी के साथ झगड़ा समाप्त कर दिया।

हमारा विचार है कि चीन के साथ रूस के संघर्ष का बर्लिन के मामले पर कोई प्रभाव नहीं है। यदि बर्लिन में युद्ध नहीं हुआ तो वह इस कारण कि पश्चिमी यूरोप के देश अभी तक भी रूस के विरुद्ध लड़ने के लिये सहमत हैं। इस सहमति का प्रदर्शन राष्ट्रपति निक्सन के भ्रमण से प्रकट हुआ है और उसके तुरन्त ही बाद पूर्वी जर्मनी ने धमकियां देनी बन्द कर दी थीं और पश्चिमी जर्मनी के राष्ट्रपति का चुनाव निर्विघ्न हो सका।

राष्ट्रपति निक्सन के भ्रमण के समय कहीं-कहीं कम्युनिस्ट विचार के युवकों ने विरोधी प्रदर्शन किये हैं, परन्तु उन प्रदर्शनों का न तो निक्सन पर किसी प्रकार का प्रभाव पड़ा और न ही पश्चिमी यूरोप के राज्यों पर।

अस्तित्व की रक्षा

श्री विद्यानन्द 'विदेह'

हिन्दुओं की समाज-व्यवस्था सैंकड़ों नहीं, हजारों बरस से नितान्त अस्वाभाविक और सर्वथा जटिल रहती चली आ रही है। हिन्दु जाति के अस्तित्व और सर्वस्व की रक्षा के लिए उसे बहुत सरल और स्वाभाविक बनाना होगा। जो वर्ण और आश्रम हमारी समाज-व्यवस्था के महा-वरदान थे, वे ही आज भयंकर अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं।

वैदिक वर्ण-व्यवस्था जितनी निरापद और स्वाभाविक है, स्मृतिकारों ने उसे उतना ही सापद और कृत्रिम बनाकर रख दिया। वेद में शूद्र' शब्द का अर्थ अपठित, मूर्ख और अद्विज कदापि नहीं है, न ही वेद में 'द्विज' शब्द का प्रयोग केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए हुआ है। वेद ने तो 'स्वाय-अरणाय' सबके लिए द्विजत्व का अधिकार दिया है। माता के गर्भ से जन्म लेने पर प्रत्येक व्यक्ति एकज बनता है। वेद-विद्या के गर्भ से जन्म लेकर विद्वान् बनने पर वह द्विज [द्वि-जन्मा] कहलाता है। वेद के अनुसार ब्राह्मण ज्ञानप्रदाता है, क्षत्रिय रणप्रदाता है, वैश्य धनप्रदाता है, शूद्र वासोदा [वास-प्रदाता] है। मानव समाज के वास—निवास के लिए जो कुछ आवश्यक है, उसके निर्माता का नाम शूद्र है। गृह, कोठी, बंगला, महल, भवन, पुल, सड़क, रेल, यान, हस्पताल, ऑफिस, छावनी आदि का निर्माण करना शूद्र वर्ग का कार्य है। इजीनियर, ड्राफ्ट्समैन, आर्कीटेक्ट, कारीगर, मजदूर सब शूद्र हैं और सम्पूज्य हैं। शूद्र ही श्री [शोभा] का सम्पादक है। शूद्र श्री का पुत्र है।

ब्राह्मण शर्मा है, क्षत्रिय वर्मा है, वैश्य श्रेष्ठी है और शूद्र श्री है। किन्तु श्री का पद इतना सुन्दर और शोभनीय है कि सभी वर्ग के देव और देवियां अपने आपको श्री, श्रीमान् और श्रीमती कहलाना पसन्द करते हैं। प्रत्येक मनुष्य के दाहिने तलुए में पद्म और बायें तलुए में श्री होती है। पद्म और श्री के कारण ही पगों का स्पर्श और पूजन किया जाता है। मानव-समाज में शूद्र ही पगस्थानीय है, पद्म और श्री का अवतार है। शूद्र शब्द का अर्थ है श्रम करने वाला। श्रम से ही पद्म और श्री पदों की प्रतिष्ठा है '**श्रमेण तपसा सृष्टा।**'

श्रमरूपी तप से ही रचना और निर्माण होता है। शूद्र समाज की श्री—शोभा है। वैश्य समाज का पूषा है। क्षत्रिय समाज का रक्षक है। ब्राह्मण समाज का प्रचेता है। चारों ही वर्ण समान सम्पूज्य और समाकरणीय हैं। चारों ही वर्णों के कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिए विद्या और वेद समानरूपेण सहायक हैं। चारों ही वर्णों को द्विजत्व का अधिकार है।

वर्ण-व्यवस्था को उसके अपने प्राकृत रूप में प्रस्थापित करना ही होगा। अन्यथा हिन्दु-समाज के विगठित रूप को सुगठित न किया जा सकेगा। वर्ण मानव-समाज की एक स्वाभाविक व्यवस्था है। सभी देशों में वर्ण-व्यवस्था अपने स्वाभाविक रूप में विद्यमान है। रूस जैसे अधार्मिक और नास्तिक देश में भी चारों वर्ण मौजूद हैं। शिक्षा जिनका व्यवसाय है वे ब्राह्मण हैं। रक्षा और व्यवस्था जिनका व्यवसाय है वे क्षत्रिय हैं। व्यापार जिनका व्यवसाय है वे वैश्य हैं। निर्माण और उत्पादन जिनका व्यवसाय है वे शूद्र हैं। पर कहलाते वहां सब मिस्टर—श्री और मिसेज—श्रीमती हैं। आदर भी सबका समान है। वहां वर्णों में परस्पर रोटी-बेटी के मामलों में कोई रोक, संकोच या प्रतिबन्ध नहीं है। एक भारत ही है जहां वर्ण–व्यवस्था अपने स्वाभाविक रूप में न होकर विकृत रूप में है। इस विकृति से ही हमारा देश विभिन्न भागों में विभक्त हुआ और उसी के परिणामस्वरूप करोड़ों हिन्दु विधर्मी बने और बन रहे हैं, देश खण्ड-खण्ड हुआ और हो रहा है। **हिन्दु जाति के संगठन तथा उत्थान के लिए यह परम आवश्यक है कि उसकी वर्णव्यवस्था अन्य देशों की तरह व्यवसायात्मक हो और चारों ही वर्णों की सामाजिक स्थिति समस्तरहो।**

आश्रम-व्यवस्था इस देश की एक अपनी ही वस्तु है। इसका आधार श्रम और साधना है। 'आश्रम' शब्द का अर्थ ही है घोर श्रम। ब्रह्मचर्याश्रम तथा गृहस्थाश्रम के द्वार सभी के लिए खुले हैं। किन्तु वानप्रस्थाश्रम तथा सन्यास–श्रम केवल उन्हीं के लिए विहित होने चाहियें जो सात्त्विक, साधनाशील, परोपकारी तथा समाजसेवी हों। आश्रमव्यवस्था जब हमारे देश में अपने वास्तविक स्वरूप में थी, तब ही हम विश्व का आर्यकरण कर पाये थे। और जब यह पुनः अपने स्वाभाविक रूप में स्थित होगी, तब ही हम फिर विश्व का आर्यकरण कर सकेंगे। आयु से आश्रम के रिवाज ने हिन्दु जाति और हिन्दु राष्ट्र का सर्वनाश कर दिया है। वानप्रस्थ तथा सन्यास—इन दो आश्रमों में केवल उन्हीं का प्रवेश होना चाहिए जो जौहर की भावना से भर–पूर भरे हों। वानप्रस्थाश्रम की दीक्षा केवल उन्हीं स्वस्थ और सदाचारी व्यक्तियों

(शेष पृष्ठ ३३ पर)

समाचार समीक्षा

गालिब बुरा न मान गर वाइज़ बुरा कहे !

पिछले कुछ महीनों से देश भर में गालिब मृत्यु शताब्दि की धूम मची हुई है। यत्र-तत्र सर्वत्र गालिब की चर्चा और उसके उद्धरण सुनने को मिलते रहते हैं। दिवंगत पूर्वजों का श्राद्ध करना भारत की प्राचीन परम्परा रही है। होना भी चाहिए। किन्तु परम्परा का निर्वाह तो परम्परा के तौर पर ही होना चाहिए। बाईस वर्षों के इस धर्म निरपेक्ष राज्य में क्या गालिब ही एक ऐसा पूर्वज हमारी कांग्रेस सरकार को स्मरण रहा ? हमें इसमें रहस्य प्रतीत होता है। मुस्लिम साम्प्रदायिकता को उभारने का रहस्य।

अन्यथा गालिब साहब (खुदा उनको जन्नत बख्शे) उस युग में पैदा हुए, जिए, और शाइरी की जबकि इस देश में अंग्रेजों की जमती जड़ों में तेल अथवा मट्ठा डालने का काम जोरों पर था। गालिब का जन्म १७९७ में हुआ। स्पष्ट है कि १८५७ के सैनिक विद्रोह के समय उनकी आयु ६० वर्ष के लगभग होगी। १८५७ के सैनिक विद्रोह के बाद भी वे १२ वर्ष तक जीवित रहे। इतिहास का वह क्रान्तिकारी काल गालिब के सामने से उनकी परिपक्व आयु में बीता। किन्तु मजाल है कि उसकी स्मृति सराहना, सहयोग अथवा सद्भावना में उनके मुख से एक बोल भी निकला हो ! इतना ही नहीं उनकी कोई भी कृति उठा कर देख ली जाय, किसी में भी कहीं कोई बात देशभक्ति की ओर संकेत नहीं कर सकती। सम्भवतया गालिब ने भारत को कभी अपना देश नहीं माना। कभी उसने स्वदेश के गीत नहीं गाये कभी भी देशवासियों की दशा पर दया नहीं दिखाई।

इतना ही नहीं, जो अंग्रेज उन दिनों भारत में कत्ल आम मचा रहे थे, मुगल सल्तनत को मटियामेट कर रहे थे, जिनके कारण गालिब को स्वयं भी फाकामस्ती में दिन गुजारने पड़ रहे थे उन अंग्रेजों की भर्त्सना करना तो दूर, अपितु गालिब ने उनकी वैज्ञानिक उन्नति के गीत गुनगुनाने आरंभ कर दिये। नेशनल बुकट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'दीवाने गालिब' की भूमिका में सरदार जाफरी ने लिखा है कि गालिब साहब आइने-अकबरी की समीक्षा करते हुए लिखते हैं, "आंखें खोल कर साहिबान–ए–इंग्लिस्तान को देखो कि वे अपने कला-कौशल में अगलों से आगे बढ़ गये हैं।

शाइरी करके फाकामस्ती में दिन गुजारने वाले शाइर इस धरती पर और विशेषतया इस देश में एक नहीं अनेक उत्पन्न हो चुके हैं। इतना ही नहीं

गालिब से उत्कृष्ट साहित्य भी उन्होंने सृजन किया होगा, किन्तु अपनी फाका-मस्ती का बखान कदाचित् क्वचित ही किया हो। पर क्या हमारी सैक्यूलर सरकार उनकी स्मृति को भी सींचने की सोचती है ? नहीं। तो फिर कर्ज के मय के नशे में मदमस्त, मरते दम तक अपना ही रोना रोने वाले और मरते समय भी जिसको एक ही गम था कि उसके बाद उसकी विधवा पत्नी का क्या होगा, ऐसे व्यक्ति के नाम पर राष्ट्र के गाढ़े खून-पसीने की कमाई को गंवाने में सरकार का आशय क्या है ?

मुस्लिम साम्प्रदायिकता की जड़ें गहरी हो चुकी हैं और कांग्रेस उनको सींचने में राष्ट्र का सर्वस्व निछावर करने पर उतारू है, जिससे कि उसका सिंहासन सुरक्षित रह सके। हिन्दुओ चेतो !

आदर्श और अनुशासन हीन कांग्रेस :

१३ मार्च '६६ को रोटरी क्लब में भाषण देते हुए लोक सभा के वर्तमान अध्यक्ष तथा भूतपूर्व कांग्रेसी नेता श्री नीलम संजीव रेड्डी ने कहा "...कांग्रेसी शासन देश को नेतृत्व देने में असफल रहा है। भारत में एक सरकार है अवश्य, बस इसके अतिरिक्त मुझसे कुछ न पूछा जाय। ...मेरा तो यह स्पष्ट मत है कि आज के नेता—कांग्रेस में या उसके बाहर—प्रादेशिक नेताओं से अधिक हैसियत के नहीं हैं। ....जब तक कोई नया नेतृत्व उत्पन्न नहीं होता, मुझे तो देश में संसदीय गणतन्त्र के बचने की आशा नहीं दिखाई देती।

चूंकि यह प्रश्न केवल कांग्रेस का ही नहीं देश और जनतन्त्र के भविष्य का भी है, इस लिए हर समझदार व्यक्ति को इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये। यह स्पष्ट है कि कांग्रेस देश को नेतृत्व नहीं दे सकी। और आज जो सरकार है, वह दुर्बल, अयोग्य और भ्रष्ट है। कांग्रेस का नेतृत्व जिस प्रकार बंटा हुआ है उस फूट के कारण ही कांग्रेस में ऐसी शक्तियां उभर रही हैं। एक ऐसा व्यक्ति जो कांग्रेस कार्यकारिणी, संसदीय कार्यकारिणी और प्रधानमन्त्री की आज्ञा का उल्लघंन करता है, वह व्यक्ति यदि अपने आप को संस्था का एक व्यक्ति माने तो इससे बड़ी विडम्बना कांग्रेस के लिए और क्या हो सकती है ! हमारा संकेत हाल में गठित चन्द्रशेखर काण्ड की ओर है। प्रधानमंत्री ने स्वयं कहा है कि उन्होंने कई बार चन्द्रशेखर से कहा है कि जिन शब्दों द्वारा उन्होंने मोरारजी देसाई पर आक्षेप किये हैं, उनको वापस लें। परन्तु चन्द्रशेखर ने खुले आम इसकी अवहेलना की

सच तो यह है कि किसी भी दल में एकता किसी निश्चित लक्ष्य या

आदर्श को लेकर हुआ करती है। पर दुर्भाग्यवश आज कांग्रेस दल या शासन का न तो कोई सुस्पष्ट लक्ष्य है और न देश के हित की उसे सच्चीचिन्ता ही। आज कांग्रेस की सारी भीतरी कशमकश पदों और प्रभुता के लिये है। यह तो अभी निकट अतीत की ही बात है कि दल ने अपने कई क्षुब्ध और कड़ी आलोचना करने वालों को मन्त्री पद देकर चुप कर दिया है। यही बात आज बढ़कर व्यक्तियों की जगह गुटों तक पहुंच गई है। कौन किस गुट का है और किस गुट के हाथों में शासन को बागडोर रहे, तब अधिक अच्छा हो, यही बात आजकल देश भर में चर्चा और विवेचना का मुख्य विषय बनी हुई है। इन्दिरा का समर्थन और प्रशंसा प्रगतिशीलता के नाम पर हो रही है तो मोरारजी भाई की निन्दा और विरोध दक्षिणपंथी होने के नाते।

इस दृष्टि से क्या चन्द्रशेखर का 'अपराध' उस अकेले व्यक्ति का ही है और क्या उस अकेले व्यक्ति के खिलाफ अनुशासन की कार्यवाही कर इस व्यापक अनुशासन-हीनता को जड़मूल से मिटाया जा सकताहै ? इन पंक्तियों के लिखे जाने तक चन्द्रशेखर काण्ड की स्थिति यही थी कि "प्रधानमन्त्री जी निर्णय करें।" इस अवसर पर हमें निम्न पंक्तियां स्मरण हो आती है :—

वही कातिल, वही मुन्सिफ, वही शाहिद ठहरें।
अकरवा मेरे करें खून का दावा किस पर ?

कांग्रेस दल कभी भी एक संगठित दल के रूप में नहीं रहा। सैद्धान्तिक स्तर पर तो कांग्रेस सदैव भानुमती का कुनबा ही रहा है। भयंकर साम्प्रदायिकता से लेकर घातक अराष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता तक उसके मातृ-स्तन का पान करती हैं। गुटों की धमाचौकड़ी से कांग्रेस का मंच कभी वंचित नहीं रहा। मगर आज कांग्रेस के मंच पर जो कुछ हो रहा है, वह वास्तव में अभूतपूर्व है। स्पर्द्धा और आलोचना का स्थान आज कीचड़ उछालने ने ले लिया है। सिद्धान्तों, नीतियों और रीतियों की कसौटी पर चढ़ाने के बजाय आज कांग्रेस के सदस्य व्यक्तित्व की कपालक्रिया पर उतर आये हैं। यह आत्मघातक-दिग्भ्रान्ति कांग्रेस को छिन्न-भिन्न कर देगी।

कांग्रेस तो आज नहीं कल टूट ही जावेगी। किन्तु उसका विकल्प क्या है ? क्या इस ओर भी देशवासियों, देश के हितचिन्तकों का ध्यान जाता है ? कौन ऐसा दल अथवा व्यक्ति है जो इस दुरवस्था से देश को उभार कर उचित दिशा प्रदान कर सकेगा ?

पाकिस्तान का अन्धकारमय भविष्य !

पाकिस्तान की जनता अपने देश में जिस लोकतन्त्रीय शासन को लाने के लिये त्याग और कुर्बानियां चढ़ा रही थी, परिणाम में उसे अपने राष्ट्रपति

की कर्तव्यच्युति के कारण सैनिक प्रशासन मिला है। यों तो जनरल याहिया खान ने भी शान्ति स्थापना के बाद देश का शासन जनता के प्रतिनिधियों को सौंपने की घोषणा की है। किन्तु ऐसी घोषणा फील्ड मार्शल अयूब खां ने भी दस वर्ष पूर्व मार्शल-लॉ प्रशासक की हैसियत से ही की थी।

दस वर्ष पूर्व पाकिस्तान में सैनिक प्रशासन इसलिये लोकमान्य हो गया था कि जनता राजनीतिक नेताओं की बदनीयती और बेईमानी से तंग आ चुकी थी। सर फिरोज खां नून की सरकार स्वार्थान्ध और दल-बदलुओं का जनशोषक अड्डा बन गई थी। आज वस्तुस्थिति बिल्कुल भिन्न है। जनता आज फौजी शासन के खिलाफ विद्रोह कर रही है। अतः जनरल याहिया खां को यथाशीघ्र पाकिस्तान में लोकतन्त्रीय चुनावों का आयोजन करना होगा।

जिस देश में मार्शल अयूब का सैनिक प्रशासन विफल हो गया, वहां जनरल याहिया खां का सैनिक प्रशासन किस प्रकार सफल हो सकेगा ?

(पृष्ठ २९ का शेष)

को दी जाये जो दो समय के भोजन और दो वस्त्रों से अपनी गुजर करके निश्शुल्क विद्यादान तथा समाजसेवा में निरत रहें। सन्यास की दीक्षा भी केवल उन्हीं सक्षम और साधनाशील व्यक्तियों को दी जाये, जिनकी साध हो वैदिक संस्कृति से दीक्षित करके विश्व का आर्यकरण करना। इन दो विरक्त आश्रमों की अन्ध परम्परा ने हिन्दु जाति की जो अपार क्षति की है, उसके विचार से किसी भी विचारशील हिन्दु का सिर चकराने लगेगा।

और यह भी ध्रुव सत्य है कि जब तक लाख की संख्या में सच्चे वान-प्रस्थी और सैकड़ों की संख्या में अच्छे सन्यासी इस जाति को उपलब्ध न होंगे, तब तक हिन्दुसमाज का न वास्तविक उत्थान हो पायेगा, न हिन्दु राष्ट्र अजेय और अदम्य बन पायेगा। हिन्दु जाति में जितने भी स्वस्थ, स्वच्छ, सक्षम और साधनाशील देव-देवियां ऐसे हैं जो गृहस्थ की जिम्मेदारियों से मुक्त हैं या मुक्त हो सकते हैं, वे ईमानदारी के साथ अपनी योग्यता और रुचि के अनुसार वान-प्रस्थ या सन्यास की दीक्षा लें, कमर कस कर कार्यक्षेत्र में उतरें और वह करें जिसकी आज मातृभूमि पुकार कर रही है। मृत्यु सभी को एक दिन अपने परिवारों, परिजनों तथा परिग्रहों से पृथक कर देगी। वे धन्य होंगे जो बिगड़ी को बनाने, स्वदेश तथा स्वराष्ट्र को सजाने और स्वधर्म को व्यापने के लिए स्वेच्छा से स्व सर्वस्व का त्याग कर साधना में जुट जायेंगे। देश और विश्व को आवश्यकता है उन तपोधन वानप्रस्थियों तथा सन्यासियों की, जो उबलते हुए ज्वालामुखियों और उमड़ते हुए तूफानों में जूझकर देश, जाति और धर्म की रक्षा तथा संव्याप्ति करें।

ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर और उनका काल

श्री राजेन्द्रसिंह

(प्रस्तुत लेख में विद्वान् लेखक ने ज्योतिषाचार्य वराह मिहिर के काल के प्रचलित विवाद के विषय में अपनी स्थापना प्रस्तुत की है। पत्रिका के अगले अंक में इन्हीं की लेखनी से निस्सृत हो रहे हैं विक्रमी सम्वत् के प्रवर्तक सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य विषयक विचार। —सम्पादक

लगभग दो सहस्र वर्षों की विदेशी दासता और पारस्परिक असम्पर्क रहने के कारण भारतीय इतिहास में अनेक मूलभूत, भ्रान्तियों ने घर कर लिया है। इसके अतिरिक्त भारतीय धर्म, संस्कृति, सभ्यता परम्पराओं और इतिहास लिखने की प्राचीन भारतीय शैली से सर्वथा अनभिज्ञ तथा पक्षपात के पूर्वाग्रहों से ग्रसित पाश्चात्य विद्वानों के कुप्रयास और दुष्प्रचार के माध्यम से इन भ्रान्तियों ने और और अधिक उग्र रूप धारण कर लिया है। इस कुप्रयास ने भ्रान्ति रूपी अग्नि पर घी का कार्य किया है। इस प्रकार भ्रान्तियों की एक शृंखला सी बन गई है। इन्हीं अनेक भ्रान्तियों में से एक है—ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर काल के विषय में।

ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर आदित्यदास नामक ब्राह्मण के पुत्र थे। वे अवन्ति में निवास करते थे। भगवान् सूर्य से इन्हें वर प्राप्त हुआ था। उन्हीं के प्रसाद से वराहमिहिर को बोध हुआ था। अन्तरिक्षस्थ मुनियों (सूर्य चन्द्रादि लोकों) की गति का उन्होंने सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया था। इसी में उनकी रुचि थी।

उक्त तथ्यों पर बृहज्जातकके उपसंहाराध्याय के निम्न श्लोक से प्रकाश पड़ता है—

आदित्यदासतनयस्तदावाप्तबोधः कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः।
आवन्तिके मुनिमतान्यवलोक्यसम्यग्घोराः वराहमिहिरो रुचिरां चकार॥

भगवान् सूर्य से वर प्राप्त होने का अभिप्राय यह है कि वराहमिहिर को सौर-मण्डल की सम्पूर्ण गतियों और घटनाओं का पूर्ण ज्ञान था। इसी सन्दर्भ में कुतूहल मञ्जरी के एक श्लोकांश में लिखा है—

आदित्यदासादभूद्वेदाङ्गे निपुणो वराहमिहिरो विप्रो रवेः आशीर्भिः ॥

अर्थात् आदित्यदास के पुत्र वराहमिहिर वेद-वेदाङ्गों में पारङ्गत हुए सूर्य के आशीर्वाद से। वे ब्राह्मण थे।

वेद-वेदांगों के ज्ञाता और ज्योतिर्विज्ञान के महान्-आचार्य वराहमिहिर को ईसा की छठी शताब्दी का माना जाता है।

महाकवि कालिदास अपने ज्योर्विदाभरण नामक ज्योतिर्विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थ के शेषाध्याय में लिखते हैं—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशंकुवेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

अर्थात् महाराज विक्रमादित्य की राजसभा धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेतालभट्ट, घटखर्पर, स्वयं कालिदास, वराहमिहिर और वररुचि—इन नवरत्नों से अलंकृत थी।

इसी ग्रन्थ में महाकवि लिखते हैं-

वर्षे सिन्धुदर्शनाम्बरगुणैर्याते कलौ सम्मिते।
मासे माधवसंज्ञिते च विहितो ग्रन्थक्रियोपक्रमः ॥

अर्थात् कलि के ३०६७ वर्ष बीतने पर माधव नामक मास में मैंने (कालिदास ने) यह ग्रन्थ (ज्योतिर्विदाभरण) रचा।

कलियुग का प्रारम्भ ईसा से ३१०२ वर्ष पूर्व माना जाता है। इस प्रकार कालिदास ने अपना ग्रन्थ ईसा से ३४ वर्ष पूर्व रचा था। महाकवि के प्रथम श्लोक से ज्ञात होता है कि वराहमिहिर उनके समकालीन थे। इस मत से वराहमिहिर ईसा से एक शताब्दी पूर्व में सिद्ध होते हैं।

उक्त मत पर अनेक विद्वानों ने मतभिन्नता व्यक्त की है। उनके मतभेदों का आधार निम्न है।

खण्डखाद्य की आमराज टीका में लिखा है-

नवाधिक पञ्चशतसंख्यशाके वराहमिहिराचार्यो दिवंगतः।

अर्थात् ५०९ शक में आचार्य वराहमिहिर दिवंगत हुए।

विद्वानों के मत के अनुसार शक सम्वत् का आरम्भ ७८ ईसवी में हुआ था। तदनुसार वराहमिहिर का देहावसान ईसा से ५८७ वर्ष पश्चात् अर्थात् ईसा की छठी शताब्दी में हुआ था।

इस मत के मानने वाले विद्वानों का कथन है कि अमरसिंह ने ४२२ शक अर्थात् ५०० ईसवी में बौद्ध गया का मन्दिर बनवाया था। कालिदास के

प्रमाण से अमरसिंह वराहमिहिर के समकालीन थे । अतः वराहमिहिर भी छठी शताब्दी में सिद्ध होते हैं ।

अब चूंकि आमराज की टीका और अमरसिंह की गणना की संगति स्थापित हो जाती है, इस कारण वराहमिहिर को छठी शताब्दी में मान लिया गया है । परन्तु इस मान्यता में कालिदास का ग्रन्थ रुकावट डालता है । इस समस्या को कैसे सुलझाया जाय ? इसका हल विद्वानों ने निकाला है । तदनुसार कालिदास के ग्रन्थ को ही कूट अर्थात् जाली घोषित कर दिया गया है ।

प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् स्वर्गीय श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित (मराठी विद्वान्) ने ज्योतिर्विदाभरण को उसमें लिखे निम्न शब्दों के कारण कूट ग्रन्थ बतलाया है—

शाकः शराम्भोधियुगो ४४५ नितो हृतो मानं
खतर्कैरयनांशकाः स्युः ॥
मत्वा वराहमिहिरादिमितैः ।

इसमें शक संवत और बराहमिहिर को स्मरण किया गया है । इस परिपाटी के विद्वानों का कथन है कि पूर्वोद्धृत आमराज की टीका और अमरसिंह के वुद्ध गयाके मन्दिर के निर्माणकालानुसार वराहमिहिर छठी शताब्दी में सिद्ध होते हैं । वराहमिहिर और शक संवत का उल्लेख ज्योतिर्विदाभरण में आया है । इस कारण ज्योतिर्विदाभरण नामक ग्रन्थ ईसा पूर्व की कृति नहीं है । दूसरी ओर उसी ग्रन्थ में यह लिखा है कि यह ग्रंथ ईसा से ३४ वर्ष पूर्व रचा गया । इस प्रकार एक ही ग्रंथ में परस्पर विरोधाभास है । अतः यह ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं ।

· इस प्रकार विद्वानों के उक्तमतानुसार वराहमिहिर ईसा की छठी शताब्दी में हुए थे । वराहमिहिर को ईसा पूर्व सिद्ध करने वाले महाकवि कालिदास के ग्रन्थ को इन विद्वानों ने कूट बताया है ।

इसके विपरीत अन्य अनेकों प्रमाणों से सिद्ध होता है कि वराहमिहिर ईसा पूर्व विद्यमान थे । उन प्रमाणों के अर्थ लगाने से पूर्व यह जानना अत्यावश्यक है कि कलियुग का आरम्भ कब हुआ था, क्योंकि उन प्रमाणों का सम्बन्ध कलियुग के प्रवर्त्तन से हैं ।

वायु पुराण ९९।४२८ में लिखा है—

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने ।
प्रतिपन्नं कलियुगं तस्य संख्यां निबोध मे ॥

विष्णु पुराण ४।२४।११३ में लिखा है—

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि ।
प्रतिपन्नं कलियुगं तस्य संख्यां निबोध मे ।।

यही बात विष्णु पुराण ४।२४।१०६ में इस प्रकार लिखी है :—

यावत्स पादपद्माभ्यां पस्पर्शेमां वसुन्धराम् ।
तावत्पृथ्वीपरिष्वङ्गे समर्थो नाभवत्कलिः ।।

अर्थात् जिस दिन योगेश्वर श्रीकृष्ण का देहावसान हुआ, उसी दिन कलियुग का प्रारम्भ हुआ ।

इसके विपरीत महाकवि कल्हण अपने ग्रन्थ राजतरङ्गिणी १।४६, ५१ में लिखते हैं—

भारतं द्वापरान्तेभूद्वार्ययेति विमोहिताः ।
केचिदेतां मृषा तेषां कालसंख्यां प्रचक्रिरे ।।
शतेषु षट्सु सार्धेसु व्यधिकेषु च भूतले ।
कलेर्गतेषु वर्षाणामभूवन्कुरुपाण्डवाः ।।

अर्थात् महाभारत युद्ध द्वापर के अन्त में माना जाता है । यह सब भ्रम है । कलियुग के ६५३ वर्ष व्यतीत होने पर महाभारत युद्ध हुआ ।

राजतरङ्गिणी के रचयिता कल्हण को यहां भ्रांति हुई है । महाभारत युद्ध कलियुग के पूर्व हुआ था । इस सन्दर्भ में महाभारत की अन्तःसाक्षी इस प्रकार है—

अन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत् ।
समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ।।

महाभारत आदिपर्व २।१३

द्वापरस्य कलेश्चैव सन्धौ पार्यवसानिके ।
प्रादुर्भावः कंसहंतोर्मथुरायां भविष्यति ।।

शान्तिपर्व ३३९।८९, ९०

(गीता प्रेस, गोरखपुर संस्करण)

इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि महाभारत युद्ध कलि और द्वापर के सन्धि काल में हुआ था । पूर्वोद्धृत पुराणों के पाठों से भी यही सिद्ध होता है ।

कलियुग के प्रारम्भिक काल के विषय में यूरोप के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् बेली लिखते हैं—

According to the astronomical calculation of the Hindus, the present period of the world, Kaliyuga, commenced 3,102 years before the birth of Christ on the 20th February at 2 hours 27 minutes and 30 seconds................ The calculation of the Brahmins is so exactly confirmed by our own astronomical tables that nothing but actual observations could have given so correspondent a result

Theogony of the Hindus P. 32

उक्त प्रभाव से कलियुग का आरम्भ ईसा से ३१०२ वर्ष पूर्व हुआ। चालुक्य कुल के महाराज सत्याश्रम पुलकेशी द्वितीय का बीजापुर में एहोली नामक स्थान के एक जैन मन्दिर में प्राप्त शिलालेख भी इसी तथ्य पर प्रकाश डालता है। उसमें लिखा है—

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु शतेष्वब्देषु पञ्चसु।
पञ्चाशत्सु कलौकाले षट्सु पञ्चशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपिभू भुजाम्॥

(स्व० श्री पं० भगवद्दत्त जी द्वारा रचित भारतवर्ष का बृहद इतिहास द्वितीय भाग पृ० २१२ से उद्धृत)

इससे विदित होता है कि कलि के ३७३५ वर्ष होने पर, जव शक संवत ५५६ वें वर्ष में था, उस समय यह शिलालेख लिखा गया। अर्थात् शक सम्वत से ३१७९ वर्ष पूर्व कलियुग का प्रारंभ हुआ।

शककाल का आरंभ ७८ ई० में हुआ। अतएव ईसवी गणनानुसार कलि का आरंभ ३१०२ वर्ष बैठता है।

यह काल ज्योतिर्विद बेली की गणना से पूर्णतः मेल खाता है। अतः सिद्ध है कि कलि का आरम्भ ईसा से ३१०२ वर्ष पूर्व हुआ था। उससे भी पूर्व महाभारत युद्ध हो चुका था। महाभारत की अन्तःसाक्षी और पुराणों से भी यही सिद्ध होता है। परन्तु कल्हण को भ्रान्ति हुई। यह भ्रान्ति किस प्रकार हुई? यह आगे स्पष्ट होगा।

वराहमिहिर के ईसा पूर्व होने के प्रमाण इस प्रकार हैं—

पंचतंत्र का फारसी में अनुवाद ईसा की ५वीं शताब्दी में हुआ था, यह बात निर्विवाद है। इससे स्पष्ट है कि पंचतंत्र की कथाओं का संकलन कम से कम ४५० ई० से पूर्व तो अवश्य ही हो चुका था। यद्यपि संकलन इससे

भी पूर्व हुआ तथापि न्यूनातिन्यून इतना तो मानना ही पड़ेगा। अतः पंचतन्त्र ४५० ई० के पश्चात् का ग्रन्थ कदापि नहीं है। इसी पंचतन्त्र में वराहमिहिर को इस प्रकार स्मरण किया गया है—

उक्तञ्च वराहमिहिरेण-मित्रभेद तन्त्र श्लोक २२३ से पूर्व।

इसके पश्चात् वराहमिहिर छठी शताब्दी में किसी भी अवस्था में नहीं रखे जा सकते। परन्तु महाकवि कालिदास का ग्रन्थ इस बात का खण्डन करता कहा जाता है। प्रश्न यह है कि इस प्रकार की असंगति क्यों स्थापित हुई है? वास्तविकता क्या है?

वास्तविकता यह है कि भारत में शक नाम से दो संवत प्रचलित थे। एक ईसा पूर्व और दूसरा ७८ ईसवी वाला प्रसिद्ध वर्तमान शक संवत। दो शकों के प्रचलित होने का आभास भास्कराचार्य अपने इसी ग्रन्थ में गोलाध्याय में लिखते है—

रसगुणपूर्णमही समशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः।
रसगुणवर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणी रचितः॥

अर्थात् १०३६ शक में मेरा जन्म हुआ तथा ३६ वर्ष की अवस्था में मैंने सिद्धान्त शिरोमणि को रचा।

७८ ईसवी वाले शक के अनुसार गणना करने पर भास्कराचार्य का जन्म १११४ ईसवी में पड़ता है। परन्तु १०३० ईसवी में भारतवर्ष की यात्रा करने वाला प्रसिद्ध मुसलमान यात्री अल्बेरुनी भास्कराचार्य को अपने यात्रा वृतान्त में स्मरण करता है। इस असंगति को देखकर विद्वानों ने दो भास्कराचार्यों की कल्पना की है। एक अल्बेरुनी के पूर्व और दूसरा उसके अनन्तर। वस्तुतः भास्कराचार्य एक ही था। स्वरचित ग्रन्थ में भास्कराचार्य ने ईसा पूर्व वाले शक से गणना की है। उसी शक से आमराज की टीका और बुध गया के मन्दिर की भी गणना की है। अब ईसा पूर्व वाला शक कब आरम्भ हुआ? इस विषय में आचार्य वराहमिहिर स्वयं लिखते हैं—

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुत शककालस्तस्य राज्ञश्च॥

बृहत्संहिता १३।३

अर्थात् महाराज युधिष्ठिर के काल में मुनियों का मघा में आसन था। उस काल राजा के काल से २५२६ वर्ष पश्चात् शककाल का आरम्भ हुआ।

उक्त श्लोक ज्योतिष विषयक है। अतः यहां पर मुनि और मघा शब्दों का अभिप्राय समझ लेना चाहिए।

मुनि शब्द सप्तर्षियों और मघा शब्द मघा नामक नक्षत्र के लिए यहां पर प्रयुक्त हुआ है।

सप्तर्षियों के युग के विषय में वायुपुराण ११।४१९ में लिखा है—

सप्तविंशति पर्यन्तं कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले।
सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति शत शतम्।
सप्तर्षीणां युग ह्येतद्दित्यया संख्यया स्मृतम्॥

अर्थात् नक्षत्रमण्डल २७ नक्षत्रों का होता है। सप्तर्षि सौ-सौ वर्ष प्रत्येक नक्षत्र में ठहरते हैं। इस प्रकार यह युग २७०० वर्षों का कहा गया है।

पूर्व पृष्ठों में बताया गया है कि महाराज युधिष्ठिर कलि-द्वापर की सन्धि में हुए थे। वराहमिहिर के प्रमाण से उस समय सप्तर्षि मघा नक्षत्र में ठहरे हुए थे। इसी विषय में पुराणों में लिखा है:—

सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारीक्षिते शतम्।

—मत्स्य पुराण २७३|४४|४५
—वायु पुराण ९९|४२२
—ब्रह्माण्ड पुराण ३|७४|२३५

अर्थात् सप्तर्षि परीक्षितके काल में मघा से युक्त थे।

ब्रह्माण्ड पुराण ३|७४|२३० में लिखा है—

सप्तर्षयस्तदा प्राप्ताः पित्र्ये पारीक्षिते शतम्।

अर्थात् परीक्षितके काल में सप्तर्षि पितृ (मघा) को प्राप्त हुए। यहां मघा के स्थान पर पित्र्ये शब्द आया है जो कि मघाका पर्याय है।

वराहमिहिर-रचित बृहत्संहिताकी भट्टोत्पली टीकाके सप्तर्षिचाराध्याय में निम्न श्लोक पठित है—

कलिद्वापरसन्धौ तु स्थितास्ते पितृदैवतम्।
मुनयो धर्मनिरताः प्रजानां पालने रताः॥

अर्थात् कलिद्वापर की सन्धि में सप्तर्षि पितृदेवतामें स्थित थे। ब्रह्माण्ड पुराण ३|७४|२३० के अनुसार पितृ शब्द मघा नक्षत्र के लिए प्रयुक्त हुआ है। अतः यहाँ भी मघा ही लेना चाहिए। यहाँ बताया गया है कि सप्तर्षि मघा नक्षत्र में कलि-द्वापरकी सन्धि में स्थित थे। पुराणों के अनुसार महाराज परीक्षितके काल में सप्तर्षि मघामें स्थित थे। महाभारत की अन्तःसाक्षी के अनुसार महाराज युधिष्ठिर कलि-द्वापर की सन्धि में थे। भगवान् श्रीकृष्ण

कलियुगके प्रथम दिन में दिवंगत हुए। अतः वे भी कलिद्वापर की सन्धि में थे। परीक्षित महाराज युधिष्ठिर का पौत्र था। सप्तर्षि प्रत्येक नक्षत्र में सौ वर्ष वास करते हैं। युधिष्ठिर से परीक्षित तक काल सौ वर्ष से न्यून है ही। अतः परीक्षित के काल में भी सप्तर्षि मघा में स्थित थे, ऐसा मानना सर्वथा युक्तिसंगत है।

वराहमिहिरने मघा शब्द लिखा है। परन्तु साथ ही यह भी कह दिया है कि मघामें मुनियों का आसन था। अतः मुनियों से यहाँ पर अभिप्राय सप्तर्षियों से ही है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि सभी प्रमाण एक ही काल की ओर संकेत कर रहे हैं।

महाराज युधिष्ठिर कलियुग से पूर्व शासन कर रहे थे। श्री टी० एम० नारायण शास्त्री ने उनकी मृत्यु ईसा पूर्व ३०७६ वर्ष मानी है। यदि युधिष्ठिर की मृत्यु से गणना की जाए तो इसी से ३०७६ वर्ष पूर्व से २५१६ वर्ष पश्चात् वराहमिहिर का शक सम्वत् आरम्भ होता है। तदनुसार वराहमिहिर प्रोक्त शक का आरम्भ ईसा से ५५० वर्ष पूर्व हुआ।

'आसन् मघासु' वाले श्लोक को कल्हणने राजतरङ्गिणी १|५६ में उद्धृत किया है। कल्हणने वराहमिहिर के अभिप्राय को नहीं समझा। वराहमिहिर के शक की उसने भूल से ७९ ईसवी वाला शक समझ लिया था। ७८ ईसवी तक कलियुगके ३१७९ वर्ष बनते ही हैं, जैसा कि जैन मन्दिर के शिलालेख से भी विदित होता है। उसमें से यदि वराहमिहिर द्वारा प्रयुक्त २५२६ वर्ष घटा दिये जायें तो ३५३ की संख्या शेष रहती है। यह संख्या ठीक उतनी ही है जितनी कल्हण ने राजतरङ्गिणी १|५१ में दी हैं। अतः स्पष्ट है कि कल्हण से भूल हुई है। इसी भूल के कारणवशात् उसने महाभारत-युद्ध को कलि ६५३ में माना है।

यह निश्चित है कि वराहमिहिर का शक ५५० ईसा पूर्व वाला शक है। अब इसके अनुसार गणना की जाये तो निम्न परिणाम निकलते हैं—

१. आमराज की टीकाके अनुसार वराहमिहिरका देहावसान ५०९ शकमें हुआ था। अर्थात् वराहमिहिर ईसा से ५५०—५०९=४१ वर्ष पूर्व दिवंगत हुए।

२. अमरसिंह ने बुद्धगया का मन्दिर ४२२ शकमें अर्थात् ईसासे ५५०—४२२=१२८ वर्ष पूर्व बनवाया था।

३. भास्कराचार्य १०३६ शक अर्थात् ४८६ ई० में उत्पन्न हुए। इसी कारण अल्बेरुनीने उनको स्मरण किया है।

यह स्पष्ट है कि अमरसिंह ईसासे १२८ वर्ष पूर्व थे और वराहमिरिह ईसासे लगभग ६० वर्ष पूर्व अपना ग्रंथ लिख रहे थे। इस प्रकार इनका काल कालिदास के ग्रन्थ ज्योतिर्विदाभरण के रचना काल (३४ ईसा पूर्व) से पूर्व बैठता है। अतः कालिदास के इस ग्रंथ में अमरसिंह और वराहमिहिरका स्मरण किया जाना पूर्णतः सम्भव है। कालिदास का यह ग्रन्थ जाली नहीं है।

इस प्रकार उपर्युक्त सभी तथ्यों पर विचार करने के उपरान्त यही परिणाम निकलता है कि वराहमिहिर द्वारा निर्दिष्ट शक ईसा पूर्व ५५० वाला शक है। तदनुसार उनका काल ईसा पूर्व सिद्ध होता है। कालिदास के अनुसार वे विक्रमादित्य की राजसभा के नवरत्नों में से एक रत्न थे।

नवरत्नों का सम्बन्ध गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य से माना जाता है। कालिदासादि नवरत्न ईसा से लगभग ६० वर्ष पूर्व सिद्ध होते हैं। तो क्या गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ईसा से पूर्व थे ? प्रसिद्ध विक्रमी सम्वत् का आरम्भ ईसा से ५७ वर्ष पूर्व हुआ है। तो क्या विक्रमी सम्वत् के प्रवर्त्तक महाराज चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ही थे ? इस विषय में अगामी लेखमें लिखा जायेगा।

वस्तुतः आचार्य वराहमिहिर ईसा से पूर्व उत्पन्न हुए थे। उपर्युक्त गणना महाराज युधिष्ठिर के देहावसान से श्री नारायण शास्त्री के अनुसार की गई है। यदि यह गणना कलियुग से आरम्भ की जाए तो वराहमिहिर का काल और अधिक पूर्वकालीन सिद्ध होगा। कलियुग से गणना करना अधिक सङ्गत प्रतीत होता है। कारण यह कि वरामिहिर ने युधिष्ठिर को शासन करते हुए लिखा है। किसी भी ढंग से गणना की जाए, वराहमिहिर का शक, ईसा से ५५० वर्ष पूर्व के पश्चात् का कदापि नहीं हो सकता।

भारतीय संस्कृति परिषद के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं शक्तिपुत्र मुद्रणालय, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

कुछ विशेष प्रचारित साहित्य

भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम पृष्ठ भाग—१	ले० श्री सावरकर		२.५०
भाग—२	"		२.२५
१८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य समर	"		१८.००
हिन्दू पद पादशाही	"		६.५०
हिन्दुत्व	"		३.५०
मोपला (उपन्यास)	"		४.००
गोमान्तक ,,	"		४.००
मोपला-गोमान्तक संयुक्त पाकेट संस्करण	"		३.००
अमर सेनानी सावरकर : जीवन झाँकी	ले० शिवकुमार गोयल		२.५०
भारत की सुरक्षा	श्री बलराज मधोक		४.००
भारत की विदेश नीति एवं राष्ट्रीय समस्याएँ	"		३.००
श्यामाप्रसाद मुखर्जी : जीवनी	"		६.००
हिन्दू राष्ट्र	"		१.५०
अन्तिम यात्रा	श्री गुरुदत्त	सजिल्द	२.००
अन्तिम यात्रा	"	पाकेट संस्करण	१.००
धर्म संस्कृति और राज्य	"		८.००
धर्म तथा समाजवाद	"	सजिल्द संस्करण	६-००
देश की हत्या (उपन्यास)	"	सजिल्द	६.००
देश की हत्या	"	पाकेट संस्करण	३.००
जमाना बदल गया	"	सजिल्द ४ भाग	४०.००
जमाना बदल गया	"	पाकेट ६ भाग	२०.००
मेरे अन्त समय का आश्रय : श्रीमद्भगवद्गीता	भाई परमानन्द		५.००
धरती है बलिदान की	श्री शान्ता कुमार	सजिल्द	३.००
धरती है बलिदान की	"	पाकेट संस्करण	१.००
हिमालय पर लाल छाया	"		१२.००
शक्तिपुत्र शिवाजी	श्री सीताराम गोयल		१.५०

कृपया आर्डर भेजते समय स्पष्ट लिखें कि कौन से संस्करण की पुस्तकें भेजी जाएँ।

भारती साहित्य सदन (बिक्री विभाग)

३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

संरक्षक सदस्य

१ केवल एक सौ रुपये भेजकर परिषद् के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बनकर रहेगा।

संरक्षक सदस्यों को सुविधाएँ—

१ परिषद् के आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। इस वर्ष लगभग २५ रुपये मूल्य की पुस्तकें प्रकाशित की जाएँगी।

२ परिषद् की पत्रिका 'शाश्वत वाणी' आप जब तक सदस्य रहेंगे निःशुल्क प्राप्त कर सकेंगे।

३ परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ आप २५ प्र० श० छूट पर प्राप्त कर सकेंगे।

४ जब भी आप चाहेंगे आप अपनी धरोहर वापिस ले सकेंगे। धन मनीआर्डर द्वारा या शाश्वत वाणी के नाम पर ड्राफ्ट द्वारा भेज सकते हैं। -मंत्री

परिषद के कुछ आगामी प्रकाशन

१ समाजवाद एक विवेचन—ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००
समाजवाद क्या धर्मवाद है? युक्तियुक्त विश्लेषण सहित।

२ गांधी और स्वराज्य—ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००
स्वराज्य प्राप्ति में किसका कितना हाथ रहा है, इसका प्रमाण सहित वर्णन इस पुस्तक में मिलेगा।

प्राप्ति स्थान

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०/९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)

नई दिल्ली—१

मई १९६९ Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri ... १६८६९/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।

ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

१. सम्पादकीय	—	३
२. दृष्टिकोण	—	११
३. अस्तित्व की रक्षा (६)	श्री विद्यानन्द 'विदेह'	१५
४. परिवार नियोजन की सम्भावनाएं	श्री अश्लेष	१७
५. अन्तर्राष्ट्रीय हलचल	श्री आदित्य	१९
६. मगरमच्छ के आंसू	श्री सचदेव	२३
७. बुद्धि का फेर	श्री गुरुदत्त	२७
८. विष रस भरा कनक घट जैसे	श्री अरविन्द	३२
९. समाचार समीक्षा	—	३६

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५० CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar सम्पादक

वार्षिक ५.००

अशोक कौशिक

आपके घर की शोभा आपका पुस्तकालय, आपके पुस्तकालय की शोभा अच्छी पुस्तकें
अपना निजी पुस्तकालय बनाइये।

कुछ विशेष प्रचारित साहित्य

जो प्रत्येक को पढ़ना चाहिये

श्री सावरकर साहित्य

क्रान्ति का नाद	४.५०
शस्त्र और शास्त्र	४.५०
मोपला (उपन्यास)	४.००
गोमान्तक ,,	४.००
मोपला-गोमान्तक संयुक्त पाकेट संस्करण	३.००
अमर सेनानी सावरकर : जीवन झांकी ले० शिवकुमार गोयल	२.५०

श्री बलराज मधोक साहित्य

जीत या हार (उपन्यास) पाकेट	३.००
भारत की सुरक्षा	४.००
भारत की विदेश नीति एवं अन्य समस्याएँ	३.००
श्यामाप्रसाद मुखर्जी : जीवनी	६.००
हिन्दू राष्ट्र	१.५०
India's Foreign Policy & National Affairs	3.00
Indian Nationalism	1.50

श्री गुरुदत्त साहित्य

श्रीमद्भगवद्गीता एक विवेचना	१५.००
महर्षि दयानन्द (किशोरोपयोगी)	२.००
युगपुरुष राम ,,	२.००
अन्तिम यात्रा सजिल्द	२.००

श्री गुरुदत्त साहित्य

अन्तिम यात्रा पाकेट संस्करण	१.००
धर्म संस्कृति और राज्य	८.००
धर्म तथा समाजवाद— सजिल्द संस्करण	६.००
देश की हत्या (उपन्यास) सजिल्द	६.००
देश की हत्या पाकेट संस्करण	३.००
छलना सजिल्द संस्करण	७.००
जमाना बदल गया सजिल्द ४ भाग	४०.००
जमाना बदल गया पाकेट ९ भाग	२०.००

भाई परमानन्द

मेरे अन्त समय का आश्रय : श्रीमद्भगवद्गीता	५.००

श्री शान्ताकुमार

धरती है बलिदान की सजिल्द	३.००
धरती है बलिदान की पाकेट संस्करण	१.००
हिमालय पर लाल छाया	१२.००
हिमालय पर लाल छाया (संक्षिप्त)	३.००

श्री सीताराम गोयल

शक्तिपुत्र शिवाजी	१.५०

भारती साहित्य सदन (बिक्री विभाग)
(मद्रास होटल के नीचे)
३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

पाकेट संस्करण किसी भी प्रकार से संक्षिप्त नहीं हैं। अतः आर्डर भेजते समय स्पष्ट लिखें कि किस संस्करण की पुस्तक भेजी जाये। जिन पुस्तकों के आगे पाकेट संस्करण नहीं लिखा वे सजिल्द संस्करण में ही प्राप्य हैं।

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।

ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक

श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता

प्रो० बलराज मधोक

श्री सीताराम गोयल

सम्पादक

अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय

७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय

३०/९०, कनाट सरकस,

नई दिल्ली-१

फोन : ४७२६७

मूल्य

एक अङ्क रु. ०.५०

वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

भ्रान्त पथ प्रदर्शक और हिन्दू समाज

हिन्दु समाज का यह दुर्भाग्य रहा है कि इसे गलत नेता मिलते रहे हैं। जन साधारण तो, विद्वान और नेतृत्व करने के योग्य लोगों का अनुकरण करता है। स्वयं किसी भी समस्या पर व्यापक रूप में विचार करने में समर्थ नहीं होता। उसकी दृष्टि सदैव एक पक्षीय होती है।

विकसित बुद्धि, विस्तृत ज्ञान तथा सात्त्विक प्रवृत्ति से व्यापक दृष्टि प्राप्त होती है। ये सब बातें जन साधारण को प्राप्त नहीं होतीं। इनके प्राप्त करने के लिये पूर्व-जन्म के श्रेष्ठ कर्म और वर्तमान जन्म में श्रेष्ठ माता-पिता, सम्बन्धी, गुरु तथा अन्यान्य साधन आवश्यक हैं, जो सबको प्राप्त नहीं होते।

विकसित बुद्धि, विस्तृत ज्ञान और श्रेष्ठ प्रवृत्ति के होने पर भी मनुष्य नेता नहीं बन सकता। नेता बनने के लिए एक अन्य गुण की भी आवश्यकता रहती है और वह गुण है राजसी प्रवृत्ति। अभिप्राय यह कि नेता बनने के लिये बुद्धि और ज्ञान के साथ-साथ सात्त्विक तथा राजसी प्रवृत्तियों का समन्वय भी

आवश्यक है। यह सम्मान अति दुर्लभ है। यही कारण है कि वास्तविक कल्याण करने वाले नेता दुर्लभ होते हैं।

हिन्दु समाज का यह दुर्भाग्य रहा है कि राजसी गुण प्राप्त होते ही बिना बुद्धि के विकास तथा विस्तृत ज्ञान प्राप्ति के नेता बनते रहे हैं। इसमें कारण यह रहा है कि ज्ञान और बुद्धि जो धर्म के दस लक्षणों में मुख्य हैं, हेय मान लिये गये हैं। सांसारिक ज्ञान को मनुष्य की उन्नति में बाधक माना गया है। सांसारिक ज्ञान और कर्म परस्पर सम्बन्धित बातें हैं। जब ज्ञान अवांछनीय समझा गया तो कर्म विकृत होने लगे। केवल मात्र पारमार्थिक ज्ञान को ही वांछनीय समझा गया और उस ज्ञान की प्राप्ति में भी बुद्धि का प्रयोग बाधक माना गया। इन बातों ने पूर्ण समाज में सांसारिक ज्ञान के प्रति अरुचि उत्पन्न कर दी और कर्म के निश्चय करने में बुद्धि को अनावश्यक माना गया। यह परम्परा महात्मा बुद्ध के काल से पहले ही समाज में स्थान ग्रहण चुकी थी। पारमार्थिक ज्ञान, सांसारिक ज्ञान और कर्म में समन्वय न रहने से समाज के सम्पूर्ण कार्य अव्यवस्थित हो गये। जिस किसी में भी कुछ करने की सामर्थ्य और प्रवृत्ति हुई, वह नेता बन बैठा। न तो उस नेता को अपने कर्म का बुद्धि से समन्वय करने की आवश्यकता अनुभव हुई और न ही समाज में कोई व्यक्ति ऐसे व्यक्ति पर नियंत्रण रखने की सामर्थ्य बना सका। परिणाम स्वरूप वाम-मार्ग की उत्पत्ति हुई। वाम-मार्ग का प्रतिकार जैन धर्म और बौद्ध धर्म हुए। बौद्ध धर्म के विरोध में वैष्णव मत का विचार किया गया। वैष्णव और बौद्धों का समन्वय महायान में हुआ। इसका विरोध शंकर के अद्वैतवाद में हुआ। शंकर के अद्वैतवाद का खण्डन विशिष्टाद्वैतवाद ने किया। इसके उपरान्त अनेकानेक सन्त, साधु, योगी और गुरु उत्पन्न हो गये। सब अपनी-अपनी ढपली बजाते रहे, परन्तु किसी में भी यह सामर्थ्य नहीं हुई कि राजसी प्रवृत्ति वालों पर नियन्त्रण रख सकें।

ये साधु और महात्मा भी एक प्रकार के राजसी प्रवृत्ति वाले ही थे। ये अपने शिष्यों को कर्म करने के लिए कहते थे, अर्थात् अपने को ईश्वरार्पण करने की प्रेरणा देते थे। परन्तु क्यों ? इसका समाधान वे नहीं कर सके। इन साधु, सन्त, महात्माओं के शिष्यों के सम्मुख यह प्रश्न सदा बना रहता था कि जब उनको मोक्ष-प्राप्ति के लिये संसार का त्याग ही करना है तो फिर उस संसार को सुन्दर, सुखप्रद और सुलभ क्यों बनायें ?

हिन्दू समाज का घोर पतन इसी कारण हुआ है कि बुद्धि, ज्ञान और कर्म में समन्वय नहीं रहा। आधुनिक काल में गांधी इसी दोष के पोषक

बने रहे। वे अपने कर्म को बुद्धियुक्त सिद्ध नहीं कर सके। वे हिन्दु थे, परन्तु मुसलमानों को, जो हिन्दुओं को गाली देते थे, गले लगाते थे। वे अंग्रेजों के शत्रु थे, परन्तु उनसे मोह करते थे। वे समाजवादी नहीं थे, परन्तु अपने काल के महान समाजवादी जवाहरलाल नेहरू को सिर पर चढ़ा बैठे थे। इसी प्रकार के अनेक अयुक्तिसंगत व्यवहार गांधी के जीवन काल में रहे। वे जिस बात की हिन्दुओं में निन्दा करते थे, उसी को मुसलमानों में देख आंखें मूंद लेते थे।

हिन्दु-समाज भी तो उसी प्रवृत्ति का था, जिसके गांधी थे। अतः सन् १९२० से लेकर सन् १९४८ तक गांधी की अनेकानेक बातों से मतभेद रखते हुए भी हिन्दू समाज का अधिकांश समुदाय गांधी का समर्थन करता रहा।

यही बात आज तक हिन्दु समाज में चली आती है। इस का एक विशिष्ट उदाहरण श्री स्वामी निरञ्जन देव तीर्थ (पुरी के जगत् गुरु शंकराचार्य) जी ने उपस्थित किया है। हिन्दु समाज कांग्रेस के अनाचार से छटपटा रहा था, परन्तु इसका नेतृत्व करने वाला कोई था नहीं। आर्य समाज था, जिसके पूर्ण सिद्धान्तों का विरोध कांग्रेस करती थी और आर्य समाज के अधिकांश प्रमुख व्यक्ति कांग्रेस का समर्थन करते थे। सनातन धर्म सभा थी। इसकी जड़ों में तेल देने वाली कांग्रेस है, परन्तु सनातन धर्म सभा कांग्रेस की समर्थक थी। एक सिक्ख-समाज है। यह भी कांग्रेस का विरोधी समाज है, परन्तु कांग्रेस के भड़काने पर हिन्दू विरोधी बन रहा है। अभिप्राय यह कि स्वराज्य प्राप्ति के उपरान्त कांग्रेस ने प्रत्येक प्रकार से हिन्दु धर्म, संस्कृति और परम्पराओं को खण्डित करने का यत्न किया है और हिन्दु समाज का प्रत्येक समुदाय कांग्रेस का और कांग्रेस के सिद्धान्तों का समर्थन करता है।

ऐसे नेतृत्व विहीन हिन्दु समाज के नेता उक्त जगत्गुरु शंकराचार्य बन गये। गो-रक्षा आन्दोलन खूब जोरों से चलाया और गो-रक्षा के समर्थन में आमरण अनशन भी किया। इस सबसे विचित्र बात यह हुई कि श्री स्वामी निरञ्जन देव तीर्थ के नेतृत्व में आर्य-समाजी, सनातन-धर्मी, बौद्ध, जैन और राजनीतिक दल हिन्दु महा सभा, जनसंघ एवं राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, सब एकत्रित हो गये। परन्तु ऐसा प्रतीत हुआ है कि न तो जगत्गुरु श्री शंकराचार्य में और न ही उनके अनुयायी भिन्न-भिन्न हिन्दु समुदायों में ज्ञान, कर्म और बुद्धि का समावेश था। हिन्दु धर्म में मरने की धमकी देकर किसी से अपनी बात मनवाना श्रेष्ठ नहीं माना गया।

प्रेरणात्मक कार्यों में विवश करना अधर्म समझा जाता है। किन्तु यह बात आमरण व्रत रखने वाले श्री जगत्गुरु शंकराचार्य जी कर रहे थे और हिन्दु समाज के विभिन्न समुदाय उनसे यह करा रहे थे। क्योंकि इस कार्य में ज्ञान और बुद्धि का समन्वय नहीं था, इसलिये जब श्री स्वामी जी की अवस्था बिगड़ने लगी तो हिन्दु समाज के वे सब लोग, जो स्वामी जी के आमरण व्रत पर वाह-वाह कर रहे थे, भयभीत हो उनको व्रत तोड़ने के लिये कहने लगे। कुछ लोगों ने सरकार के अधिकारियों से मिल कर भ्रममूलक वक्तव्य दिलवा दिया और स्वामी जी ने व्रत तोड़ दिया।

समाज के नेताओं का प्रत्येक वह कार्य जिसमें ज्ञान, बुद्धि और कर्म का समन्वय नहीं, समाज को हानि पहुंचाने वाला होता है और स्वामी जी का गो-रक्षा में आमरण व्रत एक कर्म था, जिसका बुद्धि और ज्ञान समर्थन नहीं करते थे। इसी प्रकार स्वामी जी का, व्रत के उद्देश्य की सिद्धि से पूर्व ही व्रत तोड़ना भी एक कर्म था, जिसका समर्थन ज्ञान और बुद्धि नहीं करते थे।

देश और हिन्दु समाज का दुर्भाग्य है कि उक्त असफलता और अव्यवहारिकता के उपरान्त भी स्वामी जी हिन्दु जन-समूह के नेता बने रहे। बुद्धि-शील लोग समझ रहे थे कि जो आन्दोलन गो-रक्षा के सम्बन्ध में आरम्भ हुआ था और जिस आन्दोलन की अग्नि पर, ७ नवम्बर सन् १९६६ को दिल्ली में हत्या-काण्ड कर सरकार ने घी डाला था, स्वामी जी और कुछ अन्य आमरण व्रत करने वालों ने व्रत रख और फिर बिना उद्देश्य सिद्धि के व्रत तोड़ कर उसे ठण्डा करने का यत्न किया।

स्वामी जी महाराज ने ज्ञान, बुद्धि और कर्म के समन्वय के बिना एक और कार्य किया है। पिछले मास पटना में हिन्दु विश्व परिषद् के उत्सव पर एक वक्तव्य दे दिया है कि हिन्दु धर्म शास्त्रों में अस्पृश्यता का विषय पूर्व-जन्म के कर्मों से होने से जन्म से सम्बन्धित है। अभिप्राय यह कि मुनुष्य-समाज़ में एक समुदाय अस्पृश्य है और वह मरणपर्यन्त अस्पृश्य ही रहेगा। शंकराचार्य जी ने शास्त्रों की बात तो कह दी किन्तु न तो किसी शास्त्र का उन्होंने नामोल्लेख किया और न ही कोई उद्धरण प्रस्तुत किया। परिणामस्वरूप शास्त्रों में अनास्था उत्पन्न करने के भी वे दोषी बन गए हैं।

स्वामी जी का यह मत किसी संस्कृत की पुस्तक में लिखा है अथवा नहीं लिखा, यह विचारणीय विषय नहीं है। संस्कृत भाषा में लिखे सब ग्रन्थ-धर्म शास्त्र नहीं माने जा सकते। हिन्दु समाज में वर्ण केवव चार हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र। परन्तु कोई भी वर्ण अस्पृश्य नहीं लिखा गया। यह ठीक है कि सब वर्णों के कर्त्तव्य और अधिकार समान नहीं हैं, परन्तु अस्पृश्यता किसी भी वर्ण का गुण नहीं माना गया। इसके अतिरिक्त वर्ण जन्म से नहीं माना गया। भगवद् गीता में वर्ण का आधार गुण, कर्म, स्वभाव स्वीकार किया है। इसमें जन्म का कहीं उल्लेख नहीं है। यह बात तो हुई स्वामी जी की अज्ञानता की। अब बुद्धि की बात भी सुन लीजिये। हिन्दु समाज में अनेकानेक शूद्र माता-पिताओं के अनेकानेक लड़के उन्नति करते हुए मन्त्री, न्यायाधीश, उच्च अधिकारी इत्यादि बने हैं, बन रहे हैं और बनेंगे। उनकेस ाथ अस्पृश्यता का व्यवहार न तो युक्तियुक्त है और न ही सम्भव।

हमारा विचारित मत है कि स्वामी जी महाराज के सब कर्मों में प्रायः युक्ति और ज्ञान का समन्वय नहीं है और वे अपनी राजसी प्रवृत्ति के कारण नेता बन गये हैं। हिन्दु समाज का यह दुर्भाग्य है कि इसके नेता ज्ञान विहीन और दुर्बल बुद्धि वाले बनते रहे हैं। एक-दो अपवाद भी हुए हैं, परन्तु समाज उनकी प्रशंसा करते हुए भी, उनका अनुकरण नहीं कर सका। इन अपवादों में महर्षि स्वामी दयानन्द और एक सीमा तक श्री बाल गंगाधर तिलक तथा महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय की गणना की जा सकती है।

एक समय था कि जब बाल गंगाधर तिलक अपने मराठा ब्राह्मण समुदाय के विरोध में स्त्री-शिक्षा के पक्ष में खड़े हो गये थे। इसी प्रकार एक समय आया जब कि श्री पण्डित मदनमोहन मालवीय विधर्मियों को शुद्ध कर हिन्दु समुदाय में सम्मिलित करने के लिए तैयार हो गये थे। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ज्ञान, बुद्धि और कर्म का अटूट सम्बन्ध मानते थे और अपने प्रत्येक कार्य में ज्ञान और बुद्धि का प्रयोग करते थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती की महान पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश इस बात का प्रमाण है कि वे जहां शास्त्र का अपार ज्ञान रखते थे, वहां प्रत्येक विषय में युक्ति करने की सामर्थ्य भी रखते थे।

हमारे कथन का अभिप्राय यह है कि हिन्दु शास्त्रों में वर्ण जन्म से नहीं माने गये हैं। श्रीमद्भगवद्गीता, जिसे कोई भी सनातन धर्मी मानने से इन्कार नहीं कर सकता, उसमें वर्ण के विषय में लिखा है :—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। (४-१३)
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः। (१८-४५)

इससे यह स्पष्ट है कि गुण, कर्म और स्वभाव से वर्णों की सृष्टि हुई है, जन्म से नहीं। यह कहा जा सकता है कि गुण और स्वभाव जन्म से बनते हैं, परन्तु इसका प्रमाण कहीं नहीं मिलता। इसके विपरीत यह देखने में आता है कि गुण और कर्म पर इस जन्म की शिक्षा-दीक्षा का जन्म से अधिक प्रभाव पड़ता है।

श्री शंकराचार्य जी ने अपने वक्तव्य के स्पष्टीकरण में जो कहा है वह स्पष्ट नहीं हो पाया। पहली भ्रान्ति तो उनके पटना के भाषण के विषय में ही है कि उन्होंने कहा क्या है? उन्हें चाहिये था कि वे बताते, उन्होंने वहां क्या कहा था और स्पष्टीकरण स्वरूप वे उसका अभिप्राय बता देते तो अच्छा रहता। उन्होंने इस उक्ति से बात समझाने का यत्न किया है कि वाइस-प्रेजिडेंट प्रेज़िडेंट का काम नहीं कर सकता। इसी प्रकार एक शूद्र ब्राह्मण का कार्य नहीं कर सकता। इससे उन्होंने स्वीकार किया कि शूद्र भी वाइस-प्रेजिडेंट की भांति जन्म से नहीं होता। यह उन्होंने स्पष्ट तो नहीं किया किन्तु इसका कोई अन्य अर्थ भी नहीं हो सकता।

भारत के वर्तमान संविधान में किसी भी प्रकार के विचारों की अभिव्यक्ति दण्डनीय नहीं है। दण्डनीय तो कर्म होता है। जब तक शंकराचार्य जी किसी अछूत को दुत्कारते नहीं अथवा किसी स्थान से धकेल कर बाहर नहीं कर देते, तब तक वे किसी प्रकार भी दण्डनीय नहीं हो सकते। उन पर मुकदमा चलाने की बात को मूर्खों का प्रलाप ही समझना चाहिये।

अस्पृश्यता के साथ ही राष्ट्रीय गान के अपमान का आरोप भी शंकराचार्य जी पर आरोपित किया जा रहा है। स्वामी जी का कथन है कि उनके उठने से पूर्व सभा विसर्जित घोषित कर दी गई थी। राष्ट्र-गान उनके बाहर निकलने पर गाया गया था। इससे बात स्पष्ट हो जाती है। जहां तक 'जन-गण-मन' के राष्ट्रगान होने न होने का प्रश्न है, वह भी स्पष्ट है। जन-गण-मन को कांग्रेस सरकार ने राष्ट्र-गान स्वीकार किया है। अगर हमें कांग्रेस सरकार स्वीकार है तो उस राष्ट्र-गान से विमुख नहीं हो सकते। अर्थात् कम से कम उसका अपमान नहीं कर सकते। किन्तु कांग्रेस सरकार लाख प्रयत्न करने पर भी इस तथ्य को नहीं छिपा सकती कि गुरुदेव कहे जाने वाले रवीन्द्रनाथ टैगोर नामक व्यक्ति ने यह कविता जार्ज पंचम के अभिनंदन के लिये लिखी थी अथवा उनसे लिखवाई गई थी। यह बात दूसरी है कि उसकी भावाभिव्यक्ति में वे भगवान का समावेश समझते हों। यह हम अपनी ओर से नहीं लिख रहे, अपितु यह रवीन्द्रनाथ

टैगोर की स्वीकारोक्ति है। इस स्वीकारोक्ति के बावजूद भी उस कविता को राष्ट्र-गान की संज्ञा दी गई। यह कवि का दोष नहीं, अपितु सरकार के तत्कालीन स्तम्भ नेहरू की कुबुद्धि का दोष है। यह कड़ूवा घूंट भी राष्ट्र को राष्ट्र-गान के रूप में पान करना पड़ रहा है।

विस्मय तो इस बात का है कि विश्व-हिन्दू-परिषद् में जन-गण-मन गाया ही क्यों गया? वह कोई सरकारी समारोह तो था नहीं। यद्यपि उपरिलिखित तथ्य सर्वविदित तो है ही, इसके अतिरिक्त शंकराचार्य जी ने भी वहां स्पष्ट कर दिया था कि इस अवसर पर इस कविता का पाठ नहीं होना चाहिये। इसके बाद भी वह गाया गया तो हिन्दुओं की बुद्धि के दिवालियापन के अतिरिक्त इसको और क्या कहा जा सकता है?

अन्त में एक बात की ओर हम और संकेत करना चाहते हैं। वह है शंकराचार्य जी के वक्तव्य की संसद् में समालोचना। हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि संसद् में इस विषय पर विचार-विमर्श नहीं होना चाहिये था। राष्ट्रीय महत्त्व का प्रश्न था तो विचार होना ही चाहिये। हमें आपत्ति है संसद्-सदस्यों के असंसदीय व्यवहार पर। इस अभद्रता में न केवल कतिपय संसद्-सदस्य अपितु संसद के अध्यक्ष भी सम्मिलित हैं। इस अवसर पर संसद् के अध्यक्ष सहित अनेक सदस्यों ने, जिस अशोभनीय, असंसदीय एवं अभद्र व्यवहार का प्रदर्शन किया है वह किसी भी देश की संसद के लिये नितान्त निन्दनीय है, संसद रूपी संस्था के माथे पर कलंक है। न तो अध्यक्ष ने उस अवसर पर अपने पद की गरिमा के अनुकूल आचरण किया और न आलोचक सदस्यों ने। क्या यही निर्वाचित नेताओं एवं प्रतिनिधियों का दायित्व था?

हम किसी भी प्रकार से अस्पृश्यता के पक्षपाती नहीं हैं, और न उस पुस्तक को, जिसमें अस्पृश्यता को वैध व्यक्त किया है, शास्त्र की संज्ञा देने को उद्यत हैं। किन्तु हम संसद्-सदस्यों के संसद में ही प्रकट की गई उस असंसदीय अभिव्यक्ति के भी पक्ष-पाती नहीं। इतना ही नहीं, उसके प्रबल विरोधी हैं। हमारा यह आरोप है कि संसद् सदस्यों ने अपनी विशिष्ट स्थिति का अनुचित लाभ उठाने के प्रयत्न में देश, जाति और धर्म के साथ अनाचरण किया है, संसद की गरिमा को गिराया है, इसके लिये देश भर में उनकी भर्त्सना होनी चाहिये।

अन्त में हम यह भी स्पष्ट कर देना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझते हैं कि यदि इस देश में अस्पृश्यता विद्यमान है तो इसका सारा दोष कांग्रेस और

उसकी सरकार पर है । हिन्दुस्तान में अस्पृश्यता शास्त्र-सम्मत नहीं, अपितु कांग्रेस सरकार-सम्मत है । सरकार स्पष्ट स्वीकार करती है कि देश में एक वर्ग अछूत है, इस लिये उसके लिये विधान में विशेषाधिकारों की व्यवस्था होनी चाहिये । और वैधानिक रीति से उनके लिये पृथक निर्वाचन क्षेत्र हैं, नौकरियों का अनुपात निर्धारित है, नौकरियों में प्राथमिकता का स्थान है और भी न जाने ऐसी कितनी ही सुविधायें और विशेषाधिकार शिड्यूल कास्ट और शिड्यूल ट्राइब्स के नाम पर निर्धारित हैं । संसद ने अपनी अभद्रता का प्रदर्शन करते समय इस तथ्य को क्यों नजरन्दाज किया ? यह सब उसकी अवसरवादिता है, बहती गंगा में हाथ धोने वाली बात है । इस प्रसंग में यदि किसी को फांसी पर लटकाने की बात करनी हो तो सरकार के प्रमुख प्रवक्ता को फांसी पर लटकाया जाना चाहिये और किसी पर यदि मुकदमा चलाना हो तो वह सरकार पर चलाना चाहिये । क्यों कि वही इस देश में अस्पृश्यता का पोषण और संरक्षण कर रही है । ●

संरक्षक सदस्य

अपने पाठकों को यह सूचित करते हुए हमें हर्ष हो रहा है कि निम्न महानुभावों ने शाश्वत संस्कृति परिषद् के संरक्षक सदस्य बनना स्वीकार कर लिया है । हम इनके सहयोग के अत्यन्त आभारी हैं—

१ श्री पी० राज गोपाल, राजगढ़
२ श्री बिशनचन्द सेठ, शाहजहांपुर
३ श्री राधाकृष्ण जी टंडन, अमरोहा
४ नाथूलाल चौधरी, बागरोद रतलाम

इन महानुभावों से निवेदन है कि अपना चित्र हमें भेजें । हम अगले अंक में मुद्रित करना चाहेंगे ।

परिषद् के दो नवीन प्रकाशन

१ समाजवाद एक विवेचन; २ गांधी और स्वराज्य तथा इनको भेजे जा रहे हैं । इन पाठकों से निवेदन है कि इन प्रकाशनों पर अपनी सम्मति भेजें ।

—मंत्री परिषद

दृष्टिकोण

(इस अंक से यह एक नया स्तम्भ प्रचलित किया जा रहा है। इस स्तम्भ में किसी ऐसी एक विशेष घटना, लेख, कविता अथवा भाषण आदि पर टिप्पणी की जावेगी जिसमें कि विचारों का नितान्त विभेद होगा। इस बार साहिर लुधियानवी की एक उर्दू कविता का पोस्टमार्टम किया जा रहा है।

-सम्पादक)

पाठकों ने अप्रैल अंक की समाचार समीक्षा में गालिब मृत्यु शताब्दी समारोह के सम्बन्ध में हमारे विचारों को पढ़ा होगा। उस अंक के प्रकाशित होने के बाद हमारे हाथों में बम्बई से प्रकाशित सहयोगी 'नवनीत' मासिक का अप्रैल अंक आया है। उसके अन्तिम पृष्ठों में साहिर लुधियानवी की एक उर्दू कविता प्रकाशित की गई है।

नवनीत के अनुसार साहिर ने यह कविता गालिब-मृत्यु शताब्दी समारोह के सिलसिले ने बम्बई में आयोजित एक मुशायरे में पढ़ी थी।

यहां एक बात स्पष्ट कर देना हम अपना पुनीत कर्तव्य समझते हैं। वह यह कि साहिर देश के उन इने गिने प्रमुख व्यक्तियों में से हैं जो हिन्दी भाषा को राष्ट्र-भाषा पद पर प्रतिष्ठित होने देने के कट्टर विरोधी हैं। इतना ही नहीं, साहिर उन लोगों के अग्रणी हैं जो उर्दू की अपेक्षा हिन्दी को तुच्छ भाषा समझते हैं। वे न केवल ऐसा समझते हैं अपितु इसका खुले आम प्रचार करने का दुस्साहस भी करते हैं।

ऐसे राष्ट्र-भाषा एवं राष्ट्र-द्रोही व्यक्ति की द्वेषपूर्ण कविता को नवनीत में प्रकाशित करने का उसके संचालकों का क्या अभिप्राय हो सकता है यह हम समझ नहीं पाए।

इसी प्रसंग में साहिर के व्यक्तित्व के एक विशिष्ट अंग की ओर भी संकेत करना अनुपयुक्त नहीं होगा। आज जिस देश की नागरिकता ग्रहण कर साहिर अपनी ऐसी आराम की जिन्दगी बसर कर रहा है और अपनी कविता रूपी विष का वमन कर देश में मुस्लिम साम्प्रदायिकता को भड़का रहा है अथवा यों कहा जाय कि देश के पुनर्विभाजन रूपी षड्यन्त्र में

अपना सम्पूर्ण सहयोग दे रहा है, उस देश के पूर्व-विभाजन में उसका उतना ही योगदान रहा था। एक बात और, ये साहब भारत छोड़ कर पाकिस्तान जा बसे थे। किन्तु वहां के हुक्मरानों से पटी नहीं तो पुनः नेहरू के सैक्युलर हिन्दुस्तान में आकर शरण ली और अपनी आदत से मजबूर, अब पुनः स्वतन्त्रतारूपी बेल की जड़ों में साम्प्रदायिकता का तेल डालने का काम कर रहे हैं।

आदि से अब तक जिस साहिर का जीवन ही दोषपूर्ण रहा हो, उसके कारनामों के लिये उससे अधिक दोषी वे लोग हैं, जो उसको प्रश्रय देते हैं। अर्थात् जो उसकी कवितायें प्रकाशित कर पाप के भागी बनते हैं, जो अपनी फिल्मों को उसके विषगीतों से गन्दा करते हैं, जो उसके गीतों को गुनगुनाने में अपनी रसना को रिसाते हैं। इस प्रकार के लोगों को हम देशद्रोहिता के दोष से मुक्त नहीं कर सकते।

'नवनीत' में प्रकाशित साहिर की कविता निम्नोद्धृत है। कठिन शब्दों के अर्थ वहीं पर कोष्ठक में दिये गये हैं।

इक्कीस बरस गुजरे आजादी-ए-कामिल (पूर्ण स्वतन्त्रता) को
तब जाके कहीं हमको गालिब का ख्याल आया।
तुर्बत (कब्र) है कहां उसकी मसकन (घर) था कहां उसका,
अब अपने सुखन-परवर (कविताप्रेमी) जहनों में सवाल आया।

सौ साल से जो तुर्बत चादर को तरसती थी,
अब उसपै अकीदत (श्रद्धा) के फूलों की नुमाइश है।
उर्दू के ताल्लुक से कुछ भेद नहीं खुलता,
ये जश्न, ये हंगामे खिदमत है कि साजिश है।

जिस शहर में गूंजी थी गालिब की नवां (आवाज) बरसों,
उस शहर में अब उर्दू बेनामो निशां ठहरी।
आजादी-ए-कामिल का एलान हुआ जिस दिन,
इस मुल्क की नजरों में गद्दार जबां ठहरी।

जिस अहले-सियासत (राजनैतिक युग) ने यह जिन्दा जबां कुचली,
उस अहदे सियासत को मरहूमों (दिवंगतों) का गम क्यों है।
गालिब जिसे कहते हैं उर्दू का ही शाइर है,
उर्दू पै सितम ढा कर गालिब पर करम क्यों है।

ये जश्न ये हंगामे दिलचस्प खिलौने हैं,
कुछ लोगों की साज़िश है कुछ लोग बहल जायें।
जो वाद-ए-फर्दा (कल का वादा) थे अब टल नहीं सकते हैं,
मुमकिन है कि कुछ अर्सा इस जश्न से टल जावें।

यह जश्न मुबारिक हो लेकिन यह सदाकत (सच्चाई) है,
हम लोग हकीकत के अहसास से आरी (वंचित) हैं।
गांधी हो कि गालिब हो इंसाफ की नजरों में,
हम दोनों के कातिल हैं दोनों के पुजारी हैं।

साहिर को कविता प्रेमियों से गिला है कि सौ बरस बाद उन्हें गालिब का ख्याल आया है। गिला तो हमें भी है। किन्तु दृष्टि में अन्तर है। हम कहते हैं कि यह ख्याल आया भी तो क्यों आया ? क्या इस शुभ कार्य के लिए गालिब जैसा ही व्यक्ति सरकार को सर्वश्रेष्ठ साबित हुआ ? किन्तु स्वयं साहिर को कब इसका ख्याल आया है। वे भी तो यहीं थे, उनके सामने ही गालिब की कब्र पड़ी थी और उसका घर भी। गालिब का दीवान भी छपता था और बिकता भी था।

साहिर के जहन में भी यह सवाल तभी क्यों आया, जब सरकार ने उसकी मृत्यु शताब्दी से सरोकार जोड़ा। क्या साहिर और उसके विचारों से सहमत शाइर-शौरा इसका कुछ जवाब देंगे ? साहिर सदृश लोग इससे पूर्व भी गालिब की तुर्बत पर चादर चढ़ा देते तो कौन उनका हाथ थाम लेता ? गालिब के मसकन की साज-संवार करते तो कौन उनको रोक लेता ? इसे कहते हैं स्वयं कुछ न करना और दूसरों को भी न करने देना।

साहिर को इन सरकारी समारोहों में साज़िश की बू आती है। हमें भी इसकी बू आती है। सरकार की मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति एवं मुस्लिम साम्प्रदायिकता को प्रश्रय दे कर अपना सिंहासन सुरक्षित रखने की बू।

साहिर का कहना है कि दिल्ली में उर्दू बेनामोनिशां हो गई है। और हमारा आरोप ठीक इसके विपरीत है कि दिल्ली वालों पर उर्दू को जबरदस्ती लादने का यत्न किया जा रहा है। पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा के अवसर पर उर्दू को गद्दार भाषा की संज्ञा दी जाती तो अनुपयुक्त नहीं होता। क्योंकि वे उर्दू के शाइर और लेखक थे जिनकी प्रेरणा ले पाकिस्तान बना और आज भी भारत में अशान्ति का वातावरण बनाये रखने के लिये साहिर सदृश उर्दू के कवि और लेखक कृतसंकल्प हैं।

हमें उर्दू भाषा से, यदि वह कोई भाषा है तो, उतनी शिकायत नहीं जितनी कि उसके साहिर जैसे पैरोकारों से है। गालिब के सन्दर्भ में उर्दू की राजनीति बीच में लाना साहिर के द्वेषपूर्ण मनोभाव का द्योतक है। अन्यथा गालिब का नाता तो अरबी और फारसी से था, उर्दू से नहीं। गालिब को उर्दू का शाइर कहना, जैसा कि साहिर ने कहा है, गालिब और उर्दू दोनों का ही अपमान करना है।

साहिर का कहना है कि अहदे सियासत ने उर्दू को कुचल डाला। जब कि तथ्य यह है कि उर्दू ने भारत के राजनीतिक रंगमंच को कलुषित करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी और अब वह सांस्कृतिक संस्थानों को भी कुसंस्कृत करने में संलग्न है।

वादा-ए-फर्दा से साहिर का क्या अभिप्राय है, स्पष्ट नहीं हुआ। कहीं भारत के अन्दर ही एक और पाकिस्तान का वायदा तो किसी ने उन जैसे लोगों से नहीं किया ? साहिर हकीकत के अहसास से आरी हों अथवा न हों, किन्तु साहिर की कविता को पढ़कर और उस पर मनन कर यही आभास मिलता है कि वास्तव में 'हम लोग हकीकत के अहसास से आरी हैं।'

अपनी कविता में गालिब की तुलना गांधी से करते हुए साहिर साहब फरमाते हैं कि वे दोनों के कातिल हैं और दोनों के पुजारी हैं। गालिब के कत्ल का तो हमें इल्म नहीं, किसी और को भी होगा, इसमें भी सन्देह है। विपरीत इसके गालिब परस्त देश के कातिल कहे जा सकते हैं। हां, गांधी का कातिल साहिर-समूह अवश्य कहा जा सकता है। न साहिर जैसे दो-मुंहे लोग इस भारत में होते, न पाकिस्तान बनता, न गांधी पनपता और न उसका कत्ल होता। और गांधी का कोई वास्तविक कातिल है तो वे यही लोग हैं।

एक बात और, साहिर साहब कट्टर कम्युनिस्ट हैं। करेला और नीम चढ़ा। विशुद्ध पंचमांगी। हमारे इस सब कथन का अभिप्राय यह है कि देश में मुस्लिम साम्प्रदायिकता भयंकर रूपेण सिर उठा रही है। भाषण स्वतन्त्रता के नाम पर विष-वमन किया जा रहा है। मार्च मास की समीक्षा में हमने फ्रेंक एन्थौनी का उदाहरण दिया था। यह दूसरा उदाहरण साहिर का है। अन्यथा शुभ अवसर पर, चाहे वह कैसा ही क्यों न हो, ऐसी उच्छृङ्खलता पूर्ण कविता का पठन एवं श्रवण कौन शुभ समझेगा ?

अस्तित्व की रक्षा [९]

श्री विद्यानन्द 'विदेह'

किसी भी जाति के संगठन तथा संविकास के लिए भाषा तथा लिपि की समानता प्रत्यक्षतः परमावश्यक है, इस तथ्य को निश्चय ही भारत के इतिहास सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द ने अनुभव किया था। जन्म से उसकी मातृभाषा गुजराती थी, और संस्कृत उनकी व्यवहार की भाषा बन चुकी थी। उस समय उन्होंने अनुभव किया कि आर्यावर्त की अखण्डता तथा आर्यों के सुसंगठन और संविकास के लिए आर्य-भाषा की संव्याप्ति अनिवार्यतः आवश्यक है। अपने गौरव-गुमानभरे हृदय से उन्होंने हिन्दुस्थान को आर्यावर्त, हिन्दु जाति को आर्य जाति, हिन्दु को आर्य और हिन्दी को आर्य-भाषा कहा और लिखा। अपने हृदय के सम्पूर्ण प्यार के साथ उन्होंने कहा और लिखा, 'एक दिन आयेगा जब आर्य-भाषा न केवल आर्यावर्त की, अपितु विश्व की भाषा बनेगी।'

निस्सन्देह हिन्दी इतनी सरल, सरस और इसकी लिपि इतनी स्वाभाविक है कि वह संसार की किसी भी भाषा की अपेक्षा कहीं अधिक सुगमता के साथ विश्व की अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन सकती है। समूचे भारत की कामचलाऊ भाषा तो वह सदियों से चली आ रही है। हमारे नेताओं ने अपराध कोटि की भूलें न की होतीं तो हिन्दी गत दो शताब्दियों में समूचे देश की मातृभाषा बन चुकी होती। १५ और १६ अगस्त, १९४७ की सन्धि-वेला में घायल स्वतन्त्रता की प्राप्ति हुई थी और अगली प्रातः से ही सारे देश में स्वतः ही हिन्दी सीखने की लहर दौड़ गयी जिसका वेग अहिन्दी-भाषी राज्यों में हिन्दी-भाषी राज्यों की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्र था। वह लहर विशेषतः दक्षिण भारत में समान गति से निरन्तर गतिमान् रही। विधान-निर्मात्री सभा में हमारे उन नेताओं ने, जो अंग्रेजी में ही शासन का काम काज चला सकते थे, जब पन्द्रह वर्ष की अवधि का अड़ंगा अटकाया, तो हिन्दी की प्रगति तथा व्याप्ति का मार्ग कुंठित हो गया। आगे चलकर जब सतत घोषणायें की जाने लगीं कि अहिन्दी-भाषी राज्यों में से जब तक एक भी राज्य हिन्दी को अस्वीकार करता रहेगा तब तक अंग्रेजी भारत की काम-काज की भाषा बनी रहेगी, तो हवा का रुख ही बदल गया।

यह सन्तोष की बात है कि तमिलनाडु को छोड़कर अन्य सभी अहिन्दी-

भाषी राज्यों में अब हिन्दी का विरोध लगभग समाप्त है और तमिल नाडु में भी अधिकांश लोग हिन्दी के विरोध को हानिकर समझकर अपने पुत्र-पुत्रियों को पर्याप्त संख्या में हिन्दी माध्यम स्कूलों में दाखिल करा रहे हैं। तमिल नाडु में एक वर्ग, जो डी० एम० के० के प्रभाव में है, 'हिन्दी कभी नहीं, अंग्रेजी हमेशा' का नारा लगा रहा है तो दूसरा समझदार वर्ग 'हिन्दी सीखो' की सलाह दे रहा है। भविष्य के भीतर झांकने पर साफ दिखाई देता है कि आगामी दो दशाब्दियों में हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा का पद प्राप्त कर लेगी। उसे सारे भारत की मातृभाषा बनाना सरकार का नहीं, हिन्दी-साधकों का काम है।

भाषा की व्याप्ति आन्दोलनों से नहीं, आवश्यकता की अनुभूति तथा योजनाबद्ध प्रयोग से होती है। हिन्दुस्थान में अंग्रेजी की व्याप्ति के ये ही दो मुख्य कारण थे। सारे देश पर अंग्रेजों का राज्य स्थापित होने पर यह अनुभव किया जाने लगा था कि प्रतिष्ठित और उच्च पदों की प्राप्ति अंग्रेजी पढ़कर ही हो सकती थी। दूसरी ओर अंग्रेजी शासकों ने अंगरेजी के प्रयोग को बढ़ावा देते हुए योजनाबद्ध रीति से अंगरेजी की पढ़ाई की सुव्यवस्था की थी। क्रिश्चिअन मिशनरियों ने उसकी व्याप्ति को अपने मिशन कार्य का प्रमुख अंग बनाया था। आज भी वही हो रहा है। स्वयं हिन्दुस्थानी नेता जनता को यह अनुभव कराने में संलग्न हैं कि अंगरेजी के बिना देश ज्ञान-विज्ञान तथा कला-कौशल में पिछड़ जायेगा। क्रिश्चिअन शिक्षण-संस्थाओं से भी बढ़-चढ़कर अंगरेजी और अंगरेजिअत के मानस पुत्र-पुत्री पब्लिक तथा मॉडर्न स्कूल खोल-खोलकर अंगरेजी पढ़ा रहे हैं और अंग्रेजी के प्रयोग को बढ़ावा दे रहे हैं। उर्दू का भी यही इतिहास है। मुस्लिम शासन में प्रतिष्ठित तथा उच्च पदों की उपलब्धि उर्दू और फार्सी भाषाओं के द्वारा होती थी। शासन तथा मौलवियों द्वारा उनके पठन-पाठन तथा प्रयोग की सुव्यवस्था की जाती थी। हिन्दी तथा संस्कृत के साधकों की इस सनिष्ठ साधना की प्रशंसा की ही जायेगी कि दो महाबली विदेशी शासनों की निष्ठुर चोटों से वे उन्हें जीवित रख पाये। यह निश्चित है कि आर्य भाषा तथा देववाणी के उपासक त्रिभाषा फॉर्मूला की चोट से भी इन दोनों संदिव्य भाषाओं की रक्षा तथा वृद्धि करने में सफल होंगे। प्रत्यक्षतः ही संस्कृत के बिना हिन्दी का विकास तथा संवर्धन असम्भव है तो हिन्दी के बिना इस देश में संस्कृत के भविष्य को उज्ज्वल न बनाया जा सकेगा। दोनों ही की व्याप्ति के लिए हमें जनता को उनकी आवश्यकता की अनुभूति करानी होगी और उनके भारतव्यापी प्रयोग की निरापद विधि बतानी होगी।

क्रमशः

परिवार नियोजन की सम्भावनाएं

श्री अश्लेष

भारत सरकार परिवार-नियोजन पर करोड़ों रुपया व्यय कर रही है। परिवार-नियोजन में लोगों को स्वेच्छा से सन्तति निरोध के उपायों को प्रयोग में लाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। जो लोग इन उपायों को प्रयोग में लाना चाहते हैं, उनको इनके प्रयोग करने में प्रत्येक प्रकार की सहायता निःशुल्क दी जाती है। इसका उद्देश्य यह बताया जा रहा है कि देश में जन-संख्या द्रुत गति से बढ़ रही है और सबके खाने-पहनने के लिये सरकार के पास धन नहीं है।

सरकार के पास धन है अथवा नहीं है और यदि परिवार-नियोनज का कार्य न किया गया तो लोग भूखों मरने लगेंगे और देश में महामारी पड़ जाएगी अथवा नहीं, एक विवादस्पद बात है। इस विषय में एक तीव्र मतभेद है।

आज हम परिवार-नियोजन के एक दूसरे प्रभाव के विषय में कह रहे हैं। वह प्रभाव है देश में नैतिक पतन। विज्ञान की सहायता से जन-जन को विषय भोग में सुविधायें प्राप्त कराना इस नियोजन का एक घृणित अंग है। विज्ञान की सन्तान-निरोध सम्बन्धी सुविधाओं की प्राप्ति से विवाहित अथवा अविवाहित युवक-युवतियाँ निःशंक होकर वासनामय जीवन व्यतीत करने में उत्साहित हो रहे हैं। अभी प्राचीन संस्कारों के प्रभाव से भारत में वह उछृंखलता उत्पन्न नहीं हुई जो परिवार-नियोजन की सुविधाओं को प्राप्त कर हो सकती है। परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि ज्यों-ज्यों परिवार नियोजन की सुविधायें बढ़ती जायेंगी और उनका ज्ञान विस्तार पाता जाएगा, त्यों-त्यों युवक-युवतियाँ विषय वासना में रत होंगे। यह बात हम निराधार नहीं कह रहे। अमेरिका में न तो जन-संख्या बहुत अधिक है और न ही वह देश इतना निर्धन है कि वह वर्तमान जनसंख्या से तीन गुणा अधिक जनसंख्या के पालन का सामर्थ्य न रखता हो। इस पर भी वहाँ पर सन्तति-निरोध के उपाय व्यापक रूप में प्रयोग किये जा रहे हैं और इन उपायों को प्रयोग करने वाले अधिकांश अविवाहित युवक-युवतियां हैं।

अभी-अभी अमेरिक के एक पत्र 'रीडर्स-डाइजेस्ट' में एक लेख अमेरिका

की एक विख्यात लेखिका 'पर्ल बक' का छपा है। उस लेख में सन्तति निरोध गोलियों के विषय में लिखा है। लेख से यह बात प्रकट होती है कि वहाँ पर बारह-तेरह वर्ष की लड़कियों से लेकर बड़ी आयु की स्त्रियाँ तक इन गोलियों को अपनी जेब में रखती हैं और जब किसी पुरुष के साथ घूमने जाती हैं तो इन गोलियों का प्रयोग करती हैं। बहुत सी माताएं ऐसी हैं जो अपनी कुमारी लड़कियों को इन गोलियों का सेवन कराती हैं, जब वे अपने लड़के-मित्रों के साथ कहीं पिकनिक इत्यादि पर जाती हैं। अर्थात् माताओं को यह भ्रम बना रहता है कि कहीं उनकी लड़की अवैध बच्चे की मां न बन जाये।

पर्ल बक लिखती है कि। 'ये गोलियां मेरे लिये नवीन नहीं हैं। मेरी सात लड़कियां हैं, जिनमें दो छोटी अभी दस से बीस साल की आयु के भीतर हैं। इनमें से दो घर पर थीं और मैंने उनको बुलाया। एक सोलह वर्ष की आयु की थी और दूसरी सत्रह वर्ष की है।"

पर्ल बक इस वार्त्तालाप से पहले दो अपरिचित स्त्रियों से मिली थी, जिन्होंने इस सन्तति निरोध की गोलियों के दुष्प्रभावों के विषय में उससे सम्मति की थी। उनमें ने एक स्त्री ने यह कहा था, 'मैं यह भय मोल नहीं ले सकती कि मेरी लड़की अवैध सन्तान की मां बन जाये, इस कारण वह जब भी कहीं बाहर जाती है तो मैं उसे यह गोली खिला देती हूं।'

पर्ल बक की लड़कियां जब आयीं तो उसने पूछा, 'तुम्हारी सहेलियां इन गोलियों से क्या करती हैं और क्या तुम भी इसका प्रयोग करती हो ?"

'लड़कियां मेरे साथ स्पष्ट बातचीत करने का अभ्यास रखती हैं। सत्रह वर्ष की आयु वाली लड़की बहुत प्रसन्न-वदन और कुछ शरारती है। उसने तुरन्त उत्तर दिया, 'मैं कई लड़कियों को जानती हूँ जो इनका प्रयोग करती हैं। वे समझती हैं कि यदि कोई लड़की किसी लड़के से प्रेम करती है अथवा केवल पसन्द भी करती है, तब इन गोलियों के खाने में कोई हानि नहीं।'

'और तुम ?' पर्ल बक ने पूछा।

'मैंने अभी तक किसी लड़के को इतना पसन्द नहीं किया। मैं नहीं जानती कि यदि मैं करूंगी तो क्या करूंगी ? मैं मन में तो यह कहती हूं कि मैं पहले विवाह कर लूंगी।'

'क्यों ?'

'वह चुप कर गयी और उसने कोई उत्तर नहीं दिया। इस समय छोटी

(शेष पृष्ठ ३५ पर)

अंतर्राष्ट्रीय हलचल

श्री आदित्य

विद्यार्थियों में हलचल केवल भारत में ही नहीं हो रही, वरंच यह उन समस्त देशों में भी दिखाई दे रही है, जो उन्नत देश कहे जाते हैं। जापान में विश्व विद्यालयों में हड़तालें और तोड़-फोड़ की घटनायें प्राय: होती रहती हैं। पिछले वर्ष फ्रांस में विद्यार्थियों ने तो एक व्यापक क्रान्ति की आशंका उत्पन्न कर दी थी। पूर्ण फ्रांस में काम-काज एक सप्ताह तक ठप्प हो गया था। कुछ मास हुए बनारस में विद्यार्थियों ने हलचल उत्पन्न कर बनारस विश्व विद्यालय को बन्द करने में सफलता प्राप्त की थी। अमेरिका से यह समाचार मिला है कि सॉन फ्रांसिस्को में स्टेट कालेज १३४ दिन तक बन्द रहा है। अभी भी वहां पूर्ण शान्ति नहीं हुई। अमेरिका के अन्य विश्व-विद्यालयों से भी हलचल के समाचार आ रहे हैं। फिलाडेलफिया में विश्व विद्यालय को बन्द कराने का यत्न विद्यार्थियों ने किया। इङ्गलैंड और जर्मनी में यद्यपि विश्व विद्यालय बन्द नहीं कराये जा सके, इस पर भी वहाँ के विद्यार्थी गण देश की राजनीतिक गतिविधियों में उग्र भाग लेते रहते हैं। अमेरिका के वर्तमान राष्ट्रपति जब बर्लिन में गये तो वहां के विद्यार्थियों ने विरोधी प्रदर्शन किये। इसी प्रकार ब्रसल्स में अमेरिका के राष्ट्रपति निक्सन को काले झण्डे दिखाये और 'Go back ! Go back !!' के नारे लगाये गये।

हम समझते हैं कि विद्यार्थियों की यह हलचल वर्तमान युग की अयुक्ति-संगत प्रवृत्ति का ही परिणाम है। यह अयुक्ति-संगत प्रवृत्ति प्रजातन्त्रात्मक पद्धति की सीधी उपज है। प्रजातन्त्रात्मक पद्धति में प्रत्येक वयस्क युवक-युवतियों को समाज और राज्य के प्रत्येक कार्य में सम्मति देने का अधिकार है। संसार के अथवा समाज के विषय अनेक हैं और उन अनेक विषयों में प्रत्येक युवक-युवती की शिक्षा समान नहीं होती, परन्तु प्रजातन्त्रात्मक पद्धति में सबका मत समान मूल्य का माना जाता है।

यदि तो इस पद्धति के साथ विनय की भावना उत्पन्न की जाती, तब यह पद्धति इतनी हानिकर सिद्ध न होती, जितनी कि आज हो रही है। सम्मति देने का अधिकार तो आज सबको प्राप्त हो गया, परन्तु प्रत्येक विषय को समझाने की सामर्थ्य एक समान नहीं हुई और इसके साथ प्रत्येक मनुष्य में

यह भावना उत्पन्न हो गयी कि जो कुछ वह समझता है, वह गलत नहीं हो सकता। एक व्यक्ति यह समझता है कि अमुक विषय का अमुक प्राध्यापक अयोग्य है और जब कुछ अन्य लोग उसको योग्य कहते हैं तो वह अपने विचार को गलत मानने के लिये तैयार नहीं होता। वह उस पर युक्ति भी नहीं करना चाहता। उस पर दूसरे की टिप्पणी भी सुनना नहीं चाहता। प्राय: बहुमत के विपरीत होने पर भी वह अपनी बात को दोहराता हुआ चला जाता है। इसको अविनयशीलता कहते हैं। यह दूषित शिक्षा का परिणाम है।

हमारी प्राचीन शिक्षा पद्धति में विनयशीलता शिक्षा का एक महान् गुण माना गया है। इसका अभिप्राय: यह है कि एक शिक्षित व्यक्ति किसी दूसरे से मतभेद होने पर उससे विचार-विनिमय करने के लिये सदैव तैयार रहता है। विचार-विनिमय यदि शुद्ध हृदय से किया जाये, तो सत्य-असत्य में प्राय: निर्णय हो जाता है। कभी नहीं भी होता, तब भी शिक्षित वर्ग मतभेद को स्वीकार कर लेते हैं और अपना-अपना मार्ग पृथक्-पृथक् चलाते हैं। यदि किसी ऐसे विषय पर मतभेद हो, जिससे पृथक् नहीं हुआ जा सकता, तब बुद्धिमान लोग बहुमत के सामने नत मस्तक हो जाते हैं। इसको विनयशीलता कहते हैं।

वर्तमान शिक्षकों में अविनयशीलता का प्रादुर्भाव अज्ञानता का सूचक है। अभिप्राय: यह कि यह शिक्षा अधूरी है। इससे वास्तविक अर्थों में विद्वान् निर्माण नहीं हो रहे। मतभेद होने पर परस्पर बैठकर विचार-विनिमय करना मतभेद मिटाने का प्रथम चरण है। यदि मनुष्य का मानसिक विकास उच्च कोटि का हो तो वह मन ग्रहणशील (receptive mind) होता है। ऐसा मन मतभेद के विषय को सुगमता से मिटा सकता है। जो मन विकसित होगा, वह अपनी बात को युक्ति-युक्त ढंग से प्रकट भी कर सकेगा। इस पर भी ऐसा अवसर उत्पन्न हो सकता है कि जब मतभेद न मिटे। दोनों पक्ष के लोग सत्य हृदय से अपने-अपने पक्ष को यथार्थ और उपकारी मानते रहें। इस अवस्था में केवल दो ही मार्ग हो सकते हैं। यदि विषय ऐसा हो कि उस पर अपने-अपने मन की बात करने से एक दूसरे को हानि न पहुंचे, तब पृथक्-पृथक् मार्ग अपनाये जा सकते हैं और झगड़े का कोई कारण नहीं रहता। कभी ऐसा भी हो सकता है कि पृथक्-पृथक् मार्ग अपनाये नहीं जा सकते और अल्पमत को या तो बहुमत वालों की बात मान लेनी चाहिये, अन्यथा अपने को उन सबसे पृथक् कर लेना चाहिये और झगड़ा अर्थात

तोड़-फोड़ नहीं करनी चाहिये। हां, मत-परिवर्तन के शान्तिमय उपाय प्रयोग में लाने चाहियें।

एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायेगी। फ्रांस में सन् १९६८ में विद्यार्थियों ने क्रान्ति का बिगुल बजा दिया। कारखानों के मजदूरों ने उनको सहयोग दिया और लगभग दस दिन तक पूर्ण फ्रांस के अन्दर काम-काज ठप्प हो गया। परन्तु बाद में जब मतदान कराया गया तो पता चला कि फ्रांस की पूर्ण वयस्क जनसंख्या में केवल चार प्रतिशत लोग क्रान्ति के पक्ष में थे। इससे यह सिद्ध होता है कि चार प्रतिशत लोग ९६ प्रतिशत पर अपना मत थोपना चाहते थे। यह स्वतन्त्रता तो है, परन्तु प्रजातन्त्रात्मक पद्धति नहीं।

ऐसी ही एक घटना पिछले वर्ष बनारस में हुई। कुछ थोड़े से विद्यार्थी किसी एक बात पर रुष्ट हो गये। उनका रुष्ट होना न्याय-संगत था अथवा अन्यायसंगत, यह विषय नहीं है। कारण यह कि जब तक युक्तियां दी जाती हैं तब तक वह विषय विचाराधीन होता है, परन्तु जब युक्ति के स्थान पर लाठियां और मुक्के चलने लगें, तब तो निर्णय बहुमत से ही हो सकेगा। इसमें सन्देह नहीं कि बनारस विश्व विद्यालय में उपद्रव करने वालों की संख्या कम थी। यह इस बात से प्रकट होता है कि जब पढ़ाई जारी रखने वाले विद्यार्थी संगठित हो गये तो उपद्रवी विद्यार्थी भाग खड़े हुए। दुर्भाग्य की बात यह रही कि बनारस में 'डी गॉल' जैसा योग्य शासक नहीं था। यदि वैसा होता तो वह वहां भी सिद्ध कर सकता था कि उपद्रव करने वालों की संख्या चार-पांच प्रतिशत से अधिक नहीं है।

विश्व भर के सभ्य कहे जाने वाले देशों में विद्यार्थियों की हलचल इस बात की प्रतीक है कि दूषित शिक्षा के प्रभाव से विद्यार्थीगण सम्मति रखने में तो प्रजातन्त्रात्मक स्वतन्त्रता का भोग करते हैं, परन्तु नियन्त्रण के समय वे प्रजातन्त्रात्मक स्वतन्त्रता की धज्जियां उड़ाते हैं। प्रजातन्त्रात्मक पद्धति में प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह स्वतन्त्रता से अपने मत को प्रकट करे और दूसरों को अपने से सहमत होने की प्रेरणा दे। साथ ही प्रजातन्त्रात्मक पद्धति में सबका यह कर्त्तव्य है कि वे जब किसी एक विषय पर सहमत न हो सकें तो बहुमत को स्वीकार कर लें और अपने विचार के प्रसार के लिये शान्ति पूर्ण उपायों से विरोधियों का मत परिवर्तन करते रहें।

ऐसा प्रतीत होता है कि आज प्रजातन्त्रात्मक पद्धति की भूमण्डल के प्रायः सब देशों में धूम है, परन्तु प्रजातन्त्रात्मक पद्धति से उत्पन्न उत्तरदायित्व

को लोग स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हैं। इसमें कारण है विश्व भर के विश्वविद्यालयों में शिक्षा में एक महान् दोष का होना। शिक्षा के अर्थ ही गलत समझे जा रहे हैं। शिक्षा को सांसारिक अभ्युदय का साधन माना जा रहा है। वास्तव में शिक्षा मन और बुद्धि के विकास का साधन है। पूर्ण विश्व के शिक्षणालयों में मानसिक विकास को गौण मानकर वैज्ञानिक (Scientific) एवं तकनीकी (Technical) उन्नति का साधन मात्र माना जा रहा है। यह तो शिक्षा का उद्देश्य नहीं है। उद्देश्य मन और बुद्धि का विकास है। सांसारिक अभ्युदय उस विकास के उपरान्त स्वतः उत्पन्न होने वाला फल है।

यह तो घोड़े के आगे गाड़ी लगाने का प्रयत्न है। जैसे गाड़ी को पीछे से धकेलने वाला घोड़ा गाड़ी की दिशा को अशुद्ध कर देता है, वैसे ही शिक्षा जो मन और बुद्धि के विकास के बिना तकनीकी ज्ञान को चलायेगी, वह पथ भ्रष्ट हो जायेगी।

भारत में भी विद्यार्थी प्रत्येक प्रकार के आन्दोलनों में अपनी पुस्तकों और विद्यालयों को छोड़कर भाग लेने लग जाते हैं। यह बुद्धि विहीनता ही है। इसे भोजन करने के समय खेल-कूद करना और खेल के मैदान में पुस्तक लेकर पढ़ने बैठ जाने के तुल्य ही व्यवहार कहा जा सकता है।

लोग कहते हैं कि देश के प्रायः राजनीतिक दल विद्यार्थियों का दुरुपयोग करते हैं। यह तो है ही। दुरुपयोग करने वाला दोषी माना जाना चाहिये। परन्तु विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी मिट्टी के माधो नहीं होते। बी० ए० और एम० ए० में पढ़ने वाले की तुलना एक फुटबाल से नहीं की जाती। यदि वे फुटबाल बन रहे हैं तो इसमें उनके पढ़ाने वाले अध्यापकों का दोष उन राजनीतिक दलों की अपेक्षा अधिक है, जो विद्यार्थियों का दुरुपयोग करते हैं।

संसार भर में हलचल मची हुई है। मानव-समाज में शान्ति नहीं है। इसमें कारण यूरोपियन अधूरी शिक्षा का विश्व भर में प्रसार है। शिक्षा का परम उद्देश्य मानव-निर्माण करना है। मानव शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का संयोग है। तकनीकी उन्नति केवल मात्र इन्द्रियों के विकास का दूसरा नाम है। मन, बुद्धि और आत्मा, जिनका शरीर पर आधिपत्य होना चाहिये, इस शिक्षा से अवहेलित हो रहे हैं। भारत में भी इसी यूरोपियन शिक्षा पद्धति को अपनाया गया है। अतः इस शिक्षा-पद्धति से उत्पन्न होने वाले सब दुर्गुण भारत में भी आ रहे हैं।

मगरमच्छ के आंसू

श्री सचदेव

ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता जाता है और सरकार के भाषा-नीति सम्बन्धी दुर्गुण प्रकट होते जाते हैं, अंग्रेजी पढ़े-लिखे और अंग्रेजी में व्यवहार करने वाले लोग भारत की दुर्व्यवस्था पर आंसू बहाने लगे हैं। इसका एक उदाहरण श्री के० एम० मुन्शी के 'भवन जरनल' दि० २३ फरवरी १९६९ के एक लेख से प्रकट होता है। इस लेख में श्री मुन्शी लिखते हैं :—

We are facing a tragic situation. I give you an instance. The Bhavan has been organised with the help of friends all over the country. Moneys have come from all parts of India. The staff hail from different regions of the nation. But the tragedy is that our Colleges in Gujarat would be soon driven to take Gujarati as the medium. Maharashtra might follow suit by declaring Marathi as the medium for our colleges. Tamil Nadu has already switched over to Tamil, U. P. to Hindi, and so on.

इस पद का अर्थ है कि एक भयंकर परिस्थिति हमारे सम्मुख आ गई है। मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ। भवन का संगठन देश भर के मित्रों की सहायता से हुआ है। रुपया भारत के सब क्षेत्रों से आया है। भवन के कर्मचारी भारतीय जाति के प्रत्येक अंग से लिये गये हैं। परन्तु अब दुर्घटना यह हो रही है कि गुजरात के कॉलेजों में शिक्षा का माध्यम शीघ्र ही गुजराती होने वाला है। महाराष्ट्र भी कदाचित् इसका अनुकरण करते हुए अपने कॉलेजों में मराठी स्वीकार करेगा। तमिल नाडु ने तो पहले ही तमिल को माध्यम बना लिया है उत्तर प्रदेश ने हिन्दी को बना लिया है और इसी प्रकार अन्य राज्य भी कर रहे हैं।

इस परिणाम पर मुन्शी जी की नींद हराम हो रही प्रतीत होती है।

श्री मुन्शी के 'भवन' से पूर्ण साहित्य अंग्रेज़ी में ही निकलता है। इस 'भवन' को बने हुए आज तीस वर्ष हो चुके हैं और इन तीस वर्षों में इस 'भवन' ने लाखों रुपये इस साहित्य पर लगाये हैं। इस साहित्य से देश के भिन्न-भिन्न भागों और भिन्न-भिन्न समुदायों में कितना समन्वय हुआ है, एक विचारणीय बात है। 'भवन जर्नल' का मुख्य उद्देश्य देश की प्राचीन संस्कृति का वर्तमान युग के विज्ञान से समन्वय करना है। इस उद्देश्य में भी जो कुछ प्रगति हुई है और जिस दिशा में हुई है, वह सन्देहात्मक ही है। इस पर भी इस 'भवन' के संस्थापक और कर्त्ता-धर्त्ता श्री मुन्शी भविष्य का विचार कर शोक-ग्रस्त प्रतीत होते हैं।

इस विषय में हमारा यह मत है कि जो कुछ देश के आचार-विचार में विघटनात्मक स्थिति उत्पन्न हुई है, वह श्री मुन्शी जैसे अंग्रेजी भक्तों की करनी से ही हुई है। इन लोगों ने अपने पूर्वग्रहों से ग्रसित होकर यह यत्न किया कि पूर्ण देश की सम्पर्क भाषा अंग्रेज़ी बनी रहे। ये लोग हिन्दी की हंसी उड़ाते रहे और यह कहते रहे कि हिन्दी सम्पन्न भाषा नहीं है। अंग्रेजी सम्पर्क भाषा बनेगी अथवा नहीं बनेगी, यह भविष्यवाणी करनी अति कठिन है। परन्तु यह निश्चय है कि यदि इस देश की सम्पर्क भाषा अंग्रेजी बनी तो न देश में एकमयता रह सकेगी और न ही श्री मुन्शी के भवन का उद्देश्य कि प्राचीन संस्कृति को नये रंग-रूप में देखा जाये, सफल होगा।

श्री मुन्शी का भवन क्या, इस जैसे एक सौ भवन भी और बन जायें तो भी उतना साहित्य निर्माण नहीं हो सकेगा, जितना अंग्रेजी भाषा में इङ्गलैंड और अमेरिका से बनकर इस देश में आ रहा है। उस साहित्य में यह घोषित किया जा रहा है कि यह भारत देश एक प्रायःद्वीप है; इसमें रहने वाली एक जाति नहीं, अपितु अनेक जातियां हैं; जो लोग अपने को आर्य-सन्तान कहते हैं, वे इस देश के मूल निवासी नहीं हैं; वे कहीं बाहर से यहां पर आक्रमण कर आये हैं; प्राचीन काल में लोगों को न तो इतिहास लिखना आता था और न ही वे ज्ञान-विज्ञान के ज्ञाता थे; वेद शास्त्रों में गो-मांस खाना लिखा है और उनमें अनेक देवी-देवताओं की पूजा का विधान है। ऐसी तथा इसी प्रकार की अन्य अनर्गल बातें लिखकर यहां के लोगों के मस्तिष्क में परस्पर फूट, विद्वेष और घृणा उत्पन्न की जा रही है और ये महानुभाव उसी भाषा को अभी कुछ काल और चलाने का प्रचार कर रहे हैं।

आप लिखते हैं :—

As a practical measure, I would make a humble request to the leaders : Apply moratorium to the language issue

for a period of five years, and work for agriculture instead of spending all the energy on this issue.

(एक व्यवहारिक योजना मैं अति विनम्र शब्दों में नेताओं के सामने रखता हूं। वह यह कि भाषा के विषय में पांच वर्ष तक किसी प्रकार के परिवर्तन पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाये और जाति की पूर्ण शक्ति अन्न उत्पन्न करने में व्यय की जाये।)

यही बात देश के समस्त अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग, अंग्रेजी भाषा के समाचार-पत्र गला फाड़-फाड़ कर कह रहे हैं। वे यह चाहते हैं कि अंग्रेजी यहां की सम्पर्क भाषा बनी रहे और इस सम्पर्क भाषा को शिक्षा का माध्यम स्वीकार करते रहें। यह किसी प्रकार से नयी बात नहीं। इसको अंग्रेजी सरकार सन् १९३३ से कार्यान्वित करने में लगी हुई थी। इस अंग्रेजी भाषा की स्थिति को एक सम्पर्क भाषा एवं शिक्षा का माध्यम बनाने के लिये अंग्रेजी सरकार ने शिक्षा को १९२० में प्रान्तीय विषय बना दिया। प्रान्तीय भाषाओं को आगे लाने के लिए यत्न आरम्भ कर दिया। अंग्रेजी सरकार का यह विचार था कि प्रान्तीय भाषाओं को समान रूप में प्रोत्साहन देने से कोई भी प्रान्तीय भाषा इतनी प्रबल नहीं हो सकेगी कि वह पूर्ण देश की एक भाषा बन सके। हिन्दी को, जिसे उस समय भी देश के साठ प्रतिशत से अधिक लोग बोलते और समझते थे, एक प्रान्तीय भाषा का पद दे दिया गया। यह भाषा अंग्रेजी की प्रतिस्पर्धा न कर सके, इस लिए इसकी घोर निन्दा की गयी। देश की किसी भी प्रान्तीय भाषा की इतनी निन्दा नहीं की गयी, जितनी कि हिन्दी की हुई है। इस निन्दा में श्री मुन्शी जैसे अंग्रेजी भक्तों का हाथ है। इसका सीधा परिणाम यह हुआ कि भारतीय भाषाओं में से वह भाषा जो अंग्रेजी की स्थानापन्न हो सकती थी, एक पंगु भाषा मान ली गयी और अंग्रेजी का मार्ग प्रशस्त कर दिया गया।

जबसे स्वराज्य मिला है, अंग्रेजी के भक्त जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में निरन्तर यत्न करते रहे कि हिन्दी राष्ट्र भाषा अथवा सम्पर्क भाषा न बन सके। श्री के० एम० मुन्शी इन समर्थकों में से एक थे। इक्कीस वर्ष के स्वराज्य काल में सरकार ने इन अंग्रेजी भक्तों की सहायता से देश में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी है कि देश की सम्पर्क एवं राष्ट्र भाषा हिन्दी नहीं बन सकी और क्षेत्रीय भाषायें अंग्रेजी को निकालने का यत्न करने लगी हैं। इसका अनुभव श्री मुन्शी को हुआ है और इन भोले-भाले अदूरदर्शी अंग्रेजी-भक्तों के आंसू निकल आये हैं।

हमें कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि निकट भविष्य में गुजरात में शिक्षा

का माध्यम गुजराती होगी। इस प्रकार महाराष्ट्र में मराठी, ग्रान्ध्र में तेलुगू, मैसूर में कन्नड़, केरल में मलयालम, तमिलनाडु में तमिल, उड़ीसा में उड़िया, बंगाल में बंगला, पंजाब में पंजाबी, कश्मीर में कश्मीरी हो रही है। इनके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान ग्रौर बिहार में हिन्दी होगी। ग्रब इन ग्रंग्रेज़ी पढ़े-लिखे बुद्धिमानों द्वारा यत्न यह किया जा रहा है कि बिहार में मैथिली भाषा चले। उत्तर प्रदेश में ग्रवधी, ब्रज भाषा ग्रौर खड़ी बोली चलें। हरियाणा ग्रौर दिल्ली में हिन्दी चले। राजस्थान में राजस्थानी चले। यह ठीक है कि यह बात ग्रभी शीघ्र होती प्रतीत नहीं होती, परन्तु इस ग्रोर प्रयत्न ग्रारम्भ हो गये हैं।

क्षेत्रीय भाषाग्रों के पनपने से ग्रंग्रेजी भाषा बनी भी रही, तो भी यह वह सामर्थ्य प्राप्त नहीं कर सकेगी जो एक राष्ट्र भाषा में होनी ग्रावश्यक है। इसमें कारण यह है कि ग्रंग्रेजी भाषा भारत की सब क्षेत्रीय भाषाग्रों से दूर है। न तो उसकी लिपि ग्रौर न ही इसका शब्द कोश, किसी भी क्षेत्रीय भाषा की लिपि ग्रथवा शब्द कोश के साथ सांझेदारी रखता है। ग्रधिक से ग्रधिक देश में चार-पांच प्रतिशत लोग ऐसे हो सकेंगे जो भली-भान्ति ग्रंग्रेजी लिख-पढ़ सकेंगे। ग्राने वाले बीस-पच्चीस वर्ष तक यह हो सकेगा कि ग्रंग्रेजी पढ़ने वालों की संख्या बहुत हो जाये, परन्तु इस भाषा में कोई भी गूढ़ बात लिखी हुई समझने की शक्ति तीन-चार प्रतिशत से ग्रधिक में नहीं ग्रा सकेगी। हिन्दी तो ग्रग्रेजी का विरोध करेगी ही। यह केवल इस कारण नहीं कि ग्रंग्रेजी ने ग्रौर ग्रंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों ने हिन्दी का स्थान छीनने का यत्न किया है, वरंच इस कारण कि ग्रंग्रेजी के समर्थकों ने देश की विघटनात्मक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया है। यह देश द्रोह है। हिन्दी के ग्रतिरिक्त ग्रन्य क्षेत्रीय भाषायें भी स्वाभाविक रूप में ग्रग्रेजी के प्रसार में बाधक होंगी।

परिणाम यह निकलने वाला है कि भारत पन्द्रह-सोलह भागों में विखंडित होगा। कदाचित् राजनीतिक दृष्टि से यह एक रह भी जाये, परन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से यह एक नहीं रहेगा। इस पाप का श्रेय ग्रंग्रेजी पढ़े-लिखे, ग्रंग्रेजी के समर्थकों के सिर पर होगा। देश में राजनीतिक विचार से विखण्डता एक ग्रच्छी बात न होते हुए भी इतनी बुरी नहीं, जितनी कि सांस्कृतिक विखण्डता है। श्री मुन्शी इसको रोकना चाहते हैं पांच वर्ष के लिये क्षेत्रीय भाषाग्रों की प्रगति को रोक कर। यह हो सकेगा ग्रथवा नहीं हो

(शेष पृष्ठ ३१ पर)

बुद्धि का फेर

श्री गुरुदत्त

बंगाल में, मध्यावधि चुनाव के उपरान्त, संविद की पहली कारगुजारी वहां के राज्यपाल के विरुद्ध प्रदर्शन था। ऐसा प्रतीत होता है कि जो कुछ हुड़दंग बाजी यह दल सन् १९६७ में कर रहा था, उसको अभी भी उचित ही मानता है। उस समय कारखानों के मैनेजरों, मालिकों और अन्य अधिकारियों पर घेराव डाले जा रहे थे। विरोधी दलों के प्रमुख सदस्यों पर ईंट पत्थर फेंके जा रहे थे। नक्सलबाड़ी में बलपूर्वक सरकारी तथा बड़े-बड़े ज़मींदारों की भूमि पर अधिकार जमाया जा रहा था, कानून अथवा संविधान की धज्जियाँ उड़ाई जा रही थीं। इन सब कुकृत्यों को रोकने के लिये गवर्नर ने कुछ पग उठाये थे। यद्यपि भारत के राष्ट्रपति को इसमें हस्तक्षेप करना चाहिए था, परन्तु वह अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सका। तत्कालीन संविद मन्त्री-मण्डल को अपदस्थ करने के लिये संवैधानिक ढंग स्वीकार किया गया। संविद-मन्त्री-मण्डल हटा दिया गया और उसके स्थान पर राज्यपाल का राज्य स्थापित कर दिया गया।

राज्यपाल के इस कार्य को कलकत्ता हाईकोर्ट में चुनौती दी गई। कहा गया है कि राज्यपाल का यह कार्य असंवैधानिक था, परन्तु हाईकोर्ट ने यह निर्णय दिया कि यह संवैधानिक था।

देश के दुर्भाग्य से वही संविद पुनः पहले से भी अधिक बहुमत के साथ निर्वाचित हो गया है। संविद ने यह समझा है कि लोगों ने उनको पुनः निर्वाचित करके यह सिद्ध कर दिया है कि राज्यपाल का कर्त्तव्य असंवैधानिक था। अतः संविद के नवीन मंत्री-मण्डल ने पद ग्रहण करते ही यह मांग उपस्थित कर दी कि राज्यपाल को हटा दिया जाये। वह इस कारण कि उसने संविद मंत्री-मण्डल को अपदस्थ किया था। केन्द्रीय सरकार ने बंगाल संविद मन्त्री-मण्डल की इस मांग को न्यायसंगत नहीं समझा और उन्होंने राज्यपाल को बदलने की आवश्यकता नहीं समझी। तब संविद मंत्री-मण्डल ने राज्यपाल को विधानसभा की प्रारंभिक बैठक में ऐसा भाषण पढ़ने के लिये

दिया कि जिसमें राज्यपाल की निन्दा की गई थी। राज्यपाल ने भाषण के उन अंशों को पढ़ने से इन्कार कर दिया, जो उसके अपने ही विपरीत थे। जब राज्यपाल विधान सभा के अधिवेशन में भाषण पढ़ने गये तो संविद के सदस्यों ने नियमानुसार खड़े होकर राज्यपाल का स्वागत नहीं किया। वे बैठे रहे। जब राज्यपाल ने भाषण पढ़ते हुए आपत्तिजनक अंशों को छोड़ना चाहा तो मुख्य मन्त्री ने आपत्ति की, परन्तु राज्यपाल यह कह कर कि उसने इन अंशों को पढ़ने में अपनी अरुचि पहले ही प्रकट कर दी थी, उनको छोड शेष भाषण पढ़ा।

इस पर भारत की लोक-सभा में कम्युनिस्टों ने राज्यपाल के इस कर्तव्य पर ध्यानाकर्षण प्रस्ताव रखा और फिर संसद में वाद-विवाद हुआ।

हमारा विचार है कि सन् १९६७ में राज्यपाल का व्यवहार यद्यपि समय के उपरान्त था तो भी असंवैधानिक नहीं था। हमारे इस मत की पुष्टि कलकत्ता उच्च न्यायालय ने भी की है। न्यायालय का निर्णय केवल एक ही उपाय से बदला जा सकता है और वह है संविधान में परिवर्तन करना। संविधान में परिवर्तन बंगाल की विधान सभा नहीं कर सकती और न ही हो-हल्ला कर लोग कर सकते हैं। संविधान पूर्ण भारतवर्ष की सम्पत्ति है और पूर्ण देश के प्रतिनिधि ही इसको बदल सकते हैं।

परन्तु खेद इस बात का है कि विधान सभा के सदस्य एवं संसद के सदस्य, कुछ एक को छोड़ कर शेष सभी समस्या के मूल तक पहुंच ही न सके। समस्या का मूल है कि कानून अथवा संविधान बलपूर्वक परिवर्तित नहीं हो सकता। इसके परिवर्तन के लिये विधि-विधान है। जो लोग बलपूर्वक इसमें परिवर्तन करना चाहते हैं, वे देश में दुर्व्यवस्था उत्पन्न करने के अपराधी हैं।

इसमें सबसे बड़ी अपराधी भारत सरकार है। इसने सन् १९६७ में भी संविद मन्त्री मण्डल को उस समय और उस अपराध पर अपदस्थ नहीं किया, जब वह घेराव तथा बलपूर्वक भूमि पर अधिकार जमाने का समर्थन कर रहा था। केन्द्रीय मन्त्री-मण्डल ने राज्यपाल को बंगाल के संविद मन्त्री-मण्डल को अपदस्थ करने की आज्ञा तब दी, जबकि मन्त्री-मण्डल में फूट पड़ गयी और एक नया मन्त्री-मण्डल बनने लगा था। उस समय भी जो नियम विरुद्ध कार्यवाही संविद मन्त्री-मण्डल और इसके समर्थकों ने की, उसको लक्ष्य रखकर इन लोगों को दण्ड नहीं दिया। मुख्य मंत्री अथवा मन्त्रीगण तथा विधान सभा अध्यक्ष संविधान के अनुकूल कार्यवाही करने के लिए सौगन्ध-

बद्ध होते हैं। सौगन्ध के विपरीत व्यवहार करने वाले पदाधिकारियों को विद्रोही माना जाना चाहिए था। किसी भी कारण से हो केन्द्रीय सरकार ने तो इनपर अभियोग नहीं चलाया, किन्तु इसके विपरीत संविद मन्त्री मण्डल ने केन्द्रीय सरकार पर अभियोग चलाया। संविद मन्त्री-मण्डल असफल हुआ। केन्द्रीय सरकार विजयी हुई, परन्तु संविधान को भंग करने वाले मन्त्री-मण्डल को अब भी स्वतंत्र रहने दिया। ऐसे लोगों को जो शपथ लेकर शपथ भंग कर चुके हों, उनको पुनः निर्वाचन में खड़े होने का अधिकार कैसे दिया गया ?

दस मार्च सन् १९६९ को संसद में बंगाल के राज्यपाल के व्यवहार पर गर्मा-गर्म विवाद हुआ। इस विवाद को उपस्थित करने वाले P. S. P. के एक सदस्य श्री एस० एन० द्विवेदी ने राज्यपाल के व्यवहार को असंवैधानिक प्रकट करते हुए संविधान की धारा १७६ और १६३ (२) का उल्लेख किया है। धारा १७६ इस प्रकार है:—

176. (1) At the commencement of the first session after each general election to the Legislative Assembly and at the commencement of the first session of each year the Governor shall address the Legislative Assembly or, in the case of a State having a Legislative Council, both houses assembled together and inform the Legislature of the causes of its summons

(2) Provision shall be made by the rules regulating the procedure of the House or either House for the allotment of time for discussion of the matters referred to in such address....

अर्थात्— (१) सामान्य निर्वाचनों के उपरान्त तथा प्रति वर्ष विधान सभा के सत्र के आरम्भ होने के समय राज्यपाल विधान सभा और जहाँ विधान परिषद है, वहाँ दोनों सदनों में एक साथ भाषण देगा और उसमें बतायेगा कि विधानसभा किस लिये बैठ रही है ?

(२) नियमोपनियमों में इस बात का प्रबन्ध किया जायेगा कि दोनों सदनों में राज्यपाल के भाषण पर विवाद के लिए कितना समय लिया जाएगा ?

हमें तो इस धारा में एक भी ऐसा शब्द दिखाई नहीं दिया जिसमें राज्यपाल किसी प्रकार पर का प्रतिबन्ध हो कि वह जो कुछ मन्त्री मण्डल कहे, वही कहने पर विवश हो।

धारा १६३ (२) इस प्रकार है:-

If any question arises whether any matter is or is not a matter as respects which the Governor is by or under this Constitution required to act in his discretion, the decision of the Governor in his discretion shall be final, and the validity of anything done by the Governor shall not be called in question on the ground that he ought or ought not to have acted in his discretion.

अर्थात् — किसी भी ऐसे प्रश्न पर राज्यपाल संविधान के अनुसार अपनी सूझ-बूझ का प्रयोग कर सकता है और इस सूझ-बूझ का निर्णय राज्यपाल का अन्तिम होगा और जो कुछ राज्यपाल तब करेगा, उसपर कोई आपत्ति नहीं की जा सकेगी कि उसने ऐसा क्यों किया ?

हमने इस लेख को 'बुद्धि का फेर' शीर्षक दिया है और यह इसीलिए कि श्री द्विवेदी जो कुछ सिद्ध कर रहे हों, उसके विपरीत ही संविधान की यह धारायें कह रही हैं और इन्हीं धाराओं के आधार पर श्री द्विवेदी जी अपना पक्ष सिद्ध कर रहे हैं। मजेदार बात तो यह है कि संसद में किसी ने भी यह धारायें पढ़कर नहीं सुनायीं और यह नहीं कहा कि ये धारायें द्विवेदी जी के पक्ष का ही खण्डन करती हैं।

हमें खेद से कहना पड़ता है कि गृह-मन्त्री भी ऐसा कहते रहे कि जैसे वह अपराधी थे और बंगाल के संविद मन्त्री-मण्डल को 'जाने दो। जाने दो' की प्रार्थना करते रहे। उनके शब्द जैसे हिन्दुस्तान टाइम्स दि० ११ मार्च १९६९ में छपे हैं, इस प्रकार हैं:-

Intervening, Union Home Minister Y. B. Chavan appealed to the house to "forget" the entire matter which he felt was complimentary neither to the House and the Central Government nor to the State Legislature and the West Bengal Government.

अर्थात—गृह-मन्त्री श्री वाई० बी० चव्हाण कह रहे हैं, 'मैं सदन से निवेदन करता हूँ कि वे इस पूर्ण घटना को भूल जायें। यह न तो इस सदन के लिए, न ही केन्दीय सरकार के लिये, न ही राज्य विधान सभा के लिए और न ही पश्चिमी बंगाल की विधान सभा के लिए किसी प्रकार की मान-युक्त बात है।'

कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि केन्द्रीय सरकार तत्कालीन राज्यपाल श्री धर्मवीर का अपमान सहन कर बंगाल के संविद् मन्त्री मण्डल को प्रसन्न करना चाहती थी, इस प्रसन्न करने में क्या उद्देश्य हो सकता है, अभी नहीं कहा जा सकता। इसपर भी इतना तो लोग विचार करने लगे हैं कि केन्द्रीय सरकार का वर्तमान मन्त्री मण्डल कम्युनिस्टों से किसी प्रकार की सांठ-गांठ कर रहा है। यह एक अति भयंकर स्थिति होगी।

(पृष्ठ २६ का शेष)

सकेगा, इसकी भविष्यवाणी करनी कठिन है। परन्तु हमारे विचार में इसको रोकने का उपाय भिन्न है। वर्तमान परिस्थिति में क्षेत्रीय भाषाओं की प्रगति को रोकना बुद्धिमत्ता नहीं होगी। रोकने की वस्तु अंग्रेजी है। पांच वर्ष का ऐसा कार्यक्रम बनना चाहिए जिससे कि पांच वर्ष के उपरान्त अंग्रेजी भाषा का स्तर वही रह जाये जो फ्रांसीसी, जर्मन, रूसी इत्यादि भाषाओं का भारतवर्ष में है। केन्द्र अपनी राज्य भाषा हिन्दी बनाये और राज्यों के साथ उनकी क्षेत्रीय भाषाओं में पत्र-व्यवहार कर सके। यह स्वीकृति हो कि कोई भी अहिन्दी-भाषी राज्य केन्द्र के साथ हिन्दी में पत्र-व्यवहार कर सकेगा। हिन्दी-भाषी राज्य अपने पड़ोसी राज्यों के साथ हिन्दी में पत्र-व्यवहार करें, साथ ही उन राज्यों के पत्र उनकी अपनी भाषा में लेने से इन्कार न करें। इसके साथ एक बात और आवश्यक है कि क्षेत्रीय भाषाओं की संख्या अब और अधिक न बढ़ायी जाये। यत्न यह होना चाहिये कि सब क्षेत्रीय भाषाओं में संस्कृत के शब्दों का प्रयोग अधिक और अधिक किया जाये, जिसके फल स्वरूप देश में एक भाषा होने की सम्भावना बढ़ सके। पूर्ण विवाद की जड़ में अंग्रेजी भाषी लोग हैं। ये जानकर अथवा अनजाने में देश और जाति का अहित कर रहे हैं।

"विष रस भरा कनक घट जैसे"

●

अरविन्द

'बेपैंदी का लोटा' अथवा 'थाली का बैंगन' लगभग समानार्थक मुहावरे हैं। अस्थिर-मति मनुष्य को ये उपमायें दी जाती हैं। इसी प्रकार के दो मुहावरे और भी हैं–"गंगा गये गंगादास, जमुना गये जमुनादास।" तथा "जहां देखा तवा परात, वहीं बिताई सारी रात।" यदि इन चारों मुहावरों को एक रूप में देखना हो तो इस देश में एक व्यक्ति विद्यमान है। वह व्यक्ति है श्री बाबू जयप्रकाश नारायण सिंह। यह उस व्यक्ति का पूरा नाम है। उसके अंग्रेजीदां चेले उसको जे० पी० नाम से तथा हिन्दीदां जयप्रकाश जी नाम से सम्बोधित करते हैं।

सुना जाता है कि जे० पी० साहब गांधी के सिद्धान्तों के समर्थक हैं। जे० पी० साहब को दिवास्वप्नों का रोग है। कुछ दिन पूर्व श्रीलंका में उन्होंने अपने दिवास्वप्न में देखा कि वहां की जनता गांधी के आदर्शों पर चलने वाली है। इसकी उन्होंने श्रीलंका में ही भविष्यवाणी भी कर दी है। जिस गांधीवाद की जड़ों में भारत में ही कांग्रेस तेल और मट्ठा डाल रही है, वे जड़ें समुद्र पार कर किस प्रकार श्रीलंका में अपनी जड़ें जमा पावेंगी यह जे० पी० ही बता सकते हैं।

सुना है, गांधी अहिंसावादी थे। ऐसे अहिंसावादी की यदि किसी एक गाल पर कोई थप्पड़ मार दे तो गांधी उसको सलाह देते थे कि वह थप्पड़ मारने वाले के सम्मुख अपना दूसरा गाल भी कर दे। गांधी के ये पट्ट शिष्य उस अहिंसावाद के कट्टर प्रचारक थे, हैं और शायद रहेंगे भी। किन्तु गांधी की हत्या होने पर जे० पी० साहब ही वह प्रथम व्यक्ति थे जो अपने अधकचरे चेलों की टोली बना कर भारत की राजधानी में कोहराम मचाने निकल पड़े थे। जिस व्यक्ति ने गांधी को मोक्षधाम पहुँचाया था, उसके बारे में सभी बातें तुरन्त ही स्पष्ट हो गई थीं कि वह कौन है, कहां का है, कहां रहता है और क्या करता है। किन्तु जे० पी० को इससे कोई सरोकार नहीं। उसे तो अहिंसावादी महात्मा की हत्या का बदला लेना था, अथवा देश में एक ऐसी

बढ़ती हुई शक्ति को क्षीण करना था जो विशुद्ध राष्ट्रवादी थी। राष्ट्रवाद सम्भवतया जे० पी० को कभी रास नहीं आया, आज भी उनके मुख से अराष्ट्रीयता की कटूक्ति नित्यप्रति सुनाई दे जाती है। हथियारों से लैस दल का नेतृत्व करते हुए जे० पी० साहब निकल पड़े दिल्ली तथा नई दिल्ली की वीथिकाओं में। दो कदम आगे रखते तो एक कदम पीछे। पहुंचे किसी प्रकार बारहखम्भा रोड पर। किन्तु वहां भी उनका गांधीवाद आड़े आया और किसी प्रकार अपनी तथा अपने साथियों की जान बचा कर, अपना सा मुंह लेकर वापस आगये।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर कृपालु (?)

गांधी हत्या के दिनों में देश स्वतन्त्र तो हो गया था किन्तु शासन था पूर्णतया अंग्रेजों के ही हाथ में। असली खानदानी गोरा अंग्रेज माउंटबैटन तो था यहां का गवर्नर जनरल और हिन्दुस्तानी काला अंग्रेज नेहरू था यहां का प्रधानमन्त्री। नेहरू का राज था और जे० पी० साहब नेहरू के खास चहेते और चेले थे। गुरू चेलों की मिली-भगत से संघ पर गांधी हत्या के लिये वातावरण-निर्माता संगठन का आरोप लगाया गया और इस आरोप में उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। जिन-जिन पर जे० पी० तथा नेहरू की विशेष कृपा थी, उनको अनिश्चित अवधि के लिए कारा की कोठरियों में डाल दिया गया। घटना के भावी अंश का हमारे विवेच्य विषय से सम्बन्ध नहीं।

घटनाचक्र तीव्रगति से बढ़ा और एक समय ऐसा आया जब जे० पी० नगण्य व्यक्तियों में रहे। किन्तु नेतृत्व की भूख मिटी नहीं। संघ से प्रतिबन्ध हट चुका था और वह फिर प्रगति के मार्ग पर आरूढ़ था। जे० पी० को अब उसमें आकर्षण प्रतीत हुआ। कुछ शायद संघ के लोगों ने भी सोचा होगा कि कदाचित् अपने सद्व्यवहार से वे उसकी भ्रान्ति को दूर कर सकें। जे० पी० संघ की ओर बढ़ा और संघ जे० पी० की ओर। परिणाम स्वरूप अनेक स्थानों एवं अवसरों पर जे० पी० को संघ का निकटावलोकन सम्भव हुआ और सम्भवतया पश्चात्तापस्वरूप उसने संघ की प्रशंसा करनी आरम्भ की। किन्तु यह गठबन्धन स्थायी नहीं बन पाया। जे० पी० के पुराने संस्कार जगे और पुनः उसने उसी स्वर में अलापना आरम्भ किया। इधर कुछ दिनों से वह स्वर तीव्र हो रहा है। विगत दिसम्बर के अन्तिम दिनों साम्प्रदायिकता विरोधी सम्मेलन रूपी मंच पर सुभद्रा के साथ जो ट्विस्ट जे० पी० ने किया उसकी धुन में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अतिरिक्त अन्य कुछ सुनने में नहीं आया। उसे "साम्प्रदायिकता विरोधी सम्मेलन" की अपेक्षा "संघ विरोधी

सम्मेलन" कहना अधिक उपयुक्त होगा। जे० पी० का कहना था कि "धर्मनिरपेक्ष शक्तियों की कमजोरी के कारण राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने सांस्कृतिक संस्था होने का पर्दा हटा फेंका है।" तथ्य क्या है यह संघ के स्पष्ट करने की बात है। उसने यह भी कहा कि 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का राजनीतिक दृष्टि से मुकाबला किया जाय। इसके लिए जनता को शिक्षित करने की आवश्यकता है।"

दुमु'हे जे० पी०

यह तथ्य तो सुविख्यात है कि जे० पी० पदच्युत सदर अयूब को न केवल अपना मित्र समझते थे अपितु भारत का परम मित्र भी समझते थे। पाकिस्तान के प्रति उनका लगाव भारत से भी अधिक है। पाकिस्तान के लिए सर्वस्व समर्पण में वे पूर्णतया गांधीवादी हैं। इन तथ्यों की अधिक विवेचना हम इस लिये उपयुक्त नहीं समझते क्योंकि पाठक दैनंदिन उसका ऐसा अनर्गल प्रलाप समाचार पत्रों में पढ़ते रहते हैं। शत्रु देश एवं उसके राष्ट्रपति को मित्र की संज्ञा देने वाला व्यक्ति 'आस्तीन का साँप' नहीं तो और क्या समझा जाय ?

इससे भी भयंकर स्थिति शेख के बारे में हैं। शेख को वे अपना मित्र और भारत का हितैषी मानते हैं और अपनी मान्यता को देशवासियों पर जबरदस्ती थोपने में न उन्हें लज्जा आती है और न भय ही। सहयोगी दैनिक हिन्दुस्तान ने अपनी, दो जनवरी की सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा–"जयप्रकाश बाबू क्या हैं, यह कोई नहीं जानता। वह राजनीति में हैं भी और नहीं भी। वह असम के विद्रोही नागाओं के पैरोकार हैं भी और नहीं भी। वह कश्मीर को स्वतन्त्र करने के पक्षपाती हैं भी और नहीं भी। वह शेख अब्दुल्ला के मित्र हैं भी और नहीं भी। वह सबल केन्द्र के समर्थक हैं भी और नहीं भी। यानि उनकी महिमा के बारे में 'नेति नेति' के सिवाय और कुछ नहीं कहा जा सकता।"

देश का पहला दल बदलू :

फरवरी में होने वाले मध्यावधि चुनावों की बड़ी चर्चा की। जे० पी० इससे भी अछूते नहीं। नये-नये रंग दिखाये। पटना में कुछ क्षणों के लिये एक सर्वदलीय चुनाव मंच बना। जे० पी० का कहना है कि यह उनकी प्रेरणा से ही सम्भव हो पाया था। यद्यपि उस मंच पर किसी ने जे० पी० को देखा नहीं। इसी अवसर पर उनके मुखारविन्द से यह मन्त्र भी निकला कि मध्यावधि निर्वाचनों में मतदाताओं को चाहिये कि वे "दल-बदलू उम्मीदवारों को कभी अपना मत न दें। बात पते की है। किन्तु गोबर में सने गुलाब के फूल के समान। फूल सुन्दर होने पर भी गोबर सना होने के कारण न तो ग्राह्य है और न ही उसमें से सुगन्ध प्राप्त होगी। यही स्थिति जे० पी० के उन वचनों की भी है।

भारतवासी वह सुदिन भूल नहीं होंगे जब लौहपुरुष सरदार पटेल के कारण कांग्रेस में एक समय नेहरू की स्थिति शिथिल पड़ गई थी। तब नेहरू के कहने पर जे० पी० वह पहला व्यक्ति था जो कांग्रेस से बाहर निकल कर आया और सोशलिस्ट पार्टी के नाम से एक नया मंच तैयार किया। दुर्दैव से सरदार पटेल नहीं रहे और नेहरू का अवरुद्ध मार्ग खुल गया। उसे नये मंच की आवश्यकता नहीं रही। किन्तु जे० पी० गलतफ़हमी में रहे और जिस कांग्रेस को एक बार छोड़ा फिर उसकी ओर उन्होंने मुख नहीं किया।

जे० पी० कांग्रेसी से समाजवादी बने, समाजवादी से कृषक-मजदूर प्रजा समाजवादी, कृषक-मजदूर प्रजा समाजवादी से विशुद्ध प्रजासमाजवादी और फिर विनोबावादी। विनोबावादी से सर्वोदयवादी। यद्यपि उनके साथ आजकल सर्वोदयी विशेषण जुड़ता तो है किन्तु वास्तव में वे सर्वोदय समाज में भी हैं, यह सन्देहास्पद ही है। दल-बदलुओं का दौर जे० पी० से ही शुरू होता है।

स्पष्ट है, जो व्यक्ति घाट-घाट का पानी पी चुका हो, राजनीतिक क्षेत्र में न वह एक-चित्त रह सकता है और न कोई स्थायी एवं महत्वपूर्ण सुझाव ही उसके मुख से निकल सकता है। निकलेगा भी तो उसकी स्थिति "विष रस भरा कनक घट" जैसी ही होगी।

(पृष्ठ १८ का शेष)

बोल उठी। उसने कहा, 'यह अपने-अपने विचार करने की बात है। मैं समझती हूँ कि इन गोलियों को लेने से आने वाले जीव के मार्ग में बाधा खड़ी करना है।'

इस पर पर्ल बक ने पूछा, 'मैंने यह नहीं पूछा। मैंने यह पूछा है कि ये गोलियां खानी ठीक हैं अथवा गलत हैं ?'

इस पर बड़ी लड़की ने पुनः उत्तर दिया, 'हम नहीं जानते कि ठीक क्या है और गलत क्या है ? हम अपने लिये ठीक और गलत से ही किसी कार्य का निर्णय करती हैं।'

इस लेखिका का पूर्ण लेख यहां पर उद्धृत नहीं किया जा सकता, परन्तु इसका निष्कर्ष यह है कि युवक और युवतियों के मन से इस बात का भय निर्मूल होता जा रहा है कि नर-नारी के समागम से सन्तान उत्पन्न होगी। समागम में सन्तान-उत्पत्ति का भय न रहने से वे समागम में किसी प्रकार का दोष भूलती जा रही हैं।

यही बात भारत में भी होगी। अभी तो लोगों के मन में यह विश्वास बैठाया जा रहा है कि वे सन्तान उत्पन्न न कर देश का कल्याण कर रहे हैं। यह देश-कल्याण गौण हो जायेगा और भोग-विलास का सुख मुख्य। ●

समाचार समीक्षा

कुकर्मी कम्युनिस्टों का कुशासन

६ अप्रैल १९६९ को कलकत्ता के रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम में 'यंग कौर्नर' नामक कुख्यात संस्था द्वारा आयोजित कार्य-क्रम के अवसर पर जो जघन्य कृत्य वहां के अमानवी मार्क्सवादियों ने किये, उनकी तुलना में यही मुख से निकलता है—'न भूतो न भविष्यति।' अर्थात् न हुआ न कभी होगा। इस संस्था के संरक्षकों में खेल मन्त्री राम चटर्जी और खेल विभाग के सचिव ध्रुवसेन तथा विजय बनर्जी आदि हैं। इससे स्पष्ट लक्षित होता है कि इस कार्यक्रम के आयोजन में संयुक्त मोर्चा सरकार का पूर्ण सहयोग था।

स्टेडियम में छत्तीस हजार लोगों के बैठने के लिये स्थान है। स्टेडियम के बाहर ध्वनिविस्तारक यन्त्र लगाने की पुलिस ने अनुमति नहीं दी। उसका कहना था कि आसपास में बड़े लोगों की बस्ती है, इस लिए इससे उन्हें असुविधा होगी। स्टेडियम में प्रविष्ट होने के लिए जो मार्ग अथवा द्वार बनाये गये थे, वे इतने संकरे थे कि एक व्यक्ति को भीतर जाने में ३ मिनट से अधिक ही लग जाते थे। तो भी हजारों की संख्या में लोग वहां उपस्थित हो गये, सम्भ्रान्त परिवारों की महिलायें भी दर्शकों में थीं। और ज्योति बसु के सुपुत्र भी वहां उपस्थित थे तथा स्वयं राम चटर्जी मंच पर विराजमान थे।

अनुमान है कि सुनियोजित योजना के अनुसार नियत समय पर ध्वनिविस्तारक यन्त्र बिगड़ गये। स्वाभाविक है जनता आवाज सुनने के लिये मंच के निकट जाने में पहल करने लगी। इसी बीच कुछ ही क्षणों में पथराव आरम्भ हो गया। तब आयोजक (और कलाकार) किस द्वार से कब और कहां अन्तर्ध्यान हो गये, इसका पता अभी तक नहीं चल पाया। बहरहाल उनको किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुंची। वे सही सलामत गुप्तमार्ग से बाहर निकल गये। इसी बीच बिजली का मुख्य स्रोत बन्द कर दिया गया, जिससे न केवल स्टेडियम अपितु सम्पूर्ण दक्षिणी कलकत्ता अन्धकारमय हो गया। और फिर चारों ओर बम फटने की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। तब समाज-विरोधी तत्वों ने न केवल दंगा फसाद किया अपितु महिलाओं की लाज को

लूटने में उन्होंने 'लज्जा' शब्द को भी लज्जित कर दिया। लाज बचाने के लिए महिलाएं जिधर भी भागतीं, वहीं उन्हें मार्ग में शैतान तैनात मिलते।

इनकी लाज बचाने के लिये अनेक लोगों ने अपनी कमीजें तथा कुरते तक उतार कर दिये, आस पास के मकानों में रहने वाले लोगों ने सैकड़ों महिलाओं को वस्त्र और शरण दी। दो घन्टे तक यह नृशंस नर्तन होता रहा और पुलिस ने किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। ऐसा सुना जाता है कि वहां तैनात पुलिस को कोई भी कड़ी कार्रवाई न करने के लिये आदेश दिया गया था।

इस दुर्घटना से सारे देश में तहलका मच गया। कलकत्ता के सम्भ्रान्त नागरिकों की एक सभा हुई और तय किया गया कि एक गैर-सरकारी समिति गठित की जाय जो उस दिन की घटना के विषय में तथ्य संग्रह करे। क्योंकि सरकार की ओर से इस दिशा में सर्वथा मौन एवं निष्क्रियता व्यक्त की जाती रही। श्री शैलावगुप्त आई० सी० एस० अधिकारी, इसके संयोजक नियुक्त किये गये। तब कहीं जाकर सरकार को शर्म सी आई और उसने पुलिस को इस विषय में जांच करने के आदेश दिये। घटना के बाद पुलिस ने जांच की और दस पृष्ठों की एक रिपोर्ट ज्योति बसु को सौंप दी।

यह बात उल्लेखनीय है कि जिन घरों में जाकर पुलिस ने पूछ-ताछ वहां की, संवाददाताओं को नहीं जाने दिया गया। किन्तु विख्यात फिल्म निर्माता देवकी बोस के घर पर किसी प्रकार चतुराई से कुछ संवाददाता पहुंच गये। कहते हैं कि पुलिस वालों को देखते ही उनके मुख से निकल गया 'हरि बोल।' उन्होंने पुलिस को बताया कि वे बीस रुपये का अतिथि टिकट लेकर वहां गये थे। उनका कहना था कि चारों ओर आर्त चीत्कार सुनाई देती थी। बचाओ बचाओ की आवाजें आती थीं। आग, लूट, छीना-झपटी और महिला-मर्दन यह सब उन्होंने देखा और फिर मूर्छित हो गये। जब होश आया तो वे उस समय अपने घर में विश्राम कर रहे थे।

देवकी बोस से पूछताछ खत्म होते ही पुलिस अफसरों ने संवाद-दाताओं को चेतावनी दी कि अब वे उनके साथ किसी अन्य के घर पर नहीं जा सकेंगे। किन्तु कुछ संवाददाता स्वयं तथ्य संग्रह करने के उद्देश्य से अनेक मकानों में गये और अनेक महिलाओं ने उन्हें वह सब बताया जो उनकी आंखों के सम्मुख हुआ था। उस सबको लिखना तो अपनी लेखनी को भी कलुषित करना कहायेगा। परन्तु पुलिस कमिश्नर ने अपने आका बसु को जो प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है, उसमें महिला मर्दन, लूट-पाट, छीना-झपटी

आदि की एक भी घटना का उल्लेख नहीं है। विपरीत इसके इन सब बातों को निराधार बताया गया है। कम्यूनिस्ट आकाओं के इस कुकृत्य का पर्दाफाश करने के लिये १८ अप्रैल के टाइम्स आफ इन्डिया में कलकत्ता की तीन सम्भ्रान्त महिलाओं प्रतिभा मुखर्जी, पत्रलेखा भट्टाचार्य और अन्जलि सरकार का पत्र प्रकाशित हुआ है, जो इन दुष्कृत्यों की पुष्टि करता है।

न केवल कलकत्ता की जनता ही अपितु सभी देशवासियों को इस प्रतिवेदन से आश्चर्य हुआ और वे अवाक् हैं। सभी यह जानते हैं कि पुलिस ने लीपापोती की है और मामले को छिपाने का कुकृत्य किया है। उसी प्रतिवेदन के आधार पर उनके आका ज्योति बसु ने कह दिया था कि आरोपों की पुष्टि न होने के कारण वह जांच आयोग बिठाने के पक्ष में नहीं हैं। १५ अप्रैल को उसने वह वक्तव्य दिया और फिर अकस्मात् अज्ञात कारण से पैंतरा बदला और १६ अप्रैल को घोषणा प्रसारित हुई कि जांच आयोग नियुक्त किया जा रहा है। बसु के इस छिछोरेपन और दस दिन की कुम्भकर्णी निद्रा को देख कर हमारे सन्देह की पुष्टि होती है कि कहीं राज्य सरकार और गुण्डों में सांठ-गांठ तो नहीं थी?

इसी प्रसंग में यह भी लिख देना अनुपयुक्त नहीं होगा कि इससे पूर्व भी दो दुर्घटनायें पश्चिमी बंगाल में हुई हैं दुर्गापुर और काशीपुर में। काशीपुर गोलीकाण्ड के बारे में किसी निर्णय पर पहुंचाने की जो तत्परता पश्चिम बंगाल की कम्युनिस्ट सरकार ने दिखाई है, आश्चर्य और खेद की बात है कि उतनी हठधर्मिता उसने दस दिन तक रवीन्द्र सरोवर में घटित नितान्त लज्जाजनक काण्ड की वास्तविकता को अस्वीकार करने में दिखलाई। जनता के जान-माल की रक्षा का उत्तरदायित्व क्या काशीपुर गोली काण्ड के प्रसंग में ही था, रवीन्द्र सरोवर के हृदयविदारक दुष्कांड में नहीं? क्यों ज्योति वसु और उनके सहयोगी इस भयंकर गुण्डागर्दी पर पर्दा डालने का जी-तोड़ यत्न करते रहे?

पश्चिम बंगाल सरकार जनमत के आधार पर प्रतिष्ठित सरकार है। उसकी दृष्टि में जनता प्रत्येक प्रसंग में वर्गहीन और अविभाज्य रहनी चाहिये। केन्द्र से उसके मतभेद अस्वाभाविक नहीं कहे जा सकते, किन्तु उसका बदला बंगाल अथवा कलकत्ता की जनता से क्यों लिया जाय?

दुर्गापुर के बाद ही काशीपुर की वह दुःखद् घटना क्यों हुई, यह प्रश्न गम्भीर रूपेण विचारणीय है। शान्ति और व्यवस्था की रक्षा राज्य सरकार का अधिकारान्तर्गत विषय है। किन्तु केन्द्र का भी उत्तरदायित्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उस पर तो सारे राष्ट्र की रक्षा का उत्तरदायित्व है।

काशीपुर के सैनिक सामग्री बनाने वाले केन्द्रीय कारखाने के सुरक्षाकर्मचारी प्रतिरक्षा नियमों के अन्तर्गत कार्य करते हैं। उनके विरुद्ध कार्यवाही भी इन्हीं नियमों की दृष्टि में रखते हुए होनी चाहिये। पश्चिमी बंगाल सरकार का हित इसी में है कि वह केन्द्र से संघर्ष की अपेक्षा सहयोग की प्रवृत्ति अपनाये।

पश्चिमी बंगाल सरकार आज कल जिस आवेश में है, उससे स्पष्ट होता है कि जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व को अनुभव करना उसने अभी नहीं सीखा। मार्क्सिस्ट बसु और उसकी चौहद्दी के प्राणी आज भी आन्दोलन को ही प्रशासन मान कर चलना चाहते हैं और चल रहे हैं। इसे हम राजनीतिक वयस्कता एवं सूझबूझ की संज्ञा नहीं दे सकते। वास्तव में आन्दोलन और प्रशासन परस्पर पूरक होने की अपेक्षा परस्पर नितान्त विरोधी हैं। कहते हैं कि जब लाल क्रान्ति सफल हुई थी तो उस समय लेनिन ने अपने सहयोगियों को कड़े शब्दों में हिदायत दी थी कि–'नाव डूबने का युग आज समाप्त होता है। क्यों कि शासन की जिम्मेदारी के रूप में नाव खेने का युग अब हमारा आह्वान कर रहा है।' माओत्से तुंग ने इससे भी अधिक कठोर शब्दों में, लाल रक्षकों की मार्गभ्रष्टता और शासन में उनके द्वारा हस्तक्षेप की घटनाओं की भर्त्सना करते हुए, गत अप्रैल में एक फरमान जारी करते हुए कहा था कि "आन्दोलन प्रशासन का स्थान नहीं ले सकता। प्रशासन में हस्तक्षेप करने वाले आन्दोलन को कुचल दिया जावेगा।"

केन्द्र से नाराजगी के विषय में पश्चिमी बंगाल सरकार स्वयं ही अंधेरे में टटोलती सी दिखाई दे रही है। वह अभी सोच नहीं पा रही कि इस नाराजगी के औचित्य को वह कानून का कौन सा जामा पहिना कर प्रकट करे। और उसकी यह झुंझलाहट ही इन दिनों ज्योति बसु की जिह्वा से दाँव-पेच की अनर्गलता का प्रकटीकरण करवा रही है।

ज्योति बसु और उसके अनेक साथियों को अनेक बार यह कहते सुना जाता है कि उनकी सरकार जनता द्वारा स्थापित अथवा निर्वाचित प्रतिनिधियों की सरकार है। किन्तु केन्द्र के विषय में उनका इस प्रतिनिधित्व से सोचने का दृष्टिकोण कहां विलोप हो जाता है। क्या केन्द्र की सरकार स्वयम्भू एवं स्वच्छन्द सरकार है? उसे भी जनता द्वारा जनता के प्रतिनिधियों ने निर्वाचित कर उस पद पर प्रतिष्ठित किया है। तो उसकी अवहेलना क्यों? यदि बसु की सरकार जनता द्वारा निर्वाचित सरकार है तो केन्द्र की सरकार भी उन्हीं अर्थों में उसी प्रसंग में जनता द्वारा निर्वाचित सरकार ही है। पश्चिमी बंगाल की जनता ने अपनी मर्जी से जो प्रतिनिधि चुने हैं, उनका कर्त्तव्य हो जाता है कि वे मतदाताओं की सुख-सुविधा को ही अपना एकमात्र लक्ष्य बनाएँ।

संयुक्त मोर्चे को राज्य की जनता ने इस लिये सत्ता नहीं सौंपी है कि वह केन्द्र के विरुद्ध संघर्ष के लिये व्यूह रचना में ही अपना समय नष्ट करे। काशीपुर के गोली काण्ड के बाद बगाल सरकार को सामान्य स्थिति बनाये रखने के लिये और भी सजग और सतर्क रहना चाहिये था। और उसका यह भी कर्तव्य था कि केन्द्र द्वारा नियुक्त जांच आयोग को पूर्ण सहयोग दे न कि उसका विरोध करे। किन्तु उल्टी बुद्धि वाली कम्युनिस्ट सरकार ने स्वयं ही आन्दोलन का मार्ग ग्रहण किया। १० अप्रैल को पश्चिम बंगाल में रेल, विमान तथा डाक तार सेवायें ठप्प कर दी गईं। ये सेवायें केन्द्रीय सेवायें हैं किन्तु रेल गाड़ियों एवं विमानों के यात्रियों की सुरक्षा के लिये राज्य सरकार द्वारा पुलिस व्यवस्था से इन्कार करने पर इन्हें स्थगित करना पड़ा। क्या पश्चिम बंगाल कोई दूसरा स्वतन्त्र देश है जहां रेल विमान आदि की केन्द्रीय सेवायें संयुक्त मोर्चे की सरकार की कृपा तथा सहमति से चल सकती हैं? यह आज का प्रमुख प्रश्न है? संयुक्त मोर्चा सरकार ने स्वयं ही हड़ताल का आयोजन तथा उसका नेतृत्व कर चौबीस घटों तक राज्य को निष्प्राण तथा निश्चेष्ट बना दिया। लगभग ७ करोड़ रुपये की क्षति उस एक दिन की हड़ताल के परिणाम स्वरूप आंकी जाती है।

गृहमन्त्री ने लोक-सभा में कहा है कि केन्द्र सभी राज्य सरकारों के साथ सहयोग करेगा किन्तु कोई जबरदस्ती उससे अपनी मांगे नहीं मनवा सकता। क्या हम आशा करें कि केन्द्रीय सरकार की यह दृढ़ता उसके कार्यों में भी चरितार्थ होगी? भारत के पूर्वी अंचल से विघटन और विस्फोट की ज्वालायें सिर उठा रही हैं। चीन और पाकिस्तान का इनको समर्थन प्राप्त है। इस स्थिति में किसी की सन्तुष्टि के लिये केन्द्र को अपने अधिकार त्याग नहीं देने चाहियें। यदि किसी राज्य में शान्ति तथा सुव्यवस्था ठप्प होने लगे तो सीधे हस्तक्षेप करना भी उसका कर्तव्य है। खतरे की घंटी बारम्बार चेतावनी दे रही है कि केन्द्र शक्तिशाली बने। अन्यथा हमें सन्देह है कि कहीं भारत में भी पाकिस्तान की सी स्थिति उत्पन्न न हो जाय। सरकार को चाहिये, इस संकट की घड़ी में वह सभी राष्ट्रीय राजनीतिक दलों से सहयोग की अपील करे और उनके प्रति सद्भावना का व्यवहार अपनाये। इसी में सरकार का भला है और राष्ट्र का भी।

शाश्वत वाणी के प्रबुद्ध पाठकों एवं शुभ चिन्तकों से विशेष निवेदन

१. शाश्वत वाणी का प्रकाशन विगत आठ वर्षों से निरन्तर हो रहा है। हम सगर्व कह सकते हैं कि इस अवधि में हम अपने पथ पर दृढ़तापूर्वक आगे आगे बढ़ते रहे हैं। विद्वान लेखकों के अनेक लेख भिन्न-भिन्न विषयों पर प्रकाशित हुए हैं और वे अपने-अपने विषय पर अनूठे सिद्ध हुए हैं।

२. इन वर्षों में हमने दो विशेषांक प्रकाशित किये हैं। एक 'शाश्वत समाज शास्त्र' तथा दूसरा 'भारतीय राजनीति विभिन्न कालों में'।

३. कई ग्रन्थ तथा लेख धारावाहिक रूप में भी प्रकाशित हुए हैं। यथा—

(क) हिन्दू-राष्ट्र के सजग साधक साहित्यकार श्री गुरुदत्त द्वारा रचित— धर्म संस्कृति और राज्य, इतिहास में भारतीय परम्परायें, उपनिषद् कथासार, महाभारत की कथायें, श्रीमद् भगवद्गीता आदि आदि।

(ख) वेदों के व्याख्याता, साधक सन्त स्वामी अनिर्वाण जी द्वारा रचित- वेद मीमांसा और दिव्य-जीवन के प्रसंग में।

(ग) प्रख्यात इतिहासज्ञ एवं राजनीति विशारद प्रो० बलराज मधोक की भारतीय राजनीति एवं भारतीय विदेश नीति।

(घ) कम्युनिज्म की कपाल-क्रिया कर्त्ता, प्रमुख इतिहासवेत्ता श्री सीता राम गोयल प्रणीत-कम्युनिज्म तथा स्वदेश-प्रेम, मानदण्ड मीमांसा, तत्त्व-शास्त्र तुलना, भारतीय संस्कृति के सारभूत सिद्धान्त।

इसके अतिरिक्त भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन में रत, श्री पुरुषोत्तम नागेश ओक, इतिहास और संस्कृति के अनुसंधान में ही अपने जीवन का सन्धान करने वाले स्व० पं० भगवद्दत जी, आर्य-समाज के प्रख्यात नेता एवं कुशल चिकित्सक पं० रामगोपाल शास्त्री, इतिहास सदन के संस्थापक श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार, ईसाई मिशनरियों के कुचक्र के प्रति सजग श्री ब्रह्मदत्त भारती, आदि आदि अनेक लेखकों की रचनायें पत्रिका में प्रकाशित होती हैं। वैदिक संस्थान के संस्थापक वेदव्रती स्वामी विद्यानन्द जी विदेह की लेखमाला "अस्तित्व की रक्षा" प्रकाशित हो रही है।

४. शाश्वत वाणी शाश्वत संस्कृति परिषद् की पत्रिका है। परिषद् का उद्देश्य है-शाश्वत सत्य का साक्षात्कार करना और उसके सनातनत्व की स्थापना में संलग्न रहना।

५. परिषद् ने पिछले वर्षों में निम्न ग्रन्थ भी प्रकाशित किये हैं-धर्म संस्कृति और राज्य, जवाहरलाल नेहरू एक विवेचनात्मक वृत्त, धर्म तथा समाजवाद, श्रीमद्भगवद् गीता एक विवेचना। हाल ही में एक अन्य कृति प्रकाशित हुई है-भारत गांधी नेहरू की छाया में।

६. तदपि बहुत कुछ करना अभी शेष है, परन्तु परिषद् के साधन सीमित हैं और उद्देश्य विस्तृत। हम अपने कार्य की गति बढ़ाना चाहते हैं। परन्तु अब ऐसा प्रतीत हो रहा है कि बिना अपने सहयोगी पाठकों के सक्रिय सहयोग के यह कार्य अति कठिन है। अतः हम कार्य को विस्तार देने के विचार से एक योजना प्रस्तुत कर रहे हैं। जो इस प्रकार है-

परिषद् के सहयोगी संरक्षक सदस्य बनाये जायें। प्रत्येक संरक्षक सदस्य को १०० रुपया देना होगा जो उनकी धरोहर होगी और जब भी वे चाहें अपनी राशि वापिस मंगवा सकेंगे।

संरक्षकों को लाभ :—१. प्रत्येक संरक्षक को आयुपर्यंत या जब तक वे संरक्षक बने रहेंगे पत्रिका निःशुल्क प्राप्त होती रहेगी।

२. परिषद् का प्रत्येक आगामी प्रकाशन संरक्षक सदस्य को बिना मूल्य प्राप्त होगा। इस चालू वर्ष में परिषद् लगभग २५ रुपये मूल्य के प्रकाशन प्रकाशित करेगी। अतः इस एक वर्ष की अवधि में उनको २५ रुपये (लगभग) मूल्य की पुस्तकें तथा ५ रु० वार्षिक मूल्य की पत्रिका, कुल ३० रुपये का लाभ होगा तथा इस प्रकार का लाभ उनको तब तक मिलता रहेगा, जब तक वे संरक्षक बने रहेंगे।

३. पदिषद् के अब तक प्रकाशित ग्रन्थ संरक्षकों को तीन चौथाई मूल्य पर प्राप्त हो सकेंगे।

४. उनका १०० रुपया उनकी धरोहर है। जब भी वे चाहें, अपना धन वापिस ले सकते हैं। इस प्रकार उनको कोई भी हानि नहीं होगी।

हमें विश्वास है हमारे सहयोगी पाठक हमारे इस आयोजन में सहयोग प्रदान करेंगे और न केवल स्वयं संरक्षक बनेंगे, अपितु अपने मित्रों तथा परिचितों को भी इसके लिए प्रेरित करेंगे।

परिषद् के प्रत्येक संरक्षक का नाम, पता तथा चित्र यदि उनको आपत्ति न होगी तो पत्रिका में प्रकाशित किया जायेगा। अतः अपना धन भेजते समय कृपया अपना परिचय तथा अपना चित्र अवश्य भेजें। धन मनीआर्डर द्वारा अथवा ड्राफ्ट द्वारा 'शाश्वत वाणी' को भेजा आ सकता है।

भारतीय संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा रंजनाविन एवं शक्तिपुत्र मुद्रणालय, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

जून १९६९ वर्ष ६ अंक ... रजि० क्र० ६६८९/६०

शाश्वत वाणी

ऋ॒तस्य॒ सानु॒मधि॑ चक्रमा॒णाः रि॒हन्ति॒ मध्वो॑ अ॒मृत॑स्य॒ वाणीः॑ ॥
ऋ०-१०-१२३-१

विषय-सूची

१. सम्पादकीय	—	३
२. अन्तर्राष्ट्रीय हलचल	श्री आदित्य	६
३. महात्मा गांधी और अफगानिस्तान	श्री सचदेव	१६
४. संरक्षक सदस्य	—	२१
५. वीर सावरकर और हिन्दुत्व	श्री शिवकुमार गोयल	२२
६. अस्तित्व की रक्षा (१०)	श्री स्वामी विद्यानन्द विदेह	२५
७. हिन्दू	श्री निरंजन मुखोपाध्याय	२८
८. ईसा व बुद्ध	आचार्य भोलादत्त पाण्डेय	३६
९. समाचार समीक्षा	—	४७

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५० — सम्पादक
वार्षिक ५.०० — अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

हमारा राष्ट्र गीत

पुरी के शंकराचार्य जी महाराज के पटना के वक्तव्य से जहाँ छुआछूत का विचार उभरा है, वहाँ राष्ट्रगीत का प्रश्न भी सामने आ गया है।

छूआछूत पर उनके वक्तव्य के सम्बन्ध में बात तो न्यायालय में चली गई है। इस कारण उस विषय पर टीका-टिप्पणी करना उचित प्रतीत नहीं होता। इस विषय पर न्यायालय के निर्णय के उपरान्त ही कुछ लिखना उचित होगा। इस पर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि जो विवाद स्वामी जी के वक्तव्य पर उठाया गया है, वह इतना अछूतों को छूत बनाने के लिये नहीं था, जितना कि हिन्दु धर्म और एक धर्म गुरु को अपमानित करने के लिए था।

जहाँ तक राष्ट्र गीत का सम्बन्ध है, उस पर जन-गण-मन के समर्थकों ने स्वामी जी को जी भर कर कोसा है। स्वामी जी ने अपना मत बताया है। वह मत ठीक है अथवा गलत है, एक विचारणीय बात है। हम उनके मत के विषय में कुछ न लिखते हुए अपना मत बताना चाहते हैं।

राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गीत उस राजनीतिक दल के चिह्न होते हैं, जो किसी न किसी कारण से देश की राज्य सत्ता को प्राप्त कर लेते हैं। कभी ऐसा भी होता है कि वह राजनीतिक दल देश की और राष्ट्र की परम्पराओं का आदर कर अपने राष्ट्र चिह्न वे बना लेता है जो राष्ट्र को पसन्द होते हैं। वे भी राज्य परिवर्तन पर कभी बदल जाते हैं।

यदि यह ठीक है तो विचारणीय बात यह है कि जन-गण-मन किन परिस्थितियों में और किनके द्वारा राष्ट्रगीत बनाया गया था! क्या उस दल ने जिसने किसी न किसी प्रकार १५ अगस्त सन् १९४७ को भारत की सत्ता प्राप्त करली थी, राष्ट्र की भावनाओं और परम्पराओं का विचार कर इसे राष्ट्रगीत स्वीकार किया था?

यह गीत क्या है? इसकी विवेचना तो हम आगे चलकर करेंगे। यहां हम इस गीत को राष्ट्र गीत के रूप में स्वीकार करने के इतिहास का अवलोकन करना चाहते हैं। इसका अभिप्राय यह नहीं कि हम (जब तक यह गीत राष्ट्र गीत के रुप में स्वीकृत है) इसका सम्मान नहीं करना चाहते अथवा इसका अपमान करने के लिए कह रहे हैं। हमारा कहना यह है कि जब तक यह राष्ट्र गीत है तब तक इसका सम्मान करना प्रत्येक देशवासी के लिये आवश्यक है; परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि जब समय आये तब के लिये इसका विकल्प विचारणीय भी न हो।

विकल्प का समय आ सकता है। अधिकांश देशों में आता रहा है। इस देश में भी यदि कल को कम्युनिस्टों का राज्य हो जाता है तो अवश्य यह गीत और यह ध्वज बदल दिये जायेंगे। हम देशवासियों को यह बताना चाहते हैं कि जिस प्रकार वे किसी हिन्दु नेता के इस विषय पर विचार व्यक्त करने पर लाल-पीले होते हैं, कम्युनिस्टों के ऐसा करने पर उनके मुख में घुग्गियां पड़ जायेंगी।

यह विचारणीय है कि सन् १९४७ से पहले हमारा कोई राष्ट्र गीत था अथवा नहीं? अभी तो वे लोग जीवित हैं जो घर-घर में "वन्दे मातरम्" गाया जाता सुनते रहे हैं। कांग्रेस के अधिवेशनों में भी वन्दे मातरम् गाया जाता रहा है। आज भी 'आकाशवाणी' के प्रातः के कार्यक्रम को आरम्भ करने के समय यह गीत गाया जाता है।

कौन कह सकता है कि भारत का, १५ अगस्त सन् १९४७ से पहले कोई राष्ट्र गीत नहीं था? इस पर प्रश्न उत्पन्न होता है कि वह क्यों बदला गया? कौन सी आवश्यकता आन पड़ी थी कि उसको बदल कर एक ऐसा गीत जिसके अर्थों में मतभेद था और अब भी है, राष्ट्र के मुख में ठूंस दिया गया?

आइये, तनिक इतिहास के पन्ने उलटें। वन्दे मातरम् शब्द और गीत सन् १९०५ में भारत वर्ष के कोने-कोने में समझा और गाया जाता था। भारत माता की जय और वन्दे मातरम् पर्यायवाचक शब्द हैं और जहां भी इनको बोला जाता था, वहां इसे समझा भी जाता था।

बंकिम बाबू ने अपने उपन्यास 'आनन्द मठ' में इस शब्द का आविष्कार नहीं किया था, वरंच इस प्राचीन भारतमाता की वन्दना सूचक शब्द को लेकर अपने गीत में रख दिया था।

सन् १९१६ तक यह गीत राष्ट्रीय संस्थाओं के समारोहों पर गाया जाता था। कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों के अतिरिक्त सब राजनीतिक सभाओं में इसका गान होता था। लेखक को स्मरण है कि सन् १९०५ में लाहौर में एक स्वदेशी सम्बन्धी हुई सभा में यह गीत स्वर्गीय पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर द्वारा गाया गया था। सभा के प्रधान कांग्रेस के सदस्य लाला हर किशन लाल थे। वक्ता लाला लाजपतराय थे। उन दिनों के पन्जाब के एक अन्य राजनीतिक नेता लाला दुनीचन्द बैरिस्टर भी उस सभा में उपस्थित थे।

सन् १९०५ से १९२४ तक यह पूर्ण गीत राष्ट्र गीत के रूप में पूर्ण देश में गाया जाता रहा था। कांग्रेस के अधिवेशनों में राष्ट्र गीत गॉड सेव दि किंग' (ब्रिटिश राष्ट्र गीत) गाया जाता था। सन् १९१६ से वहां भी वन्दे मातरम् को स्थान मिल गया था।

सन् १९२४ में जब मौलाना मुहम्मद अली कांग्रेस के प्रधान बने, तब इस गीत के प्रथम दो चरण राष्ट्र गीत के रूप में स्वीकार किये गये और तब से वे दोनों चरण कांग्रेस के अधिवेशन के आरम्भ होने के समय गाये जाते रहे।

सुभाष चन्द्र बोस के कांग्रेस का प्रधान बनने पर भी जन-गण-मन इस गीत का स्थानापन्न नहीं माना गया। एक बात यहाँ समझ लेनी चाहिए कि हिन्दु परम्परा के अनुसार भक्ति गीत समारोह के आरम्भ में ही गाया जाता है, अन्त में नहीं। अतः राष्ट्र गीत समारोह के आरम्भ में ही गाया जाता था।

मौलाना मुहम्मद अली के प्रधानत्व में इस गीत के शेष भाग को क्यों निकाला गया? जो लोग तत्कालीन राजनीति का ज्ञान रखते हैं, यह जानते हैं कि मुसलमानों ने सन् १९१६ में अपने सहयोग का जहाँ यह मूल्य पाया था कि एक अयुक्तिसंगत अराष्ट्रीय समझौता करने पर हिन्दुओं को विवश किया, वहाँ सन् १९२४ में राष्ट्र गीत के विभाजन का मूल्य भी पाया। कांग्रेस को मुसलमानों के सहयोग की आवश्यकता अनुभव हुई थी और अन्य अराष्ट्रीय

कार्यों के साथ उन्होंने इस गीत को विखण्डित करने का दुस्साहस किया।

इस पर भी यह गीत (प्रथम दो पद) राष्ट्र गीत के रूप में सन् १९४६ तक चलता रहा। तदनन्तर सन् १९४७ में प्रचलित राष्ट्र गीत को हटा कर जन-गण-मन बना दिया गया।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि सन् १९४६ से १९४८ तक मुसलमानों द्वारा किये गए हत्याकाण्डों से भयभीत कांग्रेस मुसलमानों को प्रत्येक प्रकार से प्रसन्न करना चाहती थी। सन् १९४६ से जितने भी हिन्दुओं के हत्याकाण्ड मुसलमानों ने किये, कांग्रेसियों ने अमृत मान पी लिये और देश में साढ़े चार करोड़ अवशिष्ट मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिये वन्दे मातरम् को राष्ट्रीय गीत के पद से च्युत कर 'जन-गण-मन' को प्रतिष्ठित कर दिया।

हमारा यह कहना है कि 'जन-गण-मन' राष्ट्रीय भावना का अपमान कर राष्ट्र के गले में ठूंसा गया है। जिस समय भी हिन्दु के मन में अपनी राष्ट्रीय भावनाओं के लिये मान उत्पन्न होगा, निश्चय ही राष्ट्र गीत का प्रश्न पुनः समक्ष आयेगा। अतः यह विचार कि वर्तमान राष्ट्रीय गीत एक विशेष स्थिति में मुसलमानों की धींगा-मस्ती से डर कर स्वीकार किया गया है, विचारणीय बन जायेगा।

प्रश्न यह है कि मुसलमान इस गीत के विरुद्ध क्यों हैं? वे कहते हैं कि इस गीत से उनकी मज़हबी भावनाओं को ठेस पहुंचती है। यह बात मिथ्या है। गीत के उन चरणों में जिसे राष्ट्रगीत के रूप में स्वीकार किया जा चुका था और जिसे १५ अगस्त की रात को बारह बजे स्वतंत्र भारत के संसद की प्रथम बैठक के आरम्भ में श्रीमती सुचेता कृपलानी ने गाया था, कुछ भी इस्लामी भावनाओं के विरुद्ध नहीं है। वास्तविक बात यह है कि मुसलमानों को भारतमाता की वन्दना पसन्द नहीं थी और हमारे कांग्रेसी नेता उनकी इस अराष्ट्रीय भावना के समक्ष झुक गये थे। यह है जन-गण-मन के राष्ट्रीय गीत स्वीकार होने का इतिहास, जो नितान्त लज्जाजनक है।

परन्तु क्या मुसलमान इससे सन्तुष्ट हो, राष्ट्रीय जीवन में एक हो गये हैं? क्या उनका मजहबी समुदाय अभी भी देश के राष्ट्र से अपने को पृथक नहीं रखे हुए? कभी यह विषय भी विचारणीय होगा।

देश का संविधान बदला जा सकता है। वर्तमान संसद तो नागरिकों के मूलाधिकारों को भी बदलने पर हठ कर रही है। भला यह संसद किस मुख से कह सकती है कि संविधान का यह भाग जिसमें राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रीय गीत है, अपरिवर्तनीय है। आज संसद में उन लोगों का बहुमत है, जो मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिये प्रत्येक प्रयत्न करते रहते हैं। किन्तु कभी

स्थिति इसके विपरीत भी हो सकती है।

इस संदर्भ में तनिक जन-गण-मन राष्ट्रीय गीत का भी विश्लेषण कर दिया जाय तो बात स्पष्ट हो जाएगी।

हिन्दुस्तान साप्ताहिक के ४ मई के अंक में डाक्टर इन्द्रनाथ चौधरी का एक लेख जन-गण-मन एक राष्ट्रीय प्रार्थना गीत' के शीर्षक से छपा है। आप लिखते हैं कि यह गीत सम्राट जार्ज पंचम की स्तुति में न होकर मानव-भाग्य विधाता का वन्दन है। इस लेख के पाठ से निम्न बातों का पता चलता है:—

(१) यह गीत उस समय लिखा गया था जब कि दिल्ली में जार्ज पंचम का दरबार हो रहा था।

(२) यह कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन के दूसरे दिन गाया गया था। पहले दिन क्या गाया गया था, यह विज्ञ लेखक ने नहीं लिखा। पहले दिन 'गॉड सेव दि किंग' गाया गया था।

(३) कांग्रेस के अन्तिम दिन एक अन्य गीत गाया गया, जो इंगलैंड के सम्राट की प्रशस्ति थी।

(४) 'दि बंगाली' पत्रिका, जिसके संपादक सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी थे और जो कांग्रेस के संयोजकों में थे, ने इस गीत को देश-प्रेम का गीत कहा था?

सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी वही थे जो यह कहते थे :—

"हम भारत में ब्रिटिश शासन के स्थायित्व की सिफारिश करते हैं।"

यह वाक्य उन्होंने १९०२ के अहमदाबाद कांग्रेस के अध्यक्ष पद से कहा था। (प्यारेलाल द्वारा लिखित 'महात्मा गांधी : अर्लि फेज़" से उद्धृत।)

पञ्जाबी की कहावत है कि "चोर दा गवाह डड्डू'। श्री सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी का देश-प्रेम और वास्तव में तत्कालीन काँग्रेस का देश-प्रेम और ब्रिटिश राज्य-भक्ति पर्यायवाचक थे।

(५) उस समय के 'इंग्लिश मैंन' पत्र तथा 'स्टेट्स मैन' पत्र ने इस गीत को जार्ज पञ्चम की प्रशस्ति माना था और लिखा था कि श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने यह गीत विशेष रूप में इसी उद्देश्य से लिखा था। 'रायटर' का समाचार भी यही था कि जार्ज पञ्चम की प्रशस्ति में गाये गीत से अधिवेशन आरम्भ हुआ।

(६) सन् १९३७ में 'जन-गण-मन' गीत को राष्ट्रीय गीत स्वीकार करने का मौलाना आजाद, जवाहर लाल नेहरू इत्यादि लोगों ने यत्न किया था। परन्तु इसे जार्ज पञ्चम की प्रशंसा में लिखित मान छोड़ दिया गया।

सन् १९३७ में ठाकुर रवीन्द्र नाथ जी ने जवाहर लाल को यह सम्मति दी थी कि वन्दे मातरम् को ही राष्ट्रीय गीत माना जाये।

ये सब तथ्य श्री चौधरी जी के लेख में से उभर रहे हैं। यह ठीक है कि जब सन् १९३७ में विवाद छिड़ा कि क्या जन-गण-मन राष्ट्रीय गीत हो अथवा वन्दे मातरम् ही रखा जाये, तब ठाकुर रवीन्द्रनाथ ने यह कहा था कि यह गीत जार्ज पञ्चम की प्रशंसा में नहीं लिखा गया है।

भला कौन कह सकता है कि रवीन्द्र नाथ ठाकुर जैसा बड़ा व्यक्ति कुछ गलत बात कह सकता है? परन्तु क्या इस स्पष्टीकरण की आवश्यकता इस कारण नहीं पड़ी कि गीत के अर्थ स्पष्ट नहीं हैं। इसमें भ्रम हो सकता है।

गीत के शब्द द्वयर्थक हैं। जिस स्थिति में यह गाया जाए, वैसे ही वहां अर्थ दे सकता है और सन् १९११ की कांग्रेस जिसमें वे लोग संयोजक थे, जिनके विषय में श्री प्यारेलाल नीचे लिखी बात कहते हैं, इस गीत के क्या अर्थ लेते होंगे, स्पष्ट है। श्री प्यारेलाल अपनी इसी पुस्तक में लिखते हैं:—

The first generation of the Congress patriarches had accepted the British rule in India as a sort of divine dispensation.

इन प्रथम कांग्रेस के कुलपतियों में सर फिरोज़ शाह महता, महादेव गोविन्द रानाडे, सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी, गोपाल कृष्ण गोखले इत्यादि नेता गण थे और सन् १९११ में ये ही लोग सत्ताधारी थे। ये लोग श्री बाल गंगाधर तिलक (जो स्वराज्य को अपना जन्म सिद्ध अधिकार मानते थे) और उनके साथियों के घोर विरोधी थे। जब तक इनका बस चला, इन्होंने स्वराज्य की इच्छा करने वालों को कांग्रेस में नहीं घुसने दिया। यह सन् १९१४ तक चला।

इसके साथ यह भी विचारणीय है कि सन् १९४७ में जब जवाहरलाल ने इस गीत को राष्ट्रीय गीत के रूप में प्रस्तावित किया था, तो क्या उनके मन में यह विचार था कि मानव-भाग्य-विधाता (परमात्मा) कहीं पर है?

हमारा यह सुनिश्चित मत है कि वन्दे मातरम् गीत की तुलना में जन-गण-मन एक 'थर्ड रेट' गीत है। इसके अर्थ स्पष्ट नहीं हैं। यह रचा उस समय गया, जब कांग्रेस में देश-प्रेम का अर्थ ब्रिटिश राज्य प्रेम था और इसको मान्यता तब मिली, जब कांग्रेसी नेता मुसलमानों के सामने घुटने टेकने पर तैयार हो गए।

वन्दे मातरम् भारत मां की वन्दना का गीत है और जन-गण-मन किसी की प्रशंसा में है, जिसके विषय में मतभेद है। संदिग्ध अर्थों वाला राष्ट्र गीत नहीं होना चाहिये। यह हमारा मत है, परन्तु इसके लिये अभी समय नहीं। देश में राष्ट्रीय भावना का अभाव है। जब अभाव मिटेंगे तब अनेकों अन्य विषयों के साथ यह भी विचारणीय होगा। ●

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

श्री आदित्य

विद्यार्थियों का आन्दोलन

वैसे तो विद्यार्थियों में हलचल यूरोप, अमेरिका, जापान, भारत इत्यादि सब देशों में दृष्टिगोचर हो रही है, परन्तु इसका उग्र रूप भारत और अमेरिका में ही दिखाई दे रहा है। अमेरिका में विद्यार्थियों के आन्दोलन का केन्द्र हारवर्ड विश्वविद्यालय बन गया है। भारत में आजकल विद्यार्थी हैदराबाद और गुजरात में विशेष हलचल मचा रहे हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार में कुछ शान्ति प्रतीत होती है।

विद्यार्थियों की हलचल का सम्बन्ध केवल विश्वविद्यालयों की भीतरी व्यवस्था से ही नहीं, वरंच देश की सामान्य स्थिति से भी है। जब भी वर्तमान स्थिति से किसी प्रकार का असन्तोष देश में फैलता है, विद्यार्थी उस असन्तोष में सम्मिलित हो जाते हैं और अपनी आयु, अनुभव और ज्ञान के अनुकूल आन्दोलन में भाग लेने लगते हैं। उदाहरण के रूप में हैदराबाद के विद्यार्थी तेलंगाना आन्दोलन में उग्र भाग ले रहे हैं। हारवर्ड विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के विषय में यह कहा जाता है कि वे अमेरिकन समाज की उतनी ही निन्दा करते हैं, जितनी कि पीकिंग के समाचार-पत्र कर रहे हैं। हारवर्ड में भी इस प्रकार के समाघोष दिये जा रहे हैं जैसे किसी भी कम्युनिस्ट देश में शासकों के विरुद्ध दिये जा सकते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि संसार भर के छात्र-आन्दोलन कम्युनिस्टों की विचारधारा के प्रभाव में कार्य कर रहे हैं। कुछ मास पूर्व का भारत में बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय का झगड़ा वास्तव में कम्युनिस्ट और गैरकम्युनिष्ट विद्यार्थियों में ही था। तेलंगाना का झगड़ा भी कम्युनिस्टों का उठाया हुआ है। कम्युनिस्टों ने वहां की कही जाने वाली आदिवासी जातियों को भड़काया, उनको हथियार दिलवाये और फिर आस-पास के धनी-मानी लोगों को लूटने के लिए उत्साहित किया। इस आदिवासियों के झगड़े को हैदराबाद विश्व-

विद्यालय के विद्यार्थियों ने अपना समाघोष बना मार-काट करनी आरम्भ कर दी।

जापान में भी विद्यार्थी शिक्षा सम्बन्धी बातों में परिवर्तन के लिये झगड़ा नहीं करते, जितना कि अमेरिका की नीति के विरुद्ध झगड़ा करते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि विश्वविद्यालयों में भी विद्यार्थियों के आन्दोलन शिक्षा अथवा व्यवस्था सम्बन्धी इतने नहीं, जितने कि देश में राजनीतिक विषमताओं के विषय में हैं।

इस परिस्थिति का हमारा विश्लेषण यह है कि ये सब झगड़े कारखानों में मजदूरों से चलाये हुए, कार्यालयों में कलर्कों से चलाये हुए, विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों से चलाये हुए प्रायः प्रजातन्त्रात्मक पद्धति की उपज हैं। यह तथ्य है कि प्रजातन्त्रात्मक पद्धति की उपज कम्युनिज्म है और कम्युनिज्म की उपज मूर्खता एवं उद्दण्डता है। प्रजातन्त्रात्मक पद्धति के गुण भी हैं। यह पद्धति शासकों को बदलने में एक सुगम उपाय प्रस्तुत करती है। परन्तु इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि यह पद्धति अनाधिकारियों को अधिकार प्रदान करती है। जब किसी अनाधिकारी के हाथ में शासन की बागडोर आ जाती है तो वह अपने शासन को सुदृढ़ करने के लिये अनाधिकार युक्त एवं असंवैधानिक उपाय प्रयोग करने लगता है। एक उपाय है मतदाताओं को घूंस देकर मत प्राप्त किये जायें। यह उपाय प्रजातन्त्रात्मक पद्धति के प्रत्येक काल में प्रयोग होता रहा है। भारत में यह उपाय सन् १९५२ से चार पंचवर्षीय निर्वाचनों और मध्यावधि निर्वाचनों में उत्तरोत्तर अधिक और अधिक प्रयोग में लाया जा रहा है। जिस-जिस स्थिति का मतदाता होता है, उसके अनुकूल ही घूंस दी जाती है। किसी निर्धन को दो-चार रुपये देकर मत प्राप्त कर लिया जाता है। मध्य स्थिति के मतदाताओं को शराब, चरस और अफीम आदि बांटनी पड़ती है। उससे ऊपर के स्तर के लोगों के लिये नौकरियां, ठेके, परमिट इत्यादि दिये जाते हैं और उससे भी ऊपर धनी-मानियों के लिये लाखों रुपये की रियायत सरकार की ओर से दिलवायी जाती है अथवा देने का वचन दिया जाता है।

प्रजातन्त्रात्मक पद्धति में अनाधिकारियों के लिये मत प्राप्त करने का एक सामूहिक उपाय भी प्रयोग किया जाता है। यह उपाय आजकल पश्चिमी बंगाल में संयुक्त मोर्चे की सरकार प्रयोग कर रही है। पिछले मध्यावधि चुनाव के समय निर्धनों मजदूरों और भूमि विहीन किसानों के मत यह कह कर प्राप्त किये गये कि संयुक्त मोर्चे की सरकार उनकी सरकार होगी; अर्थात उनके अतिरिक्त समाज के अन्य लोगों की वह विरोधी होगी। सरकार बनने के उपरान्त संयुक्त मोर्चे ने सरकारी रूप में यह घोषणा कर दी है कि मजदूरों

निर्वनों के अपने मालिकों अथवा अधिकारियों से झगड़े के समय पुलिस हस्त-क्षेप न करे। उदाहरण के रूप में काशीपुर बन्दूकों की फैक्टरी में मजदूरों से झगड़ा होने पर पुलिस को गोली चलानी पड़ी और गोली से तीन व्यक्ति मारे गये। काशीपुर की बन्दूक-फैक्टरी-केन्द्रीय सरकार की सम्पत्ति है और वहां पर सैनिक नियमोपनियम लागू होते हैं। स्वाभाविक रूप में इस गोली चलने के विषय में कोर्ट मार्शल नियुक्त किया जाना था। कोर्ट मार्शल में सैनिक अधिकारी ही न्यायकर्ता होते हैं। केन्द्रीय सरकार ने कर्मचारियों के साथ न्याय के विचार से एक हाई कोर्ट के जज को जांच करने के लिये नियुक्त कर दिया, परन्तु बंगाल के संयुक्त मोर्चे की सरकार यह कहती है कि मज़दूरों के भले-बुरे के लिये वह ही उत्तरदायी है। इस कारण इस मामले का, उनकी सरकार के अधीन न्यायिक ही निर्णय करेंगे। बंगाल की सरकार को न तो कोर्ट मार्शल पर विश्वास है और न ही हाई कोर्ट के जज पर। कारण यह कि वे दोनों पूर्ण समाज के सामने उत्तरदायी हैं, केवल समाज के एक वर्ग के सामने नहीं और बंगाल की सरकार अपने को केवल मात्र एक वर्ग की सरकार मानती है।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि प्रजातन्त्रात्मक पद्धति में जहां यह दोष है कि मत प्राप्त करने के लिये अनाधिकारी लोग घूंस देते हैं, वहां यह भी दोष है कि अनाधिकारी लोग किसी एक वर्ग को विशेष अधिकार देकर मत प्राप्त कर लेते हैं। इसका एक अन्य उदाहरण भारत वर्ष में कांग्रेस प्रस्तुत कर रही है। उत्तर प्रदेश और बिहार के अनेक क्षेत्रों में पर्याप्त संख्या में मुसलमान मतदाता हैं। कांग्रेस उन मुसलमानों के मत प्राप्त करने के लिये उनको विशेष अधिकार और संरक्षण देने का वचन देती रहती है। कभी-कभी यह विशेष अधिकार तथा संरक्षण दूसरे सम्प्रदायों को हानि पहुंचाने वाले भी होते हैं, परन्तु उनको यह समझा कर मत प्राप्त कर लिये जाते हैं कि मुसलमान अल्प संख्या में होते हुए किसी को हानि तो पहुंचा सकते नहीं और देश को लाभ पहुंचेगा। यहां हमारा इस बात से प्रयोजन नहीं कि मुसलमानों को लाभ पहुंचेगा अथवा दूसरे सम्प्रदायों को हानि पहुंचेगी। हमारा कहने का यह अभिप्राय है कि प्रजातन्त्रात्मक पद्धति में अनाधिकारी लोग अनाधिकार युक्त और अवैधानिक उपाय प्रयोग कर अपनी स्थिति को सुदृढ़ करते रहते हैं। इसका सीधा परिणाम हो जाता है—न्याय और अन्याय एक ओर, तथा 'जिसकी लाठी उसकी भैंस।'

जिसकी लाठी उसकी भैंस ही वास्तव में कम्युनिज्म है। कम्युनिस्ट राज्यों

में शासक गुट्ट सेना और पुलिस को प्रसन्न रखकर पूर्ण जनता पर तानाशाही चलाता है। जिसकी लाठी उसकी भैंस का प्रदर्शन झूठ, फरेब से भी है। जो प्रभावी झूठ बोल सकता है अथवा धोखा दे सकता है, वह शासक बन जाता है। झूठ फरेब कम शिक्षितों, हीन बुद्धि वालों और निर्धनों के साथ सुगमता से चल जाता है। अतएव कम्युनिज्म इन तीनों प्रकार के लोगों का संरक्षक बन कर इनको धोखा तो देता ही है, साथ ही इनके बल से पूर्ण समाज पर शासन करता है।

हमने यह बताया है कि प्रजातन्त्रात्मक पद्धति से कम्युनिज्म उत्पन्न होता है और कम्युनिज्म का आधार धींगा-मस्ती है। धींगा-मस्ती करने वालों की संख्या बहुत थोड़ी होती है। ये लोग शेष बहुसंख्यक लोगों को धोखे में डाल धींगा-मस्ती करते हैं। अमेरिका का एक सप्ताहिक पत्र 'टाइम' इस विषय में लिखता है :—

'अमेरिका में विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों की संख्या ६७,००,००० से ऊपर है और ये दो हजार पांच सौ कालेजों में पढ़ते हैं। इनमें केवल दो प्रतिशत वे लोग हैं, जिनको उग्र माना जाता है। ये लोग झगड़ा करने और अव्यवस्था उत्पन्न करने में सफल हो रहे हैं।'

हमारा विचार है कि प्रजातन्त्रात्मक पद्धति अयोग्यों के हाथ में उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य सौंपने का नाम है। इससे कम्युनिज्म पनपता है और यह बीमारी संसार भर के विश्वविद्यालयों में फैलती जाती है। प्रजातन्त्रात्मक पद्धति का विकल्प क्या हो, यह एक पृथक प्रश्न है। वह विकल्प कैसे लाया जाये, एक अति जटिल समस्या बन गयी है। मनुष्य समाज में योग्य और अपना उत्तरदायित्व समझने वालों की संख्या बहुत कम है और बहुसंख्यक राज्य का अर्थ ही अयोग्यों का राज्य है।

विद्यार्थियों की समस्या का सम्बन्ध विश्वविद्यलयों में किसी प्रकार की अव्यवस्था एवं शिक्षा में त्रुटियों के साथ नहीं है। विद्यार्थी तो शिक्षा की त्रुटियों को समझने की योग्यता ही नहीं रखते और जो लोग अपने प्राध्यापकों से रुष्ट होकर नागरिकों की सम्पत्ति को विनष्ट करने को चल पड़ते हैं, वे किसी व्यवस्था के लिये लड़ रहे होंगे, कहना बुद्धि का दिवालापन मानना पड़ेगा।

अमेरिका की दुर्गति

पिछले वर्ष एक अमेरिकन नाविक जहाज प्यूबलो (Pueblo) को उत्तरी

कोरिया वालों ने पकड़ लिया था और पकड़ते हुए एक अमेरिकन की हत्या हो गयी थी। यह जहाज जासूसी का काम करता था। ऐसे जासूसी के काम सब जातियों ने अपनी-अपनी सुरक्षा के लिये चालू किए हुए हैं। इतना ध्यान रखते हैं कि वे किसी विदेशी भूमि के प्रभाव क्षेत्र के भीतर न जायें। उदाहरण के रूप में किसी देश के समुद्री किनारे से बारह मील के अन्तर तक प्रभाव क्षेत्र समझा जाता है। ये जासूसी के कार्य बारह मील के बाहर किये जाते हैं। यह कहा जाता है कि प्यूब्लो (Pueblo) इस सीमा से बाहर था और तब भी उत्तरी कोरिया वालों ने उसे जासूसी करने के अपराध में पकड़ लिया। यह घटना २२ जनवरी सन् १९६८ की है। लगभग एक वर्ष के उपरान्त बहुत चाराजोई करने पर जहाज छोड़ा गया था। इस वर्ष अप्रैल मास में एक अमेरिकन हवाई जहाज E C-१२१ जासूसी करता हुआ उत्तरी कोरिया वालों ने गिरा दिया है। इस पर ३१ आदमी सवार थे, वे सबके सब मारे गये हैं। जहाज के कुछ टूटे हुए टुकड़े उत्तरी कोरिया के तट से ९० मील की दूरी पर मिले हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि यह जहाज भी कोरिया के प्रभाव क्षेत्र से बाहर था और इसको मार गिराने का कार्य अनाधिकारयुक्त था। अमेरिका इस हानि और अपमान को भीतर ही भीतर पी गया है। यह ठीक है कि अमेरिका ने अपने जासूसी जहाजों को जापान सागर में जासूसी करने से मना नहीं किया और यह कहा है कि इन जासूसी जहाजों की रक्षा के लिये अमेरिका अधिक प्रभावी प्रबन्ध करेगा।

अमेरिका जापान सागर जो जापान द्वीपों और दक्षिण उत्तरी कोरिया के भीतर विद्यमान है, में जासूसी करने का अपना अधिकार मानता है। यह इस लिये कि दक्षिण कोरिया में ५६ हजार अमेरीकी सैनिक उस देश की रक्षा के लिये नियुक्त हैं और इन सैनिकों पर कहीं एकाएक हवाई जहाजों से अथवा भूमिगत सेनाओं से आक्रमण न हो जाये, इसकी देख-रेख के लिये जासूसी करना आवश्यक समझा जाता है। ऐसा करने का, अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार, अमेरिका का अधिकार है, परन्तु उत्तरी कोरिया इस छेड़-छाड़ से अमेरिका के साथ युद्ध में लिपट जाने के लिये व्याकुल मालूम होता है। अन्यथा इस प्रकार की यह दूसरी घटना न होती। अमेरिका के प्रधान श्री निक्सन ने यह रहस्योद्घाटन किया है कि प्रथम जनवरी से मध्य अप्रैल तक १९० बार ऐसी उड़ाने की गयीं। यह तो कोरिया ने अनाधिकार युक्त और अप्रत्याशित आक्रमण कर E C-१२१ को गिरा दिया है।

कोरिया अमेरिका के विरुद्ध एक दिन नहीं कर सकता। यह इस

प्रकार की हिमाकत इसलिये कर रहा है कि चीन और रूस इसके सहायक हैं। उत्तरी कोरिया यह समझता है कि अमेरिका के साथ युद्ध पर रूस और चीन दोनों उसकी सहायता करेंगे और अमेरिका इस बात को जानता है। यद्यपि E C-१२१ के अवशेषों की खोज में रूस ने भी सहायता की है, परन्तु इस सहायता का यह अर्थ नहीं लिया जा रहा कि रूस अथवा चीन कोरिया के इस कार्य की किसी प्रकार से भी निन्दा करते हैं।

कम्युनिस्ट शासक युद्ध इत्यादि से देश पर होने वाले विनाश से भयभीत नहीं होते। उनके विचार से विनाश से होने वाली हानि जनता की होती है और शासक सदैव बचे रहते हैं। अतएव वे इस प्रकार की उच्छृंखलतायें करते रहते हैं। एक प्रजातन्त्रात्मक देश में राज्य उन लोगों के हाथ में होता है, जिनकी युद्ध में अपनी हानि होनी होती है; अर्थात् सामान्य नागरिकों की। इस कारण वे शासकों को सदैव युद्ध से बचने का आग्रह करते रहते हैं। परिणाम यह होता है कि किसी भी प्रजातन्त्रात्मक देश की सरकार अपनी ओर से कोई ऐसा कार्य नहीं करती, जिससे युद्ध आरम्भ हो सके।

अमेरिका के कोरिया से दो बार युद्ध की चुनौती दिये जाने पर भी अमेरिका सहन कर गया है तो इस कारण कि अमेरिका की जनता युद्ध करने के पक्ष में नहीं है। पहले ही अमेरिका के पांच लाख से ऊपर सैनिक वियतनाम में युद्ध कर रहे हैं और अमेरिका के इस कार्य को लोग पसन्द नहीं कर रहे। यह तो सब कहते हैं कि वियतनाम में दोष उत्तरी वियतनाम वालों का है। वे बलपूर्वक दक्षिणी वियतनाम को अपने अधीन कर लेना चाहते हैं। अमेरिका दक्षिणी वियतनाम की उत्तरी वियतनाम से रक्षा के लिये गया हुआ है और उत्तरी वियतनाम को भरपूर सहायता चीन तथा रूस से मिल रही है। पैरिस में उत्तरी तथा दक्षिणी वियतनाम में सन्धि कराने का यत्न किया जा रहा है, परन्तु उत्तरी वियतनाम के गोरिल्ला सैनिक दक्षिणी वियतनाम पर छापे डाल रहे हैं। अमेरिका इसमें खुल कर भाग नहीं ले रहा। कारण यह कि संसार भर के सब देश यह समझ रहे हैं कि यदि अमेरिका ने उत्तरी वियतनाम पर खुलकर आक्रमण किया तो चीन और रूस भी आ डटेंगे और युद्ध उत्तरी और दक्षिणी वियतनाम में होने के स्थान अमेरिका और रूस तथा चीन में होने लगेगा। इससे युद्ध पूर्ण भूमण्डल में फैल जायेगा और किसकी जीत होगी अथवा हार होगी, कहना कठिन है। इस युद्ध का एक परिणाम होना अवश्यम्भावी है कि करोड़ों मानव मारे जायेंगे और कोई देश भी युद्ध

की लपट से बाहर नहीं रह सकेगा । इससे सब प्रजातन्त्रात्मक देश अमेरिका को कम्युनिस्टों की उच्छृंखलता चुपचाप पी जाने की प्रेरणा दे रहे हैं ।

कम्युनिस्ट देशों में जनता की आवाज न तो है और न कोई सुनता है । वहां शासक गुट्ट ही सब कुछ निश्चय करते हैं और शासक गुट्ट पूर्ण संसार की धन-सम्पद का भोग करना चाहते हैं । इस कारण कम्युनिस्ट शासक वर्ग तो यह चाहते हैं कि युद्ध हो जाये । भूमण्डल की पचास प्रतिशत से अधिक संख्या मानवों की समाप्त हो जाये । इसके साथ ऐटम बम के प्रयोग के उत्तर-प्रभावों से बीस-पच्चीस प्रतिशत लोगसन्तान-उत्पत्ति के अयोग्य हो जायें तो जो शेष बचें, वे ससार के असीम भोगों को भोग सकें । इन शेष बचे हुओं में कम्युनिस्ट शासक वर्ग निस्सन्देह होगा और वे भोगों का मुख्य भाग अपने लिये सुरक्षित कर सकेंगे ।

किस्सा वही पुराना है । आदि काल से चल रहा देवासुर संग्राम अभी भी चल रहा है । अनेकों देवासुर संग्राम हो चुके हैं और अनेकों बार असुर पराजित और पराभूत किये जा चुके हैं । इस पर भी अवसर पाते ही वे पुनः पनपते हैं । इस बार पुनः असुरों ने बहुत बड़ी तैयारी की है । देवता लोग भयभीत हैं । और असुर निःशंक आगे बढ़ते चले आ रहे हैं । संग्राम तो होगा, परन्तु विजय किसकी होगी, कहना कठिन है । इस समय असुर शक्तियां उन्नति कर रही हैं और फल-फूल रही हैं, परन्तु इनमें एक स्वाभाविक दोष है । वह है स्वार्थपरता का । कोई भी नास्तिक जो मनुष्य में किसी आत्म-तत्त्व का अस्तित्व नहीं मानता, वह अन्त में स्वार्थी बन जाता है और यह स्वार्थ ही उसका विनाश करने में समर्थ होता है ।

परन्तु नास्तिकों (असुरों) का विनाश तब होता है जब भले (देवता) लोग अमृत का पान कर निर्भय हो जाते हैं । अमृत पान का अभिप्राय आत्मवाद के कारणों और परिणामों को भली भान्ति समझना है ।

अमेरिका और अन्य प्रजातन्त्रात्मक देश, जो कम्युनिस्ट देशों की हुड़दंग बाजी को देख-देख कर कांप रहे हैं, वे वास्तव में इस अमृत का पान नहीं कर रहे. अन्यथा दैवी लोगों में एक उच्च और सदैव विजय होने वाली शक्ति रहती है । ज्यों ही इसका भास देवताओं को होता है, विजय उनका चरण चुम्बन करती है ।

महात्मा गांधी और अफ़गानिस्तान

श्री सचदेव

सन् १९६९ महात्मा गांधी की जन्म शताब्दि का वर्ष है । महात्मा जी का जन्म २ अक्टूबर सन् १८६९ में हुआ था । संसार भर के गांधी पंथी गांधी की प्रशस्तियां लिख रहे हैं । अतः हम भी इस महात्मा के विषय में कुछ लिखने के लोभ का संवरण नहीं कर सके

आरम्भ में ही हम यह बात प्रकट कर देना चाहते हैं कि हमारे विचार में श्री मोहनदास कर्मचन्द गांधी वास्तविक अर्थों में महात्मा थे । महात्मा उनको कहते हैं कि जो 'मनसा वाचा कर्मणा' एक समान हों । इस लक्षण से गांधी जी महात्मा उपाधि के सर्वथा उपयुक्त थे । आप कैसे महात्मा थे, इसके विषय में श्री जमुनादास एम० मेहता (भूतपूर्व विधि मन्त्री बम्बई १९३७-४० और जो किसी समय केन्द्रीय लैजिस्लेटिव कौंसिल में लाला-मालवीय दल के योग्य सदस्य थे) जो कुछ लिखे गए हैं वह हम लिख दें तो अधिक उपयुक्त होगा । 'गांधी-मुस्लिम कॉंस्पिरेसी के इन्ट्रोडक्शन में पृष्ठ ७ पर मेहता ने लिखा है :

Even a seasoned statesman like the late Sir Sankaran Nair, an ex—President of Indian National Congress was driven to refer to the Mahatma as, 'either a fool or a knave.' Personally I think there is no difference between a fool and a knave. A knave, in the long run, is a fool and a fool can do as much harm as a knave.

"स्वर्गीय सर शंकरन नायर जैसे सिद्ध राज नेता, जो एक समय इण्डियन नेशनल कांग्रेस के प्रधान भी रहे थे. इन महात्मा जी के विषय में कहने पर विवश हुए थे कि 'या तो वह मूर्ख है अथवा धूर्त ।' मैं तो दोनों में अन्तर नहीं मानता । धूर्त अन्त में मूर्ख ही सिद्ध होता है और मूर्ख भी उतनी ही हानि पहुंचा सकता है जितना कि धूर्त ।"

उसी लेख में श्री जमुनादास मेहता आगे चलकर लिखते हैं :-

It is unquestionable that the amazing elasticity of the Mahatma's mind and conscience makes say and do the most contradictory things. With the profound air of saintliness he will support two contradictory conclusions if that suits his purpose for the time being; in the eye of his admirers he increases his saintliness there by. With non-violence on his lips and in his pen he was acting as arecruiting sergeant for the British in the war (of 1914-1918.)

'यह बात निर्विवाद है कि महात्मा के मन और अन्तरात्मा की चमत्कारिक लचक उनसे अत्यन्त परस्पर विरोधी बातें कहाती और कराती रहती थी। वे सदा गम्भीर सन्तों के हाव-भाव बनाये रखते थे और अपने परस्पर विरोधी परिणामों का समर्थन करते रहते थे। इससे वे अपने प्रशंसकों की दृष्टि में अपने को अधिक सन्त प्रसिद्ध करते थे। मुख से और लेखनी से अहिंसा की रट लगाते हुए आप सन् १९१४-१८ के युद्ध में लड़ने के लिए सेना में भरती कर रहे थे।"

महात्मा जी के एक अन्य गुण के विषय में श्री जमुना दास मेहता इसी लेख में लिखते हैं :—

In order to secure the support of the Muslims he will pamper them to any extent. But the Muslims also like the British ers are not deceived. The Mahatma started with the support to Khilafat in 1920, and has continued this pampering for the next twenty years with ever increasing vigour. But the result was no better. In 1921, he got his reward in the Mopla atrocities in Malabar and in 1940 in the Sukkur Massacar in Sind with many intervals of similar atrocities in almost every part of India. But his infatuation has not ended. He had paraded before us the idea of Hindu-Muslim unity, as a part of Mahatma's constructive programme and also as the precurser of Swaraj. But we have instead of achieving the unity, very nearly achieved Pakistan and the champion of the Hindu-Muslim unity is now an avowed supporter of Pakistan if the Muslims had wanted it.

यह लेख सन् १९४१ में लिखा गया था। इस कारण इसमें पाकिस्तान बनने की सम्भावना प्रकट की गई है।

इसका अर्थ है —- मुसलमानों का समर्थन प्राप्त करने के लिए वे उनको प्रत्येक सीमा तक पुचकारते रहते थे। मुसलमान भी अंग्रेज़ों की भांति धोखे में नहीं आये। महात्मा ने मुसलमानों को पुचकारना आरम्भ किया सन् १९२० में खिलाफ़त के समर्थन से और उनका पुचकारना चलता रहा बीस वर्ष तक और उत्तरोत्तर अधिक और अधिक यत्न से। परन्तु परिणाम अच्छे नहीं हुए। सन् १९२१ में इस पुचकारने का पुरस्कार मिल गया मालाबार में मोपलों के नृशंसता के व्यवहार से और सन् १९४० में सिन्ध, सक्खर के हत्याकांड से। समय-समय पर इसी प्रकार के अत्याचार पूर्ण हिन्दुस्तान में होते रहे, परन्तु उनका मोह समाप्त नहीं हुआ। उन्होंने हमारे सम्मुख हिन्दु-मुसलमान ऐक्य का विचार रखा और इसे स्वराज्य से पूर्व आवश्यक माना। परन्तु इसके प्राप्त होने से पूर्व पाकिस्तान बनता दिखाई दे रहा है और अब ये हिन्दु मुसलमान ऐक्य के देवता पाकिस्तान के समर्थक प्रकट हुए हैं। वे कहते हैं कि जब मुसलमान इसे चाहते हैं, तो मिलना ही चाहिए।

श्री ए० जे० करन्दीकर ने महात्मा गांधी जी को एक खुला पत्र लिखा था।

इस पत्र का अवसर यह था कि सन् १९२१ में हिन्दुस्तान में गांधी जी द्वारा समर्थित खिलाफ़त आन्दोलन के कारण हलचल को देख पश्चिमोत्तरी सीमा प्रान्त और अफ़गानिस्तान में भी हलचल मच गई थी। इसकी सूचना तत्कालीन दिल्ली सरकार को मिली थी और २३-३-१९२१ को लैजिस्लेटिव असैम्बली के अधिवेशन में होम मैम्बर सर विलियम विन्सैण्ट ने उक्त हलचल का वर्णन करते हुए यह कहा था कि असहयोग के नेताओं में और सीमा पार के शत्रुओं में सीधा सम्बन्ध है।

इस वर्णन में सर विलियम विन्सैण्ट ने कहा था :—

Let us take the case of two prominent Muslims who identify themselves with the cause of Mr. Gandhi. Has it not been freely bruited, rightly or wrongly, that they conceive the idea of a Musalman Empire in this country ? Has it not even been said that they intend to effect this with the aid of foreign enemies ? Has it not even been said that they contemplate an invasion of this country by a foreign power with-

in a couple of months, which invasion Muslims inside the country are to aid ? If there is nothing in all these rumours, why was then this anxiety recently to prevent friendly negotiations being arranged between the Amir of Afghanistan and the British Government.

(Qtd. from Gandhi–Muslim Conspiracy, Page 3,)

इसका अर्थ है —आओ, हम गांधी के सहयोगी उन दो प्रमुख मुसलमानों की बात पर विचार करें। क्या यह खुले आम नहीं कहा जा रहा (सत्य अथवा झूठ) कि वे इस देश में इस्लामी राज्य स्थापित करना चाहते हैं ? क्या यह कहा नहीं जा रहा कि वे ऐसा ' एक विदेशीय शत्रुओं की सहायता से करने का विचार रखते हैं ? क्या यह कहा नहीं जा रहा कि वे दो-तीन महीनों में एक विदेशीय शक्ति से देश पर आक्रमण की कल्पना कर रहे हैं और जिस आक्रमण की देश के मुसलमान सहायता करेंगे ? यदि ये किंवदन्तियां असत्य हैं तो अमीर अफ़गानिस्तान के साथ मित्रतापूर्ण वार्त्तालाप को रोकने की चिन्ता क्यों की जा रही है ?

यह एक सरकारी अफ़सर का कथन था। अत: जब तक बाहरी प्रमाणों से सिद्ध न हो सके तब तक इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

गांधी जी ने इस सरकारी वक्तव्य को यह कह कर टाल दिया था कि यह हिन्दु-मुसलमानों में फूट डलवा कर राज्य करने की प्रवृत्ति है।

गांधी जी का यह कहना ठीक हो सकता था, परंतु जब दूसरे प्रमाण ढूंढे गये तो पता चला कि जो कुछ विलियम विन्सेंट ने कहा, वह सच्चाई से बहुत कम था। श्री करन्दीकर के विचार में सच्चाई यह है कि मौलाना मुहम्मद अली ने अफ़गानिस्तान के अमीर को हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया था और यह निमन्त्रण गांधी जी के कहने पर था।

श्री करन्दीकर अपने खुले पत्र में अपने विचार की पुष्टि में प्रमाण देते हैं।

'यंग इण्डिया' (४-५-१९२१) में एक अफहाद हुसैन का पत्र छपा था। उस पत्र में लिखा था :-

You know that Maulana Mohammed Ali has publicly declared from a platform in the Madras Presidency that he would assist the Amir of Afghahistan if he would come towards India against those who have emasculated Islam and who are in wrongful possession of the holy places etc.

आप जानते हैं कि मौलाना मुहम्मद अली ने सार्वजनिक रूप में मद्रास प्रान्त के एक स्थान से घोषित किया है कि यदि अफ़गानिस्तान के अमीर भारत की ओर उनका विरोध करने आये, जिन्होंने इस्लाम का शोषण किया है और जिन्होंने इस्लाम के पवित्र स्थानों पर अन्याय से अधिकार कर रखा है, तो वह उसकी सहायता करेगा।

इसके कुछ ही दिन बाद गांधी जी ने इलाहाबाद ज़िला कान्फरेन्स में यह कहा था :—

I cannot understand why the Ali Brothers are going to be arrested as the rumour goes, and why I am to remain free. They have done nothing which I would not do. If they had sent a message to the Amir, I also would send one to inform the Amir, that if he came, no Indian, so long as I can help it, would help the Government to drive him back.

Leader Allahabad 10-5-1921

Qtd. from Gandhi-Muslim Conspiracy, page 6

अर्थ हैं —- मैं समझ नहीं सकता कि अली भाइयों के पकड़े जाने की अफ़वाह क्यों है और मैं स्वतंत्र क्यों रहूँ ? उन्होंने कुछ नहीं किया जो मैं नहीं करना चाहता। यदि उन्होंने अमीर को कोई सन्देश भेजा है तो मैं भी एक भेजना चाहूंगा, जिसमें अमीर को बताना चाहूंगा कि यदि वह यहां आया तो जहां तक मेरा बस चलेगा, कोई हिन्दुस्तानी उसको देश से बाहर निकालने में (हिन्दुस्तान की) सरकार की सहायता नहीं करेगा।

स्वामी श्रद्धानन्द ने उन्हीं दिनों एक वक्तव्य दिया था। स्वामी जी रेल में कहीं यात्रा कर रहे थे कि उनको पता चला कि साथ के डिब्बे में मौलाना मुहम्मद अली बैठे हैं। वे भी वहां चले गये। उनके वहां जाते ही मौलाना साहब कहने लगे कि कई राजनीतिक नेता मुझे इस बात पर बुरा-भला कहते हैं कि मैंने काबुल के सुल्तान को यह संदेश भेजा था कि वह ब्रिटिश सरकार के साथ सुलह न करे।

स्वामी जी लिखते हैं : मैंने भी कहा कि यह सन्देश भेजना बुद्धिमत्ता की बात नहीं थी। इस पर मुहम्मद अली मुझे एक ओर ले गया और 'हैण्ड बैग' से एक पत्र निकाल कर दिखाने लगा। मैं आश्चर्यचकित रह गया। उस पत्र

में वही सन्देश जिसके विषय में देश में चर्चा थी, राष्ट्रपिता और अहिंसा तथा असहयोग का आन्दोलन चलाने वाले के लेख में लिखा था।

इस पर भी हमारा कहना है कि श्री मोहनदास कर्मचन्द गांधी महात्मा थे। कारण हमने लेख के आरम्भ में बताया है। यदि वे महात्मा न होते तो मानते नहीं कि वे अमीर काबुल के आक्रमण के समय अपनी पूर्ण शक्ति से अमीर को देश से बाहर निकालने में सरकार का विरोध करेंगे।

यही तो है मन, वचन और कर्म में समानता ? यही महात्मापन है। ●

संरक्षक सदस्य

पिछले मास हमने अपने प्रथम चार सदस्यों के नाम प्रकाशित किये थे। इस मास निम्न सदस्यों के शुल्क प्राप्त हुए हैं। परिषद् इनके सहयोग पर आभार प्रदर्शित करती है।

१ श्री लक्ष्मण प्रसाद अध्यक्ष,
नवयुवक समिति, मुहल्ला गांधी चौक,
पो छपरा, जि. सारण, (बिहार)

२ श्री कुंवर अवधेश सिंह M.A., L.L.B. एडवोकेट,
१६/प. सिप्तैन रोड, प्रतापगढ़ (उ. प्र.)

३ श्री राम सरोज मु० पो० बगहा,
चम्पारण (बिहार)।

४ पं० श्री रामचन्द्र झा,
शिशुज्ञान मंदिर, फारबेस गंज, पूर्णिया-बिहार,

५ श्री एम. ए. साल्तेकर, कैशियर
C/o दी टाटा ऑयल मिल्स क० लि०
सेल्स आफिस 1072, नेपियर टाऊन,
जबलपुर (म०प्र०)।

६ श्री रूपचन्द लालचन्द बीड़ी के व्यापारी,
स्टेशन रोड़, गोधरा (पंच महाल, गुजरात)

जिन सदस्यों ने अपना चित्र अभी तक नहीं भेजा, कृपया शीघ्र भेजने की व्यवस्था करें। अगले मास सभी सदस्यों के चित्र छापे जायेंगे। सभी सदस्यों को परिषद् के नवीन प्रकाशन भेजे जा चुके हैं। जिनको न प्राप्त हुए हैं, कृपया सूचित करें।

मंत्री परिषद,

२८ मई को सावरकर जयन्ती पर

"वीर सावरकर और हिन्दुत्व"

श्री शिवकुमार गोयल

हिन्दू हृदय सम्राट स्वातन्त्र्यवीर सावरकर जी के निधन के पश्चात, कुछ समाचार-पत्रों ने बड़े ही विचित्र ढंग से श्रद्धांजलियां देते हुए उनके सिद्धान्तों पर आघात करने का दुष्प्रयास किया। एक समाचार पत्र ने तो यहां तक लिख मारा कि वीर सावरकर ने अन्तिम दिनों 'हिन्दुत्वनिष्ठ" व साम्प्रदायिक रहने के पाप का प्रायश्चित किया था। वह हिन्दुत्व से विमुख हो चुके थे।

एक कम्युनिस्ट समाचार पत्र ने लिखा "सन् १६३८ के बाद का, सावरकर का जीवन अत्यन्त कालिमापूर्ण रहा। उनके हिन्दू महा सभा के जीवन ने उनके देशभक्तिपूर्ण कार्यों पर पानी फेर दिया। गांधी हत्याकांड में गिरफ्तार होने के बाद तो उनका रहा सहा त्याग भी समाप्त हो गया।"

शिक्षा मंत्री श्री छागला ने भी उन्हें अपनी श्रद्धांजलि देते हुये कहा कि 'सावरकर भारत में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को हिन्दू मानते थे। वह अत्यन्त उदार और सहिष्णु थे" एक वक्ता ने श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा- "सावरकर ने अन्तिम दिनों अपने हिन्दूराष्ट्र की स्थापना के उद्देश्य को बदल दिया था। हिन्दू महा सभा के प्रति उनकी निष्ठा-समाप्त हो चुकी थी। वह समस्त भारतीयों को, मुसलमान व ईसाइयों को साथ लेने के पक्षपाती हो गये थे।"

देहावसान के पश्चात् उन्हें सेकुलर, धर्म निरपेक्ष, हिन्दू विरोधी आदि न जाने क्या-क्या सिद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है? जबकि वास्तविकता यह है कि स्वातन्त्र्यवीर अपने हिन्दू राष्ट्र के सिद्धान्तों पर जीवन के अन्तिम क्षणों तक डटे रहे। वीर सावरकर द्वारा "हिन्दू" की परिभाषा को भी तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत किया जाने लगा है। उन्होंने हिन्दू की परिभाषा करते समय यह स्पष्ट कर दिया था "-केवल मातृभूमि ही नहीं, अपितु जिसकी पुण्य भूमि,

धर्म भूमि भी भारत में ही है, वही हिन्दू है ।" उन्होंने लिखा -- "मक्का मदीना की ओर देखने वाले, विदेशों में तीर्थयात्रा को जाने वाले कदापि राष्ट्रीय नहीं हो सकते, हिन्दू नहीं कहे जा सकते ।"

"मुहम्मद पंथी हिन्दू"

सन् १९५८ की बात है । मेरठ में एक नेता ने एक प्रेस सम्मेलन में हिन्दू की नई परिभाषा करते हुए कहा–"जिस प्रकार आर्य समाजी, सनातनधर्मी, कबीर पंथी, दादू पंथी, नानक पंथी, विभिन्न प्रकार के मतों को मानने वाले, विभिन्न प्रकार की पूजा पद्धति में विश्वास रखने वाले सभी हिन्दू हैं, उसी प्रकार मुसलमान भी "मुहम्मद पंथी" हिन्दू हैं । भारत में जो भी रहता है वही हिन्दू है, चाहे वह मन्दिर में जाय, चाहे नमाज पढ़े ?" भक्त श्री रामशरणदास जी ने हिन्दू की उपर्युक्त परिभाषा लिख कर वीर सावरकर जी के पास भेज दी, उन्होंने अपने निजी सचिव श्री बाल सावरकर से निम्न उत्तर दिलवाया --

"वीर जी ने आपका पत्र पढ़ा । उन्हें हिन्दू की इस परिभाषा पर भारी आश्चर्य व दुख हुआ । उनका कहना है कि आर्य समाज, कबीरपंथी, सिख, बौद्ध आदि मत, धर्म तो भारत में ही उत्पन्न हुये हैं, उनकी पुण्य भूमि भारत ही है, अतः वे तो जन्मजात हिन्दू ही हैं किन्तु "मुहम्मद पंथी मुसलमान" व ईसाई पंथी ईसाई तो विदेशों में उत्पन्न हुए मजहब को मानने वाले हैं । उनकी पुण्यभूमि भारत न होकर मक्कामदीना है, विदेशों में है । अतः वे किस प्रकार हिन्दू हो सकते हैं ? जो काशी, अयोध्या से घृणा करके मक्का मदीना को अपना तीर्थ माने, उसे हिन्दू बताना कोरा भ्रम व अदूरदर्शितापूर्ण है ।

फिर सावरकर जी ने तो 'धर्मान्तर-याने राष्ट्रान्तर" का सूत्र भी हिन्दू-समाज को दिया है । उनका स्पष्ट कहना है–"धर्मपरिवर्तन से राष्ट्रीयता स्वयमेव परिवर्तित हो जाती है । 'रामदास' से 'खुदावन्द' होते ही उसकी निष्ठा भारत से हट कर पाकिस्तान के प्रति हो जाती है । राम-कृष्ण को छोड़ कर मुहम्मद व ईसा पर ईमान लाने वाला भारत के प्रति कभी निष्ठावान हो ही नहीं सकता । मुहम्मदपंथी को हिन्दू बताना कोरी अदूरदर्शिता ही है ।"

वीर सावरकर के उपरोक्त विचारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह हिन्दू किसे समझते थे । यदि भारत में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को वह हिन्दू

मानते तो हिन्दू महा सभा का गैर हिन्दुओं को सदस्य बनाने के प्रस्ताव का वह घोर विरोध क्यों करते ? जिस समय कुछ नेताओं ने हिन्दू महा सभा के द्वार प्रत्येक 'भारतीय' के लिए खोल देने का सुझाव रखा, तो वीर सावरकर ने स्पष्ट विरोध करते हुए कहा कि – – – –

"हिन्दू महा सभा, हिन्दूराष्ट्र का वह पावन मन्दिर है कि जिसमें राष्ट्र की आराधना करने का अधिकार केवल हिन्दू को ही है। यदि गैर हिन्दू इस मंदिर में आकर राष्ट्र आराधना करने की इच्छा करते हैं तो पहले उन्हें इस मंदिर के देवता "हिन्दुत्व" की शरण में आना चाहिए। तब शुद्ध होने के पश्चात् ही इस पवित्र मन्दिर में प्रविष्ट हो सकते हैं।"

'धर्मान्तर याने राष्ट्रान्तर'

वीर सावरकर ने अनेक वर्षों तक भारत व विश्व के इतिहास का गहनता के साथ अध्ययन किया था। भारत पर मुगलों के आक्रमण आदि के इतिहास से तथा कांग्रेस की तुष्टीकरण की नीति के परिणाम से वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि धर्म परिवर्तन से राष्ट्रीयता का परिवर्तन स्वयमेव हो जाता है। इसी लिए उन्होंने हिन्दू महा सभा के अध्यक्ष के रूप में 'धर्मान्तर–याने राष्ट्रान्तर' का नारा दिया था।

वीर सावरकर ने उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा था, 'रामदास की निष्ठा इस देश के चप्पे-चप्पे में है, क्योंकि वह हिन्दू है, उसके तीर्थस्थल यहीं हैं। मथूरा, काशी, रामेश्वरम्, पुरी, बद्रीनाथ आदि उसके पुण्यस्थल हैं किन्तु यदि वह धर्म परिवर्तन करके रामदास से खुदावन्द बन जाता है तो उसकी निष्ठा काशी व रामेश्वरम् में न रहकर मक्का मदीना के प्रति हो जाती है।'

सावरकर जी ने धर्मपरिवर्तन के घातक परिणामों को रोकने के लिए ही शुद्धि यज्ञों के अभियान की प्रेरणा दी थी। स्थान-स्थान पर शुद्धि यज्ञों का आयोजन कराकर उन्होंने मुसलमान व ईसाइयों को हिन्दू समाज में दीक्षित कराया।

आज अनेक राजनीतिक दलों के नेता यहाँ तक कि भारतीय संस्कृति के आधार पर समाज रचना की स्थापना का प्रयास करने का दावा करते वाले दल के नेता भी बार-बार घोषणा करते हैं कि हमारा दल धर्म परिवर्तन से राष्ट्रनिष्ठा परिवर्तित हो जाती है, ऐसा नहीं मानता। उनका

(शेष पृष्ठ २७ पर)

अस्तित्व की रक्षा (१०)

श्री स्वामी विद्यानन्द 'विदेह'

अभी २३ फरवरी, १९६९ को अपने ८२ वें जन्मदिवस के उपलक्ष में आयोजित समारोह पर श्री के. एम. मुंशी ने कहा है, '**भारतीय विद्या-भवन**' की स्थापना और विकास समस्त भारत के मित्रों की आर्थिक सहायता से हुआ है। एक वीभत्स आपत्ति सामने है। गुजरात के महाविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम गुजराती होने जा रहा है। महाराष्ट्र के महाविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम मराठी होगा। तमिलनाडु में तमिल और उत्तर प्रदेश में शिक्षा का माध्यम हिन्दी बन चुका है। यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन अपनी परीक्षाओं के लिये क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग की स्वीकृति दे चुका है। यदि अंगरेज़ी का स्थान हिन्दी आदि क्षेत्रीय भाषाएं ले लेती हैं तो भारत के विभिन्न प्रान्तों के विद्वानों का पारस्परिक संपर्क समाप्त हो जायेगा। तब यहाँ के नागरिक भारतीय न रहकर आन्ध्री, बंगाली, गुजराती, हिन्दी, महाराष्ट्रियन, तामिल इत्यादि बन जायेंगे।' यह बौद्धिक और मानसिक दासता अवलोकनीय तो है ही, दयनीय भी है। कितने गहरे और अमिट होते हैं दासता के संस्कार, यह उसका एक मुंह बोलता उदाहरण है। मैं वयोवृद्ध और समादरणीय श्री मुंशी से समुचित आदर के साथ पूछना चाहता हूं कि अंगरेजों के शासन-काल में, जब समूचे भारत में अंगरेज़ी का बोल-बाला था, क्या तब बंगाली बंगाली नहीं थे, गुजराती गुजराती नहीं थे, पंजाबी पंजाबी नहीं थे, उड़िया उड़िया नहीं थे, महाराष्ट्रियन महाराष्ट्रियन नहीं थे, मदरासी मदरासी नहीं थे ?

और एक दूसरा इससे भी अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न, जो मैं श्री मुंशी जी से पूछना चाहूंगा, यह है कि क्या अंगरेजी की अपेक्षा हिन्दी भारत की अधिक देशव्यापी सम्पर्क भाषा नहीं है ? क्या अंगरेज़ी की अपेक्षा हिन्दी को कहीं अधिक आसानी से भारत के विभिन्न प्रान्तों के विद्वानों के पारस्परिक सम्पर्क की भाषा नहीं बनाया जा सकता है, क्या लाख कोशिशों के बावजूद अंगरेजी को भारत में सदा के लिये भारतीय भाषा[illegible] शर चढ़ा रखा जा सकेगा ?

भारतीय विद्या भवन के विकास का आधार यदि विदेशी भाषा है तो उसे 'भारतीय' कहना भारतीयता का अपमान है। किसी भी समझदार व्यक्ति के विचार से भारतीयता का सुदृढ़ आधार हिन्दी और संस्कृत ही हो सकती हैं। अनेक भाषाभाषी होते हुए भी यदि केन्या की राष्ट्रभाषा सुहाली हो सकती है तो हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा क्यों नहीं बन सकती है ? लुत्फ यह है कि स्वराज्य-प्राप्ति के छह घन्टे बाद ही सुहाली केन्या की राष्ट्रभाषा बन गई, जब कि भारत में स्वराज्य-प्राप्ति के बाईस बरस गुजर जाने पर भी हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं बन पायी है। दोष हालात का नहीं है, मनोवृत्ति का है।

यहाँ हिन्दी के साधकों के लिए एक साधनीय साधना है। किसी भी प्रदेश की साधारण जनता हिन्दी के विरोध में नहीं है। हिन्दी का विरोध और अंगरेज़ी का पोष केवल उन व्यक्तियों की मायावी लीला है, अंगरेज़ी के माध्यम से जिन्होंने भारत पर अपना वर्चस्व स्थापन किया हुआ है और जिनकी जनसख्या भारत की जनसंख्या का एक प्रतिशत भी नहीं है। अंगरेज़ी का यह वर्चस्व समाप्त किया ही जाना चाहिए और उसकी समाप्ति के लिये यह आवश्यक है कि प्रचार तथा प्रेरणा द्वारा अंगरेज़ी के मानस पुत्र पुत्रियों में क्षेत्रीय स्वार्थ के स्थान पर राष्ट्रीय हित की भावना उत्पन्न की जाए। श्री अन्नादुरै के देहावसान का मुझे भी उतना कलक है जितना उनके किसी प्रिय से-प्रिय जन को होगा। उनका अपना एक प्रशंसनीय व्यक्तित्व था। उसके बावजूद उनके हिन्दी-विरोध और आंग्ल-पोष का एकमात्र कारण उनका यह विचार था कि अंगरेज़ी का स्थान हिन्दी को दिया जाने पर केन्द्रीय नौकरियों में मदरासियों की संख्या अपेक्षाकृत कम हो जाएगी, जबकि वास्तविकता यह थी कि असंख्य मदरासियों का हिन्दी का स्तर उत्तर-भारतीयों की अपेक्षा पर्याप्त उच्चतर है।

दक्षिण भारत के प्रदेशों अथवा राज्यों की जनता को यह तथ्य हृदयंगम कराना अति-आवश्यक है कि अंगरेजी की अपेक्षा हिन्दी में दक्षता प्राप्त करना अतिशय सरल है; कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से प्रत्येक पार्श्व में उन्हें भारतव्यापी क्षेत्रों की उपलब्धि होगी; कि राष्ट्रसम्मान की दृष्टि से अपने देश की राष्ट्रभाषा पर विदेशी भाषा को तरजीह देना आत्महेयता का द्योतक है; कि किसी भी प्रदेश की समृद्धि केन्द्रीय सरकार की नौकरियों से नहीं, उद्योग कृषि तथा कला-कौशल की वृद्धि से होगी; कि जो प्रदेश राष्ट्रभाषा हिन्दी के के पठन-पाठन में जितना विलम्ब करेगा, वह अपनी सर्वांगीण प्रगति में उतना ही पिछड़ा रहेगा।

प्रदेश-प्रदेश में राष्ट्रभाषा की व्याप्ति की आवश्यकता की अनुभूति कराने की दिशा में हिन्दी के साधकों ने अभी कुछ भी नहीं किया है। उन्होंने अपनी जितनी शक्ति हिन्दी-आंदोलनों में व्यय की है, उतनी शक्ति इस कार्य में लगाई होती तो परिणाम कहीं अधिक लाभप्रद हुआ होता। आन्दोलन वे ही सफल और सार्थक होते हैं, जो रचनात्मक और आवश्यकता की अनुभूति कराने वाले होते हैं। भाषा की एकता के बिना राष्ट्र की भावात्मक एकता कदापि सम्पादन न की जा सकेगी। न ही भाषा की एकता के बिना देशव्यापी हिन्दु-संगठन सुदृढ़ हो पायेगा। और सुदृढ़ हिन्दु-संगठन के बिना हिन्दुस्तान अनन्त काल तक सबल और सुरक्षित न हो पायेगा।

(पृष्ठ २४ का शेष)

कहना है कि पूजा पद्धति से राष्ट्रनिष्ठा नहीं बदलती। प्रश्न पूजा पद्धति का नहीं है। प्रश्न है एक ऐसे मजहब का जो स्पष्ट रूप से अपने अनुयाइयों को, गैर मुसलमानों को काफिर मानकर उन पर अत्याचार करने की प्रेरणा देता है। जब तक एक व्यक्ति उसके अनुसार चलकर, उससे प्रेरणा लेकर पूजा पद्धति अपनाये रहेगा, तब-तक वह अपने धर्म ग्रन्थ की अन्य बातों से दूर कैसे जा सकता है ?

वीर सावरकर जी दूरदर्शी नेता थे। इसलिये उन्होंने चेतावनी दी थी कि— राजनीति के हिन्दुकरण के सिद्धान्त को यदि छोड़ दिया गया तो फिर वैचारिक पतन अवश्यंभावी है। कुर्सी व वोट के लालच में राष्ट्रशत्रु को भी मित्र मानने लगने से-लक्ष्य की पूर्ती असंभव है। आज वही सत्य सिद्ध हो रहा है। हिन्दू से भारतीय बनते ही न धर्मान्तिर से राष्ट्रान्तर प्रतीत होता है और न कांग्रेस की तुष्टीकरण की नीति का परिणाम ही स्मरण रह पाता है।

आज सावरकर जयन्ती के पावन पर्व पर हमें हिन्दू राष्ट्र के सिद्धान्त पर चलकर उनके स्वप्न को साकार करने का व्रत लेना चाहिये। यही उस हिन्दू राष्ट्रपुरुष को सच्ची श्रद्धांजलि है।

"हिन्दू"

श्री निरञ्जन मुखोपाध्याय

(लेखक का मत है- हिन्दुस्थान के हिताहित की ओर जिनका ध्यान कतई नहीं है, जिनका ध्यान सर्वदा अन्य देशों की ओर लगा रहता है, ऐसे नागरिकों में राष्ट्रीयता ढूंढना अमावस्या की रात में चाँद को ढूंढना जैसा ही है। -- सम्पादक)

हिन्दू कौन हैं ? समय-समय पर अनेक विद्वान इसी विषय पर अपने विचार व्यक्त कर चुके हैं। मैं अनेक विचारों से असहमति व्यक्त करने की घृष्टता तो नहीं कर सकता। तथापि विचार स्वतन्त्रता का सुयोग ले मैं भी अपना विचार उपस्थित कर रहा हूं। ऐसे तो यह जटिल विषय है, जिसके लिए गहन अध्ययन तथा विपुल ज्ञान का भण्डार होना चाहिये। तदपि मैं अपनी सहज एवं साधारण बुद्धि तथा युक्ति से जिस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं, वही बात आपके समक्ष उपस्थित करने का ही प्रयास कर सकता हूं। व्यवहारिकता, वास्तविकता, उपयोगिता-अनुपयोगिता का निर्णय ज्ञानीजनों के विचाराधीन है। यहाँ पर जो कुछ मैं कहने जा रहा हूं, वह केवल मेरा ही विचार तथा अभिमत है। मैं न तो वेदाचार्य हूं न शास्त्री ही हूं और न ही पुराणविद हूं। अतः भूल होना स्वाभाविक है, जिसे मान्यता न दी जाय।

मेरा विचार है कि, यदि तो वेद-पुराणादि में कहीं पर 'हिन्दू' शब्द का उल्लेख नहीं है तथा केवल 'आर्य' 'एवं' 'अनार्य' का ही उल्लेख है, तो वह इसलिये नहीं कि इससे यह निष्कर्ष निकलता हो कि उस काल में धर्म ही न रहा हो। प्रत्युत जो धर्म उस काल में था, वही धर्म आज भी चल रहा है। वस्तुतः उस धर्म को किसी संज्ञावाचक शब्द से अलंकृत करने की आवश्यकता इस लिये नहीं थी कि इस काल में इसी धर्म को मानने वाले सभी थे। तथा इन सब मनुष्यों के व्यक्तिगत विद्या, बुद्धि, आचार, व्यवहार के आधार

पर ही वे 'आर्य' तथा 'अनार्य' कहाते थे। इस धर्म का मुख्य उद्देश्य जो उस काल में था सो आज भी है। इस धर्म के मानने वाले यह मानते हैं कि आत्मा अमर है तथा बारम्बार मानव शरीर में प्रवेश करती है। इसे ही कहते हैं जन्मान्तर प्रथा। और इस जन्मान्तर से ही मुक्त होने के लिये 'मोक्ष-प्राप्ति' के उद्देश्य से प्रयास करने का निर्देश भी इसी धर्म में है। और केवल मात्र इसी धर्म में है।

इस धर्म को मानने वाले स्वर्ग तथा नरक जैसी कल्पित वस्तुओं को नहीं मानते। वे मानते हैं कि स्वर्ग तथा नरक इस पार्थिव शरीर धारण काल में ही उपलब्ध है। जो सुखदायी हो वह है स्वर्ग। जो दुःखदायी हो, वह है नरक। और ये सब अपने-अपने कर्म तथा आचरणों के फलस्वरुप ही मनुष्य को उपलब्ध होते हैं। अतः यह आवश्यक नहीं है कि एक जीवन काल के कर्मों का फल उसी जीवन काल में ही उपलब्ध हो। इस धर्म को मानने वाले जन्मान्तर में आस्था रखने वाले होते हैं। और इसीलिये वे यह भी मानते हैं कि इस जीवन के कर्म फल अगले जन्म में भी मिल सकते हैं। अन्यथा एक ही सृष्टिकर्ता के विश्व में विभिन्न दशा के मनुष्यों की सृष्टि कैसे होती! कोई धनवान परिवार में जन्म ले नाना प्रकार सुख (स्वर्ग) भोगने का अवसर प्राप्त करते हैं, तो कोई सर्वथा दुर्दशाग्रस्त परिवार में जन्म ले अनेक प्रकार के दुःख (नरक) भोगते हैं। कोई अन्धा, लंगड़ा, लूला हो जन्म लेते हैं, तो कोई सर्वांग। कोई मेधावी, तो कोई जड़-बुद्धिवाला, कोई कुरूप, तो कोई सुरूप। ऐसे अनेक प्रकार के वैषम्य जन्म से ही क्यों उपलब्ध हैं? जब कि सर्वशक्तिमान सृष्टिकर्ता सर्वथा न्यायपरायण है। इसी से ही इस धर्म को मानने वालों का कहना है कि जन्मान्तर है तथा सब अपने-अपने पूर्वजन्म के सुकर्म अथवा कुकर्म के फल स्वरूप ही इस जन्म में शरीर, परिस्थिति तथा विवेक के अधिकारी होते हैं। विवेक सब मनुष्य में होता है। तथा इस जन्म में प्रयत्न, विचार आचरण एवं संस्कार संस्कृति से उसे विकसित, शुद्ध एवं निर्मल किया जा सकता है। जो कि अगले जन्म में हितकारी बनने में सहायक हो सकता है। साथ ही साथ इस धर्मानुयायी यह भी कहते हैं कि ऐसी चक्रवत घुर्णयमान जन्म-परिधि से ही मुक्ति पाना है। हमें स्वर्ग तथा नरक नहीं चाहिये। इस स्वर्ग तथा नरक के चक्कर से निष्कृति पाना है। और वह मुक्ति अथवा निष्कृति है मोक्ष प्राप्ति में। इसी मोक्ष-प्राप्ति के सम्बन्ध में ही भिन्न २ काम में भिन्न २ महापुरुषों ने अपने अपने अनुभव एवं साधना से विभिन्न सिद्धान्त तथा मार्ग दर्शाये हैं। उनके दर्शाये हुए मार्ग पर चलने वाले अथवा उनको मानने वाले उनके पन्थी कहाते हैं। परन्तु लक्ष्य बिन्दु सब

का एक है-वह है 'मोक्ष प्राप्ति'। इन विभिन्न पन्थियों में बौद्ध, जैनी एवं सिख भी हैं। आगे चल कर यह बताने का प्रयत्न करूंगा कि ये तीन पन्थी भी इस पर्याय में कैसे और क्यों हैं)

इस धर्म को मानने वालों में एक और सिद्धान्त है। वह यह है कि, जब इस पार्थिव शरीर से आत्मा निर्गमरण कर जाती है (अर्थात् जब मृत्यु हो जाती है) तब इस निःष्प्राण शरीर को अग्निदाह से भस्मीभूत कर देना। कुछ के अपवाद अवश्य हैं। जैसा कि सर्पदंश से मृत्यु होने पर इस शरीर का दाह संस्कार नहीं होता। हो सकता है कि इसमें कुछ वैज्ञानिक कारण (scientific reason) हो, जिससे ऐसे शरीर का दाह-संस्कार न होता हो। इसमें मूल कारण जानने का प्रयत्न अनुसन्धान में संलग्न वैज्ञानिकों का कार्य है—मेरा नहीं। मैं तो केवल इस धर्म के मानने वालों के वैशिष्ट तथा मुख्य विषयों पर ही अपना विचार केन्द्रित कर यह अभिमत व्यक्त कर रहा हूं।

हाँ, तो मेरा अपना अभिमत का अन्तिम एवं निर्णयात्मक निष्कर्ष यही है कि इस धर्मानुयायिओं में मोक्ष-प्राप्ति के उपायों, साधनों तथा मार्गों में मतानैक्य तो नहीं है। मताधिक्य अवश्य है। इस पर भी इनमें दो सिद्धान्तों में निर्विवाद रूप से मतैक्य है। वह है जन्मान्तर प्रथा में आस्था तथा मृत शरीर का दाह-संस्कार प्रथा। (यहाँ स्मरण रखना होगा कि अभी तक मैंने इस धर्म को मानने वालों को 'हिन्दु' शब्द से सम्बोधित नहीं किया है।'

सृष्टि के प्रारम्भ से ही इस ब्रह्माण्ड में केवल इसी धर्म को मानने वाले मनुष्य होते रहे हैं। इस बात का प्रमाण चाहें तो विश्व भर में मिल सकता है। तथापि मैं अपने आपको इस योग्य नहीं मानता कि कुछ प्रमाण भी दे सकूँ। परन्तु मैं यह पूछ सकता हूँ कि, क्या ऐसा भी कोई पण्डित है जो यह बता दे कि अमुक तिथि से अथवा इतने वर्ष से तथा किसने, ऊपर वर्णित धर्म प्रवर्तित किया है ? इसके विपरीत विश्व के अन्य सभी धर्मों (जो ऊपर चर्चित धर्म के अनेक पश्चात प्रवर्तित हुए हैं) के सम्बन्ध में यह स्पष्टतया बताया जा सकता है अन्यथा पता लगाया जा सकता है कि, इतने वर्ष पूर्व अमुक ने अथवा अमुक के कारण अमुक धर्म का प्रवर्तन हुआ है। जब तक केवल आम का वृक्ष ही चारों ओर है, इसे केवल वृक्ष कहने से ही कार्य चलता है। नामकरण की आवश्यकता प्रतीत नहीं होना असगत नहीं है। जब आम के वृक्ष के अतिरिक्त अमरूद, जामुन आदि के वृक्ष भी होंगे तब ही नामकरण अनिवार्य होगा। नामाकरण पृथकीकरण के लिए ही आवश्यक है। यही बात ऊपर बताये हुए धर्म के विषय में भी प्रयोज्य है। जब तक ईसाई, इस्लाम आदि धर्मों का प्रचलन नहीं हुआ था, तब तक विश्व में एक यही धर्म को

मानने वाले मनुष्य रहे। इसीलिए इसका नामकरण की आवश्यकता नहीं थी। धर्म, धर्म है। अधर्म, अधर्म है। यही दो बाते थीं। जिस समय से अन्यान्य धर्मों का प्रचलन होने लगा, उसी समय से इस धर्म को "हिन्दु धर्म" के नाम से प्रचारित किया गया तथा इस धर्म को मानने वालों को 'हिन्दु'। मेरा तो स्पष्ट मत है कि यह 'हिन्दु' शब्द किसी 'इन्दु', 'सिन्धु' अथवा 'बिन्दु' से सम्बन्ध नहीं रखता। यह पाश्चात्य विद्वानों की भ्रान्त धारणा मात्र ही है। क्योंकि उस काल में पश्चिम से हिन्दुस्तान में पहुंचने में सिन्धु ही सर्वप्रथम उनका स्वागत के लिए मिलता था। और इसी से दो और दो मिला के चार बनाये हैं।

अतः 'हिन्दु' वह है जो इस धर्म के तीन प्रमुख सिद्धान्तों में विश्वासी हो। यथा—(१) जन्मान्तर प्रथा, (२) मृत शरीर का दाह-संस्कार प्रथा एवं (३) मोक्ष-प्राप्ति। ये तीन प्रधान मान्यतायें विश्व के और किसी धर्म में नहीं हैं। अतएव वे 'हिन्दु' भी नहीं हैं (अब से समझने के सुविधार्थ इसे हिन्दु-धर्म ही कहेंगे)।

हिन्दु धर्मानुसार मोक्ष प्राप्ति के भिन्न भिन्न उपायों एवं मार्गों के वर्णनकारी विभिन्न महापुरुषों के सम्बन्ध में ऊपर किंचित आभास दे दिया गया है। ऐसे विभिन्न मार्ग-दर्शक महापुरुषों के अनुयाइयों को ही उनके पन्थी कहा जाता है। इन अनेकों पन्थियों में तीन ऐसे पन्थी हैं, जिन्हें आजकल कुछ कुचक्री शैतान 'हिन्दु' पर्याय के बाहर रखने का प्रयत्न कर रहे हैं। ये तीन पन्थी हैं; बौद्ध, जैनी एवं सिख। मैं इन बौद्धों से, इन जैनियों से एवं इन सिक्खों से पूछता हूँ कि क्या वे जन्मान्तरवाद नहीं मानते? क्या ये मृत शरीर का दाह-संस्कार नहीं करते? क्या वे बारम्बार जन्म से मुक्ति पाने के लिए मोक्ष-प्राप्ति नहीं चाहते। यदि हाँ, तो वे 'हिन्दु' पर्याय के बाहर कैसे हो गये? मेरा तो यह 'चैलेंज' है कि विश्व में हिन्दुधर्म को छोड़ अन्य और किसी धर्म में उपर्युक्त तीन प्रधान सिद्धान्त तथा मान्यतायें नहीं हैं। साथ ही साथ मेरा यह भी 'चैलेंज' है कि यदि तो और अन्यान्य पन्थिओं की भाँति बौद्ध, जैनी एवं सिख भी ये तीनों सिद्धान्तों को मानने वाले हैं तो वे 'हिन्दु' हैं और विशुद्ध 'हिन्दु' हैं। किसी वृक्ष की शाखाओं को ही वृक्ष नहीं कह सकते। इन शाखाओं को पृथक नहीं कर सकते। क्योंकि सबका जड़ एक है। इसी प्रकार बौद्ध, जैन तथा सिख कोई पृथक धर्म नहीं हैं। ये हिन्दु-धर्म की ही शाखायें हैं, क्योंकि इन सब की जड़ एक है। यदि वे इस जड़ को छोड़ दें तो जैसे ये हिन्दु-धर्म की शाखायें नहीं रहेंगी, वैसे ही वे बौद्ध, जैन तथा सिख

भी नहीं रहेंगे। क्योंकि वे, जिनके अनुयायी हैं उनका मूल सिद्धान्त भी वही जड़ है।

अब जब 'हिन्दू' तथा हिन्दु-धर्म के सम्बन्ध में बात चल पड़ी है तो किंचित् उन बातों के सम्बन्ध में भी विश्लेषण कर लिया जाय जिनमें अनेकानेक विद्वानों का कहना है कि, हिन्दुस्थान में रहने वाले अर्थात इस देश की नागरिकता प्राप्त किये हुये सभी 'हिन्दु' हैं। उनकी युक्ति यह है कि, जैसे अमेरिका के रहने वाले अमेरिकन हैं, इंग्लैंड में रहने वाले इंग्लिश हैं, जर्मनी में रहने वाले जर्मन है, इत्यादि। उसी प्रकार हिन्दुस्थान में रहने वाले सभी 'हिन्दू' ही हैं। चाहे वे किसी भी धर्म को मानने वाले, क्यों न हों। चाहे वे मुसलमान हों, चाहे ईसाई हों। मैं अपनी अपरिपक्व तथा अल्पविकसित बुद्धि के कारण इनके इस सिद्धान्त से सहमति व्यक्त कर सकने में अपने आप को असमर्थ पा रहा हूँ। इसमें कतिपय प्रश्न स्वाभाविक रूप से ही मन में उठते हैं। इस देश का नाम जो हिन्दुस्थान पड़ा है, क्या वह सुलतान महमूद के आक्रमण काल से लेकर मुसलमानी शासन काल, अंग्रेजों के शासन काल तथा पाकिस्तान के निर्माण पर्यन्त नहीं था? क्या उस काल में भी आज के बताये हुये सिद्धान्त से वे सभी 'हिन्दू' नहीं थे? जब सभी 'हिन्दू' ही थे तब पाकिस्तान किसके लिये बना? किसी भी देश के बहुसंख्यक नागरिकों का धर्म ही उस देश का राष्ट्रीय-धर्म होता है। अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि देशों के बहु-संख्यक नागरिकों का धर्म है ईसाई। इसी से उन देशों का राष्ट्रीय-धर्म भी ईसाई है। क्या अमेरिकन अथवा इंग्लिश कहने से ही उन देशों में रहने वाले सब के सब ईसाई माने जायेंगे? क्या इन देशों के 'हिन्दू' हिन्दू नहीं हैं? पाकिस्तान में जो हिन्दू हैं (अभी भी जो कुछ बचे पड़े हैं) उन्हें भी क्या मुसलमान कहा जावेगा, क्यों कि वहां का राष्ट्रीय-धर्म इस्लाम है? यदि तो हिन्दुस्थान के सभी धर्मावलम्बी को ही 'हिन्दू' कहा जाय, तो पाकिस्तान तथा अन्य देशों के हिन्दुओं को 'हिन्दू' नहीं कहना चाहिये। क्यों कि ऐसा कहने से वे सब के सब हिन्दुस्थान के ही समझे जायेंगे। क्या नेपाल के रहने वाले, बर्मा जापान, चीन, श्रीलंका आदि के रहने वाले सब के सब 'हिन्दु' नहीं हैं? क्या इनको भी हिन्दुस्थान के ही नागरिक समझा जावेगा?

Secularist का अर्थ डिक्श्नरी में जो दिया हुआ है, वह है—One that rejects all religious faith and worship अर्थात् : जो किसी भी धर्म-मत एवं धार्मिक अनुष्ठान को मान्यता न देता हो। अर्थात एक शब्द में वह अधर्मी है—नास्तिक है। इससे स्पष्ट है कि Secularism के प्रणेता भी अधर्मी थे, नास्तिक थे। यह Secularism जवाहरलाल के मति विहीन

मस्तिष्क की ही उपज है । और संयोग से जवाहरलाल तो नास्तिक ही था। Secularism की विज्ञापन मण्डली जिस आशय से यह Secularism को चलायमान रखना चाहती है, वह आशय केवल मात्र हिन्दु राष्ट्र में ही परिपूर्ण हो सकता है । अमेरिका के शिकागो धर्म सम्मेलन में अनामन्त्रित हिन्दुओं के प्रतिनिधि ने कहा था–"A Hindu believes all religions as true" अर्थात्, हिन्दू सभी धर्मों को सत्य मानता है। विश्व में अन्य कोई धर्म ऐसा नहीं है जो सभी धर्मों को सत्य माने एवं मान्यता दे । यदि ऐसा होता तो उसी समय शिकागो धर्म सम्मेलन में ही इसका प्रतिवाद होता । जब आप चाहते हैं कि यह राष्ट्र सभी धर्मों को समान रूप से मान्यता दे, किसी के धर्म में हस्तक्षेप न करे, सभी धर्मों को समानाधिकार प्राप्त हों, तो यह बात आप केवल मात्र हिन्दु राष्ट्र से ही आशा कर सकते हैं । क्यों कि–"A Hindu believes all religions as true." इस के विपरीत Secularist तो किसी धर्म को मान्यता ही नहीं देता, तब फिर Secularism से आपका आशय क्या है ? कदाचित् आप स्वयम् ही नहीं जानते कि Secularism किसे कहते हैं और किस उद्देश्य से कहते हैं । परन्तु आपने सुन रक्खा है कि यह देश सभी धर्मावलम्बियों को समान रूप से मान्यता देना चाहता है । यह तो बात कुछ ऐसी हुई कि आप जाना चाहते हैं पूर्व की ओर, परंतु अनजाने में उसे अंग्रेजी में कहते जा रहे हैं West की ओर जायेंगे । परस्पर विरोधी अर्थवाहक स्थितियों का समंवय नहीं हो सकता । आप दिल से जो कुछ चाहते हैं, वह है आस्तिक मनोवृत्ति का परिचायक । परन्तु उसके लिये जिस शब्द का आप प्रयोग कर रहे हैं वह नास्तिक मनोवृत्ति का परिचायक है । एक ही समय पर रात और दिन दोनों नहीं हो सकते । किसी एक को ही लेना होगा । यहां एक बात और बताना आवश्यक समझता हूं कि, आप के इस Secularism का प्रवर्तक स्वयम् नास्तिक था तथा वह रूस से विकट रूप से प्रभावित था और रूस पूर्णतया नास्तिक है । अतः इस देश को आपकी मनोवांछा पूर्ण करने की दृष्टि से भी "हिन्दू-राष्ट्र" ही घोषित करना होगा । तभी आप सभी धर्मों को समान रूप से मान्यता दे सकेंगे । नास्तिक बनने से नहीं ।

सैद्धान्तिक रूप से एक बात और कहता हूँ । इससे रुष्ट होने की अथवा कष्ट पाने की आवश्यकता नहीं है । हिन्दुस्थान का विभाजन करा कर आप ने पाकिस्तान बनवाया है । अब जब पाकिस्तान के बहुसंख्यक नागरिक मुसलमान होने से वह इस्लामी राष्ट्र बना है, तब हिन्दुस्थान के बहुसंख्यक नागरिक हिन्दू होने पर भी यह हिन्दु-राष्ट्र क्यों नहीं है ? इसका तार्किक तथा युक्तिपूर्ण उत्तर आपके पास नहीं है । और इसी से बिना सोचे, बिना समझे Secularism

का रट लगाये भटक रहे हैं। अथवा हो सकता है कि आप नहीं चाहते हैं कि बहुसंख्यक नागरिक 'हिन्दू' रहे तथा यह हिन्दु-राष्ट्र रहे। और इसीलिये जान बूझ कर Secularism का रट्ट लगाये जा रहे हैं, हिन्दुओं को मिटाने के लिये, यहां पर मैं आप को चेतावनी देता हूं। कोई भी हिन्दू आप को चेतावनी देगा। आप की आत्मा भी आपको चेतावनी देगी, क्यों कि आप भी हिन्दू हैं कि, आपका Secularism हिन्दुओं को मिटाने में सर्वथा असमर्थ रहेगा। जब सहस्राधिक वर्षों के घात प्रतिघात, से नाना प्रकार के छल-बल-कपट से, हिन्दू नहीं मिट सका तो आप का Secularism तो एक साधारण वस्तु ही है। कारण यह है कि यह अनन्त है, असीम है। सागर जैसे गभीर है। नदी, नाली सूख जायेंगे, सागर नहीं। हो सकता है कि इनकी कुछ संख्या कम करने में आप सफल भी हो जायें। परन्तु समूल विनष्ट नहीं कर पायेंगे। जो कुछ संख्या कम होगी, उसका श्रेय भी आपको प्राप्त नहीं है। वह इस लिये सम्भव होता गया और हो रहा है कि, हिन्दुओं के इस अंश की मति अधोगति को प्राप्त कर चुकी है।

पूर्व विषय पर : आज यदि अमेरिका अथवा इंग्लैण्ड के समस्त अथवा बहुसंख्यक नागरिक हिन्दू हो जायें, तो क्या वे देश अमेरिका अथवा इंग्लैण्ड के स्थान पर हिन्दुस्थान बन जायेंगे? उसी प्रकार हिन्दुस्थान के बहुसंख्यक नागरिक जो हिन्दू हैं, ईसाई बन जाने से ही यह देश अमेरिका अथवा इग्लैण्ड नहीं बन जायगा। ऐसी परिस्थिति में वहां का राष्ट्रीय धर्म हिन्दू होगा, पर कहलायेगा अमेरिकन अथवा इंग्लिश ही, तथा यहां का राष्ट्रीय धर्म ईसाई मानना होगा, पर कहलवायगा हिन्दुस्तानी। राष्ट्रीयता की आड़ में सभी को 'हिन्दू' कहने से ही राष्ट्रीयता पनप नहीं जायेगी। राष्ट्रीयता यह नहीं है कि अमुक हिन्दू है, अमुक ईसाई है, अमुक मुमलमान है। राष्ट्रीयता किसी भी धर्म से अर्द्ध है। राष्ट्रीयता है नागरिकों के राष्ट्र के प्रति निष्ठा में। राष्ट्रीयता है जन्म-भूमि को मातृवत समझने में। "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"। धर्माचरण द्वारा स्वर्ग लाभ के लिये प्रयत्न किया जाता है। और ऐसे स्वर्ग से भी अधिक गरिमामय है जन्मभूमि। राष्ट्रीयता ऐसी मनोवृत्ति में ही अन्तर्निहित है। न कि उसके व्यक्तिगत धर्म में। परन्तु राष्ट्रीय धर्म का होना केवल इसी लिये अत्यावश्यक है कि, अधर्मयुक्त राष्ट्र पतनोन्मुखी होता है। पतन-पथ-गामी राष्ट्र में राष्ट्रीयता भी पतित होती है। ऐसी भयावह परिस्थिति से राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता की रक्षा हेतु राष्ट्र के राष्ट्र-धर्म का होना तथा राष्ट्रीयता में धर्म-युक्त आचरण का समावेश वांछनीय है।

केवल 'हिन्दू' कहलाने मात्र से ही राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न नहीं हो

पावेगी। राष्ट्रीयता उसके हिन्दू' होने में ही व्याप्त नहीं है। राष्ट्रीयता है उसके राष्ट्र के प्रति निष्ठा में। चाहे वह हिन्दू हो, चाहे वह मुसलमान हो, चाहे वह ईसाई हो अथवा चाहे कोई भी धर्मावलम्बी हो। क्या अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि ईसाई बहुल देशों के हिन्दू अथवा मुसलमानों में राष्ट्रीयता की भावना नहीं है? यदि तो नहीं है, तो वे धर्म-द्रोही नहीं हैं, वे हैं राष्ट्र-द्रोही। उनका कर्तव्य है कि वे अपने राष्ट्र के प्रति निष्ठावान हों, चाहे वे किसी भी धर्म को मानने वाले ही क्यों न हों। और उन राष्ट्रों के प्रति निष्ठावान होने मात्र से ही वहां के हिन्दू अथवा मुसलमान, ईसाई नहीं कहलवायेंगे, यद्यपि वहां का राष्ट्रीय धर्म ईसाई है।

राष्ट्र नहीं बदलता। अतः राष्ट्रीयता भी नहीं बदलती। परन्तु राष्ट्र-धर्म बदल सकता है। दो सहस्र वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड का राष्ट्र-धर्म अवश्य ही ईसाई नहीं था। चौदह सौ वर्ष पूर्व आज के मुस्लिम बहुल राष्ट्रों का राष्ट्र-धर्म भी इस्लाम नहीं था। परन्तु राष्ट्र वही था जो आज है। क्या इससे यह मानना पड़ेगा कि उस काल में उन देशों के नागरिकों में राष्ट्रीयता नहीं थी? राष्ट्रीयता वही है जो उस काल में भी थी और इस काल में भी है। केवल घटनाचक्र से राष्ट्र-धर्म में परिवर्तन आ गया है। राष्ट्रीयता धर्म-युक्त हो, यही है नैतिक उद्देश्य। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह अमुक धर्मावलम्बी ही हो।

अतः मेरा तो यही अभिमत है कि, हिन्दुस्थान का राष्ट्र-धर्म 'हिन्दू-धर्म' है क्यों कि यहां के बहुसंख्यक नागरिक हिन्दु धर्मावलम्बी हैं। यहाँ की राष्ट्रीयता भी और देशों जैसे राष्ट्र के प्रति निष्ठावान होने में ही व्याप्त है, चाहे वह नागरिक किसी भी धर्मावलम्बी के ही क्यों न हों। राष्ट्रीयता धर्म-युक्त आचरण पर आधारित है चाहे किसी भी धर्म की परिधि में रह कर यह आचरण किया जाय। 'हिन्दू' धर्मवाचक है। एवं जब तक कोई स्वेच्छा से हिन्दुत्व स्वीकार न करे (क्योंकि, हिन्दू सभी धर्मों को सत्य मानता है इसा लिये बल-पूर्वक अथवा छल पूर्वक धर्मान्तरण प्रथा में आस्था नहीं रखता) वह हिन्दु नहीं है। यह केवल इस लिए कि इतनी धर्म-संगत, न्याय-संगत तथा युक्ति संगत बातें होने पर भी, जो कि सैद्धान्तिक हैं, हिन्दुस्थान के सम्बन्ध में एक भयावह विडम्बना परिलक्षित होती है। यह विडम्बना यहाँ के मुसलमानों के साथ तथा यहाँ के ईसाइयों के साथ हो रही है। यहाँ के ये दोनों धर्माव-लम्बी इस देश को अपनी मातृभूमि ही नहीं मानते। कल तक जो हिन्दु धर्मावलम्बी थे, आज मुसलमान अथवा इसाई बन जाने मात्र से ही इस

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

ईसा व बुद्ध

आचार्य भोलादत्त पाण्डेय

ईसा व बुद्ध में बहुत समानता है। इसकी व्याख्या दो तथ्यों से हो सकती है। समस्त महान धर्मों द्वारा अभिव्यक्त प्रमुख सत्यों का सादृश्य, एवं वह भूमिका जिसमें ईसाई धर्म उदित हुआ। ईसाई मत केवल तभी समझा जा सकता है जब इस भूमिका को समझ लिया जाय।

ईसा के जीवन काल में जूडावाद (Judaism) की अनेक शाखाएं थी। नीनदर (Neander) उस समय के इस्राइल (Israe) को तीन प्रमुख शाखाओं में विभाजित करता है। फैरिसी (phariseses) जो नियम को अक्षरशः पढ़ाते थे, सादुसी (Sadducese) जो किसी आध्यात्मिक जीवन में विश्वास नहीं करते थे तथा विभिन्न अनुभूति वादी शाखाएं। इज़राइल की तीसरी शाखा के प्रसिद्धतम प्रतिनिधि थे एसेन (Essenee) थेरापेटा (Therapeute) एवं नजारिन (Nazarenes) यद्यपि इजराइल की इन समस्त अनुभूतिवादी शाखाओं की अपनी विशिष्टतायें थीं, यद्यपि वे परस्पर मैत्रीपूर्ण थीं और इसी कारण वे कट्टरपंथी पुरोहितों व फैरिसियों के प्रति समान घृणा रखती थीं। जूडिया के अनुभूतिवादी आन्दोलन से शासक दल इतना भयभीत था कि जेरोम के कथनानुसार समस्त भक्त यहूदियों को यह शाप तीन बार कहने की आज्ञा थी कि–हे परमात्मा नजारिनों पर अपना कोप करो। नजारिन या नजारिन पद की व्युत्पत्ति नजीर (Nazir) से है, जिसका अर्थ है पृथककरण या विश्व से सन्यास। सच्चा नजीराईट एक सन्यासी होता था। एक पैगम्बर जो आध्यात्मिक जीवन का साधक था, वह अत्यन्त तपस्वी जीवन व्यतीत करता था और भारतीय योगी के समान अपने केशों को बढ़ा लेता था और पवित्रता व मदिरात्याग की प्रतीज्ञा कर चुका था। बप्तिस्मा देने वाला जान (John) इस शाखा का सदस्य था। वास्तव में हम नजारितों के विश्वासों के विषय में एसेनों वथेरापेटियों की अपेक्षा बहुत कम जानते हैं। किन्तु इन तीन सम्प्रदायों में से किसी एक का अध्ययन करने के द्वारा साथ

ही साथ हम अन्यों के विषय में भी बहुत कुछ सीख रहे हैं। इस विषय पर आर्थर लिली द्वारा लिखित बुद्धिजम इन क्रिस्टेन्डम (Buddhism in Christendem) में मनोरंजक जानकारी मिलती है। थेरापेटे, जैसा कि उनका नाम बताता है शरीर व आत्मा के चिकित्सक थे। फिलो (Philo) से यह ज्ञात होता है कि वे और एसेन व्रत व ध्यान तथा प्रार्थना या स्वाध्याय में अपना समय व्यतीत करते हुए तपस्वी जीवन व्यतीत करते थे। वे विश्वास करते थे कि उन पर देवी दीप्ति-एक आन्तरिक प्रकाश की कृपा है। वे सैबथ (Sabbath) पर पूजा के निमित्त तथा परम्परागत ज्ञान पर जिसे वे गुप्तरूप से प्राप्त मानते हैं, अनुभूतिवादी चर्चायें सुनने के लिए एकत्रित होते थे। वह उनके विश्वासों और जीवन विधि के अन्य विवरण भी देता है। वे विश्वास करते थे कि ईश्वर ने मनुष्य में कुछ अपनी दिव्यता फूंक दी है और इस देवी तत्व का चिन्तन ही मानव की सर्वोत्तम क्रिया है। एसेन और बौद्धों के विश्वासों और क्रियाओं की समानता पर इस विवरण में बल दिया गया है। समस्त बौद्धों व योगियों की एक उच्चतर विश्व से एककार होने की इच्छा रहती है। अनेक लेखकों को यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि एसेन व थेरापेटियों ने सिकन्दरिया में रहने वाले बौद्ध प्रचारकों से अपने विश्वासों व क्रियाओं को प्रत्यक्षत: (directly) लिया था। ऐसा हो या न हो, किन्तु एसेन और थेरापेटियों के जीवनों का अध्ययन करने के उपरान्त इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि जूडावाद की इन अनुभूतिवादी शाखाओं ने बहुत कुछ भारतीय स्रोतों से ग्रहण किया था। डीन मिलमैन के समान पौर्वात्य धर्मों के प्रति असहानभूति पूर्ण लेखक ने भी अपना मत दिया है कि थेरापेटियों का उद्भव भारत के ध्यानी व निरुद्योगी बन्धुओं से हुआ।

इससे हमें बप्तिस्मा देने वाले जान और ईसा दोनों के प्रति कट्टरपंथी यहूदी पुजारी की प्रबल शत्रुता का कारण समझने में सहायता मिलती है। साधारणतया यह माना जाता है कि इनमें से प्रथम व्यक्ति तो नजारैन सम्प्रदाय का था किन्तु कदाचित ही कोई पादरी विद्वान यह सम्भावना स्वीकार करने को तैयार होंगे कि ईसा की जूडावाद के अनुभूतिवादी अंग से सहानभूति थी। तथापि हम देखते हैं कि ईसा के विरोधी वही अभियोग लगाते हैं जो बप्तिस्मा देने वाले जान के विरुद्ध लगाया गया था। ईसा पर घृणित सम्प्रदाय नजारिन का सदस्य होने का अभियोग लगाया गया था। क्रास पर यह अभियोग लिखा गया था ईसा नजारिन यहूदियों का राजा। यह सत्य है कि कट्टरपंथी पादरी इन शब्दों को जो यूहन्ना १९ : में लिखित है जब ईसा के लिये प्रयुक्त करते हैं तो इसका अर्थ होता है कि नजारिथ का अपेक्षाकृत नजारिन के

(Nezarene)। वे इस अनुवाद को संत मैथ्यू की कथा (Gospel) के द्वारा प्रमाणित करते हैं कि मिश्र से लौटने के उपरान्त ईसा नजारिथ के ग्राम में अपने माता पिता के साथ रहा। तथापि यह कहना कठिन है कि पिलातुस (Pilate) ने इस अभियोग कि ईसा ने स्वयं को यहूदियों का राजा घोषित किया, के साथ साथ यह महत्वहीन घटना अभिलिखित क्यों की। कट्टरपंथी जूडावाद की नजारिनों के प्रति जो घृणा थी, वह पश्चात ईसा के शिष्य पाल (Paul) के प्रति हो गई। वक्ता टुर्टुलस (Tertullus the Orater) पाल के विरुद्ध अपने अभियोगों को इन शब्दों में रखता है: क्योंकि हमें यह मनुष्य अनिष्टकारी, संसार भर में तथा यहूदियों में विद्रोह का प्रचारक और नजारिन सम्प्रदाय का अगुवा ज्ञात हुआ है। अमाल (Act : XXIV. ५) फैरिसियों व कट्टर पंथी पुरोहितों की दृष्टि में बप्तिस्मा देने वाला **जान, ईसा** और **पाल** समान रूप से ही घृणित अनुभूतिवादी सम्प्रदाय के सदस्य थे।

हम यदि इस बात से असहमत भी हों कि ईसा का वस्तुत: इन अनभूतिवादी सम्प्रदायों से और परिणामतः बौद्ध धर्म से सम्बन्ध था तो भी हमें यह मानना ही चाहिये कि वह जूडावाद का फैरिसी प्रकार की अपेक्षा उनसे अधिक सहानुभूति रखता था। अन्यथा यह समझना कठिन है कि उसने जान के द्वारा बप्तिस्मा लेना क्यों पसन्द किया और एसेनों द्वारा बहु प्रचलित रीति का प्रयोग स्वयं क्यों किया। अस्तु! ईसा और जान की शिक्षाओं में इतने क्षुद्र भेद थे कि जान के पांच शिष्य, एन्ड्रयू, जान, फिलप, पीटर, व वरथोलोमियु ईसा के भक्त बन गये, और इसमें उनकी नजारिन प्रतिज्ञाओं का उलंघन नहीं हुआ। किन्तु ईसा ने उनकी उन जीवन विधियों का अपालन करने के लिये आग्रह नहीं किया जो पहिले उनके लिये अनिवार्य थीं। यह जान के शिष्यों की इस शिकायत में प्रकट होता है: हम व फैरिसी तो बहुधा उपवास करते हैं किन्तु तेरे शिष्य उपवास नहीं करते। ऐसा क्यों? मती (९.१४)

हमें ईसा की किशोरावस्था व प्रारम्भिक तरुणावस्था के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। बायबिल की कथाओं में बालपन के कुछ चित्र वर्णित हैं और उनके पश्चात वह अपने कार्य के लिए सुसज्जित तैंतीस वर्ष के मनुष्य के रूप में पुन: प्रकट होता है। इस समय वह कानून का पण्डित, अधिकारपूर्वक बोलने वाला और पराजित करने के लिए उत्सुक वकीलों व विद्वानों के सम्मुख अपनी बातों को तर्कपूर्वक सिद्ध करने वाला प्रतीत होता है।

इन अत्यधिक महत्वपूर्ण वर्षों में ईसा क्या करता रहा? दन्त कथा के अतिरिक्त इसके उत्तर का आधार और कुछ नहीं हो सकता। एक कथा है कि

वह बप्तिस्मा देने वाले जौन के साथ कार्य कर रहा था। दूसरी कथा है कि वह एसेन मठ (Essene Monastry) में था। इन कथाओं में कितना कम और कितना अधिक सत्य है वह कोई नहीं कह सकता। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि ईसा ने अपना कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व बुद्ध के विषय में सुन रखा था। यातायात के साधनों के अभाव के होते हुए भी प्राचीन विश्व में संस्कृति का प्रसार काफिलों द्वारा तथा यात्री विद्वानों व महात्माओं के माध्यम से हुआ करता था। मौखिक शिक्षण पुस्तकों का स्थान लिए हुए था। और इससे अधिक सम्भव बात और क्या हो सकती है कि एक गम्भीर हृदयवान नवयुवक जो अपने अन्तराम में यह जानता है कि वह अपने देश के एक कार्य के लिए अर्पित हो चुका है, अपने घर के समीप आने वाले किसी विद्वान या भक्त यात्री के चरणों में बैठने का पूरा लाभ उठाये। ईसा की दिव्यता का कोई भी स्वरूप रहा हो, उसने एक साधारण मनुष्य का जीवन व्यतीत किया और इसी के समान मानवता के लिये अपने महान् कार्य के हेतु स्वयं को अधिकतम साधन सम्पन्न किया। किन्तु यह स्वीकार करना चाहिए कि हमें ईसा के सम्बन्ध में केवल अत्यन्त अल्प ही ज्ञान है। उसने कोई रचना नहीं छोड़ी और चाहे बायबिल कथायें प्रथम शताब्दी में प्रारंभिक रूप से संकलित की गई हों किन्तु ऐसा नहीं है कि उनके पूर्ण होने में अधिक बिलम्ब नहीं हुआ हो। केवल द्वितीय पीढ़ी में ही ईसा की उक्तियों तथा प्रमुख घटनाओं को लिखने की आवश्यकता का अनुभव हुआ। उसके पूर्व, यह उक्तियाँ मौखिक रूप से ही प्रसारित हुईं और मौखिक कथन की पद्धति में अधिक सत्यता की सुरक्षा तो होती ही नहीं है। धर्मोपदेशकों ने इन मौखिक प्रसारित उक्तियों को अन्ततः संग्रह किया। यानी कोई कागज की चिट उस समय रही हो तो उसका भी संग्रह करते हुए और बायबिल की कथाओं का संकलन कर लिया। सामान्य कथाओं (Synoptic Gospels) में समानता की व्याख्या इस उपकल्पना द्वारा की जाती है कि मती और लूका ने मार्क के पहिले संस्करण तथा एक अन्य स्रोत का उपयोग किया जो अब खो गया और जिसे अब क्यू डाक्युमेन्ट (Q) कहते हैं।

आलोचकों ने यह मत प्रस्तुत किया है कि ऐतिहासिक लेखों के नाते यह कथायें सम्भवतः पूर्णतया अयथार्थ हैं। और उनको लिखने में उनके लेखकों को (उस समय तक बन गये) चर्च की निष्ठा की व्याख्या करने की अधिक उत्सुकता थी, अपेक्षाकृत ईसा की उक्तियों को अक्षरशः लिखने के। विकासशील चर्च के विचारों का औचित्य सिद्ध करने के लिए यहाँ ईसा के मुख से उपयुक्त शब्द कहलाने का जानबूझ कर प्रयत्न तो नहीं हुआ किन्तु यह निःसन्देह सत्य

है कि ईसा के सन्देश का बहुत प्रतिलेखन एवं अनुवादों में नष्ट हो गया है। प्रत्येक अनुवादक इस लाभ से सुपरिचित है कि विचित्र उक्तियों को खींचकर कुछ पूर्व विचारित सम्भावित अर्थों को व्यक्त करने वाला बनाया जाये, विराम चिन्हों का परिवर्तन अथवा The के स्थान पर a या an की स्थानापन्नता मात्र ही एक कठिन गद्यखण्ड का अर्थ परिवर्तित करने को पर्याप्त हो सकता है और इनमें से अनेकों बायबिल की कथाओं में हैं। अतः बायबिल की कथाओं के एक महान पण्डित के शब्दों में हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि —

ईसा के पार्थिव स्वरूप का अधिकांश भी स्वर्गीय स्वरूप के समान ही हमसे छिपा हुआ है।

बाइबिल की कथाओं की अनर्घ्य उपयोगिता के पश्चात भी उनसे हमें केवल उसके स्वर की एक क्षीण ध्वनि ही प्राप्ति होती है। हम उनमें उसकी विविधों की सीमा ही देख पाते हैं। (History and Interpretation of the Gospel - R.H. Lightfoot)

बाइबिल कथाओं की ऐतिहासिक यथार्थता की आलोचना से इस सत्य में परिवर्तन नहीं होता कि वे शेष मानव जाति से ऊंचे स्तर पर रहने वाले लोगों द्वारा लिखित हैं। अनुवाद के कारण उनकी कितनी भी हानि हुई हो तथापि उनमें इसका यथार्थ प्रमाण है वे मानवता के उच्चतर प्रकार की रचना हैं। यदि यह भी सिद्ध हो जाये कि ऐसा कभी हुआ ही नहीं अपितु कथाओं के लेखकों ने अपने उद्देश्यों के लिये उसे निर्मित कर लिया। जैसे कहा जाता है, प्लेटो ने सुकरात को निर्मित कर लिया तो भी कथाओं का वह उच्चतर शिल्प प्रकाशन के रूप में मूल्य तब भी रहता है जो धर्म की नींव होती है। यह भी एक कारण है जिसके फलस्वरूप कथाओं में अनेक उक्तियां सामान्य मानव की बुद्धि से परे हैं। चाहे ईसा के गैर सेमेटिक तत्वों ने प्रभावित किया हो या न किया हो। किन्तु प्रारम्भिक चर्च के निर्माता तो निस्सन्देह प्रभावित थे। ईसा के जन्म की परिस्थितियों के वर्णन में यह विशेषतया दिखाई पड़ता है। सेन्ट मार्क की पहले की कथायें यह विवरण नहीं दिये है विज्ञानों व सुयोग्य पण्डितों द्वारा न्यू टेस्टामेन्ट की पाठ सम्बन्धी आलोचना के इतिहास का हमें कुछ ज्ञान नहीं है, और इस विषय पर कोई निर्णय घोषित करने की अपनी अयोग्यता से हम सुपरिचित हैं। ईसा व बुद्ध के जन्म की कथाओं में समानता की जो व्याख्या सहज ही की जाती है, वह यह है कि ईसा के जन्म का वर्णन तो एक क्षेपक था जो सेन्ट मैथ्यू और सेन्ट लूका की कथाओं की रचना के लिये उत्तरदायी व्यक्तियों के स्वकार्य समाप्त करने के पश्चात एक ऐसे समय जोड़ा गया था, जब चर्च अपने संस्थापक के दैवी जन्म पर विशेष बल दे रहा था।

यहूदी लोग जातिश: लिखित प्रमाण पर अधिक बल देते थे और इस बात पर सतत बल देते रहते थे कि बाईबिल में वर्णित घटनायें किसी ओल्ड टेस्टामेन्ट पैगम्बर के द्वारा उक्त शब्दों के अनुसार हैं। धर्म के प्रति उनका वकील का सा दृष्टिकोण था, और प्रत्येक बात को उचित रूप से लेख बद्ध और किसी अन्य अधिकारी से प्रमाणित देखना पसन्द करते थे। यह सम्भव व स्वाभाविक था कि वे कथाओं में ईसा के जन्म का एक उपयुक्त विवरण शामिल करना चाहते थे और उसके शब्दों में विचार के सौन्दर्य के साथ आश्चर्यजनक शकुनों चिन्हों का दिखाई पड़ने योग्य प्रमाण बढ़ाना चाहते थे। जब यह इच्छा होती है तो चुने गये आश्चर्यजनक विवरण में भी समानता होती है। चूंकि बुद्ध ईसा से पांच सौ वर्ष पूर्व हुआ था। अत: यह सम्भव है कि कथाओं में ईसा के जन्म के विवरण को बढ़ाने वालों ने इस विवरण को भारतीय साहित्य से ले लिया हो। ईसा के जीवन की कहानी को लिखने से पूर्व अनेक वर्ष बीते और बुद्ध के आश्चर्यजनक जन्म के वर्णन भी उसकी मृत्यु के केवल एक सौ पचास वर्ष पश्चात लिखे गये थे। अतः यह सम्भव है कि दन्त कथा ने ईसा के जन्म के वर्णन में उसी प्रकार बड़ा भाग लिया, जिस प्रकार निस्सन्देह बुद्ध के जन्म के वर्णन में।

ईसा के समान बुद्ध भी कुमारी पुत्र प्रसिद्ध था। उसके पिता को देवदूतों ने एक चमत्कारी बालक के जन्म के विषय में सूचित किया था और लिखित विस्तार के अनुसार रानी को बत्तीस मास तक कौमार्य जीवन व्यतीत करने की अनुमति प्रदान की गई थी। मेरी के समान ही उसे एक स्वप्न में यह बताया गया था कि उसके एक आश्चर्यजनक पुत्र होगा। गौतम के जन्म के दिन एक वृद्ध पुरोहित कथाओं से सिमियोन (Simeon) का कार्य करता है और गौतम की भावी महानता की भविष्यवाणी करने के लिये पर्वतों से उतर कर आता है। जब वह देवदूतों से पूछता है तुम क्यों प्रसन्नता मना रहे हो, तो वे उत्तर देते है वे आनन्द मना रहे हैं और अत्यधिक प्रसन्न हैं क्योंकि बुद्ध का जन्म हो गया है। बुद्ध जिस पर मानवता की आशायें आधारित हैं। तब बालक का परीक्षण करने के उपरान्त तथा बुद्ध के बत्तीस लक्षणों की उसमें उपस्थिति को पुष्ट करके वह उनको प्रणाम करता है और जहां से आया था, वही चला जाता है।

अपने जीवन कार्य के प्रारम्भ में बुद्ध को भी ईसा की तरह एक शैतान 'मार' लोभ देता है यदि वह अपना अन्वेषण छोड़ दे तो उसे विश्व साम्राज्य भी भेंट करता है।

बुद्ध का उत्तर था : जिसने दु:ख और दु:ख का स्रोत देखा है ऐसा

व्यक्ति तो रोगों के सन्मुख कैसे झुक सकता है ! शैतान तब अदृश्य हो गया और बुद्ध सत्य की खोज करता रहा। बुद्ध के विषय में चमत्कार भी कहे जाते हैं। अन्धों को ज्योति मिल गई, बहरे सुनने लगे। लंगड़े चलने लगे। शिष्यों की उपस्थिति में ही उसका भी आकार परिवर्तित हो गया। यह शिष्य भी ईसा के समान बारह थे। समस्त मानवों के लिए करुणा लिए, वह विचित्र मार्ग का उपदेश देने चल पड़ा। रोगियों की चिकित्सा करते हुए और अपने कमण्डलु में पड़े हुए छोटे से रोटी के टुकड़े से भीड़ को भोजन कराते हुए। भीड़ के पेटभर जाने के पश्चात् भी बहुत से टुकड़े बच रहे।

बुद्ध ने ईसा के समान वही स्वर्णिम नियम सिखाया जो इन शब्दों में सूत्र रूप से है—वैसा करो, जैसा तुम अपने प्रति चाहते हो; न तो हत्या करो और न मारने का कारण बनो। ईसा के समान बुद्ध ने व्यावहारिक प्रदर्शन के द्वारा शिक्षा दी। एक अवसर पर एक मठ के भिक्षुओं ने एक रोगी बन्धु की परिचर्या की उपेक्षा की। तब बुद्ध ने स्वयं अपने हाथों से उसे धोया और अपने कर्तव्य में असफल रहने वालों से उसने यह कहा—जो मेरी सेवा करना चाहता है वह रोगी की सेवा करे। इस प्रकार मानवता की एकता की घोषणा करते हुए कभी इस विचार का उद्घोष करते हुए कि रोगी और निराश्रय की सेवा में उसके अपने उद्देश्य की सेवायें हैं।

जिस प्रकार माता अपने एक मात्र पुत्र के जीवन की रक्षा अपना जीवन देकर भी करती है, उसी प्रकार हर एक को विश्व के समस्त प्राणियों के प्रति अत्यन्त सहानुभूति होनी चाहिए। विश्व में ऊपर, नीचे, चारों ओर अनन्त निष्पक्ष, शुद्ध, निर्दोष सद्भावना व्याप्त हो।

बुद्ध और ईसा ने आत्मा और चेतन व जड़ के मध्य एक ही तीक्ष्ण रेखा खींची। उन्होंने अपने शिष्यों से यह आग्रह किया कि वे अपने लिए स्वर्ग में कोष जमा करें जिसे न तो कीट लगे और न कोई ही उसे खराब कर सकती हैं और न चोर ही लूट सकते या चुरा सकते हैं।

बुद्ध ने कहा—मनुष्य अपना कोष गहरे गड्ढे में गाड़ देता है जो वहां दिनों दिन छिपे पड़े उसे कोई लाभ नहीं पहुंचाता; किन्तु हृदय में एक ऐसा कोष है जो नष्ट नहीं हो सकता। वह कोष है दान, पवित्रता, संयम, गाम्भीर्य। जब मनुष्य संसार की चंचला लक्ष्मी को छोड़ जाता है तब वह इसी कोष को मृत्यु उपरान्त अपने साथ ले जाता है।

अहिंसा तथा बुराई का बदला भलाई देने के सिद्धान्त दोनों ही शिक्षाओं में समान महत्व के हैं। जब एक शिष्य ने बुद्ध से यह प्रार्थना की कि

वह उसके नगर में जाकर उसके नगरनिवासियों को आदेश दें, तो बुद्ध ने कहा :—

"सुनार प्रान्त के लोग अत्यधिक हिंसक हैं। यदि वे तुम्हें मारे तो तुम क्या करोगे?"

"मैं उल्टे चोट नहीं करूंगा।"

"और भाई वे तेरी हत्या करने का प्रयत्न करें?"

शिष्य ने कहा, "मृत्यु कोई बुरी वस्तु नहीं है। अनेक तो इसकी कामना करते हैं ताकि वे जीवन के मिथ्याभिमानों से बच सकें, किन्तु मैं न तो अपनी मृत्यु काल के लिए जल्दी करूंगा और न देर लगाऊंगा।"

कहा जा सकता है कि इसी रागहीनता का सिद्धान्त जो बौद्ध मत में इतना महत्वपूर्ण है, ईसाई मत में कुछ स्थान नहीं रखता। सांसारिक वस्तुओं व आनन्द के प्रति रागहीनता ईसा की सभी तत्व शिक्षाओं में अन्तर्हित है। जब ईसा ने उस धनी युवक की ओर मुख किया जिसने यह पूछा था कि वह रक्षित होने के लिए क्या करे और यह कुछ जो तेरे पास है बेच दे और निर्धन को दे दे। तब उसके सम्मुख यह ध्यान नहीं आया था कि इससे निर्धन को क्या लाभ होगा, उसने देखा कि युवक शासक-अपने पद व सम्पत्ति में इतना लिप्त हो गया था कि वे उसकी मोक्ष में प्रमुख बाधा थे। अतः इसका प्रथम कार्य तो स्वयं को इन बन्धनों से मुक्त करना था। इसका कोई विचार न करो कि तुम क्या खाओगे, क्या पियोगे और कहां से वस्त्र पहनोगे। यह तो स्वयं राग के खतरों के प्रति एक चेतावनी है और ऐसी चेतावनी उसकी वे सूचनायें भी थीं जो उसने अपने शिष्यों को दीं, जब उसने उन्हें अपने कार्य के हेतु भेजा। ईसा के जीवन की कथा अनिवार्यतः शिक्षा की यहूदी विधि न हो कर बौद्ध विधि थी। तब यह कैसे कहा जाता है कि ईसा को बुद्ध का कोई ज्ञान नहीं था। इस प्रकार की मान्यता कर लेने का अधिकार किसी लेखक को कैसे मिल सकता है? ईसा ने न केवल अपनी शिक्षा में कथाओं का उपयोग ही किया, अपितु इनमें से अनेक तो बुद्ध द्वारा कथित कथाओं के बहुत कुछ सदृश हैं। बुद्ध अपना वर्णन शब्दों के बोने वाले के रूप में करता है। बुद्ध के शिष्यों के विषय में लिखित घटनाओं तथा शिक्षा के लिए पाठ के रूप में प्रयुक्त होने वाली बाईबिल की कथाओं (Gospels) में आश्चर्यजनक सादृश्य है। गलील की झील पर पतरस के चलने का प्रयास और श्रद्धा के अभाव के कारण डूबना जातक में बुद्ध के अनुयायी की कहानी से अत्यधिक मिलती जुलती हैं। इससे हम एक युवक व उत्सुक शिष्य के विषय में पढ़ते हैं जो नाव न पाकर जल पर चलना निश्चित करता है, नदी के मध्य में तरंगें उठती हैं और

श्रद्धा नष्ट हो जाने के कारण वह डूबने लगता है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों की स्वाभाविक प्रवृत्ति यह मान्य कर लेने की होगी कि बौद्ध कहानियां हमारे ईसाई स्रोतों से ली गईं, न कि उल्टे क्रम से। किन्तु यहां विद्वानों के सद्विवेक व दूरदर्शिता की बात आ जाती है। इनमें से कुछ कथायें तो हीनयान बौद्ध सम्प्रदाय में पाई जाती हैं और इस प्रकार से ईस्वी से पूर्व की हैं।

यदि यह सत्य हो कि अपने प्रारम्भिक निर्माण काल में ईसाई मत ने प्राचीन संस्थापित बौद्ध धर्म से सहायता ली भी तो इस विचार में ईसाइयों को परेशान करने वाली कोई बात नहीं है। चाहे ऐतिहासिक रूप में वे परस्पर सम्बद्ध हो या न हों। किन्तु ईसाई धर्म और बौद्ध धर्म एक ही महान आध्यात्मिक आन्दोलन की युग्म अभिव्यक्तियां थीं। सादृश्यों का अस्तित्व, किसी धर्म का महत्व कम करने के स्थान पर, धार्मिक भावना की एकता सिद्ध करता है – ऐसी एकता जो इतनी पूर्ण है कि महान शिक्षकों के शब्द और कथायें भी बहुधा समान हैं। बाईबिल की कथाओं और अधिक विशेषताओं के क्षेपकों से हमें यह ज्ञात होता है कि जो लोग ईसा के अनुयाई थे, उन्होंने अपने दिव्य नेता के जीवन व शिक्षा के विषय में उसके महा प्रयाण के अत्यधिक समय के पश्चात ही कुछ कहा। कभी कभी यह वृद्धियां ऐतिहासिक आधार के लिए होती थीं और कभी कभी शुद्ध दन्तकथात्मक। क्या यह आश्चर्यजनक बात होगी यदि इन दन्त कथाओं को लिखते समय लेखक गण अनजाने ही बुद्ध के विषय में कही गई घटनाओं से अनजाने ही प्रभावित हो गये हों। बाद में यह दिखाई पड़ता है कि प्रारम्भिक चर्च पर विभिन्न जातियों व धर्मों के विद्वानों द्वारा सिकन्दरिया में लाये गये विविध संस्कृतियों व धर्मों का प्रबल प्रभाव पड़ा था। मिश्र के प्राचीन रहस्य, सीरिया-फारस-भारत तथा अन्य अधिक दूरस्थ प्रदेशों के धर्मों का इस संस्कृति सं मिलन पर मिलना जुलना हुआ और सभी ने चर्च की प्रभाव योग्य व निर्माण काल में कुछ प्रभाव डाला।

किन्तु यद्यपि ईसा व बुद्ध की शिक्षाओं में इतनी समानता थी, तथापि उनमें कुछ गैर अनिवार्य प्रकार के भेद भी थे। ईसा एक यहूदी था और उसने अपनी शिक्षा में यहूदी संस्कृति व परम्परा का उपयोग किया, उसने घोषणा की, कि यह प्राचीन नियम को परिवर्तित करने नहीं अपितु सत्य कहने आया था। और बार २ वह इन शब्दों का प्रयोग करता है। प्राचीन काल में यह कैसे कहा गया था, यह हमने सुना है। अभी तक वह प्राचीन नियम को एक नवीन महत्व व जीवन प्रदान करता है। उसके शिष्य कुशिक्षित मनुष्य थे उसके श्रोता सामान्य कृषक थे और उसने उनसे उनकी सामान्य वस्तु प्राचीन

परम्पराओं, नियम और पैगम्बरों के नाम पर अपील की। बुद्ध की दार्शनिक चर्चा उनके लिये निरर्थक थी क्योंकि शिक्षित यहूदी भी दर्शन की अपेक्षा अधिकृत धर्मशास्त्र की अधिक चिन्ता करता था।

दूसरी ओर भारत अपनी संस्कृति के मंगल प्रभात से ही दार्शनिक व आध्यात्मिक चिन्तन का घर रहा है। बुद्ध को किसी लिखित प्रमाण की आवश्यकता नहीं थी क्यों कि उसके श्रोता दार्शनिक चर्चाओं के अभ्यस्त थे और लिखित प्रमाण पर कम विश्वास करते थे।

ईसाई व बौद्ध सिद्धान्तों के भेद का यह एक प्रमुख कारण है। बुद्ध उस परम की परम आत्मा के रूप में मानता था, ईसा उस परम को पिता के रूप में एक साकार ईश्वर के गुणों के साथ मानता था। ईसाइयत के पुनर्जन्म का कोई सिद्धान्त अथवा कर्म के नियम का कोई वर्णन नहीं है। बौद्ध धर्म में एक मानव रूप धारण किये दिव्यात्मा की मृत्यु से संसार के पाप से मुक्ति का कोई सादृश्य नहीं है। यह तो निस्सन्देह एक ही विचार था। यह वह विचार है जो अब्राहम और इज़ाक की कहानी और कुर्बानी देने के पीछे था।

सम्भव है कि हमारे अनेक कट्टर पंथी पाश्चात्य अध्यात्मशास्त्री यह अनुभव करने लगें कि ईसा तथा बुद्ध की शिक्षा व धर्म की समानता को एक ही पलड़े में तोलने की अधिकारहीन चेष्टा की गई है। किन्तु हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि किसी भी मत या धर्म को एक दूसरे की तुलना में विशेष या कम महत्वपूर्ण कहा जाय। संसार के सभी धर्म सामयिक आवश्कताएं व परिस्थितियों के आधार पर निर्मित संस्कारित तथा परिवर्तित हुये। नाहसिया परिषद् में स्वीकृत सिद्धान्तों ने ईसाई धर्म को अन्य धर्म की अपेक्षा विभिन्न स्तर पर रख दिया है। और एक कट्टर पंथी ईसाई के लिये इससे विहीन ईसाइयत को ईसाइयत कह ही नहीं सकते। ऐसे व्यक्ति के दिये दैवी प्रेरणा प्राप्त बुद्ध की ईसा से तुलना वैसी ही है जैसे सूर्य से परावर्तित प्रकाश की तुलना स्वयं सूर्य से। किन्तु हमको न तो इतना ज्ञान ही है और न समझ ही कि दोनों धर्म साधकों की दिव्यता की चर्चा करें। यह एक ऐसा विषय है जिसने धर्मशास्त्रियों को चर्च के प्रारम्भ से बहुत कठिताई में डाल रक्खा है। हम उस अधिकार को आंकने का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं, जिससे ईसा या बुद्ध बोले थे, अपितु केवल उनके सन्देशों की तुलना करते हुए उनकी शिक्षाओं में समानता पाकर आनन्दित हैं।

यह कहा गया है कि किसी एक धर्म को समझने के लिये यह आवश्यक है कि दो का अध्ययन किया जाये। कोई भी दो धर्म एक दूसरे पर इतना अधिक प्रकाश नहीं डालने जितना कि ईसाई धर्म व बौद्ध धर्म। पाश्चात्य मत उपयोगितावादी तार्किक और प्रतीकवाद के प्रति असहिष्णु सा है, और फिर भी प्रतीक वाद की भाषा में कोई धर्म अपनी अभिव्यक्ति कर सकता है और ईसाईयत ने स्वयं ही पौर्वात्य धर्म होने के नाते पूर्व के अनेकों प्रतीकों को स्वीकार किया है जिनमें त्रैत (ट्रिनीटी) का प्रतीक भी है। अतः ईसाईयत का ज्ञान बौद्ध धर्म के अध्ययन से ही प्राप्त हो सकता है। और ईसाईयत का अधिक ज्ञान और जो प्रमुख बात है धर्म के उस जीवन तत्व का ज्ञान जो अत्यन्त शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। बुद्ध ने कहा था सत्यकार पांच सौ वर्षों तक तक जीवित रहेगा, बुद्ध तो ४७० ई० पू० महाप्रयाण कर गये। अभी पांच सौ वर्ष उपरान्त नया शिक्षक जिसके आगमन के विषय में बुद्ध ने भविष्यवाणी कर दी थी, उन्हीं सत्यों का सन्देश गलील के तट पर दे रहा था।

रब्ब की होवे सना हमेशा रब्ब की होवे सना
रब्ब की होवे मदहसराई उसकी हम्दो सना।

(पृष्ठ ३५ का शेष)

देश को अपनी मातृभूमि से पृथक और ही कुछ मानने लग जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में उनसे राष्ट्रीयता की आशा रखना व्यर्थ है। क्योंकि वे हिन्दुस्थान के नागरिक हैं और केवल इसीलिये उन्हें हिन्दु कह देने मात्र से ही उन में राष्ट्रीयता का भावना उत्पन्न हो जायगी, ये सिद्धान्त नितान्त भ्रामक हैं। हिन्दुस्थान के हित-अहित की ओर जिनका ध्यान कतई नहीं है, जिनका ध्यान सर्वदा अन्य देशों की ओर लगा रहता है, ऐसे नागरिकों में राष्ट्रीयता ढूढना अमावस्या की रात में चांद को ढूंढना जैसा ही है। ऐसे नागरिक इस देश के राष्ट्रीय तब ही हो सकते हैं, जब कि वे हिन्दुत्व को स्वीकार कर इस देश के बने रहें। उन्हें केवल 'हिन्दु' कह देने से ही उनमें राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न नहीं हो जावेगी। यह एक कटु सत्य है। अप्रिय सत्य से अनेकों में रोष उत्पन्न हो जाता है। पर मैं विवश हूं। सत्य, सत्य ही रहेगा। चाहे कटु हो अथवा मधुर।

समाचार समीक्षा

को नृप होय

'को नृप होय हमें का हानी। चेरि छोड़ि होइ हैं न महरानी।' राम चरित-मानस में कुब्जा मन्थरा के मुख से निकले उक्त वचन आज के भारत की जनता के मानस के प्रतीकरूप हैं। डा० ज़ाकिर हुसैन के असामयिक निधन ने भारत की कुब्जा प्रजा को विचलित तो किया है किन्तु उसकी प्रतिक्रिया विचित्र है। यद्यपि 'मिट्टी के माधो' रूपी इस पद पर अब तक 'पदानुरूप' ही प्रतिष्ठित होते रहे हैं। इन्दिरा सरकार और उसकी प्रजा चाहती है कि अब भी ऐसा ही कोई व्यक्ति इस पद पर प्रतिष्ठित हो, इसीलिये जयप्रकाशनारायण, जगजीवनराम, स्वर्णसिंह, फखरुद्दीन प्रभृति लोगों के नामों का प्रसार कराया जा रहा है। कुब्जा मन्थरा रूपी प्रजा तटस्थभावसे सभी के गुणानुवाद गा रही है।

इस तथ्य को ओझल नहीं किया जा सकता कि केन्द्र में तथा प्रदेशों में भी कांग्रेस का बहुमत होने के कारण, आज की स्थिति में जब कि प्रतिपक्षी दल नितान्तरूपेण विघटित है, कांग्रेस समर्थित व्यक्ति ही राष्ट्रपति बनेगा। किन्तु कांग्रेस के सम्मुख भी यह समस्या जटिलरूपेण उपस्थित है। नेहरू की भांति न तो उसकी बेटी आज के कांग्रेसियों पर अपना मनपसन्द प्रत्याशी थोप सकती है और न ही उस प्रत्याशी को हस्ताक्षर करने की मशीन मात्र बना कर रख सकती है। डा० हुसैन तक तो सम्भवतया यह बात चल सकी थी, किन्तु आज की परिवर्तित परिस्थिति में यह सम्भव नहीं होगा। क्यों कि वैधानिक रूपेण निर्वाचित राष्ट्रपति का कार्य-काल पूरे पांच वर्ष का होगा जब कि ढाई वर्ष बाद ही देश में आम चुनाव होने वाले हैं, तब केन्द्र में कांग्रेस की सरकार ही बन पावेगी यह आज सन्देहास्पद हो गया है।

यद्यपि संविधान में विशेष परिस्थितियों में राष्ट्रपति को अपने विवेक से काम लेने के अधिकार दिये गये हैं किन्तु विगत तीनों राष्ट्रपतियों ने सदा शासन के निर्णयों को ही शिरोधार्य किया। अब वर्तमान परिस्थितियों में यह सम्भव है कि राष्ट्रपति को अपने अधिकारों का प्रदर्शन और प्रयोग करना पड़

जाय । देश की राजनीति जिप दौर से गुजर रही है उसमें अगले राष्ट्रपति के लिये कुछ काम करने का तकाजा हो सकता है । आगामी निर्वाचनों में देश की राजनीति लोकतन्त्रीय मनस्थिति की ओर प्रवृत्त हो सकती है । राजस्थान और मध्य प्रदेश में वहां के राज्यपालों के सम्मुख जैसे धर्म संकट की घड़ियां आईं, वैसी ही भावी राष्ट्रपति के सम्मुख भी आ सकती हैं । इस लिये राष्ट्रपति को सुनिश्चित, निर्णायक और सक्रिय सिद्ध होना होगा । अगला राष्ट्रपति ऐसा होना चाहिये जो देश की स्थिति, राजनीति, राष्ट्र के संस्कार, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तथा प्रशासन और संविधान का पूर्ण ज्ञाता हो । इसके साथ ही उच्च निष्ठा और असंदिग्ध ईमानदारी भी उसमें होनी आवश्यक है ।

यह सब तभी सम्भव है जब इस देश की जनता में जागृति हो । अपना भला बुरा पहचानने की परख हो । मोहनिद्रा से मुक्त होने की अभिलाषा हो । अन्यथा अब भी वही होगा जो अब तक होता रहा है । हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्थान के उद्घोषकों को चाहिये कि आज एक स्वर से हिन्दू राष्ट्र की घोषणा करें और उसके लिये कटिबद्ध हो कर तदनुरूप ही राष्ट्रपति पद के लिये हिन्दुत्वनिष्ठ राष्ट्रवादी व्यक्ति का नाम प्रस्तुत करें । बारम्बार एक ही उद्घोष हमारे मुख से मुखरित होता है : उत्तिष्ठत ! जाग्रत !! प्राप्य वरान्निबोधत!!! हिन्दुओ चेतो ।

एक म्यान और दो तलवारें

सद्यः सम्पन्न लोक सभा के उपचुनावों में पाटिल और मैनन की विजय के बाद ऐसा समझा जा रहा है कि यह चन्द्रशेखर काण्ड के बाद कांग्रेस में ध्रुवीकरण प्रक्रिया का दूसरा चरण है । श्री पाटिल ने स्वयं और बाद में कांग्रेस अध्यक्ष निजलिंगप्पा ने भी इस आशंका की पुष्टि की है कि सत्तारूढ़ दल कांग्रेस में शक्ति-स्पर्द्धा चरमबिन्दु की ओर अग्रसर हो रही है । यहां यह स्मरणीय है कि पाटिल के पक्ष में चुनाव प्रचार के लिये कांग्रेस के शीर्षस्थ नेताओं में से केवल मात्र कांग्रेस के अध्यक्ष निजलिंगप्पा ही गये थे । अतः स्पष्ट है कि दोनों में अत्यधिक विचारसाम्य है । पाटिल की विजय के उपरान्त सर्वत्र यह भी विचार किया जा रहा है कि शक्ति-स्पर्द्धा की राजनीति में पाटिल सक्रिय सदस्य के रूप में रहेंगे । वे कांग्रेस के प्रभावशाली नेता हैं और मन्त्री-मण्डल के बाहर रह कर भी संगठन की राजनीति को उन्होंने प्रभावित किया है । वह सक्रिय एवं गतिशील नेता होने के कारण शक्ति-स्पर्द्धा में तटस्थ नहीं रह सकते । पाटिल के हाल में ही दिये गये वक्तव्य उन लोगों को आतंकित करने के लिये पर्याप्त हैं जिन्हें गत आम चुनाव में उन की पराजय से भारी राहत मिली थी

और जो इलाहाबाद के लोकसभाई उपचुनाव में मालवीय की हार से दुःखी थे। मालवीय की पराजय और पाटिल की विजय ने केन्द्र में शक्ति-स्पर्द्धा के पलड़ों को निश्चय ही प्रभावित किया है। भविष्य के पूर्व संकेतों के अनुसार अगले आम चुनाव के बाद केन्द्र पर कांग्रेस का एकाधिकार नहीं रह पावेगा और तब देश स्थायी शासन देने के लिये मिले जुले मन्त्रि-मण्डल की अपेक्षा स्वाभाविक है। इस लिये समान विचार वाले राजनीतिक दलों की खोज प्रारंभ हो गई है। कुछ दलों के निकट आने की सम्भावना भी व्यक्त की जा रही है। यद्यपि उस गठबन्धन का रूप क्या होगा यह अभी स्पष्ट नहीं हो पा रहा है। पाटिल की विजय को इन्हीं परिस्थितियों के परिपेक्ष्य में परखा जाना चाहिये।

इस ध्रुवीकरण प्रकरण में मैनन की विजय की उपेक्षा नहीं की जा सकती। स्मरणीय है कि कांग्रेसी तुर्क चन्द्रशेखर तथा मोहन धारिया सदृश पर-मुखापेक्षी अर्थात् अनुत्तरदायी एवं अराष्ट्रीय तत्वों ने आग्रह किया था कि मैनन के विरोध में कांग्रेस का प्रत्याशी न खड़ा किया जाय। इससे स्पष्ट है कि कांग्रेस से अलग हो जाने के बाद भी मैनन कांग्रेस के एक वर्ग का नेतृत्व करता है। संसद में मैनन की उपस्थिति उस वर्ग को बल प्रदान करेगी और यही वर्ग शक्ति-स्पर्द्धा में पाटिल के प्रभाव का प्रतिरोध करेगा। पश्चिमी बंगाल के संयुक्त मोर्चे के नेताओं ने जब मैनन की उम्मेदवारी की घोषणा की थी तो कहा था कि मैनन केन्द्र में मोर्चे की राजनीतिका प्रतिनिधित्व करेंगे और मोर्चा मैनन को आगे करके राष्ट्रीय राजनीति के दंगल में उतर रहा है। स्पष्ट है कि मैनन वामपंथी गठबन्धन का प्रतिनिधित्व करेगा। उनको आशा है कि कांग्रेस में ध्रुवीकरण सम्पन्न हो जाने के बाद कांग्रेस का वह तथाकथित प्रगतिशील गुट मैनन के नेतृत्व में संगठित हो जावेगा और तब वामपंथी गठ-बन्धन को सत्ता प्राप्त करने का अवसर मिलेगा। प्रसोपा के अतिरिक्त सभी वामपंथी-दल गैर कांग्रेसी मिलजुली सरकार में सम्मिलित हो जावेंगे। विवाद केवल नेता के समय में हो सकता है। इसीलिए मैनन को आगे किया गया है। उधर जनसंघ, भारतीय क्रांतिदल और स्वतन्त्र पार्टी के अतिरिक्त कोई भी अन्य राजनीतिक गुट कांग्रेस से हाथ मिलाने के लिए तैयार नहीं है। ये दल भी कुछ शर्तों पर कांग्रेस के साथ हो सकते हैं। यदि कांग्रेस भविष्य में सर-कार बनाने के लिए इस त्रिगुट से गठबन्धन करती है तो उसे खण्डित होना ही पड़ेगा। क्योंकि अभी तक कांग्रेस में बहुमत उन लोगों का है जिन्हें दक्षिणपंथी कहा जाता है इस लिए वामपंथी दलों से इनका गठबन्धन सम्भव नहीं। कांग्रेस चाहे किसी ओर झुके, खण्डित तो उसे होना ही होगा। किन्तु खेद का विषय है कि अभी तक भी कांग्रेस ने समान विचार वाले दलों की खोज नहीं

की और न ही कोई प्रतिपक्षी दल शक्तिशाली बन कर शासन सभालने के लिए सम्मुख आ रहा है।

पाटिल और मैनन दो परस्पर विरोधी विचारों एवं मान्यताओं के व्यक्तियों का साथ-साथ लोक सभा में प्रविष्ट होना भारतीय राजनीति के वर्तमान दौर में एक प्रकार से ऐतिहासिक महत्व का है। इससे विस्फोट की भरपूर सम्भावनायें आंकी जा रही हैं। जो भी हो मैनन जैसे कुनक्षत्र का उदय न तो देश के लिए लाभप्रद है और न ही देश की राजनीति के लिए।

मुस्लिम साम्प्रदायिकता के नये रूप :

जैसा कि हम निरन्तर कहते आ रहे हैं कि देश में मुस्लिम साम्प्रदायिकता प्रबलरूपेण सिर उठा रही है और वह दिनानुदिन प्रभावी होती जा रही है। उसके दो नये उदाहरण विगत मास में भारतवासियों ने समाचार पत्रों में पढ़े होंगे। एक है 'मुस्लिम सम्पादक सम्मेलन' का गठन और दूसरा 'मुस्लिम सेना' का गठन। एक मुस्लिम लीग ने जब देश को तीन टुकड़ों में विभक्त करा दिया था तो इन दो संगठनों के द्वारा क्या-क्या अनिष्ट हो सकता है यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

मुस्लिम सम्पादक सम्मेलन से क्या अभिप्राय है ? हम समझते हैं कि यह स्वयं में स्पष्ट है। मुस्लिम सेना के संस्थापक दिल्ली निगम के पार्षद डा० अब्बास मलिक का कथन है कि मुस्लिम धार्मिक स्थानों की सुरक्षा प्रदान करने तथा दिल्ली में सामान्यतया समुदाय के हितों को संरक्षण देने के लिए इस सेना का गठन किया गया है। हम समझते हैं कि कांग्रेस के इस सैक्युलर शासन में जितना संरक्षण एवं सुरक्षा मुसलमानों को और उनके धार्मिक स्थानों को दी गई है, वह कदाचित् पाकिस्तान तथा ऐसे ही अन्य मुस्लिम देशों में भी न दी गई होगी। भारतवासी भली भांति जानते हैं कि मुसलमानों को संरक्षण देने की प्रकिया में हमारी काँग्रेस के नेता जवाहरलाल और उसके पीर पैगम्बर गांधी ने हिन्दुओं के साथ जो अनाचार और अत्याचार किया है उसका उदाहरण किसी काल में और किसी भी देश में उपलब्ध नहीं है।

कांग्रेस के सैक्युलर शासन में अथवा यों कहा जाय कि मुस्लिम-परस्त शासन में भी इन सेनाओं और सम्मेलन का संगठन मुस्लिम सम्प्रदाय के दौर्मनस्य को स्पस्ट-रूपेण प्रकट करता है। अत: देशवासियों एवं राष्ट्रवादियों का कर्तव्य है कि वे इस प्रकार के विघटनकारी संगठनों को कुचलने के लिए कटिबद्ध हों।

●

संरक्षक सदस्य

१ केवल एक सौ रुपये भेजकर परिषद् के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बनकर रहेगा।

संरक्षक सदस्यों को सुविधाएँ—

१ परिषद् के आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। इस वर्ष लगभग २५ रुपये मूल्य की पुस्तकें प्रकाशित की जाएँगी।

२ परिषद् की पत्रिका 'शाश्वत वाणी' आप जब तक सदस्य रहेंगे निःशुल्क प्राप्त कर सकेंगे।

३ परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ आप २५ प्र० श० छूट पर प्राप्त कर सकेंगे।

४ जब भी आप चाहेंगे अपनी धरोहर वापिस ले सकेंगे। धन मनी-आर्डर द्वारा या शाश्वत वाणी के नाम पर ड्राफ्ट द्वारा भेज सकते हैं।

अप्रैल मास में परिषद् ने निम्न दो पुस्तकें प्रकाशित की हैं जो मई २५ तक सदस्य बनने वालों को बिना मूल्य भेजी जाएंगी।

१ समाजवाद एक विवेचन-ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००
क्या समाजवाद धर्मवाद है? युक्तियुक्त विश्लेषण सहित।

२ गांधी और स्वराज्य—ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००
स्वराज्य प्राप्ति में किसका कितना हाथ रहा है, इसका प्रमाण सहित वर्णन इस पुस्तक में मिलेगा।

परिषद् का आगामी प्रकाशन

भारत में राष्ट्र—ले० श्री गुरुदत्त

भारत में राष्ट्र कौन सा है? हिन्दू की परिभाषा क्या है? हिन्दू के लक्षण तथा हिन्दू राष्ट्र की विवेचना इन विषयों पर लिखी गई यह पुस्तक अत्यन्त ज्ञानवर्धक है।

प्राप्ति स्थान

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०/९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)

नई दिल्ली—१

भारतीय संस्कृति परिषद के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं शक्तिपुत्र मुद्रणालय दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

जुलाई १९६९ वर्ष ८ अंक ७ राज० क्र० ६६८९/६०

शाश्वत वाणी

ऋ॒तस्य॒ साना॒वधि॑ च॒क्रमा॑णा॒: रिह॑न्ति॒ मध्वो॑ अ॒मृत॑स्य॒ वाणी॑: ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

१. सम्पादकीय	—	३
२. अस्तित्व की रक्षा	श्री विद्यानन्द 'विदेह'	६
३. श्री स्वामी शंकराचार्य का शारीरक भाष्य शास्त्र की महिमा कम करने का प्रयास	श्री गुरुदत्त	११
४. अन्तर्राष्ट्रीय हलचल	श्री आदित्य	१७
५. काश ! आज पंडितजी होते !	श्री टेकचन्द शर्मा	२०
६. भारत की उलझी समस्यायें एवं हमारे तात्कालिक नेता	श्री विशनचन्द्र सेठ	२७
७. क्रान्ति और भारत का जन-मानस	श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार	३१
८. समाचार समीक्षा	—	३६

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

अराजकता

आज समस्त देश में अराजकता व्याप्त है। कुछ लोग इसकी सत्यता को नहीं मानते। वे कहते हैं कि भारत जैसे बड़े देश में पांच-दस व्यक्तियों के नित्य गोली से मारे जाने पर ही उक्त कथन की सत्यता सिद्ध नहीं हो सकती। वे अपने अनुमान की पुष्टि में कहते हैं कि रेल, वायुयान, तार, डाक चलती हैं, लाखों यात्री नित्य सुरक्षापूर्वक यात्रा कर रहे हैं, करोड़ों लोग, नगरों में और देहातों में रहने वाले शांति और सुख का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अतः देश में अराजकता व्याप्त है, ऐसा कहना मिथ्या है। यह ठीक है कि कुछ लोग, जो गुण्डे और बदमाश हैं, वे उपद्रव करते रहते हैं और पुलिस उनको दबाती रहती है, और अन्त में पुलिस शांति स्थापित करने में सफल हो जाती है।

"देश में व्यवस्था है" ऐसा कहने वालों के कथन को हम गलत मानते हैं। वे वास्तव में अराजकता का अर्थ नहीं समझते। इस शान्ति को जेलखाने की शान्ति कहा जाए तो उपयुक्त होगा। जेल में पड़े हुए लोग सुख से भोजन पाते हैं, वस्त्र पाते हैं और अपना नित्य का काम नियम पूर्वक करते जाते हैं। यदि कोई

व्यक्ति जेल में किसी प्रकार का अनियमित काम करे और पकड़ा जाए तो उसे कठोर दण्ड दिया जाता है। परन्तु यदि कोई बदमाश जेल के कर्मचारियों की रुचि के अनुसार अनियमितता का व्यवहार करता है तो जेल के अधिकारी उसके इस नियम भंग पर आंखें मूंद लेते हैं, उसको पुरस्कार देते हैं।

यही अवस्था इस समय भारत में हो रही है। जैसे जेल अधिकारियों की रुचि के अनुसार कानून भंग करने वाले न केवल पकड़े ही नहीं जाते, वरन् अवसर मिलने पर पुरस्कार पाते हैं, यही बात इस देश में हो रही है।

बंगाल के एक मिनिस्टर सुशील कुमार धार को किसी संस्थान के कर्मचारियों ने घेराव में ६० घण्टे रोके रखा। बंगाल के एक अन्य मन्त्री को उसके कार्यालय में ही कुछ लोगों ने घेराव में बन्द किया और उसको छुड़ाने के लिए मन्त्री के दल के स्वयं सेवक (सम्भवतः गुण्डे) उसे छुड़ाने कार्यालय में आये और घेराव डालने वालों के साथ हाथा-पायी कर अपने मन्त्री को छुड़ा कर ले गये।

पिछले दो सप्ताह में बंगाल में पचास से अधिक घेराव डाले गये और घिरे हुए अधिकारियों ने छूटने के लिए अपने-अपने साधन अथवा युक्ति-बल का आश्रय लिया।

विदित हुआ है कि बंगाल के मुख्य मन्त्री श्री मुखर्जी उत्तरी बंगाल के दौरे पर जाने वाले हैं और उनको धमकी दी गयी है कि वहां उनका घेराव किया जायेगा।

कलकत्ता हाई-कोर्ट ने पिछले वर्ष घेराव के विषय में यह निर्णय दिया हुआ है कि घेराव भारतीय दण्ड विधान के विपरीत होने से दण्डनीय है।

इस वर्ष बंगाल के गृह मन्त्री ने यह आदेश जारी किया है कि कर्मचारियों द्वारा घेराव में पुलिस हस्तक्षेप नहीं करेगी। यह कर्मचारियों और मालिकों के परस्पर निर्णय करने का विषय है।

इसी प्रकार का एक अन्य रोचक समाचार मिला है कि केन्द्रीय खाद्य-मंत्री श्री जगजीवनराम ने मध्य प्रदेश के एक गांव में यह वक्तव्य दिया कि भूमि-हीन अनुसूचित जातियों के लोग चाहें तो सरकारी भूमि पर अधिकार कर जुताई, बुआई कर सकते हैं। यही तो नक्सलबाड़ी में किया जा रहा था और अब भी भारत में कहीं-कहीं ऐसा करने वालों को नक्सलबाड़ी कम्यु-निस्ट कहते हैं।

मजेदार बात यह है कि बंगाल के नक्सलबाड़ी आन्दोलन के दो नेताओं को, जो हत्तायें करने के अपराध में दण्ड भोग रहे थे, बंगाल सरकार ने छोड़ दिया है।

इनके अतिरिक्त भी अन्य अनेक घटनायें हो रही हैं जिनमें कुछ लोग किसी सत्य अथवा काल्पनिक शिकायत पर रुष्ट हो कर, न केवल तथा-कथित दोषियों को मारते-लूटते हैं, अपितु वे जिस बाजार से गुजर जायें, उसकी दुकानें लूट लेते हैं, चलती-फिरती मोटर गाड़ियों, बसों को फूंक देते हैं, मकानों को आग लगा देते हैं, परन्तु उन को रोकने के लिए कोई आगे नहीं बढ़ता। यदि साहस कर कभी कोई पकड़ा भी जाता है तो उस पर मुकदमा नहीं चलाया जाता अथवा सरकार में मुकदमा चलाने की सामर्थ्य नहीं रहती क्योंकि पकड़े हुओं के सम्बन्धी सत्ताधारी दल के मत दाता होते हैं।

तीन-चार मास हुए बम्बई में शिव सेना ने उधम मचाया था। कुछ दिनों बाद दिल्ली में कुछ मुसलमानों ने अव्यवस्था उत्पन्न करने का यत्न किया था। थोड़े दिन पूर्व लखनऊ में शियों के जलूस पर सुन्नियों ने आक्रमण किया, सरकार ने वहां प्यूनिटिव' पुलिस बैठाने का निर्णय किया है और कहा जाता है कि उन क्षेत्रों में हिन्दु भी रहते हैं।

यह तो हुए देश में दंगाई लोगों के कारनामें। पिछले वर्ष केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी थी। विशाखापटनम में जहाजी कारखाने में हड़ताल समाप्त ही हुई थी कि हवाई संचार विभाग में हड़ताल हो गई। देश में सदा सैंकड़ों ही ऐसे कारखाने होते हैं, जहां का काम हड़तालों के कारण ठप्प होता रहता है।

प्रायः इन अनियमितताओं को न्यायालय में नहीं ले जाया जा सकता। क्योंकि कानून दोष युक्त है। जहां न्यायालय में ले भी जाया जाता है तो वहां न्यायालय में निर्णय होने में वर्षों लग जाते हैं। मुकदमा चलाने वाले थक जाते हैं और न्यायालय निर्णय नहीं दे सकता।

देश का संविधान इतना शिथिल है कि कोई भला व्यक्ति सहज में न्यायालय में जाना पसन्द नहीं करता। वह जानता है कि न्यायालय को न्याय करने में इतनी देर लगेगी कि न्याय भी अन्याय का रूप ही हो जायेगा।

इस स्थिति में यह कहना कि आज देश अराजकता व्याप्त है, कोई गलत बात नहीं।

अराजकता से हमारा अभिप्राय है कि आज देश की शासन व्यवस्था ऐसी है कि नियम भंग करने वालों को पहले तो पकड़ा ही नहीं जाता अथवा पकड़ा नहीं जा सकता और यदि कोई पकड़ा भी जाता है तो उसे दण्ड नहीं दिया जा सकता। प्रायः दण्ड देने की इच्छा नहीं होती। कानून ऐसे बना दिए गए हैं कि समाज के एक विशेष वर्ग को प्रत्येक प्रकार की उच्छृंखलता करने की छूट मिल चुकी है। उन पर न तो मालिकों का नियन्त्रण रहा है

और न ही सरकार का। कानून दोष पूर्ण होने से न्यायालय भी नियन्त्रण रखने में अशक्त हैं। जहां कहीं न्यायालय कोई बात ऐसी करता भी है जिस से नियन्त्रण चल सकता है तो वहां सरकार न्यायालय के आदेश को पालन करने में रुचि नहीं रखती।

उपरिलिखित तथ्यों के आधार पर ही हम कहते हैं कि देश में अराजकता व्याप्त है। राज्य का जो प्रयोजन है, वह पूर्ण नहीं किया जा रहा है। राज्य का प्रथम प्रयोजन है कि कानून भंग करने वालों से कानून पालन करने वाले की रक्षा की जाये। इसको 'Law and order' अर्थात् नियम एवं सुव्यवस्था कहते हैं। आज भारत में कोई भी व्यक्ति यह विश्वास से नहीं कह सकता कि कभी चान्दनी चौक में जाते-जाते उसके पेट में छुरा नहीं घोंप दिया जाएगा और ऐसा करने वाला आदमी पकड़ा जा सकेगा अथवा नहीं। यदि पकड़ा भी जायेगा तो वह दण्ड पाएगा अथवा नहीं ? साथ ही वह भला आदमी, जिसके पेट में छुरा घोंपा गया है अथवा घोंपने का यत्न किया गया है, वह अपराधी के पकड़े जाने पर किसी प्रकार की सुविधा और संतोष अनुभव करेगा क्या ? कदाचित् उसे दोषी से भी अधिक कष्ट भोगना पड़ेगा।

न्यायालयों के हाथ बंधे हुए हैं। उनके निर्णय तक पहुंचने में अनेक प्रकार की कानूनी अड़चनें बाधक हैं। फिर न्यायालयों के निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिए भी भारी कठिनाइयां होती हैं। कभी मुकद्दमे में एक पक्ष सरकारी हो तो सरकार के विपरीत निर्णय कार्यान्वित हो सकता ही नहीं। ऐसे निर्णयों को अमल में लाने के लिए सरकारी कर्मचारियों को कई प्रकार से प्रसन्न करना पड़ता है।

इस प्रकार अराजकता का एक रूप ऊपर वर्णन किया गया है। एक अन्य प्रकार की अव्यवस्था भी है। वह यह कि सरकार ने अपनी आर्थिक नीतियाँ ऐसे चलायीं हैं कि देश पर साठ अरब रुपये के लगभग ऋण हो गया है। इस ऋण के अतिरिक्त सहायतार्थ मिला धन भी कई अरब रुपये का था, जो समाप्त हो चुका है। अब ऋण उतारने का समय आ गया है और इसका मूल और ब्याज देना पड़ रहा है। इस कारण देश भर में घाटे के बजट चल रहे हैं। सब प्रकार के कर बढ़ाने पर भी बजट पूरे नहीं होते।

देश की आर्थिक नीतियां किसने निर्माण की थीं ? निस्सन्देह कहा जा सकता है कि जनता के प्रतिनिधियों ने। अतः इस समय देश में जो आर्थिक संकट आ रहा है, वह जनता के प्रतिनिधियों ने उत्पन्न किया है।

कानून दोषपूर्ण है तो उत्तरदायी जनता के प्रतिनिधि हैं।

यदि समाज के एक वर्ग को इतनी सुविधायें मिल गयी हैं कि उन पर

समाज का अथवा सरकार का नियन्त्रण ही नहीं रहा तो यह स्थिति किसने निर्माण की है ? निश्चय जनता के प्रतिनिधियों ने ।

यदि हाई कोर्ट के निर्णयों की अवहेलना की जाती है तो कौन उत्तरदायी है ? ये जनता के प्रतिनिधि विधान सभाओं, लोक सभा और मन्त्री-मण्डल के सदस्य ही हैं ।

यदि सौ दो सौ आदमी पूर्ण नगर अथवा कस्बे को लूट सकते हैं तो दोष किसका है ? इसके लिए वह सरकार उत्तरदायी है, जिसे जनता ने अपना मत दे कर निर्वाचित किया है ।

संविधान का प्रयोग न करने का दोष किसका है ? प्रजा के प्रतिनिधियों को अभिप्राय यह कि जो कुछ देश में गड़बड़ हो रही है, वह प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा हो रही है । दूसरे शब्दों में अराजकता प्रजा के प्रतिनिधियों की करनी से उत्पन्न हो रही है ।

हम प्रश्न यह कर सकते हैं कि क्या इस अराजकता में प्रजा प्रसन्न है जो वह उन्हीं लोगों को बार-बार चुन कर भेजती है जो अराजकता फैलाने में सहयोग देते रहे हैं अथवा अराजकता रोकने की बुद्धि और सामर्थ्य नहीं रखते ?

सन् १९६७ में बंगाल सरकार के एक मिनिस्टर श्री ज्योति बसु ने घेराव डालना कर्मचारियों का कानून अधिकार माना था । मामला अदालत में गया और हाई कोर्ट ने निर्णय दे दिया कि घेराव डालना भारत के दण्ड-विधान के विपरीत है और दण्डनीय है ।

सन् १९६९ में पुनः निर्वाचन हुए और वही ज्योति बसु पुनः चुन लिए गए और उन्होंने मण्त्री-मण्डल में गृह मन्त्री बनते ही आज्ञा जारी कर दी कि घेरावों में पुलिस हस्तक्षेप नहीं करेगी ।

विचारणीय प्रश्न है कि दोष ज्योति बसु का है अथवा प्रजा में मतदाताओं का ? घेराव आज केवल प्राइवेट मालिकों का ही नहीं हो रहा, वरंच मिनिस्टरों का भी हो रहा है । यहां तक कि बंगाल के मुख्य मन्त्री का भी घेराव करने की धमकी दी गयी है ।

जब बंगाल का मन्त्री-मण्डल घेराव जैसी दण्ड-विधान विरोधी कार्यवाही को प्रोत्साहन दे रहा था, तब केन्द्रीय सरकार इस आधार पर मन्त्री-मण्डल को हटाने के लिए तैयार नहीं हुई थी । दूसरे शब्दों में अराजकता को केन्द्रीय मन्त्री-मण्डल और राष्ट्रपति भी सहन करते थे और ये सब प्रजा द्वारा निर्वाचित अधिकारी हैं ।

हमारे संविधान में यह लिखा है कि प्रत्येक राज्य के मन्त्री को यह

और न ही सरकार का। कानून दोष पूर्ण होने से न्यायालय भी नियन्त्रण रखने में अशक्त हैं। जहां कहीं न्यायालय कोई बात ऐसी करता भी है जिस से नियन्त्रण चल सकता है तो वहां सरकार न्यायालय के आदेश को पालन करने में रुचि नहीं रखती।

उपरिलिखित तथ्यों के आधार पर ही हम कहने हैं कि देश में अराजकता व्याप्त है। राज्य का जो प्रयोजन है, वह पूर्ण नहीं किया जा रहा है। राज्य का प्रथम प्रयोजन है कि कानून भंग करने वालों से कानून पालन करने वाले की रक्षा की जाये। इसको 'Law and order' अर्थात् नियम एवं सुव्यवस्था कहते हैं। आज भारत में कोई भी व्यक्ति यह विश्वास से नहीं कह सकता कि कभी चान्दनी चौक में जाते-जाते उसके पेट में छुरा नहीं घोंप दिया जाएगा और ऐसा करने वाला आदमी पकड़ा जा सकेगा अथवा नहीं। यदि पकड़ा भी जायेगा तो वह दण्ड पाएगा अथवा नहीं? साथ ही वह भला आदमी, जिसके पेट में छुरा घोंपा गया है अथवा घोंपने का यत्न किया गया है, वह अपराधी के पकड़े जाने पर किसी प्रकार की सुविधा और संतोष अनुभव करेगा क्या? कदाचित् उसे दोषी से भी अधिक कष्ट भोगना पड़ेगा।

न्यायालयों के हाथ बंधे हुए हैं। उनके निर्णय तक पहुंचने में अनेक प्रकार की कानूनी अड़चनें बाधक हैं। फिर न्यायालयों के निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिए भी भारी कठिनाइयां होती हैं। कभी मुकद्दमे में एक पक्ष सरकारी हो तो सरकार के विपरीत निर्णय कार्यान्वित हो सकता ही नहीं। ऐसे निर्णयों को अमल में लाने के लिए सरकारी कर्मचारियों को कई प्रकार से प्रसन्न करना पड़ता है।

इस प्रकार अराजकता का एक रूप ऊपर वर्णन किया गया है। एक अन्य प्रकार की अव्यवस्था भी है। वह यह कि सरकार ने अपनी आर्थिक नीतियाँ ऐसे चलायीं हैं कि देश पर साठ अरब रुपये के लगभग ऋण हो गया है। इस ऋण के अतिरिक्त सहायतार्थ मिला धन भी कई अरब रुपये का था, जो समाप्त हो चुका है। अब ऋण उतारने का समय आ गया है और इसका मूल और ब्याज देना पड़ रहा है। इस कारण देश भर में घाटे के बजट चल रहे हैं। सब प्रकार के कर बढ़ाने पर भी बजट पूरे नहीं होते।

देश की आर्थिक नीतियां किसने निर्माण की थीं? निस्सन्देह कहा जा सकता है कि जनता के प्रतिनिधियों ने। अतः इस समय देश में जो आर्थिक संकट आ रहा है, वह जनता के प्रतिनिधियों ने उत्पन्न किया है।

कानून दोषपूर्ण है तो उत्तरदायी जनता के प्रतिनिधि हैं।

यदि समाज के एक वर्ग को इतनी सुविधायें मिल गयी हैं कि उन पर

समाज का अथवा सरकार का नियन्त्रण ही नहीं रहा तो यह स्थिति किसने निर्माण की है ? निश्चय जनता के प्रतिनिधियों ने ।

यदि हाई कोर्ट के निर्णयों की अवहेलना की जाती है तो कौन उत्तरदायी है ? ये जनता के प्रतिनिधि विधान सभाओं, लोक सभा और मन्त्री-मण्डल के सदस्य ही हैं ।

यदि सौ दो सौ आदमी पूर्ण नगर अथवा कस्बे को लूट सकते हैं तो दोष किसका है ? इसके लिए वह सरकार उत्तरदायी है, जिसे जनता ने अपना मत दे कर निर्वाचित किया है ।

संविधान का प्रयोग न करने का दोष किसका है ? प्रजा के प्रतिनिधियों को अभिप्राय यह कि जो कुछ देश में गड़बड़ हो रही है, वह प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा हो रही है । दूसरे शब्दों में अराजकता प्रजा के प्रतिनिधियों की करनी से उत्पन्न हो रही है ।

हम प्रश्न यह कर सकते हैं कि क्या इस अराजकता में प्रजा प्रसन्न है जो वह उन्हीं लोगों को बार-बार चुन कर भेजती है जो अराजकता फैलाने में सहयोग देते रहे हैं अथवा अराजकता रोकने की बुद्धि और सामर्थ्य नहीं रखते ?

सन् १९६७ में बंगाल सरकार के एक मिनिस्टर श्री ज्योति बसु ने घेराव डालना कर्मचारियों का कानून अधिकार माना था । मामला अदालत में गया और हाई कोर्ट ने निर्णय दे दिया कि घेराव डालना भारत के दण्ड-विधान के विपरीत है और दण्डनीय है ।

सन् १९६९ में पुनः निर्वाचन हुए और वही ज्योति बसु पुनः चुन लिए गए और उन्होंने मन्त्री-मण्डल में गृह मन्त्री बनते ही आज्ञा जारी कर दी कि घेरावों में पुलिस हस्तक्षेप नहीं करेगी ।

विचारणीय प्रश्न है कि दोष ज्योति बसु का है अथवा प्रजा में मतदाताओं का ? घेराव आज केवल प्राइवेट मालिकों का ही नहीं हो रहा, वरंच मिनिस्टरों का भी हो रहा है । यहां तक कि बंगाल के मुख्य मन्त्री का भी घेराव करने की धमकी दी गयी है ।

जब बंगाल का मन्त्री-मण्डल घेराव जैसी दण्ड-विधान विरोधी कार्यवाही को प्रोत्साहन दे रहा था, तब केन्द्रीय सरकार इस आधार पर मन्त्री-मण्डल को हटाने के लिए तैयार नहीं हुई थी । दूसरे शब्दों में अराजकता को केन्द्रीय मन्त्री-मण्डल और राष्ट्रपति भी सहन करते थे और ये सब प्रजा द्वारा निर्वाचित अधिकारी हैं ।

हमारे संविधान में यह लिखा है कि प्रत्येक राज्य के मन्त्री को यह

सौगन्ध लेनी पड़ती है— मैं परमात्मा के नाम पर सत्य हृदय से यह शपथ लेता हूँ कि मैं भारत के संविधान में विश्वास रखता हूं और उसके अधीन रहूंगा, जो कानून से स्थापित किया गया है। मैं निष्ठापूर्वक और सत्य हृदय से राज्य के मन्त्री के कर्त्तव्यों का पालन करूंगा........और मैं सबके साथ, सब प्रकार के लोगों के साथ संविधान के अनुसार बिना डर के, रियायत के, मोह के अथवा दुर्भावना के व्यवहार करूंगा।"

श्री ज्योति बसु हाई कोर्ट के निर्णय के उपरान्त भी जब यह कहते हैं कि घेराव के विषयों में पुलिस हस्तक्षेप नहीं करेगी तो क्या वह अपनी शपथ के अनुसार व्यवहार कर रहे हैं?

बसु महाशय प्रजा द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि हैं। उन पर संवैधानिक अंकुश है भारत के प्रधान मन्त्री का और राष्ट्रपति का। वे अंकुश नहीं रख सके और ये अधिकारी भी प्रजा द्वारा निर्वाचित हैं।

इससे यह बात तो स्पष्ट है कि भारत की प्रजा मूर्ख है अथवा प्रजा से वह काम लिया जा रहा है, जिसके वह योग्य नहीं है।

यही बात इस प्रकार भी कही जा सकती है कि राज्य-शासन के लिए प्रजातंत्रात्मक पद्धति अव्यावहारिक है अथवा यह कह जकते हैं कि प्रजातंत्रात्मक पद्धति तो ठीक है, परन्तु भारत की जनता प्रजातंत्रात्मक पद्धति के अयोग्य है।

इस विषय पर हम विस्तृत रूपेण अपने विचार अगले मास व्यक्त करेंगे। अभी तो हम ने यही सिद्ध किया है कि भारत में राज्याधिकारी राज्य संचालन के अयोग्य सिद्ध हुए हैं। वे प्रजा द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि हैं अतः या तो अयोग्य अधिकारियों के हाथ में राज्य देने वाली प्रजा दोषी है अथवा उस विधि-विधान में ही दोष है, जिससे ये चुने जा रहे हैं। ●

संरक्षक सदस्य

इस मास निम्न नये सदस्यों का शुल्क हमें प्राप्त हुआ है। परिषद् इनके सहयोग पर आभार प्रदर्शित करती है।

१ श्री उमाकान्त रैना

ग्रा० पो० ग्रा० डघेड़, रघुपुर कोठी, तह० आनी, कुल्लू।

१ डा० अरुण बघोत्रा

२६० न्यू प्लौट, हरवंश नगर, जम्मू तवी।

हमें खेद है कि विशेष कारण से जिन सदस्यों का चित्र प्राप्त हुआ है इस मास नहीं छाप सके। अगले मास अवश्य प्रकाशित किए जाएंगे। जिन सदस्यों ने अपना चित्र नहीं भेजा कृपया यथाशीघ्र भेजने का प्रबंध करें। मंत्री, परिषद

अस्तित्व की रक्षा

श्री विद्यानन्द 'विदेह'

हिन्दु-संगठन के लिये हिन्दुमात्र की एक समान भाषा होना नितान्त आवश्यक है और वह भाषा हिन्दी ही हो सकती है। इसके लिये जहां वैधानिक आन्दोलन तथा शिष्ट आलोचना आवश्यक है, वहां देशव्यापी और विश्वव्यापी साधना भी आवश्यक है।

हिन्दी-भक्त दो प्रकार के हैं—एक वे जो अपना सब कामकाज अंगरेज़ी तथा उर्दू में करते हैं, परन्तु हिन्दी पक्ष में प्रचुर आन्दोलन करते हैं। दूसरे वे, जो हिंदी के लिये किये जाने वाले आन्दोलनों से कोई वास्ता नहीं रखते हैं, किन्तु अपना सब कार्य यथासम्भव हिन्दी में ही करते हैं। पूर्व कोटि के लोग जहां धन्यवाद के पात्र हैं, वहां दूसरी कोटि के लोग बधाई के पात्र हैं।

भाषा की व्याप्ति आन्दोलनों, आलोचनाओं और प्रशस्तियों से उतनी नहीं होती है, जितनी व्यवहार और प्रयोग से होती है। हिन्दी की व्याप्ति की दिशा में प्रशस्ततम साधना यह होगी कि हिन्दीज्ञ बोलने तथा लिखने में हिन्दी का अधिक से अधिक प्रयोग करें। हमारे देश में अभी पाँच प्रदेश ऐसे हैं जहां पता हिन्दी में लिखा होने पर पत्र या तो देर से पहुंचता है या खत्ते में डाल दिया जाता है। वहां के लिये पता भले ही अंगरेजी में लिख दिया जाये, पर पत्र हिन्दी में ही लिखा जाना चाहिये। विदेशों में मेरे अनेक प्रेमी ऐसे हैं जो हिन्दी पढ़ सकते हैं मगर लिख नहीं सकते। वे मुझे अंगरेज़ी में पत्र लिखते हैं, पर मैं उनके पत्रों का जवाब सदा हिन्दी में देता हूं। परिणाम यह है कि उनमें से कितने ही अब मुझे हिन्दी में पत्र लिखने लगे हैं।

देशविदेशों में बहुत व्यक्ति हैं जो हिन्दी में बात समझ लेते हैं, परन्तु वे स्वयं बोलते और लिखते अंगरेजी में हैं। आप अपनी ओर से उनसे हिन्दी में

ही बोलिये । अभिवादन और धन्यवाद भी हिन्दी में ही कीजिये । निमन्त्रण तथा शुभकामना के पत्र हिन्दी में ही प्रेषिये ।

मैंने अभी एक बार भी सिनेमा-हाल या सिनेमा नहीं देखा है । उस दिन मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई जब मुझे यह बताया गया कि हिन्दी फिल्मों द्वारा हिन्दी का जितना अन्तः प्रादेशिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रचार हुआ है उतना अन्य किसी साधन से नहीं हुआ है । यह सुनकर मैंने हृदय से हिन्दी-फिल्म-व्यवसाय का धन्यवाद किया ।

अहिन्दी-भाषी प्रदेशों में हिन्दी-भाषी संस्थायें तथा व्यक्ति हिन्दी की निःशुल्क रात्रि-कक्षायें चलायें और वहां की जनता को उनकी मातृभाषा के आश्रय से हिन्दी सिखायें ।

हिन्दी-भाषी प्रदेशों में भी अभी तक हिन्दी के दैनिकों की अपेक्षा अंगरेज़ी के दैनिकों का प्रकाशन कहीं अधिक बड़े आकार और कहीं अधिक संख्या में हो रहा है । हिन्दी के दैनिक तभी पनप पायेंगे जब जनता के मानस में इस अशोभनीय स्थिति के लिये आत्मग्लानि उत्पन्न होगी । सम्बन्धित संस्थाओं तथा संस्थानों को हिन्दी के दैनिकों की उन्नति तथा व्याप्ति के लिये भागीरथ प्रयत्न करना होगा ।

हिन्दी की व्याप्ति की दिशा में सर्वोपरि साधना है हिन्दी की पाचनशक्ति को बढ़ाना । न केवल अंगरेज़ी के सर्वप्रयुक्त शब्दों को, अपितु भारत की सभी भाषाओं के अधिक-से-अधिक शब्दों, मुहावरों तथा कोलोक्तियों को हिन्दी में रूपान्तरित करना चाहिये । एक ओर जहां संस्कृतनिष्ठ हिन्दी हिन्दी-साहित्य के स्तर को ऊंचा कर रही हो, वहां दूसरी ओर सर्वभाषावाङ्मयपूरित हिन्दी सर्वजनसुलभ भाषा बन रही हो ।

विश्व की समृद्ध-असमृद्ध सभी भाषाओं की मौलिक तथा विशिष्ट रचनाओं का जहां हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित किया जाये, वहां विश्व की सभी भाषाओं की निज-छटाछवियों, साहित्य-विधियों तथा रचना-शैलियों को हिन्दी में संजोया जाये । दीर्घद्रष्टा दयानन्द के शब्दों में वह दिन शीघ्र लाया जाना चाहिये जब आर्यभाषा [हिन्दी] न केवल समस्त आर्यावर्त में, अपितु सम्पूर्ण भूमण्डल पर प्रचलित हो रही हो ।

श्री स्वामी शंकराचार्य का शारीरक भाष्य शास्त्र की महिमा कम करने का प्रयास

श्री गुरुदत्त

हमारा यह मत है कि महर्षि दयानन्द जी सरस्वती स्वामी शंकराचार्य जी से अधिक तर्क शक्ति के अधिकारी थे। यही कारण है कि स्वामी शंकराचार्य जी स्थान-स्थान पर ठोकर खा गये। जब कि स्वामी दयानन्द जी के तर्कों का उत्तर नहीं है।

श्री स्वामी शंकराचार्य तो दर्शन शास्त्रों के प्रयोजन को भी भली-भांति समझे प्रतीत नहीं होते। दर्शन लिखने का प्रयोजन सत्य का दर्शन कराना है। वैदिक दर्शन शास्त्र यह स्वीकार करते हैं कि वेद सत्य विद्याओं के ग्रन्थ हैं। अतः वैदिक मान्यताओं को ये दर्शन शास्त्र सत्य सिद्ध करने के लिए वेदों के प्रमाणों से अतिरिक्त साधनों का प्रयोग करते हैं। अभिप्राय यह है कि अनुमान प्रमाण से वैदिक मान्यताओं को सत्य सिद्ध करते हैं।

ऐसा करने का प्रयोजन यह है कि वे लोग जो परमात्मा के अस्तित्व को और उसके ज्ञान को वेदों में स्वीकार नहीं करते, उनसे भी परमात्मा के अस्तित्त्व को स्वीकार कराया जाये। यह युक्ति द्वारा ही हो सकता है। परन्तु जब श्री स्वामी शंकराचार्य अनुमान-प्रमाण को निम्न कोटि का तथा त्याज्य घोषित करते हैं तो वे वास्तव में दर्शन शास्त्रों की आवश्यकता और उपादेयता पर ही कुठाराघात करते हैं।

देखिये, स्वामी शंकराचार्य जी ब्रह्म सूत्र १-१-२ का भाष्य करते हुए क्या लिखते हैं :—

ऐतदेवानुमानं संसारिव्यतिरिक्तेश्वरास्तित्वादिसाधनं मन्यन्त ईश्वरकारणिनः। नन्विहापि तदेवोपन्यस्तं जन्मादिसूत्रे। नः वेदान्तवाक्यकुसुमग्रथना–

र्थत्वात्सूत्राणाम् । वेदान्तवाक्यानि हि सूत्रैरुदाहृत्य विचार्यन्ते । वाक्यार्थ-विचारणाध्यवसाननिर्वृत्ता हि ब्रह्मावगतिः, नानुमानादिप्रमाणान्तरनिर्वृत्ता।
(शारीरक भाष्य — १-१-२)

इसका अर्थ है कि इस (जन्माद्यस्य यतः) में अनुमान (प्रमाण) है क्या? संसारी (जीव) से अतिरिक्त ईश्वर को जगत् का कारण मानने वाले इस अनुमान को साधन (प्रमाण) मानते हैं कि ईश्वर जन्मादि का कारण है। तो यहां इस (अनुमान) का उपन्यास किया गया है क्या? नहीं। क्योंकि सूत्र, वेदान्त-वाक्य रूपी-पुष्पों को गूंथने के लिए हैं। सूत्रों द्वारा वेदान्त वाक्यों का उदाहरण देकर विचार किया जाता है। वाक्यों के अर्थ का विचार कर निश्चित तात्पर्य जानने से ब्रह्म गति प्राप्त होती है। अनुमानादि प्रमाणों से नहीं।

जो लोग वेदान्त शास्त्रों को स्वतः प्रमाण मानते हैं, उनके लिए वेदान्त शास्त्र हैं ही। हमारा अभिप्राय यह है कि वेदादि शास्त्रों में ब्रह्म का निरूपण इतना स्पष्ट किया है कि उसको और स्पष्ट करने के लिए सूत्र ग्रंथों की आवश्यकता नहीं। उदाहरण के रूप में एक वेद मन्त्र है :—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥
(यजु० — ३१-१८)

यह मन्त्र परमात्मा को जानने और उससे मृत्यु को पार करने के विषय में सर्वथा स्पष्ट है, परन्तु जो व्यक्ति वेद को स्वतः प्रमाण नहीं मानता, उसके समक्ष परमात्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए अनुमान प्रमाण के अतिरिक्त अन्य कोई साधन ही नहीं। दर्शन शास्त्र यही कहते हैं और जब स्वामी शंकराचार्य अनुमान प्रमाण को ही अमान्य करते हैं तो वे वास्तव में दर्शन शास्त्र की महत्ता पर ही कुठाराघात करते हैं।

अब तनिक उस सूत्र की ओर ध्यान करें, जिसका भाष्य करते हुए स्वामी जी ने उक्त वाक्य लिखा है, तो प्रकट होगा कि वह सूत्र आद्योपान्त युक्ति ही है। वह शुद्ध और स्पष्ट युक्ति है। सूत्र है :—

"जन्माद्यस्य यतः॥"

अर्थात्—(जन्मादि) जन्म—उत्पत्ति, पालन और प्रलय (अस्य) इस जगत् की (यतः) जिससे होती है, वह ब्रह्म है। 'अस्य' से अभिप्राय कार्य जगत् का है। कार्य जगत् बना है, चल रहा है और विनष्ट होता है। यह बिना कर्ता के हो नहीं सकता। जगत् में कुछ भी बिना किसी के बनाये बनता नहीं। बिना

किसी के बिगाड़े बिगड़ता नहीं । अतः इस कार्य जगत् के (जन्मादि) बनाने, पालन करने और प्रलय करने वाले को ब्रह्म कहते हैं ।

यह एक अकाट्य युक्ति (अनुमान प्रमाण) है । स्वामी शंकराचार्य जी कह रहे हैं कि यह सूत्र अनुमान प्रमाण के रूप में नहीं है, वरंच यह तो वेदान्त वाक्य पुष्पों को सूत्र की भान्ति गूंथने के लिए है ।

यही हम श्री स्वामी शंकराचार्य की दुर्बलता मानते हैं । वह न तो वेदान्त शास्त्रों को ठीक प्रकार समझ सके हैं और न ही वे ब्रह्म सूत्रों के उद्देश्य को समझ सके हैं ।

कठिनाई यह उपस्थित हो जाती है कि स्वामी शंकराचार्य के मतानुयायी स्वामी जी के भाष्य की छान–बीन करने को स्वामी जी का अनादर करना मानते हैं ।

पारडी से निकलने वाली 'वैदिक धर्म' पत्रिका के अप्रैल-मई अंक में एक लेखक स्वामी जी के भाष्यों की छान–बीन को स्वामी जी का अनादर करना मानते हैं ।

वास्तव में दर्शन शास्त्रों पर विवेचना करने में आदर-अनादर का प्रश्न ही नहीं होता । यह तो स्वामी जी के भक्तों की व्यर्थ की भावुकता है, जिससे उनको ऐसा प्रतीत होता है । शास्त्र विवेचना में युक्तियां और उनके उत्तर आते ही हैं । यह आदर-अनादर के सूचक नहीं हो सकते । स्वामी शंकराचार्य जी स्वयं पूर्व-पक्ष रख कर उसका उत्तर देते थे ।

''वैदिक-धर्म'' में छपे लेख के लेखक स्वामी शंकराचार्य के पक्ष का समर्थन इस प्रकार करते हैं :—

'पर शंकराचार्य के ब्रह्म सूत्रों पर शारीरक भाष्य के अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाता है कि ये आरोप आधारहीन हैं । क्योंकि शंकर के सिद्धान्तों का खण्डन करते समय विद्वान शंकर द्वारा प्रतिपादित तीन सत्ताओं की अवहेलना कर जाते हैं । शंकराचार्य ने (१) व्यवहारिक सत्ता (२) पारमार्थिक सत्ता और (३) प्रातिभासिक सत्ता, इन तीन सत्ताओं के स्तम्भों पर अपने सिद्धान्त का महल खड़ा किया है ।'

लेखक ने इन सत्ताओं का उल्लेख करके स्वामी शंकराचार्य जी के ब्रह्म सूत्रों पर शारीरक भाष्य की अलोचना से अनभिज्ञता प्रकट की है । आलोचना करने वाले इन सत्ताओं को मानते हैं, परन्तु ये सत्तायें जगत् की नहीं हैं, वरंच जीवात्मा की हैं । जीवात्मा जब संसार के व्यवहार में रत रहता है तो यह उसकी व्यवहारिक सत्ता कहलाती है । जब जीव यज्ञ रूप होकर संसार में

विचरता है तब उसकी परमार्थिक सत्ता कहलाती है और जब वह ज्ञानवान् हो जगत् के मूल तत्त्वों को भली भांति जान जाता है, तब उसकी प्रातिभासिक सत्ता कहलाती है।

परन्तु जीवात्मा इन भिन्न-भिन्न सत्ताओं में रहता हुआ भले ही संसार में किसी प्रकार रहे, परन्तु जगत् और जगत् के उपादान कारण मूल प्रकृति तथा जीवात्मा और परमात्मा में भेद तो मिट नहीं सकता। न ही वह मिट जाता है।

मान लें कि एक मनुष्य दिन के समय आंखें मूंदे हुए बैठा हो तो उसको जगत् अन्धकारमय प्रतीत होने लगेगा। दूसरा मनुष्य आंखें खोल कर देखता है तो उसको मकान, पेड़, पर्वत इत्यादि पदार्थ दिखाई देने लगते हैं। एक तीसरा व्यक्ति है। वह दूरबीन लगा लेता है तो उसको दूर के स्थान, जो साधारण दृष्टि में नहीं आते, दिखायी देने लगते हैं। मनुष्य की सामर्थ्य में भेद आने से वह जगत् को भिन्न-भिन्न प्रकार और विस्तार में देखता है, परन्तु जगत तो सदैव सर्वत्र वैसा का वैसा ही है।

वैसे तो उक्त लेख के लेखक महोदय भी यह लिखते हैं :—

'क्योंकि यदि किसी मनुष्य की किसी पदार्थ में आसक्ति नहीं है, तो उस पदार्थ के विद्यमान रहने से न उसे कोई लाभ है, और अविद्यमान रहने से न उसे कोई हानि ही है, अत: उस पुरुष के लिए उस पदार्थ की विद्यमानता तथा अविद्यमानता एक बराबर है। अत: यहां अभाव से तात्पर्य अनासक्ति है।'

यह ठीक है, परन्तु क्या इससे यह सिद्ध हो गया—

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर:।

स्वामी शंकराचार्य जी ने जो कुछ लिखा, वह आलोच्य है ही, परन्तु स्वामी जी को एक श्रेष्ठ युक्तिकार (logician) सिद्ध करने वालों ने और भी अधिक अनर्थ किया है। ये महाशय श्री स्वामी जी के सिद्धान्तों को सत्य सिद्ध करने के लिए साक्षी देते हैं मैक्समूलर की और डा० राधाकृष्णन की। हम इन विद्वानों का उतना ही मान करते हैं जितना स्वामी शंकराचार्य जी का। यदि यह कहें कि स्वामी जी से कुछ कम ही, तो अधिक ठीक होगा।

डा० राधाकृष्णन का स्वामी शंकराचार्य जी के विषय में एक मत हम नीचे दे दें तो अधिक उपयुक्त होगा। डा० राधाकृष्णन अपनी पुस्तक 'Indian Philosophy (Vol-2. pp 471-472) में लिखते हैं—

It is held that in an endeavour to preserve the conti-

nuity of thought, he attempted to combine logically in compatible ideas. However, creditable this may be to the elasticity of Sankara's mind or his spirit of genuine toleration, it cannot but effect the logical rigour of his thought; and the theory of MAYA serves as a cloack to cover the inner rifts of his system.

इसका अर्थ है :—यह कहा जाता है कि अपने विचार प्रवाह को चालू रखने के यत्न में वे असंगत विचारों को युक्ति से मिलने का यत्न करते हैं। भले ही यह स्वामी जी के लिए एक गौरवपूर्ण बात हो और स्वामी जी के मन की, विपक्षियों को सहन करने के लिए लचक प्रकट करती हो, परन्तु इससे उनके तर्क की श्रेष्ठता पर प्रभाव पड़ा है और उनके माया का सिद्धान्त ने उनके अपने सिद्धान्तों के छिद्रों को छुपाने का काम किया है।

इसी पुस्तक में डाक्टर साहब लिखते हैं :—

As to the novel theory of MAYA propounded by persons calling themselves Vedantists, it is only a species of the subjective idealism (of the Budhists). That theory is not a tenet of Vedanta.

(यह माया का नवीन सिद्धान्त जिसे अपने को वेदान्ती मानने वाले स्थापित करते हैं, यह बौद्धों की अवास्तविक आदर्शवादिता है। माया का सिद्धान्त वेदान्त में कहीं नहीं।)

यहां हम यह बता रहे हैं कि स्वामी शंकराचार्य जी अनुमान-प्रमाण से परमात्मा की सत्ता को सिद्ध करने को वर्जित करते हैं। आप इसी सूत्र के भाष्य में लिखते हैं :—

'सत्सु तु वेदान्तवाक्येषु जगतो जन्मादिकारणवादिषु तदर्थग्रहणदार्ढ्यायानुमानमपि वेदान्तवाक्याविरोधि प्रमाणं भवन्न निवार्यते . ...

अर्थात्......जगत् के जन्मादि कारण का प्रतिपादन करने वाले वेदान्त वाक्यों के विद्यमान होने पर उनके अर्थ ग्रहण की दृढ़ता के लिए वेदान्त वाक्यों के अनुकूल अनुमान प्रमाण होने पर भी (न निवार्यते) नहीं लिया जाता।

इसका अभिप्राय यह है कि पहले वेदान्त वाक्यों को सत्य मान लो, पीछे परमात्मा का अस्तित्त्व स्वत: सिद्ध हो जायेगा। यह वेदान्त वाक्यों के प्रमाण की सत्यता को सिद्ध नहीं, वरंच असिद्ध करता है।

स्वामी जी युक्ति से इतने घबराते क्यों थे ? और फिर दर्शन शास्त्र जो आद्योपान्त युक्ति (अनुमान प्रमाण) पर ही आधारित है, पर लिखने क्यों लगे थे ?

स्वामी शंकराचार्य को युक्ति और बुद्धि से इतना भय लगता था कि वे इसे चिमटे से भी छूने को तैयार नहीं होते थे। आप इसी सूत्र के भाष्य में आगे चल कर लिखते हैं। आपके लिखे का अनुवाद इस प्रकार है:–

'धर्म करना मनुष्य के अधीन है। इस कारण लौकिक अथवा वैदिक कर्म करने अथवा न करने में पुरुष समर्थ-स्वतन्त्र है......परन्तु।

न तु वस्त्वेवं नैवमस्ति नास्तीति वा विकल्प्यते विकल्पनास्तु पुरुषबुद्ध्यपेक्षाः। न वस्तुयाथात्म्यज्ञानं पुरुषबुद्ध्यपेक्षम्.......

सिद्ध वस्तु इस प्रकार है अथवा नहीं है, ऐसा विकल्प नहीं किया जा सकता। विकल्प तो पुरुष की बुद्धि के अपेक्षा से होता है। सिद्ध वस्तु का यथार्थ ज्ञान पुरुष-बुद्धि की अपेक्षा नहीं करता......।

तत्रैवं सति ब्रह्मज्ञानमपि वस्तुतन्त्रमेव, भूतवस्तुविषयत्वात्। ननु भूतवस्तुत्वे ब्रह्मणः प्रमाणान्तरविषयत्वमेवेति वेदान्तवाक्यविचारणार्थिकैव प्राप्ता।....

(इस कारण यदि ब्रह्म ज्ञान में भी, वस्तु-विज्ञान की भान्ति तथा संसार की वस्तुओं के विषय की भान्ति परमात्मा को सिद्ध करने में अन्य प्रमाणों को लेंगे तो वेदान्त वाक्य अविचारणीय (व्यर्थ) सिद्ध हो जायेंगे।)

आप आगे कहते हैं :........

तस्माज्जन्मादिसूत्रं नानुमानोपन्यासार्थम्।........

(इस कारण 'जन्मादि सूत्र' अनुमान प्रमाण का प्रदर्शन नहीं करते।)

विस्मय इस बात पर है कि स्वामी शंकराचार्य के अनुयाइयों ने यह विख्यात कर रखा है कि स्वामी जी ने बौद्ध मत का खण्डन कर इसे भारत भूमि से निःशेष किया था। यह बात ऐतिहासिक तथ्यों के विपरीत तो है ही, साथ ही स्वामी जी की युक्ति करने में शिथिलता से भी सिद्ध नहीं होती।

प्रथम तो स्वामी जी ईसा की सातवीं शताब्दी में उत्पन्न हुए थे। उससे पूर्व बौद्ध मत, शुंग और गुप्त काल के वैष्णव मत-उत्थान से, सर्वथा परास्त और निःशेष हो चुका था। दूसरी बात यह कि क्या स्वामी शंकराचार्य जी बौद्धों को यह कहते होंगे कि ब्रह्म की सत्ता युक्ति से नहीं, केवल वेदादि शास्त्रों से सिद्ध होती है? क्या इससे बौद्ध मतानुयायी बिना समझे और

(शेष पृष्ठ १९ पर)

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

श्री आदित्य

यद्यपि पिछले फरवरी मास में अमरीका के प्रधान निक्सन और फ्रांस के प्रधान डी गॉल में बहुत सुहृदयतापूर्ण भेंट हुई थी और निक्सन ने भेंट के उपरान्त अमरीका और फ्रांस के भीतरी सम्बन्धों के सुधरने की आशा व्यक्त की थी, परन्तु डी गॉल के त्यागपत्र देने से अमरीका के लोग प्रसन्न ही हुए हैं।

जो लोग द्वितीय विश्व युद्ध की घटनाओं को भूले नहीं, वे जानते हैं कि उस समय भी डी गॉल की अमरीका के तत्कालीन प्रधान रूज़वेल्ट और इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री चर्चिल से ठीक पट नहीं रही थी। अनेक बातों पर मतभेद था और अनेक ही विषयों में असहयोग था।

युद्ध के उपरान्त फ्रांस की अवस्था बहुत ही खराब हो गयी थी। इस कारण इसने भी इंग्लैण्ड और अन्य स्वतन्त्र यूरोपियन देशों की भांति अमरीकी प्रभुत्व स्वीकार कर लिया था, परन्तु ज्यों-ज्यों फ्रांस आर्थिक दृष्टि से सबल होता गया, वह अमरीका से स्वतन्त्र अपनी स्थिति बनाने का यत्न करता रहा।

नाटो सन्धि-देशों में अमरीका प्रमुख था। कारण स्पष्ट है कि नाटो देशों को अमरीका की सैनिक सहायता सबसे अधिक है। डी गॉल के पुनः फ्रांस का राष्ट्रपति बनते ही तथा फ्रांस के राष्ट्रपति के अधिकार बढ़ने पर फ्रांस नाटो के ढांचे से बाहर निकलने का प्रयत्न करने लगा। अन्त में नौबत यहां तक आ गई कि नाटो का कार्यालय फ्रांस से हटा कर बैलजियम में ले जाना पड़ा और फ्रांस ने नाटो में भाग लेना छोड़ दिया।

यह नहीं कि डी गॉल को विश्वास हो गया हो कि फ्रांस किसी भावी संघर्ष में अकेला खड़ा रहने की सामर्थ्य प्राप्त कर चुका है, वरंच डी गॉल को यह समझ आने लगा था कि पश्चिमी युरोप को अमरीका से स्वतन्त्र हो अपना एक गुट बनाना चाहिये और पूर्वी युरोप की शक्ति को सन्तुलित करना चाहिये। डी गॉल इसमें इंग्लैण्ड के सहयोग को प्राप्त न कर सकने पर इंग्लैण्ड के भी विपरीत हो गया और युरोप की 'कॉमन मार्केट' में उसके सम्मिलित करने का विरोध करने लगा।

डी गॉल ने यह भी यत्न किया कि वह रूस से किसी प्रकार का समझौता कर ले और पश्चिमी युरोप को भी धता दिखा दे।

लिण्डन जॉनसन दो बार युरोप भ्रमण पर आ सका था, परन्तु दोनों बार राजनीतिक उद्देश्यों से नहीं, बल्कि न्यूनाधिक व्यक्तिगत उपक्रमों के कारण। सन् १९६७ में वह 'बौन' में गया था कानराड एडिनायर की शव यात्रा में सम्मिलित होने के लिये। दूसरी बार, उसी वर्ष वह पूर्वी एशिया से लौटता हुआ रोम में उतरा था। वह पोप को वियतनाम पर अमरीका का दृष्टिकोण समझाना चाहता था।

निक्सन की सन् १९६९ फरवरी की युरोप यात्रा शुद्ध राजनीतिक उद्देश्यों से थी। डी गॉल ने इस यात्रा के उद्देश्य को विनष्ट करने का यत्न किया। निक्सन के अमरीका से चलने के पूर्व ही फ्रांस में यह समाचार प्रसारित किया गया कि डी गॉल इंग्लैण्ड के साथ आर्थिक सह-उन्नति का समझौता करना चाहता है, यदि वह भी फ्रांस की भांति 'नाटो' से बाहर हो जाये।

डी गॉल इस उद्देश्य में सफल नहीं हुआ। इंग्लैण्ड में इस सन्देश की सच्चाई पर विश्वास नहीं किया गया। अमरीकन राष्ट्रपति निक्सन सबसे अन्त में डी गॉल से मिला और यह विज्ञप्ति निकाली गयी कि फ्रांस और अमरीका के भीतर बहुत से भ्रम दूर हो गये हैं। इस पर भी नाटो में फ्रांस के सम्मिलित होने की सम्भावना दूर ही रही।

मई मास में डी गॉल के प्रस्ताव को कि केन्द्रीय शक्ति प्रान्तों में विघटित कर दी जाये, अस्वीकार किया गया तो उसने त्यागपत्र दे दिया। इस पर अमरीका को कितनी प्रसन्नता हुई, इसका अनुमान लगाना कठिन है, परन्तु यह निर्विवाद है कि डी गॉल के जाने पर अमरीका को शोक बिल्कुल नहीं हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि फ्रांस ने डी गॉल के प्रस्ताव को रद्द कर दिया था और उस रद्द करने पर डी गॉल को त्यागपत्र देना पड़ा था, परन्तु फ्रांस डी गॉल के जाने पर प्रसन्न नहीं है। यह इस बात से स्पष्ट है कि फ्रांस के राष्ट्रपति के प्रथम चुनाव के अवसर पर डी गॉल की पार्टी के प्रमुख सदस्य जार्ज पौम्पिडौ को ४१.१४ प्रतिशत मत प्राप्त हुए, अन्य किसी भी प्रत्याशी को इतने मत नहीं मिले। यदि पोम्पिडौ को पचास प्रतिशत से अधिक मत इस मतदान के समय मिल जाते तो वह राष्ट्रपति बन जाता। अतः दूसरी बार मतदान हुआ। इस बार उसे ५८ प्रतिशत मत मिले और वह राष्ट्रपति बन गया।

जो बात स्पष्ट है वह यह कि फ्रांस अभी भी डी गॉल के जादू में है। यह

ठीक है कि पौम्पिडो डी गॉल का सब बातों में अनुकरण नहीं करेगा, परन्तु विदेश नीति में कुछ अधिक अन्तर नहीं आने का।

अमरीका का चौधरपन फ्रांस पर कदाचित् जम नहीं सकेगा।

अमरीका के प्रभाव में ह्रास का कारण क्या हो सकता है! वे सब कारण गिनाने सम्भव नहीं। इस पर भी एक घटना बताई जा सकती है जिसका भारी प्रभाव पड़ा। नासिर ने स्वेज़ नहर पर बलपूर्वक अधिकार किया तो फ्रांस, इंग्लैण्ड और इसराईल ने नहर पर आक्रमण कर दिया। नासिर की अवस्था दयनीय हुई तो रूस ने इंग्लैण्ड और फ्रांस को आक्रमण बन्द करने के लिये कहा, अन्यथा मिश्र की सहायता के लिये आने की धमकी दे दी। यद्यपि अमरीका, फ्रांस तथा इंग्लैंड का मित्र था, परन्तु उसने भी रूस का समर्थन कर दिया। परिणामस्वरूप नहर का युद्ध समाप्त हो गया और नहर पहले की भांति इसराईलियों के लिये बन्द रही।

यह अमरीका का अपने मित्रों के प्रति द्रोह था। इसने फ्रांस की आंखें खोल दीं और तब से ही फ्रांस अमरीका से दूर होता चला गया है।

हमारा विचार है कि फ्रांस के नये राष्ट्रपति से बात सुलझेगी नहीं।

वस्तु स्थिति यह हो रही है कि डेमोक्रेटिक फ्रण्ट जो रूस के विपरीत बना था, उसमें दरार पड़ गई है। इस दरार डालने का दोषी अमरीका ही हैं। ●

(पृष्ठ १६ का शेष)

जाने वेद पढ़ना आरम्भ कर देते होंगे? यह सब हास्यास्पद है। बौद्ध तो वेदादि शास्त्रों को मानते हां थे।

इतिहास के अध्ययन से हमारा यह मत बनता है कि स्वामी शंकराचार्य जी ने बौद्ध-मत का खण्डन किया ही नहीं। उक्त शिथिल युक्ति के प्रकाश में तो यह कहा जा सकता है कि वे बौद्ध मत का खण्डन कर सकते ही नहीं थे।

हां, श्री रामानुजाचार्य के दादा गुरु श्री यमुनाचार्य के कथन के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि आदि शंकराचार्य प्रच्छन्न बौद्ध थे और इनका पूर्ण प्रयास बौद्ध सिद्धान्तों की रक्षा में था।

यहां इतना और जान लेना चाहिये कि स्वामी शंकराचार्य जी ने वेदों (ऋक्, यजु, साम और अथर्व) में से अपने पूर्ण लेख में एक भी प्रमाण, पक्ष अथवा विपक्ष में, नहीं दिया। इससे यह सिद्ध होता है कि आप वेदों से सर्वथा अनभिज्ञ थे। ●

काश ! आज पण्डितजी होते !

श्री टेकचन्द शर्मा की दैनिकी का एक पृष्ठ

[आज जब कि देश में चारों ओर वर्णहीनता, समाजवाद, अस्पृश्यता, भावात्मक एकता आदि आदि का घोष कर्णगोचर हो रहा है और एक ओर राजनीतिक ध्रुवीकरण के परिप्रेक्ष्य में वाम तथा दक्षिणपंथियों के सम्मेलन आयोजित किये जा रहे हैं; इतना ही नहीं ध्रुवीकरण की इस प्रक्रिया में जनसंघ अपना अस्तित्व अशेष करने में भी संकोच का अनुभव नहीं कर रहा, तब उस स्थिति में भारतीय जनसंघ की प्रथम बैठक में सिद्धान्तपक्ष पर हुए वादविवाद का श्री टेकचन्द शर्मा द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला यह अंश हम नितान्त उपयोगी समझते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि जनसंघ के प्रारम्भ से ही इस प्रकार के तत्व इसमें विद्यमान थे, जो आज समय अथवा अवसर पाकर उभर रहे हैं। श्री टेकचंद्र शर्मा से "शाश्वत वाणी" के पाठक भली भांति परिचित हैं। केवल इतना ही उल्लेखनीय है— उस प्रथम बैठक में श्री शर्मा जी ने बिहार का प्रतिनिधित्व किया था और जैसा कि प्रस्तुत विवरण से स्पष्ट है, युवा वर्ग के भी वे प्रतिनिधि थे। इस प्रथम बैठक में उन पर जो प्रतिक्रिया हुई है, उसको उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया है।

"आज पहला दिन था जब मुझे अपनी यह धारणा बदलनी पड़ी कि कम्युनिस्ट हजार प्रयत्न करने पर भी इस देश में समाजवाद कभी न ला सकेंगे। आज मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि समाजवाद इस देश में आयेगा, अवश्य आयेगा, तेजी से आयेगा और आयेगा भारतीय संस्कृति की आड़ में। इसके कट्टर विरोधी ही इसके आने में सबसे बड़े सहायक सिद्ध होंगे। जिनके पास कम्युनिस्ट कार्यक्रम के मुकाबले में अपना कुछ नहीं, वे उनके कार्यक्रम को अपना कर केवल उनके कार्य को तथा सरल और उद्देश्य को और निकट लाने में ही सहायक हो सकते हैं। उस दिन के बाद से आज तक मेरा यह विश्वास दिन प्रति दिन प्रबल होता गया है।"

श्री शर्मा के उक्त कथन से सहमति अथवा असहमति का प्रश्न पाठकों एवं जनसंघ के नेताओं पर छोड़ते हुए, हम उन्हें श्री शर्मा के प्रस्तुत विवरण पर पूर्णतया एवं विवेकशीलता से विचार करने का आग्रह करेंगे। हमारा यह आग्रह इसलिए भी है क्योंकि हमें अभी भी इस देश के राजनीतिक जीवन में जनसंघ से बहुत आशायें हैं। हिन्दुओं को हिन्दुत्वनिष्ठ राजनीतिक संगठन की आवश्यकता है। क्या जनसंघ इस आवश्यकता को पूर्ण करने की दिशा में प्रयत्नशील होगा? अथवा वह भी अन्य दलों की भांति भानुमती का कुनबा बन कर हिन्दू राष्ट्र को अपंग बनाने में सहायक होगा। —सम्पादक

१६५२ के प्रथम आम-चुनाव के कुछ मास पूर्व ही जल्दी जल्दी में भारतीय जनसंघ की स्थापना किये जाने के कारण समयाभाव होने से जनसंघ की कार्यसमिति की कोई भी बैठक बुलाई नहीं जा सकी। कांग्रेस की पाकिस्तान व कश्मीर सम्बन्धी नीति से हिन्दू जनता में उत्पन्न असन्तोष, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का संगठन और डाक्टर मुखर्जी का व्यक्तित्व, इन तीन-चार बातों पर ही मुख्यरूप से हम आम चुनाव में पर्याप्त सफलता पाने की आशा बांधे बैठे थे। चुनाव परिणाम ने यह आशा भारी निराशा में बदल दी थी। अतः अपनी असफलता के कारण को जानने, उपाय सोचने और भावी कार्यक्रम निर्धारित करने के लिये जनसंघ कार्य समिति की सर्वप्रथम बैठक नई दिल्ली में ११ फरवरी १६५२ को हुई। कार्यसमिति के सदस्यों के अतिरिक्त विभिन्न राज्यों के कुछ प्रमुख कार्यकर्ता भी इस बैठक में उपस्थित थे।

पहले दिन प्रातः १० बजे की बैठक में सर्वप्रथम विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों ने अपने अपने राज्यों में अब तक किये गए कार्य का विवरण प्रस्तुत किया तथा आम चुनाव में क्या कुछ बीती, क्या कुछ परिणाम रहा, इत्यादि बातों और कारणों पर प्रकाश डाला। सब राज्यों की रिपोर्ट समाप्त होने के बाद कार्य-समिति की बैठक में गत चुनाव के अनुभव के प्रकाश में भावी कार्यक्रम बनाने की दृष्टि से आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रमों पर अलग अलग वचार करना तय हुआ। पहले आर्थिक कार्यक्रम पर विचार आरम्भ हुआ।

सर्वप्रथम जनसंघ के तत्कालीन महामन्त्री पं० मौलिचन्द्र शर्मा ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि गत आम चुनाव में जहां हमको मध्यम वर्ग का सहयोग प्राप्त हुआ, वहां निम्न वर्ग ने हमारी उपेक्षा की। इसलिए अपना र्यक्रम बदले बिना हम इस वर्ग का सहयोग प्राप्त नहीं कर सकेंगे। हमें अधिकाधिक जनता की भलाई का कार्यक्रम अपनाना चाहिए। उनका यह भी कहना था कि वामपक्ष की ओर हमारा झुकाव जितनी जल्दी हो जाय उतना सब हम भारतीय पद्धति से ही करें रूस के अनु-

यायी या पिट्ठू हो कर नहीं। इसके लिए हमें हरिजन सम्पर्क विभाग, श्रमिक विभाग, अल्पसंख्यक विभाग, प्रेस तथा प्रचार आदि आदि विभाग गठित करने चाहिएं।

पंडित मौलिचन्द्र शर्मा के बाद श्री बलराज भल्ला ने अब तक प्रकट किये गए विचारों से परेशानी अनुभव की। उनका कहना था कि जनसंघ में बहुत 'कन्फयूज्ड थिंकिंग' दिखाई दे रही है। उनका कहना था कि मैं वामपक्ष की ओर अधिक झुकाव देख रहा हूं। यदि ऐसा ही है तो फिर जनसंघ की आवश्यकता ही क्या है ? हम लोग केवल वोटों की खातिर ही वामपक्ष चाहते हैं अथवा सिद्धान्ततः इसे स्वीकार करते हैं ? यदि हम इसे सिद्धान्ततः सही मानते हैं किन्तु रूस के विरुद्ध होने के कारण कम्युनिस्ट नहीं बन सकते तो समाजवादी ही बन जावें। सवाल वोटों का नहीं सिद्धान्तों का होना चाहिए। यदि सिद्धान्त का सवाल नहीं है तो फिर भारतीय संस्कृति का क्या होगा ? यह कहना कि आप कम्युनिज्म को नहीं मानते, परन्तु यह भी कहें कि आप निजी सम्पत्ति की समाप्ति के पक्ष में हैं तो यह बात निरर्थक हो जायेगी। श्री भल्ला ने सुझाव दिया कि हम अपनी विचारधारा को लेकर १०-२० वर्ष कार्य करेंगे तो ब्रिटेन के अनुदार दल की भांति लोग हमको भी वोट देंगे।

बैठक में जब आर्थिक कार्यक्रम पेश किया गया तो उस पर जबर्दस्त वाद-विवाद हुआ। कार्यसमिति दो गुटों में स्पष्ट बट गई। एक गुट में प्रौढ़ और संघ की संघचालक श्रेणी के लोग थे और दूसरे में युवक तथा संघ के प्रचारक वर्ग के। युवक कार्यकर्ता क्रान्तिकारी कार्यक्रम चाहते थे। डाक्टर मुखर्जी और भल्ला जी तो आयसीमा निर्धारित करने के सख्त विरुद्ध थे। परन्तु युवक कार्यकर्ताओं के मन में यह बात नहीं बैठ रही थी। प्रौढ़ वर्ग युवा वर्ग द्वारा प्रस्तुत किए जा रहे कार्यक्रमों और प्रस्तावों में भारतीय संस्कृति को आंखें फाड़-फाड़ कर ढूंढ रहा था। वह हैरान था कि वह कहीं इन प्रस्तावों के आस-पास भी है या नहीं। उन्हें स्पष्ट एक वर्गहीन समाजवादी समाज बनता दिखाई दे रहा था, जिसे गले उतारना इनके लिए कठिन हो रहा था।

कार्य समिति की इस बैठक का दृश्य ऐसा था मानों युवक और प्रौढ़, प्रगतिवादी तथा प्रतिक्रियावादी या और भी साफ कहना हो तो वामपक्षियों और दक्षिणपक्षियों में बन और बज रही हो। युवा कार्यकर्ताओं का कहना था कि विष को विष से ही मारा जा सकता है। हमारा वास्तविक मुकाबला कम्युनिस्टों से है। उन्हें हम उनके ही शस्त्रों से पछाड़ सकते हैं। सारांश यह कि युवक वर्ग ने जबर्दस्त दबाव डालते हुए अप्रकटरूप में यहां तक कह दिया कि

यदि कोई क्रान्तिकारी आर्थिक कार्यक्रम न अपनाया गया तो वे न कुछ कार्य ही कर सकेंगे और न इसे आगे ही बढ़ा सकेंगे।

इस पर प्रौढ़ वर्ग की भारी आपत्ति के बावजूद बीच का रास्ता निकालते हुए यह बात स्वीकार की गई कि "इन आधारों पर आर्थिक प्रस्ताव तैयार करने के लिए एक उपसमिति गठित कर दी जाय।"

प्रश्न उठता है कि युवक वर्ग ने कम्युनिस्टों के ढंग का कार्यक्रम अपनाने का जोर क्यों डाला ? इसका कारण यह है कि संघ के कार्यकर्ताओं को राजनीति में आने के बाद गत चार मास में पहली बार जब जन साधारण से साक्षात्कार करने, इनके दुःख, कष्ट, वास्तविक स्थिति और समस्याओं को जानने का अवसर मिला था। इन्हें मालूम हुआ कि जनता आत्मा की शान्ति से पूर्व पेट की ज्वाला शान्त करना चाहती है। पेट में दो रोटी पड़े बिना वह कण्ठी माला की ओर देखने में भी दिलचस्पी नहीं रखती।

जब भावी सामाजिक कार्यक्रम पर विचार आरम्भ हुआ तो पं० मौलिचन्द्र शर्मा ने अनेक सुझाव प्रस्तुत किए। समाज के लगभग सभी वर्गों, युवकों, विद्यार्थियों, महिलाओं, मजदूरों, ग्रामीणों और हरिजनों की समस्याओं पर उन्होंने अपने सुझाव प्रस्तुत किए। मुझे उनका महिलाओं के विषय में यह सुझाव बहुत पसन्द आया था कि उन्हें पुरुषों के समान अधिकार दिये जायं और परिवार की आय बढ़ाने के लिये विभिन्न कार्यक्षेत्रों में कार्य करने का परामर्श दिया जाय। परन्तु हममें कुछ रूढ़िवादी भी थे। जिनका कहना था कि महिलाओं का स्थान केवल घर और चौका चूल्हा ही है। इस विषय पर भी बहुत विवाद हुआ और फिर "हिन्दू संस्कृति" आड़े आ गई। अन्त में महिलाओं के लिए यह "क्रान्तिकारी कार्यक्रम" तय हुआ कि परिवार की आय बढ़ाने के लिए उन्हें "चरखे और घरेलू उद्योगों की सहायता लेने को कहा जाय।"

महिलाओं को चारदीवारी में बन्द करने के बाद अल्पसंख्यकों अर्थात् मुसलमानों की समस्या पर विचार शुरू हुआ। सभी इस बात के इच्छुक थे कि जात पात और मजहब के झगड़े सांस्कृतिक पुनरुत्थान और एक राष्ट्र बनने में बाधक न बनने दिये जायं। इसके लिये यह सुझाव रखा गया कि हिन्दू, मुसलमान और ईसाई मिलकर होली, दीवाली, वसन्त, दशहरा, ईद व नववर्ष मनाया करें। एक पक्ष का यह कहना था कि प्रस्ताव में हम यह जिकर न करें कि राष्ट्रीय त्यौहार कौन कौन से हैं, क्यों कि वे यह तो चाहते हैं कि मुसलमान होली, दीवाली मनायें, परन्तु ईद मना कर वे कांग्रेस की

तुष्टीकरण की नीति पुनः दोहराना नहीं चाहते । दूसरे पक्ष का कहना था कि यह कैसे सम्भव हो सकता है कि आपके ईद में शरीक हुए बिना मुसलमान होली दीवाली में सम्मिलित होंगे ? और यदि उन्होंने पूछा कि आप किस त्यौहार को राष्ट्रीय मानते हैं तो आप क्या उत्तर देंगे ? पं० दीनदयाल जी का कहना था कि हम अपना उत्तर दे लेंगे, परन्तु उल्लेख न किया जाय । हम ईद मिलने के लिये नहीं जावेंगे यह तो देश के बाहर का त्यौहार है । पं० मौलिचन्द्र शर्मा का कहना था कि केवल ईद के दिन जाकर गले मिलने और ईद मुबारिक कहने में तो कोई हर्ज नहीं । हम यह तो नहीं कहते कि ईद के दिन आप भी नमाज पढ़िये । हमारा संविधान तो हमें मस्जिद में प्रवेश की अनुमति देता है । यदि हम वहां जाना भी शुरू कर दें तो उनकी नमाज हमारे गले नहीं पड़ जावेगी । मेरा कहना था कि जनसंघ का भारतीय राष्ट्र का सिद्धान्त हमें उग्रवादी दृष्टिकोण अपनाने से रोकता है । जो कुछ भी हम तय करें, किसी को धोखा देने की नीयत से नहीं बल्कि सही रास्ता समझते हुए उसे अपनाने की दृष्टि से करें । यदि हम चाहते हैं कि मुसलमान दीवाली के दिन दीप जलावें तो हमें भी ईद के दिन उनसे गले मिलने की झिझक दूर करनी ही होगी । काफी वाद-विवाद के बाद यह तय हुआ कि प्रस्ताव का यह अंश निकाल ही दिया जाय ।"

इस पहली टक्कर में परास्त होने के बाद मैंने यह संशोधन पेश किया कि प्रस्ताव में ये शब्द जोड़े जायं कि हम भारत में कास्ट-लैस सोसाइटी स्थापित करना चाहते हैं । श्री भल्ला ने कहा कि कास्ट-लैस का मतलब तो प्रोफेशनलैस है । उपाध्याय जी ने कहा कि आपका तात्पर्य अस्पृश्यता-निवारण से है क्या ? मैंने कहा कि यह तो रोग है रोग का कारण नहीं । उन्होंने फिर पूछा कि तो फिर क्या मेरा अभिप्राय वर्णहीन समाज से है ? मैंने कहा कि वर्णहीन, वर्णशून्य, वर्णरहित, आप जो भी ठीक समझें कह सकते हैं । क्योंकि वर्तमान स्थिति में वर्ण-व्यवस्था को मैं समाज के लिये मूर्खतापूर्ण और घातक समझता हूँ । इतिहास भी इसे आज सिद्ध कर चुका है । हमारी हजारों वर्ष की दासता का मुख्य कारण यही वर्ण और जाति व्यवस्था है । मुट्ठी भर आक्रान्ताओं के सामने हम इसलिये असमर्थ रहे क्योंकि प्रत्येक जाति यह समझ बैठी थी कि देश की रक्षा का दायित्व और कर्तव्य तथा धर्म उसकी अपनी जाति का नहीं अपितु अन्य जाति का है । यही कारण है कि बख्तियार खिलजी १८ सवारों को लेकर निकला तो सारे उत्तर भारत को रौंदता हुआ बंगाल तक जा पहुंचा ।

पं० दीनदयाल जी का कहना था कि यह तो पुरानी बातें हैं। मैंने कहा कि फिर नई बात ही ले लीजिये। देश विभाजन क्या है ? क्या हमारी बोसीदा गली सड़ी वर्णव्यवस्था का प्रत्यक्ष परिणाम नहीं है। पकिस्तान किसने मांगा ? मुसलमान ने। मुसलमान कहाँ से आया ? दो-चार प्रतिशत भले ही बाहर के हों, शेष ९५ प्रतिशत तो हिन्दुओं की सन्तान हैं। उन हिन्दुओं की जिनमें से अधिकांश स्वेच्छा से या भय और प्रलोभन से नहीं बल्कि अपने समाज के उत्पीड़न अपमान और तिरस्कार से मुक्ति पाने के लिये धर्म परिवर्तन करने पर विवश हुए। भारत के हित में आज यह प्रश्न उतना प्रमुख नहीं है कि पाकिस्तान कैसे समाप्त हो, जितना यह कि शेष भारत को पाकिस्तान बनने से कैसे रोका जाय ? यह प्रश्न बिलकुल साधारण गणित का है जिसे एक बालक भी हल कर सकता है। आज समाज का अनुशासन नितान्त ढीला है। यह अन्य धर्मावलम्बियों से घिरा है जो नित नये प्रलोभनों से काम ले रहे हैं। आज उत्पीड़ित, तिरस्कृत व्यक्ति को दूसरे पक्ष में मिलने का अवसर है और दूसरा पक्ष उसका स्वागत सम्मान करने को तैयार है। आवश्यकता आज सामाजिक सुधार की नहीं अपितु सामाजिक क्रान्ति की है। आज लोगों के कार्य पुरानी व्यवस्था पर आधारित नहीं रहे।

भगवान कृष्ण के अनुसार यदि वर्ण-व्यवस्था उन्होंने गुण, कर्म और स्वभाव से रची है तो फिर हरिजन प्रोफेसर को ब्राह्मण और ब्राह्मण जूते वाले को चर्मकार क्यों न कहा जाय ? यदि हम ऐसा नहीं कह सकते तो फिर वर्ण-भेद का मर्सिया क्यों न पढ़ लिया जाय ? अन्यथा हम आज घोषणा करें कि हम समस्त हिन्दू समाज को एकात्मक समाज मानते हैं, हम किसी भी जाति या वर्ण को स्वीकार नहीं करते और चाहते हैं कि समस्त हिन्दुओं के आपस में रोटी-बेटी के सम्बन्ध हो सकते हैं और होने चाहियें। यह भाव ही हमें एक दूसरे की निकटता और अपनेपन का भान कराता है। यदि हम अपने परिवार को विशाल बनाना चाहते हैं, देश को मुस्लिमस्थान या ईसाईस्थान नहीं बनने देना चाहते, तो अपने समाज की बुराइयों की जड़, इस वर्णव्यवस्था को समूल उखाड़ फेंकने की चेष्टा करें।

वास्तव में यदि कोई सच्चा हिन्दू कहाने का अधिकारी है तो वह वही है जिसे आप हम हरिजन कहते हैं। आज हिन्दू धर्म का निष्ठापूर्वक कोई पालन करता है तो वह है हरिजन। आज ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य अपने को हिन्दू कहाने के लिये इसी लिये बचे हैं क्यों कि शिवाजी के मावलों और राणाप्रताप

के भीलों ने उनकी रक्षा की थी। हिन्दू जाति इस चौथे खम्भे के कारण ही आज जीवित है। इतिहास इसका साक्षी है।

मेरे कथन से सहमत होने पर भी पण्डित जी के मुख से यही निकला कि—"बात चाहे ठीक ही हो परन्तु ऐसा करने से तो हमारा, यहां गांवों में घुसना भी कठिन हो जावेगा। लोग लट्ठ लेकर खड़े हो जावेंगे।" विवाद लम्बा हो चला था। अन्य लोगों को भी आश्चर्य था कि संघ के ही दो प्रमुख कार्यकर्त्ताओं में एक बुनियादी प्रश्न पर कितना तीव्र मतभेद है। अतः इस प्रश्न को भी भविष्य में कभी विचार के लिये टाल कर बैठक विसर्जित कर दी गई।

आज जब कि जनसंघ के अध्यक्ष और नेता न केवल हिन्दुओं के आपस में अपितु मुसलमानों से भी रोटी-बेटी का व्यवहार करने की बात खुले आम कर रहे हैं, समाज से अस्पृश्यता व अन्य भेद-भाव मिटाने के लिये इसकी व्यवस्था में क्रान्ति का आह्वान कर रहे हैं, और मुकाबले के लिये परमात्मा तक को चुनौती दे रहे हैं, मैं सोचता हूं .... काश ! आज पंडित जी जीवित होते।"

अथ ते कीर्तयिष्यामि वर्षं भारत भारतम्।
प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य च।

(वेदव्यास)

अब मैं उस सुन्दर भारत की महिमा गाकर
तुमको मुदित करूं हिमगिरि की कथा सुनाकर।
वह भारत जो मर्त्यलोक का नन्दन वन है
वह भारत जो देव तृषित नयनों का तारा।
वह भारत जो मनु भरत का रहा सहारा
जिसकी शोभा देख इन्द्र सिर धुनता रहता।
भू श्री का उत्कर्ष भला वह कैसे सहता!

डॉ० सीताराम सहगल

भारत की उलझी समस्यायें एवं हमारे तात्कालिक नेता

श्री विशनचन्द्र सेठ
भूतपूर्व संसद सदस्य

मानव जीवन स्वार्थ के वशीभूत किस मात्रा में गर्त में गिर सकता है इसका प्रत्यक्ष अनुभव हमें आज उन सज्जनों के चरित्र में स्पष्ट दीखता है जो हमारे देश के कर्णधार एवं नेता हैं।

दुर्भाग्य-वश स्थिति ने करवट इस प्रकार बदली है कि कांग्रेस, कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट को छोड़ वे संगठन जिन पर देश व्यापी आशा थी कि उनके द्वारा हिन्दू संगठन धार्मिकता का सम्मान एवं हिन्दुत्व पूर्ण भावनाओं के विकास का यथोचित अवसर प्राप्त होगा वे भी उसी प्रकार अराष्ट्रीय भावनाओं एवं मुसलमानों और ईसाइयों को अपने साथ लेने हेतु चेष्टा-शील बन देश की मौलिक भावनाओं पर कुठाराघात कर रहे हैं।

स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि क्या हमारे देश के सभी नेताओं ने सद्-बुद्धि का आश्रय छोड़ दिया है। उत्तर स्पष्ट उपर अंकित है कि स्वार्थ सिद्धि की प्रबल आकांक्षा ने सत्यता से देश व्यापी नैतिक चरित्र को ही प्रायः समाप्त कर दिया और उस दूषित वातावरण को, चालू शिक्षा, सिनेमा, तथा दूषित पुस्तकों, एवं विज्ञापनों आदि ने मौलिक बल देकर बुरी तरह बढ़ाया। उसी का फल है कि महात्मा गांधी अथवा कांग्रेस के वरिष्ट नेताओं ने स्वराज्य से प्रथम जो बातें कही थीं अथवा वायदे किए थे उन्हें पूर्ण करना तो दूर उससे उलटी व्यवस्थाओं को बल पूर्वक समाज पर लादा जा रहा है उदाहरणार्थः—

१— क्या कांग्रेस के नेता स्वराज्य मिलने से प्रथम बराबर यह सार्वजनिक रूप में नित्य नहीं कहा करते थे कि विदेशी शासन हटने के उपरान्त देश

में घी–दूध की नदियां बहेंगी, परिपूर्ण सन्तोष एवं प्रसन्नता का साम्राज्य होगा।

२— भारत में आर्थिक असमानता का नाम निशान निश्चय ही न रहेगा।

३— हम संसार के अन्य देशों के समक्ष ससम्मान खड़े होंगे–तथा

४— कोई भी आतताई किसी भी नागरिक को कष्ट न दे सकेगा आदि।

पर कैसा लज्जास्पद है कि स्वराज्य के उपरान्त इससे बड़ा कोई भी दुर्भाग्य नहीं हो सकता कि साधारण जनता मुंह खोल कहती है कि इससे तो अंग्रेजों का शासन ही अच्छा था। इस प्रकार की शब्दावली को यदि गंभीरता से विचारें तो १९३५ में यानी केवल ३४ वर्ष पहले एक रुपये का १६ सेर गेहूं, १८ सेर चना, १४ आना सेर घी, एक रुपये की ३ सेर किशमिश थी, पर आज सभी जीवन-उपयोगी वस्तुयें १०–१५ गुने मूल्य की हो गई पर राजकीय कर्मचारी अथवा साधारण जनता का क्रमशः वेतन या आमदनी किसी भाग्यशाली ही की इस अनुपात में बढ़ी होगी।

उदाहरण के रूप में पहले डिप्टी कलेक्टर की नियुक्ति २५०–०० मासिक पर होती थी अब ३५०–०० मासिक पर होती है। मंहगाई आदि मिलने से यदि आरम्भ में ५००–०० और रिटायर होते समय १०५०–०० मिले तो उपरोक्त महंगाई के अनुपात में उस व्यक्ति का ईमानदारी से जीवन निर्वाह करना प्रत्यक्ष आश्चर्य है।

यदि हमारा शासन उद्देश्यों में ईमानदार होता तो महंगाई के अनुरूप वेतन देकर आवश्यक मात्रा के कर्मचारियों से शासन व्यवस्था चलाता। पर आज विचित्र स्थिति यह है कि १९४७ की अपेक्षा सेना छोड़ राज्य कर्मचारियों की पूरे देश में मात्रा १० गुनी से भी अधिक जान-बूझ कर बढ़ाई गई है। राम जाने कितने नवीन विभागों की रचना जनता की दासवृत्ति को उत्साहित करने हेतु निर्माण की गई। यदि साम, दाम, दण्ड, भेद की शास्त्रीय मर्यादा का शासन एवं राजनीति में पालन किया जाता तो जिस प्रकार की देश व्यापी उद्दण्डता का ताण्डव नृत्य समाज के सभी स्तरों में आज स्पष्ट दीखता है कदापि न होता।

जो दूध बड़े शहरों तक में १ रुपये का ८ सेर बिकता था आज दो रुपये किलो भी शुद्ध नहीं मिलता। फिर भी हमारे भ्रष्ट बुद्धि नेतागण गो रक्षा को देश की तात्कालिक छोड़ सामान्य आवश्यकता भी नहीं मानते, जब कि पशु धन कृषि प्रधान भारत की सत्यता से आर्थिक नींव है।

ठीक यही स्थिति भाषा की है। कैसी लज्जा एवं दुःख की बात है कि

अंग्रेजी भाषा भाषी देशों को यदि हम छोड़ दें तो संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संसार व्यापी महान संस्था में अनेकों भाषायें आज मान्य हैं। उदाहरण के लिए फ्रांसीसी भाषा संसार में लगभग ७ करोड़ मानव बोलते एवं लिखते हैं। पर उस सम्माननीय राष्ट्र का संदेश उनकी राष्ट्र भाषा ही में संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष प्रस्तुत होता है। पर उसके विपरीत ५० करोड़ जनसंख्या के देश की भाषा हेतु हमारे देश में ही सम्मान का स्थान नहीं फिर बाहर की बात तो आकाश के फूल के सदृश है।

बड़ी खुली सी बात है कि जो देश अपने सम्मान की रक्षा करने में स्वतः उदासीन है उसे घर बैठे भला कौन मान देगा। कल्पना कीजिये, चीन संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं है। कल यदि वह सदस्य बनाया गया तो क्या उसकी ओर से आये प्रतिनिधि चाइनी छोड़ अंग्रेजी में अपने विचार सदन के समक्ष व्यक्त करेंगे। कदापि नहीं। ऐसा क्यों है? जो चाइना भारत के बाद स्वतन्त्र हुआ, जिसके नागरिक अफीम खाकर पड़े रहते थे, वह इतने अल्प काल में अमरीका एव रूस से स्पष्ट टक्कर नित्य के समाचार पत्रों में लेता दिखाई पड़ता है, वियतनाम की लड़ाई ही चाइना के बल बूते पर चल रही है जहां अमरीका को दांतों में पसीना आ गया है। उसके विपरीत भारतीय शासन देश के भीतर जो गड़बड़ कराने में समर्थ हैं उनकी खुशामद तथा देश के बाहर सभी देशों के समक्ष नत मस्तक ही होता नित्य दीखता है। कारण केवल एक ही है कि भारतीय शासन ने सत्यता से स्वराज्य मिलने जैसे वातावरण का १५ अगस्त १९४७ के बाद देश में निर्माण ही नहीं किया उल्टे बलात् पाकिस्तान देने के उपरान्त भी शेष भारत को हिन्दुस्तान बनने नहीं दिया। इस एक भूल ने देश का कितना बड़ा अहित एवं अनिष्ट किया कभी सच्चे इतिहासकार इसे लिखेंगे। भारतीय शासन अथवा पंडित जवाहर लाल नेहरू ने जिद करके जो मौलिक गलतियां कर देश को आज भी पराधीन बना रक्खा है उसकी संक्षिप्त सी तालिका यहाँ लिखने को जी चाहता है।

१— १५ अगस्त १९४७ को स्वराज्य की घोषणा के समय मुसलिम बाहुल्य के आधार पर पाकिस्तान देने के उपरान्त शेष भारत को हिन्दू राष्ट्र घोषित करना नैतिक कर्तव्य था।

२— उसी समय भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी की घोषणा करनी पूर्णतया स्वाभाविक थी।

३— गो रक्षा भारत का मौलिक, धार्मिक एवं आर्थिक सिद्धान्त रहेगा यह पवित्र घोषणा उसी रात्रि हो जानी अत्यन्त आवश्यक थी।

४— जो भारतीय भाषाओं तथा नागरिक जीवन में घुल मिल सकते हों वे भारतीय नागरिक माने जावेंगे पर जिनकी पुण्य भूमि विदेशों में होगी, जिन्हें भारतीय दर्शन, भारतीय जीवन शैली से विरोध होगा वे इस देश के नागरिक नहीं मेहमान या किरायेदार बन कर रहेंगे जैसा संसार के सभी देशों में हैं, ऐसी निश्चित घोषणा करना आवश्यक था।

५— भारत में राजनीति, शासन शैली, सेना हिन्दुत्व प्रधान होगी।

यदि उपरोक्त ५ बातों को नेहरू ने मान्यता दी होती तो आज हमारे देश का रूप ही कुछ और होता। परन्तु नाम से हिन्दू काम से विजातीय एवं विचारों से ईसाई के मन: स्थल पर इन पवित्र विचारों हेतु श्रद्धा अथवा सन्मान ही नहीं था।

विचारणीय प्रश्न है २५ लाख की जनसंख्या का छोटा सा इसराईल सारे अरब देशों की छाती पर सीना तानकर जीवित है। यू० एन० ओ० तथा संसार के अनेक देश उसे नित्य धमकी देते हैं पर वह हिमालय की तरह अडिग खड़ा है और ५० करोड़ की जनसंख्या लेकर भी चीन पाकिस्तान छोड़ो, देश के अंदर ही उद्दण्डता करने में समर्थ दलों के समक्ष भारतीय शासन नित्य प्रति आत्म समर्पण करता रहता है। इसराइल की भाषा हिब्रू है जो सत्यता से साहित्य एवं भाषा की दृष्टि से अत्यन्त नीचे स्तर की है, पर शासन की बागडोर हाथ में लेते ही इसराइली शासकों ने हिब्रू को राष्ट्र भाषा घोषित किया था। कारण मौलिक सुधार समय पर ही करना बुद्धिमानी होती है।

उपरोक्त दयनीय स्थिति का फल यह होना प्रतीत होता है कि तिब्बत की तो बात ही छोड़िये काश्मीर का जो हिस्सा पाकिस्तान ने जबरदस्ती ले लिया वह भी मिलना नहीं उल्टे शेष काश्मीर ही हमारे पास रहे यह सम्भव नहीं दीखता।

प्रान्तों-प्रान्तों में कटुता, भाषा आदि के प्रश्नों को लेकर कांग्रेसी शासन ने जान बूझ कर अपनी दृढ़ता हेतु जागृति कराई थी। आज वह इस सीमा पर पहुंच गई है कि संभव है भाषाओं के आधार पर देश का पुन: विभाजन होगा और उस अवसर का लाभ उठा पाकिस्तान एवं चीन, बंगाल, उड़ीसा और आसाम को हमारे से बल पूर्वक छीन लेगे और भारतीय राष्ट्र ख ड खण्ड हो कर निर्जीव एवं शक्तिहीन हो पुन: परतन्त्र बन जावेगा। उपरोक्त भयावह चित्र आपको डराने हेतु नहीं जानकारी के लिए प्रस्तुत किया है। इस संकट-पूर्ण स्थिति का देश के वास्तविक मालिक हिन्दू को किस प्रकार प्रतिकार करना होगा यह हम अगले लेख में निवेदन करेंगे। ●

क्रान्ति और भारत का जन-मानस

श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार

("भारत की जनता में जब स्वाधीनता के प्रति अनुराग नहीं है, भारत के प्रति अटूट भक्ति नहीं है, भारतीय होने का अभिमान नहीं है, प्राचीन भारत के प्रति गौरव-पूर्ण आस्था नहीं है, तब क्या भारत में क्रान्ति का उदय होना सम्भव है ?" ऐसे अनेक तथ्यों का उद्घाटन आप को इस विचार पूर्ण लेख में पढ़ने को मिलेगा—सम्पादक)

हमारे देश में अनेक फैशन प्रचलित हैं। इनमें एक है: 'मंचीय भाषण'। इसका अर्थ है कि वक्ता जिस पर स्वत: तो विश्वास नहीं करता, परन्तु श्रोताओं का हृदय जीतने के लिए उस बात को लच्छेदार और भावपूर्ण सुन्दर भाषा में कहता है और श्रोता मंत्र-मुग्ध होकर उसको सुनते हैं और उस पर जोरों की करतल-ध्वनि करते हैं।

एक-दो उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है :—

१—वक्ता "सत्य सनातन वृद्ध भारतवर्ष" इस वाक्यांश का बार-बार अपने भाषण में प्रयोग करते हैं। भारतीयता के ह्रास पर नक्राश्रु भी बहाते हैं। परन्तु दिल्ली में वर्षों रहने के बाद भी अंग्रेजी या राष्ट्रभाषा से भिन्न भाषा में भाषण देते हैं।

२ एक वर्ग विशेष के हितों की रक्षा के लिए जोरदार भाषण देते हुए वक्ता आवेश में वर्गहीन समाज की स्थापना की बात कहता है, और उसका मनोरम एवं हृदयग्राही चित्र अपने श्रोताओं के मन में खींचता है। एक नूतन आशा जगाकर करतल-ध्वनि के बीच भाषण समाप्त करता है।

इस प्रकार जब कोई विक्षोभकारी घटना घटती है, और जन-विक्षोभ प्रचण्ड रूप धारण करता हुआ दिखाई देता है, तो उस पर पानी डालने के उद्देश्य से कहा जाता है, धीरज रखो, भारतीय जन-क्रान्ति आ रही है। यह एक अपूर्व महाक्रान्ति होगी। विश्व के इतिहास में यह बेजोड़ और अनूठी होगी। सामाजिक एवं आर्थिक विषमतायें दूर हो जायेंगी। ऊंच-नीच का

भाव सदा के लिए जाता रहेगा और अमीर-गरीब का भेद भी न रहेगा। नवीन भारतीय समाज में जाति भेद और छुआछूत भी मिट जायगा। यह कह कर वक्ता भारतीय जनता को एक नूतन आशा अवश्य प्रदान करता है, परन्तु जनता की मनोवृत्ति को क्रान्तिकारी नहीं बनाता। क्योंकि उसका अपना जीवन क्रान्ति से बहुत दूर होता है। कोठियों और बंगलों में रहने वाले क्या कभी झोपड़ियों में रहने को तैयार होंगे। इससे क्या यह प्रमाणित नहीं होता कि भारतीय जनता की प्रकृति में क्रान्ति की भावना का ही अभाव है।

संशोधन, सुधार और परिवर्तन को क्रान्ति नहीं कह सकते। क्योंकि ये मूल को नहीं बदलते। क्रान्ति की सफलता इसमें है, कि वह पुरानी व्यवस्था को समाप्त करके नवीन व्यवस्था स्थापित करे। आंधी और झंझावात तथा मन्द-मन्द मलयानिल में जो अन्तर है, वही अन्तर क्रान्ति और सुधार में है। परिवर्तन धीरे-धीरे शनै शनै भी होजाता है, पर क्रान्ति में मन्द गति को स्थान नहीं है, यह सुनार की खुट-खुट नहीं है, यह तो लोहार के हथौड़े या घन का प्रहार है। क्रान्ति में महान वेग है। बड़ी बेचैनी है। उस में सन्तोष नहीं है। वह झटपट क्षण भर में, निमेष भर में व्यवस्था को उलटने में विश्वास करती है।

प्रश्न यह है कि क्या भारतीय जनता की प्रकृति और प्रवृत्ति इस ढंग की है, जिसको कहा जाय कि वह क्रान्ति के योग्य है?

एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जाएगी :—

जयप्रकाश नारायण और उनकी पार्टी समाजवादी दल का १९५१ में एक नारा था :

"इस सड़ी गली सरकार को
एक धक्का और दो।"

इस नारे से कनाट प्लेस गूंज उठा था। इस घटना को आज १७ साल बीत गए। क्या सड़ी गली सरकार गिर गई? चीन से पराजित, पाकिस्तान से लांछित एवं एंग्लो-अमेरिका से अपमानित सड़ी गली सरकार आज भी मौजूद है। इसको धक्का देने वाले ही राजनीति के क्षेत्र से धकेल दिए गए। क्या यह क्रान्तिकारी मनोवृत्ति का परिणाम है?

फ्रेंच राज्य-क्रान्ति १७९३ से चलती हुई १८७० में समाप्त हुई, जब राजवंशों का हमेशा के लिए अन्त हो गया। ऐसा अन्त हुआ कि डी गाल भी राजवंश स्थापित करने का साहस न कर सका यद्यपि उसने नेपोलियन का पथ ग्रहण किया।

अनुपयुक्त, अनुपयोगी, असामयिक व समय की मांग के प्रतिकूल सामाजिक एवं आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था को क्रान्ति आमूल चूल बदल देती है, या नष्ट कर देती है। पुरानी व्यवस्था की जगह क्रान्तिकारियों की कल्पना के मनोनुकूल नूतन व्यवस्था की स्थापना होती है। क्रामवेल ने चार्ल्स प्रथम को फांसी चढ़ाकर ब्रिटिश क्रान्ति को जन्म दिया। राजा नाममात्र का रह गया, शोभामात्र रह गया।

संयुक्त राज्य अमेरिका में क्रान्ति हुई। यूरोपियन उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद को अमेरिका से हट जाना पड़ा।

क्रान्ति की सफलता के लिए सिद्धान्त और आदर्श के प्रति दृढ़ निष्ठा, अखण्ड श्रद्धा, अटूट विश्वास और उसको मूर्त रूप देने के लिए प्राण तक देने का संकल्प होना चाहिए। सोडावाटरी जोश से क्रान्ति नहीं हो सकती। क्रान्ति पराजित होना नहीं जानती। वह रुकती नहीं, सदा आगे बढ़ती रहती है। सदा तूफानी वेग रहे, यह जरूरी नहीं। पर संघर्ष का किसी न किसी रूप में जारी रहना आवश्यक है।

इसके सिवाय अपने देश भारत के प्रति उत्कट अनुराग होना चाहिए। प्रचण्ड राष्ट्रवाद की भावना आवश्यक है। सोवियत रूस की सेना एक बार जापान से पराजित हुई थी। रूस में शौर्य की कमी नहीं थी। पर सेनानायक विश्वासघाती और रिश्वतखोर थे।

१९१४ के महायुद्ध में नेपोलियन को पराजित करने वाली रूसी सेना कैसेर में हार रही थी। रूसी साम्राज्य का एक भाग निकल गया। लेटविया लिथूनिया, फिनलैण्ड, पौलैण्ड आदि स्वतन्त्र हो गए। लेनिन के कम्युनिज्म ने पराजित रूस को पराजय की लज्जा बचाने के लिए आंचल दिया और ९४५ में जापान को पराजित करके साभिमान स्तालिन ने कहा, 'हमारी पराजय का प्रतिशोध हो गया।' रूस में कम्युनिज्म राष्ट्रवाद के सहारे आया और इस कारण पचास साल बाद भी वह वहां टिका हुआ है। राष्ट्रीय बाना उसने धारण कर लिया है। कार्ल मार्क्स नहीं, पीटर दी ग्रेट आराध्य देव हैं।

भारत में क्या प्रचण्ड राष्ट्रवाद है? क्या यहां भारतीयता के कहीं दर्शन होते हैं? कृष्णा-गोदावरी के पानी का विवाद, नर्मदा के जल के उपयोग का विवाद आदि यह सब क्या सूचित करता है? महाराष्ट्र और मैसूर की सीमा का विवाद लीजिए। इसके कारण जो उत्पात हुए, वह क्या सूचित करते हैं? भारत में क्या कोई अपने को भारतीय कहता है? इस देश का संविधान तक इस देश का नाम भारत नहीं कहता। इस देश की सरकार,

संयुक्त राष्ट्र एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में इस देश का 'भारत' नाम कम-से-कम पांच हजार साल पुराना है। परन्तु इस देश की सरकार देश का प्राचीन नाम स्वीकार न करके विदेशियों के दिये नाम से ही गुजारा करती है। क्या यह राष्ट्रवाद को उत्पन्न होने दे सकता है? इस देश के नाम से ही जब नफरत है, तब भारतीय राष्ट्रवाद कैसे उत्पन्न हो सकता है? पानीपत की पहली लड़ाई के बाद से भारतीय राष्ट्रवाद तिमिरावृत्त और मेघाच्छन्न रहा है। भारतीय राष्ट्रवाद को मेघमुक्त करने के लिए किये गए प्रयत्नों को विफल बनाने में ही जीवन की सफलता एवं कृतार्थता मानी गई।

विदेशी शासन के समान वर्तमान शासन ने भी भारतीय राष्ट्रवाद को मेघमुक्त नहीं होने दिया। वर्तमान सरकार आधुनिक भारत की जीवन-धारा को साढ़े तीन अरब साल पुरानी भारतीय जीवन-धारा से जोड़ने को तैयार नहीं है। वह लोक गीत और लोक नृत्यों का संग्रह करती है। आदिवासियों के मनोरंजन के लिए उनकी पोशाक भी धारण कर लेती है परन्तु 'वेद' को राष्ट्रीय सम्पत्ति नहीं मानती और न उसकी रक्षा करती है। वेद मंत्रों की ध्वनि से भारतीय आकाश को गुंजरित करना तो दूर रहा। वेद प्राचीनतम ग्रन्थ हैं, और यह केवल इसी देश की सम्पत्ति हैं अन्य किसी देश की नहीं। यदि भारत वेद की रक्षा न करेगा, तो और कोई रक्षा न करेगा। उसकी रक्षा करने का अर्थ है, भारतीय जीवन-धारा को अविच्छिन्न रखना और भारतीयों में यह गर्व उत्पन्न करना कि वह विश्व के सबसे पुराने राष्ट्र के नागरिक हैं। उनकी परम्परा गौरवमयी है। वर्तमान शासन इसको करने को उद्यत नहीं है। क्योंकि यह देश वस्तुतः स्वाधीन नहीं है। १५ अगस्त १९४७ को केवल शासन का हस्तान्तरण हुआ है। इम्फाल से कोहिमा तक १५०-१६० मील लम्बे मोर्चे पर आजाद हिन्द फौज और सेनानी नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को लड़ते देखकर भयभीत ब्रिटिश पूंजीवाद ने भारत में विकसित हो रहे पूंजीवाद से साँठ-गांठ की और ब्रिटिश पूंजी की रक्षा करने के लिए अपने एजेण्टों, मुनीमों, गुमाश्तों और कारिन्दों के हाथ में सत्ता सौंप दी। इसी कारण इस देश में आज भी अंग्रेजी का राज्य है। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। ब्रिटिश कानून प्रचलित हैं। विधि मंत्री उनको समाप्त करने की बात भी सोचने में असमर्थ हैं। मनु, नारद, बृहस्पति सदृश स्मृतिकारों का देश ब्रिटिश कानूनों का अनुवाद करे, यह कहते हुए भारतीय नेताओं को शर्म तक नहीं आती। जिस देश के नेताओं में इतना भी आत्म-विश्वास नहीं, उस देश की जनता क्या क्रान्ति कर सकती है?

यहां की सड़कों के नाम किस की स्मृति दिलाते हैं ? बाबर से लेकर बहादुरशाह के नाम पर सड़कें हैं । परन्तु हुमांयू को भारत से खदेड़ देने वाले शेरशाह सूरी, अकबर के सामने झुकने से इन्कार कर देने वाले राणा प्रताप, औरंगजेब की प्रभुता मानने से इन्कार करने वाले राठौर वीर दुर्गादास के नाम पर कोई सड़क नहीं है । औरंगजेब के नाम पर सड़क है, किन्तु बोटी-बोटी कटा देने वाले वीर सम्भाजी के नाम पर कोई सड़क नहीं है, यह क्या अकारण है ?

ब्रिटिश शासकों के नाम पर अभी तक सड़कों के नाम चल रहे हैं । यदि हैली रोड 'टाल्स्टाय मार्ग' हो सकता था, तो केनिंग लेन क्या स्वातंत्र्य वीर सावरकर मार्ग नहीं हो सकता था ? यह मनोवृत्ति क्या सूचित करती है ? यही न कि इस देश की जनता में स्वाधीनता की भावना नहीं है ।

ब्रिटिश शासन ने जब १८५३ में घोषणा की थी कि नौकरी उसी को मिलेगी जो अंग्रेजी जानता होगा, तब उन्होंने फारसी को तो समाप्त कर दिया पर उर्दू को चलने दिया । क्योंकि ब्रिटिश शासन का भारत में सबसे बड़ा सहायक निजाम था । उसके खातिर इस्लाम को प्रसन्न करना जरूरी हो गया और विदेशी लिपि उर्दू चलती रही । आज बिहार में यह लिपि अदालतों में हैं । १९३७ से पहले यह प्रचलित नहीं थी । वहां कैथी, (मगही की लिपि) प्रचलित थी । परन्तु कांग्रेसी शासन ने आकर बिहार की अदालत में उर्दू प्रचलित कर दी । क्योंकि उसको देश से अधिक इस्लाम प्यारा था । इस्लाम का बल उसको चाहिए था । उर्दू लिपि विदेशी है, परन्तु वह जारी है । यह मानते हुए भी कि सब भाषायें नागरी लिपि में लिखी जानी चाहिएं, उर्दू लिपि का परित्याग नहीं किया गया । जो जनता विदेशी लिपि का मोह छोड़ नहीं सकी, उसमें क्या स्वतन्त्रता की भावना और देश-प्रेम जीवित रह सकता है ? उसके अभाव में क्या भारतीय जनता की मनोवृत्ति क्रान्तिकारी हो सकती है ? भारतीय जनता में स्वाधीनता का अभाव है, इसी कारण श्री जय प्रकाश नारायण की गली सड़ी सरकार आज भी इस देश में टिकी हुई है।

चीन से पराजित सरकार से किसी ने प्रदर्शनात्मक त्यागपत्र देने की भी मांग नहीं की । गांधी जी के वध पर जयप्रकाश नारायण ने सरदार पटेल से इस्तीफा देने का आग्रह किया था । किन्तु चीन से पराजित नेहरू से किसी ने भी इस्तीफा देने के लिए नहीं कहा । सारे देश ने देखा कि सायंकाल को उनके प्रधान मन्त्री ने पाकिस्तान से सन्धि वार्ता चलाने से इन्कार कर दिया था । परन्तु रात एक बजे जब एंग्लो-अमेरिकी परराष्ट्र मंत्रियों ने भारत के

प्रधान मन्त्री को जगाया, तब भारत के प्रधान मन्त्री ने निष्फल और अनुपयोगी स्वर्णसिंह भुट्टो वार्ता को चलाया। कांजरकोट से कराची की ओर बढ़ती विजयी वाहिनी को प्रधान मन्त्री श्री विल्सन के अनुरोध पर रोक दिया गया। चीन ने जब अणुबम का पहला विस्फोट किया, तब भारत की सरकार ने अणुबम बनाने से इन्कार कर दिया, और संरक्षण पाने के लिए भारत का प्रधानमन्त्री दौड़ा हुआ लन्दन गया और वहां से अणु छत्री लाया। १९६५ में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया, एक मास तक तो भारत सरकार चिल्लाती रही, पाकिस्तानी उसके देश में घुस आये हैं, जब रूसी युद्ध सचिव ने भारत के राजदूत से कहा—यह शोर करने से क्या लाभ? घर में चोर घुस जाने पर पहले चोर से निपटा जाय, या पड़ोसियों को जगा कर कहा जाता है कि घर में चोर आ गया? तब इस देश ने बन्दूक उठाई। पर लाहौर विजय नहीं किया। कर्नल नासर के शब्दों में यह भारी भूल थी। कर्नल नासर क्या जाने। भारत के शासक वस्तुतः भारत के शासक नहीं हैं। यह तो ब्रिटिश शासन के मुनीम हैं।

१९६४-६७ में दिल्ली में त्रि-शिखर सम्मेलन हुआ। इसमें भारत के प्रधान मन्त्री ने भाषण अंग्रेजी में दिया। तब भारत की स्वाधीनता कितनी नकली है, यह इससे समझा जा सकता है। इस अवस्था में क्या भारत में राष्ट्रवाद उत्पन्न और विकसित हो सकता है? भारतीय जनता यह लांछन सह रही है। भारत सरकार का चपरासी होने के लिए सात समुद्र पार की ब्रिटिश भाषा का ज्ञान होना आवश्यक है। जो जनता यह अपमान सह सकती है, उसमें क्या राष्ट्रीयता और भारतीयता जन्म ले सकती है? इसके अभाव में क्या भारत में क्रान्ति कभी आ सकती है?

भारतीयता के विकास को रोकने और भारतीय जन क्रान्ति को उदित होने से रोकने के लिए अनेक उपाय किए गए हैं। भारतीय जनता को यथासम्भव अधिक से अधिक भागों में विखण्डित कर दिया गया है। ब्रिटिश शासन ने मुस्लिम और गैर मुस्लिम इन दो भागों में भारतीय जनता को विभक्त कर दिया था। भारत विभक्त हुआ इसी आधार पर।

भारत में नस्ल, जाति और रक्त के आधार पर अल्पसंख्यक वर्ग नहीं माने गए हैं, इसके विपरीत मजहब, देश, और भाषा के आधार पर अल्पसंख्यक वर्ग उत्पन्न किए गए हैं। वर्तमान शासन ने हरिजन वर्ग उत्पन्न करके विशाल बहुसंख्यक जन समाज को 'सवर्ण और हरिजन' में विभक्त कर दिया है। हरिजन वर्ग का आधार पेशा नहीं है, जाति है। हरिजन वर्ग के रहते हुए

शास्वत वाणी

एक नया वर्ग उत्पन्न किया गया है। वह है आदिवासियों का। ब्रिटिश शासन ने इस वर्ग को बहुसंख्यक समाज से सदा अलग रखा। इण्डिया-एक्ट १९१९ में इनका निर्णय मंत्रियों को हस्तान्तरित नहीं किया गया। खीरे की फांक के समान विभक्त, भारतीयता के अभिमान से शून्य भारतीय जनता क्या कभी क्रान्ति कर सकेगी ?

भारतीय जनता में जब स्वाधीनता के प्रति अनुराग नहीं है, भारत के प्रति अटूट भक्ति नहीं हैं, भारतीय होने का अभिमान नहीं है, प्राचीन भारत के प्रति गौरवपूर्ण आस्था नहीं है, तब क्या भारत में क्रांति का उदय होना सम्भव है ?

भारत में क्रान्ति हो सकती थी, यदि जनता में विजयाभिलाषा और आत्मविस्तार की प्रबल इच्छा होती। मार्शल अयूब खां ने 'फौरन अफेयर' (१९६५) में इस भय को प्रकट किया था और अमेरिका को चेतावनी दी थी कि वह भारत को शस्त्रास्त्र देने की भूल स्वप्न में भी न करे। क्योंकि भारत यदि शक्तिमान और बलवान हुआ, तो भारतीय पुनः वृहतर भारत का निर्माण करेंगे और उसकी सीमा तीमोर तक सीमित न रह कर लेटिन अमेरिका तक आएगी।

मार्शल अयूब खां पठान हैं, अतः उनको वृहतर भारत की कल्पना गुद-गुदा सकती है, और इससे पाकिस्तान को भय है, यह मानकर वह चिन्तित हो सकते हैं। परन्तु इस देश के शासकों ने अमेरिका के कहने से परिवार नियोजन को योजना स्वीकार की, पर कभी यह नहीं सोचा कि निर्जन अमेजन घाटी को आबाद कर लेटिन अमेरिका में लेटिन अमेरिका के बीस देशों के सहयोग से संयुक्त राज्य अमेरिका के मुकाबले नूतन भारतीय साम्राज्य का निर्माण करे। इसका श्रीगणेश वहां और हिमालय में भारतीयों को आबाद करके किया जाय। परिवार नियोजन पर खर्च किया जाने वाला ५० करोड़ रुपया क्या निर्जन अमेजन घाटी को भारतीय बस्ती में बदलने पर किया नहीं जा सकता था ?

यह ठीक है कि यदि वृहतर भारत के पुनर्निर्माण की इच्छा भाषा में प्रबल हो उठे, तो भारतीय क्रान्ति के उदय में सब अवरोधक व बाधक बांध उसके प्रबल राष्ट्रवाद के प्रवाह में बह जा सकते हैं। परन्तु यह बात आगे आने में अभी देर है। पाकिस्तान, सीलोन, केनिया, बर्मा से लौट रहे भारतीयों को भी लेटिन अमेरिका में जाकर अपना भाग्य-निर्माण करने की प्रेरणा नहीं

दी गई। लेबनान के व्यापारी लेटिन अमेरिका में बस कर वहां के मन्त्री हो सकते हैं। परन्तु भारतीय व्यापारी यह साहस करने को प्रस्तुत नहीं हैं। विस्थापितों को बसाने में ५ अरब रुपये से अधिक खर्च किया गया है, क्या इस राशि से भारतीय लेटिन अमेरिका में नहीं बस सकते थे? इसके लिए आवश्यक भारत-भक्ति, राम-भक्ति का जब तक इस देश में अभाव है, तब तक यह आशा कैसे की जा सकती है? यह स्थिति उत्पन्न न हो, इसी कारण से क्या देश में पूंजीवाद की दृढ़ आधार पर स्थापना नहीं की गई?

समाजवाद को सदा के लिए नमस्कार कर दिया गया है। घाटे की वित्तीय व्यवस्था को अनिष्टकर नहीं, इष्टकर माना जाता है। इसको 'त्रिविध अरिष्ट शामिनी और विविध ताप नाशिनी' माना जा रहा है। यही नहीं, १९४० ई० से जिस महंगाई को अभिशाप माना जाता रहा था, संकट माना जाता था, आज उसी को मंगलमय और वरदान माना जा रहा है। महंगाई को कायम रखने के लिए राज्य-कृषि मन्त्री यह प्रचार करते हुए शर्माते नहीं हैं कि भारतीय जनता की सस्ता अनाज खाने की मनोवृत्ति ठीक नहीं है। उसको अपनी यह मनोवृत्ति बदलनी चाहिए। महंगा अनाज खरीदने और खाने की आदत डालनी चाहिए।

१९५३-५४ में गेहूं का भाव उतर कर ८ रु० मन हो गया था। और सरकार ने भाव को और नीचे जाने से रोकने के लिए २० रु० समाहरण का भाव नियत किया था। यह था, उस समय का समाजवादी श्री रफी अहमद किदवई। भारत-पाक संग्राम से पहले गेहूं का भाव ६०-६५ रु० क्विंटल था। १९६२ में गेहूँ के समाहरण का भाव ८०-८१ रु० प्रति क्विंटल घोषित किया है। इसका अर्थ है कि बाजार में ९५-९८ रु० प्रति क्विंटल गेहूं बिकेगा, और सरकार का भाव ८०-८१ प्रति क्विंटल होगा। सरकार यह भूली हुई है कि पश्चिमी जर्मनी में भी पूंजीवाद है, पर वह राष्ट्रीय है, भारत का पूंजीवाद एंग्लो-अमेरिकी पूंजीवाद का वशंवद है।

भारतीय पूंजीवाद राष्ट्रीय नहीं है। इस कारण वह एक देश में चीनी का दो भाव चलता देख कर प्रसन्न होता है। उसकी पीठ ठोक रहा है। उसने वर्तमान बढ़ा-चढ़ा भाव स्थिर करने का निश्चय कर लिया है। यह क्या प्रतिक्रान्ति के आगमन की सूचना नहीं है?

प्रतिक्रान्ति के बलवान होने की स्थिति में क्या भारत में क्रान्ति की आशा की जा सकती है? क्रान्ति के आने का सुनहरा स्वप्न चित्रित करने वाले क्या भारतीय जनता के साथ वैसा व्यवहार कर रहे हैं? ●

समाचार समीक्षा

पुत्री द्वारा पिता की प्रशंसा के पुल :

२७ मई को नेहरू का श्राद्ध-दिवस था। उस दिन तीन मूर्ति भवन के अहाते में नेहरू स्मारक पुस्तकालय के स्थायी भवन का शिलान्यास हुआ। शिलान्यास करने वाली नेहरू की ही पुत्री थी। इसका दूसरा पक्ष यह भी हो सकता है कि शिलान्यास नेहरू की पुत्री इंदिरा ने नहीं अपितु भारत की प्रधानमन्त्री देवी इंदिरा ने किया है। किन्तु हमें इसमें संगति प्रतीत नहीं होती।

इससे एक बात यह भी स्पष्ट हो जाती है कि देश के शीर्षस्थ नेताओं में नेहरू के प्रति श्रद्धा नहीं रही, पहले कभी रही होगी, आज यह भी सन्देहास्पद ही है। अन्यथा नेहरू स्मारक पुस्तकालय का शिलान्यास नेहरू की ही पुत्री द्वारा नहीं कराया जाता।

इस अवसर पर देवी इन्दिरा ने अपने पिता की प्रशंसा में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। उनका कहना था कि "उनके पिता ने भारत की जनता में एक चेतना, एक जागृति पैदा की और दुनिया की ओर दरवाजे-खिड़कियां खोलीं, जिससे हमने अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में रुचि ली और आगे की ओर देखना सीखा।" इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा—"नेहरू जी ने भारत की जनता को ही नहीं घर में रहने वाले हम लोगों को भी दुनिया और भविष्य के बारे में बहुत कुछ बताया।"

"यह इमारत ही स्व० नेहरू का स्मारक नहीं है, पूरा देश—नया भारत उनका स्मारक है। उनको तथा अन्य बड़े नेताओं को हम कितना ही भूलें, चेतनाशील भारत के रहते हम उन्हें भुला नहीं सकते। उन्होंने हमें भविष्य की ओर ही नहीं दिखाया बल्कि हमारा ध्यान भारतीय संस्कृति की ओर भी खींचा और बताया कि दुनिया में भारत की जगह क्या है। उन्होंने हमें भविष्य के स्वप्न देखना सिखाया जिससे आज हमारे बालक स्वप्न देखने लगे हैं। हालांकि कुछ कठिनाइयां आई हैं, जिनसे वे जल्दी ही पूरे नहीं हो सकते।

देवी जी ने कहा कि वे चाहती हैं कि "नेहरू संग्रहालय में आजादी की लड़ाई की पूरी कहानी बताई जाय, जिससे बूढ़ों-बच्चों सबको हमारी आजादी के संघर्ष की झांकी मिल सके और उनकी इतिहास में रुचि बढ़े।" उन्होंने यह भी कहा कि—"स्वर्गीय नेहरू जी कहा करते थे कि इस दुनिया में खाने

पीने को सब लोगों के लिये पर्याप्त है, इसलिये लड़ने की जरूरत नहीं, शान्ति से रहा जा सकता है। और आज हम देख रहे हैं कि विज्ञान व टेक्नोलोजी इतनी आगे बढ़ गई है कि दुनिया में सब लोगों को पर्याप्त भोजन व अन्य चीजें उपलब्ध हो सकती हैं।

'आज हम सब उनके बताये रास्ते पर और उनकी ही हिम्मत व ताकत से जम कर चल रहे हैं या नहीं, यह कहना तो मुश्किल है लेकिन एक रोशनी है जिसके सहारे हम चल रहे हैं। वह अक्सर बापू के बारे में यही बात कहा करते थे।"

देवी इन्दिरा के इस वक्तव्य से क्या यह स्पष्ट आभासित नहीं होता कि नेहरू से पूर्व का भारत नितान्त निकृष्ट भारत था और आज का जो भी भारत है वह सब नेहरू के नेतृत्व के परिणाम स्वरूप ही है ?

अपने ही पिता की प्रशंसा में पुत्री का यह अनर्गल प्रलाप भारतीय परम्परा के सर्वथा विपरीत है-इसका आभास देवी जी को हो जाना चाहिये और साथ ही उनको यह भी आभास हो जाना चाहिये कि — इस देश की आज जो भी दयनीय स्थिति एवं दुर्दशा है उसके लिये एक मात्र उत्तरदायी नेहरू है। और यह भी कि उस दुर्दशा में जो कुछ भी कमी अथवा त्रुटि रह गई थी उसको पूर्ण करने के लिये अर्थात् अपने पिता के अधूरे कार्य को पूरा करने के लिये देवी जी कृतसंकल्प हैं।

भगवान भारतीयों को सुमति दे जिससे कि नेहरू परिवार के भ्रमजाल को भग्न कर वे देश की दशा को और भी अधिक दयनीय होने से बचा सकें।

राष्ट्रीय सरकार बनाम अराष्ट्रीय ईसाई मिशनरी :

एक ओर जहां भारत सरकार एवं प्रादेशिक सरकारों के मन्त्रिगण तथा संसद-सदस्यों का एक विशेष गुट विदेशी पादरियों के समाज कल्याणरूपी (?) कृत्यों के लिये स्वयं को कृत-कृत्य अनुभव करते हैं वहां दूसरी ओर कतिपय ईसाई पादरी ही विदेशी मिशनरियों के अराष्ट्रीय कुकृत्यों से क्रुद्ध हो कर उनके देश से निष्कासन के लिये कृतसंकल्प प्रतीत होते हैं। कोल्हापुर चर्च काउंसिल ने हाल ही में काउंसिल के सांगली मिशन कम्पाउण्ड में अनधिकृत रूप से रहने वाले छ: विदेशी मिशनरियों के निष्कासन की मांग की है। काउंसिल का कहना है कि ये विदेशी मिशनरी भारत में रह कर न केवल अराष्ट्रीय कृत्यों में संलग्न हैं अपितु वे भारत के ईसाइयों पर अपना प्रभुत्व स्थायी रखने के लिये ईसाइयों में फूट के बीज बो रहे हैं।

यह तथ्य सर्व विदित है कि भारत के सीमावर्ती क्षेत्रों में ईसाइयों का

जाल फैला हुआ है। वहां जो भी हिन्दू ईसाई बनाये जा रहे हैं वे प्रायः अंग्रेजों के प्रति निष्ठावान बनाये जाते हैं। नागालैण्ड इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

इसी प्रसंग में हम आर्क-विशप डा० जे० एस० विलियम्स के प्रति आभार प्रकट करते हुए, अभी कुछ दिन पूर्व जयपुर में सम्पन्न ईसाई सम्मेलन में उनके द्वारा किये गये रहस्योद्घाटन का भी यहां उल्लेख करना चाहते हैं।

डाक्टर विलियम्स ने कहा कि भारत सरकार अब भी सन् १९२७ के चर्च कानून को मान्यता देती है जिसके अनुसार ईसाइयों के लिये इंग्लैण्ड की राजसत्ता प्रभु ईसामसीह के बराबर है और कानून को मान्यता देने का अर्थ है कि भारत सरकार ईसाइयों का झुकाव अंग्रेजों के प्रति बनाये रखने में योग देती है। रैवरेण्ड विलियम्स का यह भी कहना है कि ईसाई मिशनरी गरीबों का धर्म परिवर्तन किसी सद्भावना अथवा धार्मिक सदाशयता से नहीं करते, बल्कि इसकी पृष्ठभूमि में उनका राजनीतिक उद्देश्य रहता है और वे इसके द्वारा ईसाइयों को मानसिक दृष्टि से अंग्रेजों का गुलाम बनाये रखना चाहते हैं।

डा० विलियम्स ने यह भी कहा है कि यदि कहीं हिन्दू समाज विखण्डित हो गया तो भारत की स्वतन्त्रता छिन भी सकती है। आज हिन्दू समाज छिन्न-भिन्न हो रहा है। हिन्दुत्व के प्रति लोगों में आकर्षण नहीं रहा। हिन्दू समाज का अशिक्षित अथवा अल्पशिक्षित वर्ग हिन्दूपने से चिपका हुआ है। शिक्षित व्यक्ति हिन्दुत्व के प्रति उदासीन है, वह केवल स्वयं में सीमित है।

आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी जातियों अथवा वर्गों का संगठन नगण्य है। दूसरी ओर ईसाई मिशनरियों का प्रलोभन अत्यन्त प्रबल है। ऐसी अवस्था में केन्द्रीय सरकार को उड़ीसा सरकार की भांति बलात् धर्म परिवर्तन पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिये तथा पिछड़ी जातियों और वर्गों के आर्थिक उत्थान के लिये उद्योगों की स्थापना करनी चाहिये।

सरकार का ध्यान जब भी ईसाई मिशनरियों की अराष्ट्रीय प्रवृत्तियों की ओर खींचा गया है उसने अपने आंख-कान बन्द कर लिये। परन्तु अब रैवरैण्ड विलियम्स के कथन से तो उसे स्थिति की गम्भीरता को अनुभव कर लेना चाहिये। रैवरैण्ड विलियम्स स्वयं ईसाई धर्म प्रचारक हैं, इसलिये मिशनरियों की दुरभिसन्धि को उन्होंने निकट से देखा और परखा है। अब समय आ गया है जबकि सरकार को विदेशी ईसाई मिशनरियों की प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना चाहिये और राष्ट्रीय स्तर पर बलात् धर्म परिवर्तन को प्रतिबन्धित कर देना चाहिये।

मार्क्स के चेलों का मास्को मेला :

मास्को में सम्पन्न विश्व कम्युनिस्ट सम्मेलन के लिये ४३ पृष्ठों का एक घोषणा पत्र तैयार किया गया किन्तु उसमें न तो विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन की एकता के लिये कहीं-किन्हीं शब्दों का प्रयोग किया गया और न ही उसमें चीन निन्दा के लिये कुछ शब्द जोड़े गये। यद्यपि सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के नेता ब्रेझनेव ने अपने भाषण में चीन की खूब आलोचना की किन्तु रूमानिया के नेतृत्व में अन्य अनेक पार्टियों ने इसका खुलकर विरोध किया।

ख्रुश्चेव के जमाने से ही, अर्थात् नौ वर्ष के लगातार प्रयत्नों पर यह सम्मेलन हो पाया था। किन्तु इस सम्मेलन में से निकला कुछ भी नहीं। हां रूस को इतना मालूम हो गया कि विश्व के कम्युनिस्ट जगत का नेतृत्व अखण्डरूपेण उसके हाथों में नहीं रहा। अब वह दो भागों में विभक्त हो गया है। दूसरे भाग का नेतृत्व चीन के हाथ में चला गया है।

इस सम्मेलन में एक निश्चय यह भी किया गया कि विश्व की कम्युनिस्ट पार्टियों द्वारा साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष किया जाय और इसके लिये साम्राज्यविरोधी विश्व सम्मेलन आयोजित किया जाय। इस सम्मेलन में ७५ कम्युनिस्ट पार्टियों ने भाग लिया था किन्तु उपरिलिखित प्रस्ताव पर केवल ७० पार्टियों ने ही हस्ताक्षर किये हैं और रूमानियां ने तो कुछ शर्तों के साथ उस पर अपने हस्ताक्षर किये हैं।

सोवियत संघ का प्रारम्भ से ही इस सम्मेलन के विषय में यह विचार था कि वह चीन की निन्दा करने में सफल हो जावेगा और इस प्रकार चीन के विरुद्ध कम्युनिस्ट संसार पर अपना वर्चस्व स्थापित करने में भी सफल हो जावेगा। किन्तु चीन समर्थक पार्टियों के विरोधस्वरूप रूस की सारी योजना विफल हो गई। इस सम्मेलन में रूस का विरोध न केवल चीन की निन्दा के विषय पर ही हुआ अपितु चैकोस्लोवाकिया में सोवियत सैनिकों द्वारा किये गये हस्तक्षेप की भी कुछ पार्टियों ने निन्दा की।

भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के नेता श्रीपाद् अमृत डांगे ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के बीच समझौता कराने के लिये विश्व कम्युनिस्ट पार्टियों से अपील की। किन्तु उसका कुछ परिणाम निकलता दिखाई नहीं दे रहा है। इस प्रकार उन्होंने अपनी स्थिति को हास्यास्पद बना लिया है। आपस में मिलकर मतभेद दूर करने की अपेक्षा बाहरी हस्तक्षेप को आमंत्रित करना सम्भवतया मार्क्सवादी पार्टी में उलटी ही प्रतिक्रिया उत्पन्न करे।

एक वाक्य में इस सम्मेलन की उपलब्धि यही कहायेगी—"खोदा पहाड़ निकली चुहिया।" ●

श्री गुरुदत्त की बहुचर्चित एवं बहुप्रशंसित रचना

जवाहरलाल नेहरू एक विवेचनात्मक वृत्त

का नया संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण

भारत गांधी नेहरू की छाया में

छपकर तैयार है। नेहरू की स्वरचित जीवनी, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, श्री एन० वी० गाडगिल, महात्मा गांधी की जीवनी लिखने वाले श्री प्यारेलाल तथा अन्य प्रमुख लेखकों की रचनाओं नाओं में से लगभग २५० उद्धरणों के आधार पर यह पुस्तक लिखी गयी है तथा राजनीति में रुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी है। मूल्य सजिल्द १०.००-पाकेट संस्करण ३.००

उपरलिखित एवं निम्न सभी रचनाएँ शाश्वत संस्कृति परिषद् द्वारा प्रकाशित की गई हैं तथा इन पर होने वाला सम्पूर्ण प्रकाशकीय लाभ एवं लेखक की सम्पूर्ण रायल्टी परिषद् के उद्देश्यों के प्रचार तथा प्रसार में व्यय की जाएगी। सभी पुस्तकों के लेखक श्री गुरुदत्त हैं।

समाजवाद एक विवेचन

समाजवाद क्या है? धर्म क्या है? धर्मवाद क्या है? क्या दोनों में समन्वय हो सकता है? मूल्य १.००

गांधी और स्वराज्य

देश की राजनैतिक अधोगति क्यों हुई? क्या स्वराज्य गांधी जी की करनी से मिला है? मूल्य १.००

भारत में राष्ट्र

भारत में राष्ट्र कौन सा है? हिन्दू की परिभाषा क्या है? हिन्दू के लक्षण तथा हिन्दू राष्ट्र की विवेचना। मूल्य १.००

धर्म संस्कृति और राज्य मूल्य ८.००

धर्म तथा समाजवाद मूल्य ६.००

श्रीमदभगवद् गीता एक विवेचना मूल्य १५.००

संरक्षक सदस्य

१ केवल एक सौ रुपये भेजकर परिषद् के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बनकर रहेगा।

संरक्षक सदस्यों को सुविधाएँ—

१ परिषद् के आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। इस वर्ष लगभग २५ रुपये मूल्य की पुस्तकें प्रकाशित की जाएँगी।

२ परिषद् की पत्रिका 'शाश्वत वाणी' आप जब तक सदस्य रहेंगे निःशुल्क प्राप्त कर सकेंगे।

३ परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ आप २५ प्र० श० छूट पर प्राप्त कर सकेंगे।

४ जब भी आप चाहेंगे अपनी धरोहर वापिस ले सकेंगे। धन मनी-आर्डर द्वारा या शाश्वत वाणी के नाम पर ड्राफ्ट द्वारा भेज सकते हैं।

अप्रैल मास में परिषद् ने निम्न दो पुस्तकें प्रकाशित की हैं जो मई २५ तक सदस्य बनने वालों को बिना मूल्य भेजी जाएंगी।

१ समाजवाद एक विवेचन-ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००
क्या समाजवाद धर्मवाद है? युक्तियुक्त विश्लेषण सहित।

२ गांधी और स्वराज्य—ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००
स्वराज्य प्राप्ति में किसका कितना हाथ रहा है, इसका प्रमाण सहित वर्णन इस पुस्तक में मिलेगा।

परिषद् का आगामी प्रकाशन

भारत में राष्ट्र—ले० श्री गुरुदत्त

भारत में राष्ट्र कौन सा है? हिन्दू की परिभाषा क्या है? हिन्दू के लक्षण तथा हिन्दू राष्ट्र की विवेचना इन विषयों पर लिखी गई यह पुस्तक अत्यन्त ज्ञानवर्धक है।

प्राप्ति स्थान

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०/९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)

नई दिल्ली–१

भारतीय संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा सम्पादित एवं शक्तिपुत्र मुद्रणालय दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

अगस्त १९६९ वर्ष ९—अंक ८ रजि० क्र० [illegible]८९/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

१. सम्पादकीय	—	३
२. अन्तर्राष्ट्रीय हलचल	श्री आदित्य	८
३. सत्-असत्	श्री गुरुदत्त	११
४. युगद्रष्टा वीर सावरकर जी के हिन्दुत्व एवं हिन्दू राष्ट्र सम्बन्धी विचार एवं उद्गार		१५
५. अस्तित्व की रक्षा	श्री विद्यानन्द 'विदेह'	१९
६. योगीराज कृष्ण	श्री सचदेव	२१
७. भारत में तस्करी	श्री अश्लेष	२६
८. भावी राष्ट्रपति का चुनाव	श्री अश्लेष	३०
९. घेराव हिन्दू का	श्री आनन्द कुमार अग्रवाल	३३
१०. राष्ट्रपति और उसके अधिकार	श्री सचदेव	३७
११. बुद्ध धर्म पर ईसाई आक्रमण	श्री ब्रह्मदत्त भारती	४२
१२. समाचार समीक्षा	—	४८

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।

ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

●

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

●

सम्पादक
अशोक कौशिक

●

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

●

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

अराजकता के कारण

जुलाई मास के सम्पादकीय में हमने यह स्पष्ट करने का यत्न किया था कि भारत में अराजकता व्यापक रूप में विद्यमान है। अराजकता के लक्षण भी हमने बताये। उसमें यह स्पष्ट करने का यत्न किया था कि जब जनता का देश के न्यायाधिकरण पर विश्वास न रहे, जब न्यायालयों के निर्णयों को कार्यान्वित करने का कोई साधन न रहे, जब पुलिस और सेना का दबदबा न रहे, जब राज्य का एक अंग दूसरे अंग का विरोध करने लगे, तब समझना चाहिये कि देश में अराजकता का आगमन आरम्भ हो गया है और यदि कोई उपाय न किया गया तो वह निरन्तर बढ़ती जावेगी।

उक्त सब बातें इस समय देश में विद्यमान हैं। आज हम बताना चाहते हैं कि यह अवस्था किस प्रकार उत्पन्न हुई है और क्यों यह दिन प्रतिदिन बढ़ रही है ?

अंग्रेज़ी राज्य में सब प्रकार की बुराइयों के होते हुए भी न्यायालयों की प्रतिष्ठा आज स्वराज्य काल के न्यायालयों से बहुत अधिक थी। एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायेगी। श्री जयप्रकाश नारायण 'क्विट इण्डिया' आन्दोलन

के दिनों में लाहौर में पकड़ लिये गये थे। बम्बई के एक वकील उनको ज़मानत पर छुड़ाने के लिये लाहौर पहुँचे। पुलिस ने उनको भी पकड़ लिया। हवालात से वकील ने हाईकोर्ट में 'हिबस कॉर्पस' की पिटीशन की। वह पिटीशन हाई कोर्ट तक नहीं पहुंची। बीच में ही रोक ली गयी। किसी तीसरे व्यक्ति ने यह घटना हाई कोर्ट के सम्मुख प्रस्तुत की कि एक बन्दी की हाई कोर्ट के सम्मुख प्रस्तुत की जाने वाली याचिका मार्ग में ही रोक ली गई है। हाई कोर्ट ने इन्स्पैक्टर जनरल पुलिस को बुला कर स्थिति का पता किया। उसने 'लॉ एण्ड आर्डर' की दुहाई दी, परन्तु हाई कोर्ट को याचिका रोकने में औचित्य प्रतीत नहीं हुआ। हाई कोर्ट ने पुलिस की कड़ी आलोचना की और उसका परिणाम यह हुआ कि न केवल उस वकील को ही छोड़ना पड़ा, अपितु जय प्रकाश नारायण की पिटीशन हाई कोर्ट में उपस्थित हुई और वह भी छोड़े ही नहीं गये, वरंच इन्स्पैक्टर जनरल पुलिस का स्थानान्तरण भी कर दिया गया।

अब इसकी तुलना कीजिये नेहरू के काल की एक घटना से। पंजाब के मुख्य मन्त्री श्री प्रतापसिंह कैरों पर डाक्टर प्रतापसिंह ने यह दावा किया कि प्रतिवादी ने वादी को सेवा मुक्त किया है। वादी ने बताया कि मुख्य मन्त्री उससे सरकारी औषधियों का अनुचित प्रयोग चाहते थे।

अभियोग सर्वोच्च न्यायालय तक गया और सर्वोच्च न्यायालय ने डाक्टर को न केवल बहाल किया, वरंच मुख्य मन्त्री के डाक्टर को सेवा मुक्त करने में निजि स्वार्थ के होने पर सन्देह की आशंका भी व्यक्त की।

इस निर्णय के उपरान्त भी मुख्य मन्त्री की किसी प्रकार की न्यायिक जांच नहीं की गयी। केन्द्रीय सरकार ने कोई कार्यवाही नहीं की और प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल जी ने संसद में कह दिया कि यह मुकदमा डाक्टर प्रतापसिंह और पंजाब सरकार के भीतर था। मुख्य मन्त्री प्रतापसिंह कैरों इसमें पार्टी नहीं थे और उनके विरुद्ध किसी प्रकार की कार्यवाही नहीं होगी।

एक बार तो इस बात पर हंगामा हो गया कि विधान सभा हाई कोर्ट के अधीन है अथवा हाई कोर्ट विधान सभा के? किन्तु कोई निर्णयात्मक बात नहीं हो सकी। मामला यों ही दबा कर शान्त कर दिया गया।

इसी प्रकार अन्य कई ऐसी बातें हो चुकी हैं कि जिनमें उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को रद्द करने का यत्न प्रधान मन्त्री, संसद तथा विधान सभाओं की ओर से किया जाता रहा है।

न्यायालयों में भी कानून इतना पेचीदा है कि किसी बात का निर्णय होने

में वर्षों लग जाते हैं। इतने काल के उपरान्त किया हुआ न्याय भी अन्याय ही हो जाता है।

इस सब गड़बड़ का एक मूल कारण है। वह है प्रजातन्त्रात्मक पद्धति का वह रूप जो आज भारत में प्रचलित है। प्रजातन्त्र क्या है? एक वाक्य में इसके लक्षण इस प्रकार हैं–'देश का सब कुछ प्रजा के प्रतिनिधियों के अधीन और प्रजा के प्रतिनिधियों का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर।'

इसको इन शब्दों में भी व्यक्त किया जा सकता है–'संसद पूर्ण सत्ता सम्पन्न संस्था है और संसद देश के समस्त वयस्कों की प्रतिनिधि संस्था।'

इस लक्षण के अनुसार यह कहा जा सकता है कि यह प्रजातन्त्रात्मक पद्धति ऐसी है कि इसमें योग्य–अयोग्य, भला–बुरा, देवता–असुर, विद्वान–अविद्वान, ईमानदार–बेईमान सब समान माने जाते हैं। अनुभव और अनुभव-विहीनता भी एक ही स्तर पर रखी हुई है।

एक साधारण उदाहरण से हमारा आशय स्पष्ट हो जायेगा। देश के संविधान में प्रधान मन्त्री के अधिकार सर्वोपरि हैं। प्रधान मन्त्री अपने मन्त्री-मण्डल का निर्माण करता है जो समस्त देशवासियों का भाग्य-विधायक बन सकता है।

अब तनिक प्रधान मन्त्री के निर्वाचन की प्रक्रिया समझ लें। नेहरू जब तक जीवित रहे, वे फूलपुर निर्वाचन क्षेत्र से निरन्तर निर्वाचित होते रहे। उस क्षेत्र में पढ़े-लिखे लोग देश के किसी भी अन्य क्षेत्र से अधिक अनुपात में नहीं थे। वहां भी एक विद्वान् प्रोफेसर और पुराने जूते गांठने वाले मोची के मत का समान मूल्य है। राजनीति से अनभिज्ञ, धर्म और देश की सुव्यवस्था से अज्ञ लोग वहाँ भी अधिक संख्या में रहते हैं। ऐसे क्षेत्र में से नेहरू एक विशाल बहु मत से निर्वाचित होते रहे और नेहरू की ख्याति की धूप में फलने–फूलने वालों ने उन्हें प्रधान मन्त्री बना दिया।

प्रधान मन्त्री देश की सुरक्षा, आर्थिक विकास, सुव्यवस्था, विदेशों से राजनयिक सम्बन्धों का प्रबन्ध करता है। देश की कोई भी समस्या नहीं जिसे प्रधान मन्त्री को सुलझाना नहीं पड़ता। तनिक सोचिए, क्या ऐसे उत्तरदायित्व पूर्ण व्यक्ति का इस ढंग से निर्वाचन उपयुक्त है?

पहले तो वह अपने निर्वाचन क्षेत्र में लाखों रुपये व्यय कर के बहुमत प्राप्त करता है। तदनन्तर संसद में अपने दल का बहुमत प्राप्त करने के लिये प्रचार कार्य में करोड़ों रुपये व्यय होते हैं। सैकड़ों प्रकार के प्रलोभन मतदाता स्तर पर और फिर दल में संसद स्तर पर दल के सदस्यों में दिये जाते हैं।

इन सब प्रक्रियाओं से निर्वाचित प्रधान मन्त्री क्या निश्चय ही योग्य और देश हित करने की इच्छा वाला व्यक्ति होगा ? महात्मा गांधी के कंधों पर बैठ कर देश का निर्विवाद नेता बन जाने पर भी नेहरू को अपने संसदीय निर्वाचन में और फिर प्रधान मन्त्रित्व की प्राप्ति में उक्त सब कुछ करना पड़ता था तो फिर किसी अन्य को क्या कुछ करना पड़ेगा अथवा पड़ा होगा, उसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

प्रजातन्त्र जैसा कि आज इस देश में प्रचलित है और जिसे संविधान की स्वीकृति प्राप्त है, किसी प्रकार भी योग्य, देश भक्त, सर्व हित चिन्तक, चरित्र वान् व्यक्ति के निर्वाचन किये जाने का आश्वासन नहीं दे सकता। विपरीत इसके उस व्यक्ति का, जो सर्व साधारण एवं सरल स्वभाव जनता को ठगने अथवा मोल लेने की सामर्थ्य रखता है, संसद सदस्य और फिर प्रधान बनने का अधिक अवसर है।

जैसा प्रधान मन्त्री होगा, वैसा ही मन्त्री-मण्डल बनेगा। वैसा ही शासन होगा और वैसी ही व्यवस्था देश में होगी तथा देश के सम्बन्ध विदेशों से होंगे।

कुछ लोग कहते हैं कि दूसरे देशों में, विशेष रूप में इंगलैण्ड में भी तो यही राज्य प्रणाली है। वहां यह कैसे सफल हो रही है ? ये लोग अपने कथन से यह सिद्ध करने का यत्न करते हैं कि दोष प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली में नहीं, वरंच लोगों के अनपढ़ और अनभिज्ञ होने में है। हमारा उनके विषय में केवल इतना ही कहना है कि या तो वे मूर्ख हैं अथवा धूर्त हैं।

जब वे मानते हैं कि भारत की जनता प्रजातन्त्र के योग्य नहीं तो फिर प्रजातन्त्र उनके योग्य कैसे हो गया ? अधिक सम्भव यह है कि ये लोग इतने मूर्ख नहीं जितने धूर्त हैं। उनको वर्तमान प्रजातन्त्र में कुछ अपना उल्लू सीधा करना होता है। वे कर सकते हैं अथवा नहीं, यह पृथक बात है। उनके मन में आकांक्षा होती है और उस आकांक्षा की पूर्ति में इस प्रजातन्त्र को उपयुक्त मानते हैं।

रही बात इंगलैण्ड इत्यादि देशों में इसकी सफलता की बात ! हमारा कहना है कि यह पद्धति उन देशों में भी सफल नहीं हो रही। एक उदाहरण से ही बात स्पष्ट हो जायेगी। वयस्क मतदान प्रणाली इंगलैण्ड में, इसी शताब्दी के प्रथम जर्मन युद्ध के उपरान्त लागू हुई थी। स्त्रियों को पुरुषों के समान मतदान की सुविधा सन् १९२६-२७ में प्राप्त हुई थी और उसके उपरान्त इंगलैण्ड की कितनी उन्नति हुई है, यह युक्ति का विषय नहीं, वरंच इतिहास का विषय है। सन् १९२५ में वह साम्राज्य जिस पर सूर्य कभी अस्त

नहीं होता था, सन् १९६९ में इंगलैण्ड, स्कॉटलैण्ड और वेल्ज़ द्वीप में सीमित रह गया है। वहां की आर्थिक स्थिति भी शोचनीय है और वह जाति जिसके जहाज़ सागर की तरंगों पर राज्य करते थे, अब इतना कहने में भी संकोच अनुभव करती है।

हमारा यह दृढ़ मत है कि यूरोप में प्रजातन्त्र का वर्तमान रूप इस शताब्दी के आरम्भ में बना और जंगल की आग की भान्ति यूरोप के सब देशों में फैल गया और शताब्दी के मध्य तक आधा यूरोप तो कम्युनिस्ट तानाशाही का शिकार हो गया और आधे में ऐसे-ऐसे चमत्कार सम्पन्न होने लगे हैं कि जिन्हें देखकर बुद्धि चकराने लगती है।

उदाहरण के रूप में इंगलैण्ड में गर्भपात को वैध करार दिया गया है और रिपोर्ट है कि जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका इत्यादि देशों से एक वर्ष में ३२,००० स्त्रियां गर्भपात कराने के लिये लन्दन के हस्पतालों में आयी हैं। किसी ने पूछा कि यह अनर्थ क्यों कराया जा रहा है? एक जानकार व्यक्ति ने कह दिया कि यह विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का बहुत अच्छा स्रोत है।

यदि यह कहें कि प्रजातन्त्र का यह रूप न केवल मूर्खता का प्रतीक है, वरंच घृणास्पद भी है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

होना क्या चाहिये? इस विषय पर अगले अंक में प्रकाश डाला जायेगा।

●●●

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

श्री आदित्य

भारतीयों के मन में विदेशियों की दासता की भावना इतनी प्रबल हो चुकी है कि वहाँ का निकृष्ट से निकृष्ट आचरण एवं व्यवहार भी हम स्वीकार करने के लिए व्याकुल रहते हैं। युरोप और अमेरिका में यौन विलासिता इतनी अधिक हो गयी है कि उसके सन्मुख बाल्मीकीय रामायण में वर्णित रावण और लंका निवासियों की विलासिता फीकी पड़ रही है।

पैरिस के नाइट क्लबों में स्त्रियों के नग्न नृत्य, इंग्लैण्ड में सम-लिंगीय संभोग का अवैध न रहना, युरोप के कुछ देशों में समान लिंग वालों में विवाह की स्वीकृति के लिये आग्रह, इंग्लैण्ड में गर्भपात अवैध न रहना, अमेरिका में नग्नता एवं यौन क्रियाओं को खुले में करने की स्वीकृति वहाँ के समाज के कुछ लक्षण हैं।

यदि हम उनको असुर समाज कहें तो यह कहा जाता है कि हम उनको गाली देते हैं, परन्तु उनका व्यवहार तो भारतीय साहित्य में वर्णित असुर व्यवहार को भी मात कर रहा प्रतीत होता है।

अमेरिका के विश्व विद्यालयों में यह आन्दोलन चल रहा है कि सहशिक्षा तब तक सहशिक्षा नहीं मानी जा सकती जब तक कि लड़के-लड़कियों के सह-छात्रावास न हों। कुछ एक विद्यालयों ने सह-छात्रावास बना भी दिये हैं, परन्तु एक ही छात्रावास में लड़के और लड़कियों के वास स्थान पृथक्-पृथक् रखे हुए हैं। विद्यार्थियों को इस पर सन्तोष नहीं। वे चाहते हैं कि यदि लड़के और लड़कियां एक ही कमरे में नहीं रखे जाते तो कम से कम उनको एक दूसरे के कमरे में सदा (दिन-रात) आने-जाने की स्वीकृति होनी चाहिए।

इसी वर्ष अमेरिका की 'टाइम' मैगज़ीन के एक प्रतिनिधि ने अमेरिका के नैतिक मूल्यों में हो रहे परिवर्तनों के विषय में मत प्राप्ति का प्रयत्न (Poll) किया है। उसका इस मत-ज्ञान का परिणाम यह है :—

The result produce ample evidence that despite considerable indignation at which they believe to be unjust, Americans generally are far more permissive about morals than they were a few years ago.

(इस मत ज्ञान (poll) से यह भली भान्ति सिद्ध होता है कि यद्यपि अमेरिका के लोग बहुत रोष प्रकट करते हैं और उस रोष को वे अनुचित भी मानते हैं, सामान्य रूप में अमेरिका निवासी नैतिकता के विषय में कुछ ही वर्ष पहले से बहुत उदार हो गये हैं।)

इस कथन का अर्थ यह है कि पिछले कुछ वर्षों में ही अमेरिका के लोगों का नैतिकता के विषय में विचार अधिक उदार हो गया है। इस उदारता के लक्षण मत-ज्ञान करने वाले मिस्टर लुइस हैरिस बहुत विस्तार से देता है। उसके कुछ ही आंकड़े हम यहां दे सकते हैं।

वह लिखता है :—

Men and women, young and old, professions and labourers, white and black, Christian anb Jews, all agree by lopside majority that morality in U. S. A. has declined over the past ten years.

पुरुष एवं स्त्री, बूढ़े तथा युवक, सम्पन्न तथा मज़दूर, काले तथा गोरे, क्रिश्चियन तथा यहूदी सब विशाल बहुमत से यह मानते हैं कि संयुक्त राज्य अमेरिका में पिछले दस वर्ष में नैतिकता का भारी ह्रास हुआ है।

१६०० मतों में, ६७ प्रतिशत विश्वास करते हैं कि अमेरिका में नैतिक ह्रास हुआ है। केवल ११ प्रतिशत का विचार है कि अमेरिका में नैतिक दृष्टि से उन्नति हुई है।

अवैध यौन सम्बन्ध पुरुष-स्त्री समाज में सन् १९६४ से १९६९ तक २४ प्रतिशत से ३६ प्रतिशत हो गए हैं और इनमें से १५ प्रतिशत परिवार के भीतर होने की सूचना है।

नैतिक पतन केवल यौन सम्बन्धों में ही नहीं हुआ, वरंच अन्य क्षेत्रों में भी हुआ है। उदाहरण के रूप में राजनीतिज्ञ जो जनता से घूंस लेते हैं, उनकी संख्या अवैध यौन सम्बन्ध बनाने वालों से अधिक है। यदि अवैध यौन सम्बंध बनाने वाले ३२ प्रतिशत हैं तो राजनीतिक घूंस लेने वाले ५४ प्रतिशत हैं।

पुलिसमैन जो वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियों से घूंस लेते हैं, वेश्यावृत्ति करने वालियों से अधिक हैं। वेश्यायें यदि ८ प्रतिशत हैं तो घूंस लेने वाले पुलिसमैन ८१ प्रतिशत।

इसी प्रकार के विस्तृत आंकड़े एकत्रित किए गए हैं और यह स्पष्ट है कि अमेरिका में नैतिकता चिकनी ढलान पर लुढ़कनी आरम्भ हो गई है और इसका अन्त किस गर्त में होगा, यह कहना कठिन है।

अभी-अभी का समाचार है कि न्यूयॉर्क में ब्रॉडवे थियेटर में एक नाटक खेला जा रहा है, जिसमें नग्न स्त्री-पुरुषों के नृत्य दिखाये जा रहे हैं।

इस नाटक के विज्ञापन में यह कहा गया था कि अमेरिका में जिस सीमा तक नग्नता किसी नाटक मंच पर दिखाई जा सकती है, वह यहाँ दिखाई जाएगी। न्यूयार्क के भद्र पुरुष इस नाटक को देखने के लिए उतावले हो उठे। नाटक के दिखाये जाने से पूर्व ही ४१ रात के लिए टिकट बिक गये थे और ऑरचैस्टरा श्रेणी के टिकट का दाम ७.५० डालर तो आरम्भ में ही हो गया था और पीछे चोर बाज़ार में एक-एक सीट के लिए २० डालर तक दाम गया। नाटक दिखाने वालों ने नाटक आरम्भ से पूर्व ही १,०३,००० डालर एकत्रित कर लिये थे।

यह कहा जाता है कि नाटक करने वालों में सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियां और पुरुष थे। इस पर भी दर्शकों में किसी प्रकार की उत्तेजना नहीं थी।

उत्तेजना थी अथवा नहीं थी, यह तो जब दर्शक हाल से बाहर, एकान्त में वहां के दृश्यों को स्मरण करते होंगे, तब की उनकी मनः स्थिति के ज्ञान से पता चलेगा। उस समय के आंकड़े तो एकत्रित किये नहीं गए। न ही यह अनुमान लगाया गया है कि ऐसे दृश्यों से युवक-युवतियों के मन पर क्या प्रभाव होता है?

हमारा यह सुनिश्चित मत है कि यह आसुरी व्यवहार है। आसुरी का अभिप्राय है इन्द्रियों की तुष्टि करने वाला। असुर उनको कहा जाता है जो संसार के भोग-विलास को ही जीवन का लक्ष्य मानें। अर्थात् जो जीवन की सब गतिविधियों का अन्त इन्द्रिय-भोग-विलास समझें।

हमारे शास्त्र में इसका इस प्रकार वर्णन किया है :—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥
(भ०-गी०-२-६२, ६३)

एक अन्य स्थल पर लिखा है :—

(शेष पृष्ठ २६ पर)

सत्-असत्

श्री गुरुदत्त

जब कोई विद्वान प्राचीन ग्रन्थों में प्रयुक्त शब्दों के नवीन अर्थ करने लगता है तो निश्चय ही उसका यह कार्य घोर अनुत्तरदायित्व पूर्ण माना जा सकता है।

जो भाषायें अभी विकास पा रही हैं, उनमें शब्दों के अर्थ मनमाने किए जा सकते हैं। वे भाषायें अपने में दूसरी भाषाओं के शब्द भी उधार ले सकती हैं। भाषा नवीन होने के कारण उन उधार लिए शब्दों के नवीन अर्थ किए जा सकते हैं। इस पर भी उन भाषाओं में, जिनसे शब्द उधार लिए गए हैं, शब्दों के अर्थ बदल नहीं जायेंगे। ऐसी नवीन भाषाओं को नवीन मानना ही ठीक रहेगा। भ्रंश शब्दों अथवा भ्रंश अर्थों से मूल भाषा को बचाना परमावश्यक होता है। यह इस हेतु कि उस भाषा में लिखा साहित्य मिथ्या अर्थ बोधक न हो जाये।

उदाहरण के रूप में आजकल प्रायः हिन्दी लेखक 'सैक्युलर' शब्द का हिन्दी भाषा में 'धर्म निरपेक्ष' अर्थ करते हैं। सैक्युलर का अर्थ है पंथ अथवा मत से पृथक।

धर्म, पंथ, मत, संस्कृत भाषा के शब्द हैं। वहाँ इनके पृथक्-पृथक् अर्थ हैं। अतः 'पंथ तथा मत से पृथक्' का अभिप्राय धर्म से पृथक् नहीं हो सकता। परन्तु यह संस्कृत भाषा में हैं। वे हिंदी लेखक जो हिन्दी भाषा को संस्कृत भाषा से पृथक् कर इसके नवीन भाषा होने की कल्पना कर रहे हैं, उनका यह अधिकार है कि वे धर्म और पंथ को पर्याय मान लें।

इसका अर्थ यह है कि संस्कृत भाषा अथवा संस्कृत निष्ठ हिन्दी भाषा लिखने वाला 'सैक्युलर' के अर्थ 'धर्म-निरपेक्ष' नहीं कर सकता। करेगा तो पूर्ण संस्कृत साहित्य के अर्थ भ्रष्ट कर देगा।

'सैक्युलर' का अर्थ धर्म-निरपेक्ष करने वाले यह घोषित करना चाहते हैं कि हिन्दी एक नवीन भाषा है। इसमें संस्कृत से उधार लिए शब्द के अर्थ,

वह नहीं भी हो सकते, जो संस्कृत में स्वीकार किए गए हैं। परन्तु संस्कृत भाषा में ही लिखने वाला शब्दों के नवीन अर्थ नहीं कर सकता। कारण उन नवीन अर्थों से अनर्थ ही होगा। प्राचीन विद्वान लेखकों का मत विकृत होकर दिखाई देने लगेगा।

यही बात सत्-असत् शब्द के अर्थों में श्री स्वामी शंकराचार्य जी ने तथा उनके अनुयाइयों ने की है।

सत् के अर्थ 'आप्टे' के संस्कृत शब्द कोष में इस प्रकार लिखे हैं:

सत्— that which really exists.

विलियम मोनियर भी इस शब्द के अर्थ इसी प्रकार करते हैं:

सत्—

सत् के अर्थ होना, रहना, उपस्थित होना इत्यादि हैं। जो पदार्थ सदा एक रस रहे, उसे सत् कहते हैं।

इसके विपरीत रहने वाले को असत् शब्द से स्मरण किया है। परन्तु स्वामी शंकराचार्य जी सत् शब्द के अर्थ अपने 'शारीरक भाष्य' (सूत्र १-१-९) में लिखते हैं:

कुतश्च न प्रधानं सच्छब्दवाच्यम् ?

स्वामी जी प्रश्न करते हैं कि प्रधान (मूल प्रकृति) सत् शब्द वाच्य क्यों नहीं ?

एषा श्रुतिः स्वपितीत्येतत्पुरुषस्य लोकप्रसिद्धं नाम निर्वक्ति। स्वशब्देनेहात्मोच्यते। यः प्रकृतः सच्छब्दवाच्यस्तमपीतो भवत्यपिगतो भवतीत्यर्थः।

ऐसा श्रुति में माना है। अर्थात् पुरुष के स्वपिती में (लीन) सोने की बात लिखी है। यह लोक प्रसिद्ध कहावत है। स्व शब्द से आत्मा का अभिप्राय है जो प्रकृत और सत् शब्द वाच्य है।

इसको सरल भाषा में इस प्रकार लिखा जा सकता है कि स्व शब्द से सत् और आत्मा (परमात्मा) का अर्थ लिया जाता है। वह आत्मा (परमात्मा) जो प्रकृत और सत् शब्द से कहा जाता है।

यह इस प्रश्न के उत्तर में है कि प्रधान (मूल प्रकृति) सत् शब्द से क्यों नहीं स्मरण किया जाता ?

उत्तर है कि श्रुति (छा०—६-८-१) में सत् शब्द परमात्मा के लिए आया है।

यह एक पृथक् बात है कि श्रुति (छा०—६-८-१) में सत् शब्द किसके लिए आया है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि सत् शब्द प्रधान (प्रकृति) के लिए प्रयोग नहीं होता।

इसी प्रकार भगवद्गीता में भी कई स्थान पर सत्-असत् शब्दों का प्रयोग हुआ है और वहां श्री स्वामी शंकराचार्य इसका अर्थ नहीं कर सके

गीता का एक श्लोक है :—

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥१२॥
(गी०- १३-१२)

इसका अर्थ है..... जो जानने योग्य है और जिसको जानकर (मनुष्य) अमृतत्व को प्राप्त होता है, वह मैं अच्छी प्रकार कहूंगा। वह आदिरहित परम ब्रह्म है। वह सत्-असत् नहीं कहा जाता।

यहां सत्-असत् शब्द का अर्थ प्रधान (मूल प्रकृति) है। कारण यह कि मूल पदर्थों (परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति) में केवल प्रकृति ही दो रूपों में रहती है। सत् रूप में और असत् रूप में। इसे कार्य और कारण जगत् कहते हैं। कारण जगत् मूल प्रकृति है। वह सत् है अर्थात् आदि रहित है और कार्य जगत् असत् है। वह आदि रहित नहीं। वह नाशवान है। उसे क्षर भी कहा है।

परन्तु स्वामी जी जो 'प्रधान' (प्रकृति) के लिए सत् शब्द का प्रयोग नहीं स्वीकार करते, वे इस श्लोक का अर्थ कर नहीं सके। कुछ ऐसा कह गये हैं जो किसी भी बुद्धिशील व्यक्ति को समझ आ ही नहीं सकता।

आप इस श्लोक के भाष्य में लिखते हैं-ज्ञेय जो अमृतत्व दिला सकता है, वह अनादि है, परब्रह्म परमेश्वर है।

आप लिखते हैं :—

(यद् ज्ञात्वा अमृतम्) अमृतत्त्वम् (अश्नुते) न पुनः म्रियते इत्यर्थः।

(जिस जानने योग्य को जानकर अमृतत्त्व को लाभ कर लेता है।)

अभिप्राय यह है कि 'ज्ञेय' परब्रह्म परमात्मा है, परन्तु चलकर 'सत्तन्नासदुच्यते' का अर्थ करते हुए श्री स्वामी शंकराचार्य जी घबरा गए प्रतीत होते हैं। इसका अर्थ वे करते हैं :—

(न सत् तद्) ज्ञेयम् (उच्यते इति न अपि) (असत्) तद् (उच्यते)

वह ज्ञेय (परमात्मा) न सत् कहा जा सकता है और न असत् कहा जा सकता है।

परमात्मा सत् तो है। असत् नहीं। सत् के अर्थ जैसे शब्द कोष में कहे हैं, वह अक्षर, अनादि, अस्तित्वयुक्त के हैं। यह कहना कि वह परब्रह्म सत् नहीं कहा जा सकता, पूर्ण आस्तिकवाद के मूल को नष्ट करने के समान है।

इस शंका को स्वामी जी अपने गीता भाष्य में उठाते हैं। पूर्व पक्ष में वह इस प्रकार उपस्थित करते हैं कि जो सत् नहीं, उसको भगवान् बतायेंगे कैसे ? इस श्लोक के पूर्व भाग में कहा है कि भगवान् के विषय में वे बतायेंगे। अगले भाग में कह दिया कि वह न सत् है और न असत् है।

इस पूर्व पक्ष का उत्तर स्वामी जी देते हैं कि यह कहने का ढंग है। वास्तव में ऐसा है नहीं। जैसे ब्रह्म को 'नेति नेति' (बृ०—४-४-२२) कहा है।

बृहदारण्यक उपनिषद् (४–४–२२) में नेति नेति शब्द के अर्थ 'नहीं है, नहीं है' नहीं। मन्त्र इस प्रकार है—

स एष नेति नेत्यात्मागृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो........

इसके अर्थ इस प्रकार हैं :—

(य एष आत्मा) वहां यह आत्मा (नेति नेति अगृह्यो) ग्रहण नहीं किया जाता। अर्थात् इन्द्रियों से ग्रहण नहीं किया जाता। (न हि गृह्यते) क्योंकि गहण करने योग्य है। (यशीर्यो) मारे जाने अयोग्य है।

अतः यहां नेति नेति की तुलना सत्-असत् से नहीं की जा सकती। परन्तु श्री स्वामी शंकराचार्य जी असंगत प्रमाण देने में अभ्यस्त हैं।

सत्-असत् शब्द प्रकृति के लिए आये हैं। प्रकृति के ये दो रूप हैं। मूल प्रकृति अनादि है, अक्षर है। इसमें प्रमाण है—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
(श्वे—४-५)

रजस्, सत्त्व, तमसगुण वाली एक अजन्मा है, जिससे उसके गुणों वाले अनेकानेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं।

और भी कहा है :—

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः .... (श्वे—१-१०)

क्षर और अक्षर स्वरूप वाला प्रधान (प्रकृति) है।

और भी है :—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

दो आत्म तत्त्व, सखा भाव वाले, मित्र एक ही वृक्ष पर बैठे हुए हैं। अतः हमारा यह मत है कि सत् के अर्थ चेतन नहीं।

वेद तीन अनादि अक्षर पदार्थ मानता है। परमात्मा, जीवात्मा और प्रधान (मूल प्रकृति)। तीनों सत् हैं। असत् अर्थात् नाशवान् केवल प्रकृति का कार्य रूप है। कारण रूप से अभिप्राय वह व्यक्त रूप है, जिसे इस जगत् के रूप में हम देखते हैं। ●

युगद्रष्टा वीर सावरकर जी के हिन्दुत्व एवं हिन्दू राष्ट्र सम्बन्धी विचार एवं उद्गार

(हिंदू महासभा के दिसम्बर १९४२ के कानपुर अधिवेशन में कार्य-कर्त्ताओं के शिविर में हिन्दू हृदय सम्राट स्वातंत्र्यवीर सावरकर जी ने अपने भाषणों में हिन्दूराष्ट्र एवम् हिन्दुत्व सम्बन्धी विचारों का विश्लेषण एवम् इस सन्दर्भ में उत्पन्न शंकाओं का निराकरण किया था। हमें पाठकों तक उनके विचार पहुँचाकर अति प्रसन्नता अनुभव हो रही है—सम्पादक)

मेरे 'हिन्दुत्व' ग्रन्थ की रचना एवम् हिन्दू की परिभाषा —

आ सिन्धु सिन्धु पर्यंता यस्य भारत भूमिका ।
पितृभू: पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दूरितिस्मृत: ।।

के बारे में कुछ सहयोगियों ने जिज्ञासामय प्रश्न किये हैं तो प्रतिपक्षियों ने कटु आलोचना एवम् विरोध और आपत्तियां प्रकट की हैं। कुछ तो हमारे सीधे प्रतिपक्षी हैं किन्तु कुछ कतिपय ऐसे हिन्दु भी हैं जो विपक्षियों से भी अधिक विरोध प्रकट कर रहे हैं। इन दोनों से हमारा निश्चय ही सैद्धान्तिक मतभेद है। अतः उनकी शकाओं का समाधान करने की आवश्यकता मैं नहीं समझता। शकाओं का समाधान तो एक मतावलम्बी जनों के बीच ही होता है जिसका कि उल्लेख मैं बाद में करूंगा। प्रतिपक्षियों की तो हमें चुनौती स्वीकार करनी है— वैचारिक एवम् व्यवहारिक दृष्टि से।

दोनों प्रकार के हमारे इन विरोधियों को यह आपत्ति है कि....सावरकर ऐसी परिभाषायें एवम् नवीन व्यवस्थायें देकर हिन्दू क्रान्ति लाने के स्वप्न देख रहा है, एवम् भारत में हिन्दू राज्य की स्थापना और संसार में हिन्दूइज्म की शाखाओं क.— हिन्दू साम्प्रदायिक गुट (ब्लाक) बनाने का षड्यन्त्र कर

रहा है। गान्धीवादियों को तो अहिन्दुओं से भी अधिक क्रोध आया दीखता है क्योंकि तुलनात्मक दृष्टि से हिन्दुत्व के आधार पर राष्ट्रीयता की परिभाषा से उनका पोंगा खिचड़ी राष्ट्र स्वतः ही नंगा हो जाता है। इसलिये वह कहने लगे हैं कि हिन्दू की इस परिभाषा से तो केवल वही हिन्दू हैं जो भारत से उत्पन्न सीधी किसी भी विचार प्रणाली एवम् धर्म (any faith of Indian origin) को मानता है। शेष सभी वे कहते हैं कि मेरी (सावरकर की) दृष्टि में परकीय हैं (extra territorial)।

इस पर मेरा यह मत एवम् प्रति उत्तर है कि अहिन्दू शिविर के दोनों प्रतिपक्षियों ने मेरे आशय को बिलकुल ठीक समझा है। वह हिन्दुत्व के सिद्धान्त की सत्यता को स्वीकार भले ही न करें, किन्तु यह बात ठीक है कि हिन्दुओं से अधिक (जिनका यह पक्ष है) मेरे विचारों को अहिन्दुओं एवम् विरोधियों ने जल्दी से पकड़ लिया है कि हम हर प्रकार से हिन्दुओं का पुनरुत्थान चाहते हैं। किन्तु एक बात मैं तथाकथित कांग्रेसी हिन्दुओं से कहूंगा कि आप भी हिन्दू मां-बाप की सन्तान हैं, एवं चाहे-अनचाहे हिन्दुत्व की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं। किसी सूत्र की व्याख्या या परिभाषा हर क्षण तो बदली नहीं जा सकती। उसका विस्तार व्यापक एवम् विशाल होगा।

आप केवल एक ही बात का ध्यान रक्खें कि मिली-जुली राष्ट्रीयता एक दल का नया तात्कालिक प्रयोग है और वह दल और उसका यह जयघोष भी कृत्रिम एवम् नया है, वर्ना वह प्रयोग निरर्थक है। क्योंकि इस मिले-जुले राष्ट्र में हिन्दुओं का समावेश तो स्वतः ही मान लिया गया है किन्तु द्वितीय मुख्य सम्प्रदाय मुसलमान ने इस्लाम की शिक्षा के आधार पर किसी भी गैर इस्लामी विचार पक्ष एवम् समूह के साथ आत्मसात् नहीं किया है। इस्लाम के इतिहास का एक भी उदाहरण ऐसा नहीं कि उसने किसी भी उदार समूह के साथ परस्पर सहयोग किया हो। सह-अस्तित्व तो इस्लाम के मूलाधार के सर्वथा विपरीत है। अतः कांग्रेसी नेताओं एवं गांधीवादियों को यह समझ लेना चाहिये कि मुसलमान कतिपय किसी उदार से उदार हिंदू के साथ भी एक मंच पर नहीं एकत्रित होंगे। दो-चार व्यक्तिगत रूप में मुसलमानों के आने की बात दूसरी है। बीते इतिहास के पृष्ठों को भी उन्हें भूलना नहीं चाहिए कि मुसलमान यहां आक्रमणकारी बन कर बाहर से आया था। इसीलिये मैं कहता हूं कि कांग्रेस की यह व्याख्या कि भारत में पैदा हर व्यक्ति भारतीय या हिन्दुस्तानी है यह एक पक्षीय बात बनकर रह गई है, क्योंकि स्वयं मुसलमानों ने ही अब उसे ठुकरा दिया है। अब (१९४२ में) वे स्वतंत्र पृथक् भूमि की मांग करने लगे हैं और इस भू-खण्ड का नामकरण ही वह इस्लामी (पाकिस्तान इत्यादि)

रखना चाहते हैं। तब मैं उनसे यह कहूंगा कि उनकी यह राष्ट्रीयता केवल मात्र एक पक्षीय प्रयोग ही बन कर रह गया है एवम् आगे भी इसका यही परिणाम होगा। इसके साथ स्वतः कांग्रेस को ही मुसलमान चुनौती दे रहा है कि एक भारत भूमि पर पैदा होने पर भी भारत मां की स्वतंत्रता एवं एक शत्रु की पराधीनता से देश को मुक्त कराने की आकांक्षा मुस्लिम समूह की है ही नहीं। जब इस देश का निवासी एक सम्प्रदाय देश की स्वतंत्रता की अपेक्षा विदेशी शासक से लज्जास्पद सांठ-गांठ करे तो यह राष्ट्रीय आन्दोलन चलाने वालों के लिये विचार करने की बात है। आप कह सकते हैं कि ऐसे हिन्दू भी हुये हैं जिन्होंने देश-द्रोह किया तो, मैं इसका उत्तर यह दूंगा कि इस देश की बहु-संख्यक हिन्दू जनता ने कभी भी किसी विदेशी के साथ षड्यन्त्र नहीं किया। कुछ स्वार्थी विरले हिन्दू ही ऐसे रहे हैं एवम् उनको आज हम हिन्दू संगठन-वादी आपसे पहले ही गद्दार कहते चले आ रहे हैं। किन्तु यहां प्रश्न दूसरा है, कि निन्यान्वे प्रतिशत मुस्लिम जन संख्या ने राष्ट्रीय आन्दोलन का साथ नहीं दिया। इसके अतिरिक्त ये मिली-जुली हिन्दुस्तानी कौम बनाने का विचार ही अंग्रेज कूटनीतिज्ञों के मस्तिष्क की उपज है जिससे कि उन्होंने विद्यमान एवम् पुनः भासमान होते हिन्दू राष्ट्र को समाप्त करने के लिये एक षड्यन्त्र रचा था एवम् कांग्रेस भी इसी उद्देश्य से बनाई गई थी। इसको सभी भली भांति जानते हैं। अतः मैं अपने उन बन्धुओं से कहूंगा कि न तो वे खाम-खाह मुसलमानों की वकालत करें और न ही अंग्रेज़ों के कुचक्र में फंसे, क्योंकि यह अब स्पष्ट होता जा रहा है कि मिश्रित हिन्दुस्तानी राष्ट्रवाद का प्रयोग केवल बालू की दीवार है।

जहां तक हिन्दू राष्ट्र का प्रश्न है, यह सत्य का प्रयोग करने वाले नये राजनैतिक महात्माओं को किसी का पक्षपात न करके सत्य न्याय की दृष्टि से देखना चाहिये कि इस देश में हिन्दुराष्ट्र कोई नया प्रयोग नहीं। हिन्दू समाज का वर्चस्व यहां आदि काल से चला आ रहा है। इस निर्जीव भू-खण्ड का नामकरण ही हमारे पुरखाओं ने किया। आर्यावर्त, भारत एवं हिन्दुस्तान हमारे हिन्दू समाज के ही प्रतीकात्मक शब्द हैं। तब इसकी राष्ट्रीयता विवादास्पद कैसे बन सकती है ? एतदर्थ हिन्दू राष्ट्र, हिन्दूमहासभा, मेरा या हिन्दू आन्दोलन के मेरे पूर्ववर्ती पुरस्कर्ता पंडित मदनमोहन मालवीय, भाई परमानन्द, डा० मुन्जे इत्यादि का कोई नया प्रयोग नहीं। जैसे कि हमारे पूरखाओं ने हिन्दुत्व के नाम पर अनेकों युद्ध किये और शिवा जी एवम् बाजीराव की स्पष्ट रूप से 'हिन्दू पद पादशाही' भी एक यथार्थ अभिव्यक्ति थी, कोई नया प्रयोग नहीं था। **कहने का अभिप्राय यह है कि हिन्दू राष्ट्र इस देश के शुद्ध स्वदेशी**

स्वराज्य की पुर्नस्थापना का पर्यायवाची मात्र है । जो ऐसा समझिये कि दुर्दैव से समय-समय पर दासता के बादलों के पीछे सूर्य के समान देदीप्यमान होकर भी स्थायी रूप से छुप गया हो ।

मैं यहां पर यह भी स्पष्ट करदूं कि राष्ट्रीयता का राजनैतिक गठन एवम् विकास राजनीति विज्ञान के पाश्चात्य पण्डितों की दृष्टि में नया है किन्तु हमारे यहां बिल्कुल ही नवीन नहीं है । भले ही इसके रूप और स्वरूप बदलते रहे हैं । हमने एक धर्म के आधार पर इतने विशाल भू-खण्ड में एक प्रकार की सामाजिक व्यवस्था स्थापित की । एक छत्र राज्य भी कई सम्राटों के इतने बड़े विशाल भू-खण्ड में रहे हैं जो आज के यूरोप के कितने ही आधुनिक राष्ट्रीय, भौगोलिक सीमाओं से बड़े थे । हमने गणराज्यों का प्रयोग भी किया है । अतः इस विषय में हमारा पाश्चात्य विद्वानों से भयंकर मतभेद है । दुर्भाग्य से भारत का प्राचीन इतिहास भी हमने आधुनिक इतिहास के माध्यम से और वह भी दासता के काल में विदेशियों का लिखा हुआ पढ़ा है । दो हजार साल की दासता का यह प्रकोप बड़ा भयंकर रहा है । इसने हमारी मूल मान्यताओं और प्रवृत्तियों को भी एक ऐसी दिशा दी है जो रचना की अपेक्षा हमें ह्रास की ओर ले जा रही है । इतिहास राष्ट्रीयता के निर्माण या पुर्निर्माण का एक मूल आधार होता है किन्तु यहां इस इतिहास के रूप को विकृत करने के अनेकों उदाहरण हैं । आर्य, द्रविड़, आदिवासी, भील इत्यादि ऐसे कितने ही गलत शब्दों का प्रयोग एवम् तथ्यहीन अभिव्यक्तियां हैं । मेरा पूर्ण विश्वास है और ठोस तथ्यों के आधार पर है, कि जैसे आज भी एक समाज या राष्ट्र में अनेक उप जातियां प्रदेश, प्रान्त भाषायें विद्यमान हैं, उसी प्रकार भारत से उत्पन्न सभी मत-मतान्तरों के हर काल और समय के एक ही वैचारिक और धार्मिक परिवार के अनेकों उपसंगठन भिन्न-भिन्न नामों से रहे हैं जो संसार के हर एक राष्ट्र के कई छोटे विभाजन उपनाम विद्यमान हैं । मेरा प्रयोजन इतना ही है कि हिन्दू राष्ट्र तो निर्विवाद रूप से यह भारत है ही ।

कल मैं हिन्दुत्व एवम् हिन्दू राष्ट्र का परस्पर सम्बन्ध, हिन्दूधर्म हिन्दूइज्म, हिन्दूवाद, इत्यादि अनेक शब्दों का परस्पर सामीप्य एवं अन्तर की व्याख्या एवम् विदेशों से आये हिन्दू बन्धुओं के पत्र एवम् अपने सहयोगियों की शंकाओं का समाधान करने का यत्न करूंगा । यहां आये कार्य-कर्ताओं से मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि हिन्दू राष्ट्र आन्दोलन को कटिबद्ध होकर हिन्दू जनता तक पहुंचायें एवम् हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू राज्य की पुर्नस्थापना का ध्येय प्राप्त करें।

(भागीरथ प्रवासी की ओर से संकलित एवम् उद्धृत)

(सावरकर जी का अगला भाषण आगामी अंक में प्रकाशित किया जायगा।)

अस्तित्व की रक्षा

श्री विद्यानन्द जी 'विदेह'

अस्पृश्यता भी हिन्दु-संगठन में एक बहुत गहरी और चौड़ी खाई है। अस्पृश्यता ने आज दो विवाद धारण किए हुए हैं–एक शास्त्रीय अस्पृश्यता और दूसरी व्यावहारिक अस्पृश्यता। शास्त्रीय अस्पृश्यता का नारा हाल ही में पुरी के शंकराचार्य श्री निरंजनदेव ने बुलन्द किया है। उनकी मान्यता है कि हिन्दुओं में प्रचलित अस्पृश्यता शास्त्रसम्मत होने के अतिरिक्त हिन्दु धर्म का अंग भी है। उनकी यह मान्यता ऐसी है जिसका अनुमोदन न कोई विद्वान् करेगा, न अविद्वान् जो शास्त्र मानव-समाज में अस्पृश्यता को विहित ठहराये, वह शास्त्र 'शास्त्र' नहीं। ऐसे शास्त्र को जितनी शीघ्र जलाकर राख कर दिया जाये उतना ही हितकर होगा। सन्तोष की बात यह है कि किसी भी वेद-शास्त्र में अस्पृश्यता को विहित नहीं ठहराया गया है।

रही अस्पृश्यता के हिन्दु धर्म का अंग होने की बात। यह शब्दावली ही मूर्खतापूर्ण है। हिन्दु' धर्म नहीं है, जाति है। हिन्दु जाति में अनेक धर्म [सम्प्रदाय] हैं। पर हिन्दु नाम का कोई धर्म है, ऐसा मानना और कहना पागलपन का नहीं तो अनभिज्ञता का लक्षण अवश्य है। जाति और धर्म में अन्तर होता है। जाति और धर्म एक नहीं हो सकते। जर्मनी में जाकर कोई 'जर्मन धर्म' शब्दों का प्रयोग करे तो वे लोग उसे समझायेंगे, "भाई, जर्मन हमारी जाति है, धर्म नहीं। हम जातीयता से जर्मन हैं और धर्म से क्रिश्चिअन।' हिन्दु एक जाति है। हिन्दु जाति में धर्म से कोई सिख है, कोई राधास्वामी है, कोई सनातनधर्मी है, जैन है, कोई बौद्ध है। प्रत्यक्षतः हिन्दु जाति का धर्म 'हिन्दु' बताना और हिन्दु धर्म में अस्पृश्यता को विहित ठहराना एक अच्छा-खासा मजाक है।

इस सन्दर्भ में शंकराचार्य-संस्था की कुछ खुली चर्चा कर देना भी यहां अप्रासंगिक न होगा, क्योंकि यह संस्था भी हिन्दु-संगठन के मार्ग की एक विकट बाधा है। आदि शंकराचार्य एक था और जीते जी वह एक ही रहा। फिर उसके जानशीन अनेक शंकराचार्य कैसे ? आदि शंकराचार्य ने केवल चार शंकर-मठ स्थापित किये थे। शेष जितने शंकर-मठ हैं वे बाद में स्थापित किये गये हैं। प्रत्येक शंकर-मठ में एक-एक शंकराचार्य है और उनमें परस्पर कोई तालमेल नहीं है। एक ही विषय में एक शंकराचार्य कुछ व्यवस्था देता है तो दूसरा कुछ और, और तीसरा कुछ और।

आदि शंकराचार्य आदि से अन्त तक विशाल भारत में अनवरत पैदल ही घूमा। उसने अपने सारे जीवन में कभी एक बार भी किसी प्रकार की सवारी का उपयोग नहीं किया। उस आदि शंकराचार्य के ये नामलेवा नाम-धारी शंकराचार्य भी आदि शंकराचार्य का अनुकरण करते हुये सारे भारत में और विदेशों में क्यों नहीं पैदल घूमते हैं ? आदि शंकराचार्य ने करोड़ों अवैदिकों को वैदिक बनाकर भारत में धार्मिक क्रान्ति की थी। ये शंकराचार्य इस दिशा में कोई काम क्यों नहीं करते हैं ? आदि शंकराचार्य ने संन्यास-मर्यादाओं का पालन करते हुए किसी एक स्थान पर स्थायी रूप से निवास न कर सतत देशाटन किया। उसके स्थानापन्न ये शंकराचार्य अपने-अपने मठ में स्थायी रूप से क्यों रहते हैं ? इन्हें तो निरन्तर धर्मप्रचार-यात्रायें करते रहना चाहिये।

हिन्दु समाज के प्रमुखों से मैं निवेदन करूँगा कि वे समस्त शंकर-मठों को एक सूत्र में सूत्रित करके सारे शंकराचार्यों को परस्पर एकजुष्ट करें और उन्हें आदि शंकराचार्य के आचार का अनुकरण करने को बाध्य करें। शंकर-मठों में हिन्दु जाति की करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति सर्वथा निष्क्रिय पड़ी है। उसका हिन्दु-समाज की सुसेवा के लिये सदुपयोग होना चाहिये। आन्दोलन और राजनीति से बहुत ऊपर उठकर उन्हें भारत में फैले विविध सम्प्रदायों को वैदिक रूप से रूपित करना चाहिये। अस्तु।

हिन्दु-तनू में व्यापी व्यावहारिक अस्पृश्यता उतनी भयानक नहीं है जितना उसे तूल दिया जा रहा है। भारत में प्रचलित आधुनिक अनैतिक राजनीति ने उसे हौआ बना दिया है। बात सीधी साधी है और उसका हल भी बहुत सरल है, बशर्ते कि मूल समस्या राजनीतिक पार्टियों और नेताओं का चुनाव-स्टंट न बने।

(क्रमशः)

योगीराज कृष्ण

श्री सचदेव

जो लोग महाभारत ग्रन्थ को कपोल कल्पित नहीं मानते, वे उसके पात्रों तथा उनके इतिहास को भी सत्य स्वीकार करते हैं। महाभारत के पात्रों में सर्वश्रेष्ठ, सर्व योग्य, बुद्धिमान्, महान नीतिज्ञ, वीर-धीर भगवान् श्री कृष्ण हैं।

श्री कृष्ण की महिमा इतनी अधिक समझी जाती है कि उनको न केवल सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान परमात्मा का अवतार ही माना जाता है, वरंच उन्हें अवतारों में भी सोलह कला पूर्ण समझा जाता है।

पूर्व इसके कि हम भगवान् के चरित्र का वर्णन आरम्भ करें, हम यहाँ इतना बता देना चाहते हैं कि हिन्दु परम्परा में भगवान् और अवतार के विषय में क्या मान्यता है ?

अवतार का वास्तविक स्वरूप

ब्रह्म, परमात्मा, आत्मा तथा प्रकृति शब्दों को भली भान्ति समझे बिना अवतार के अर्थ समझने सुगम नहीं हैं। उक्त तत्त्वों के विषय में जाने बिना परमात्मा के अवतार के स्वरूप का ज्ञान सम्भव नहीं।

पहले ब्रह्म के विषय में ही समझने की आवश्यकता है। साधारण भाषा में ब्रह्म परमात्मा का ही पर्याय समझा जाता है। उपनिषदों तथा वैदिक भाषा में ब्रह्म शब्द केवल परमात्मा का सूचक नहीं, वरंच यह परमात्मा के अतिरिक्त भी किसी को प्रकट करता है।

भगवद्गीता में ब्रह्म शब्द के अर्थ बताये गये हैं। अर्जुन भगवान् कृष्ण से पूछता है —

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
(भ० गी० ८-१)

वह ब्रह्म क्या है ? अध्यात्म किसको कहते हैं और कर्म क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् कृष्ण कहते हैं—

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः॥
(भ० गी ८-३)

अर्थात्—जो अक्षर है, वह ब्रह्म है। उस अक्षर के परम स्वभाव को अध्यात्म कहते हैं और सृष्टि को उत्पन्न करना, उसका पालन करना और उसका प्रलय करना उस अक्षर के कर्म हैं।

निर्णयात्मक प्रश्न यह है कि क्या इस ब्रह्माण्ड में अक्षर एक है अथवा एक से अधिक हैं? इस प्रश्न का उत्तर गीता में भी है और वेदादि शास्त्रों में भी है। वेद में इस विषय में एक मन्त्र इस प्रकार है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥
(ऋ० १-१६४-२०)

यहाँ इस संसार का अलंकार बांधा है। एक वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं। वे सुन्दर पंखों वाले हैं। साथ-साथ भली भान्ति युक्त हैं। वे मित्र भाव से रहते हैं। वे वृक्ष से आलिगन कर रहे हैं अर्थात् उसमें हिले-मिले हैं। उनमें से एक वृक्ष के स्वादु फल खाता है और दूसरा इनको न खाता हुआ साक्षी के रूप में देखता है।

तीन पदार्थों का अस्तित्व इस वेद मन्त्र में वर्णन किया गया है, परन्तु ये तीनों अक्षर हैं। इस विषय में भगवद्गीता स्पष्ट रूप में कहती है—

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धयनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान्॥
कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते॥
पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥
(भ० गी० १३-१९, २०, २१)

(पुरुष और प्रकृति दोनों को अनादि जानो। विकार और गुण प्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं।

इन्द्रियां और उनके कार्य में प्रकृति ही हेतु (कारण) है। पुरुष (जीवात्मा) (कार्य से उत्पन्न होने वाले) सुख-दुःख भोगने में हेतु (कारण) कहा जाता है।

पुरुष (जीवात्मा) प्रकृति में रहता हुआ ही, प्रकृति में उत्पन्न गुणों के संग में रहता हुआ, अच्छी और बुरी योनियों में जन्म लेता है।)

यहाँ प्राणी में शरीर और जीवात्मा का सम्बन्ध बताया है और परमात्मा के विषय में लिखा है—

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ।।
(भ० गी० १३-२२)

अर्थात्—(जीवात्मा) शरीर में उपद्रष्टा, अनुमन्ता, भर्ता और भोक्ता है, परन्तु परमात्मा महेश्वर इस देह में पुरुष से दूसरा है।

इस प्रकार परमात्मा को प्रकृति और पुरुष से अन्य बताया है। इसे भी अक्षर माना है। जो अनादि है वह अक्षर भी होता है।

इसी बात को उपनिषद् में और भी स्पष्ट रूप में वर्णन किया है। लिखा है :—

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा, ह्येका भोक्तृभोगार्थयुक्ता ।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता, त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेमत् ।।
एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं, नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित् ।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा, सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् ।।
(श्वे०—१६, १२)

ज्ञानवान् और अज्ञानी दो अजा (अजन्मा) हैं और एक अन्य अजन्मा है। वह है भोग करने वाले की भोग सामग्री। ज्ञानवान् ईश्वर है और अल्पज्ञ अनीश्वर है। ईश्वर अनन्त, और विश्व रूप है और अकर्ता है। इन तीनों को ब्रह्म जानने वाला ही जानता है।

यह (ब्रह्माण्ड) नित्य आत्मा (परमात्मा) जानना चाहिए। इसके उपरान्त जानने योग्य कुछ नहीं रह जाता। यह (ब्रह्माण्ड) क्या है ? भोग करने वाला (जीवात्मा), भोग्य सामग्री (प्रकृति) और इनका प्रेरक ईश्वर। सब तीन प्रकार का ब्रह्म माना है।

अतः हमने यह बताया है कि ब्रह्म तीन हैं। परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति। तीनों अजन्मा हैं। परमात्मा साक्षी रूप है, जीवात्मा भोग करता है और प्रकृति भोग्य पदार्थ है।

इन तीन मूल पदार्थों के अतिरिक्त एक अन्य भी है। वह क्या है ? इसे उपनिषद् इस प्रकार कहता है—

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे वृहन्ते, अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे ।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा, जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ।।
उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म, तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरं च ।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा, लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः ।।
(श्वे०—१-६, ७)

सब जीव (प्राणी) इस महान ब्रह्म चक्र में भंवर में हंस के समान फसे हुए हैं। इससे पृथक हमको प्रेरणा देने वाले (परमात्मा) को मानो। उससे संयोग हो जाने से अमृतत्व मिलता है।

ऊपर जो (ब्रह्म चक्र इत्यादि) बताया गया है, वह परम् ब्रह्म है। उसमें तीन अक्षर प्रतिष्ठित हैं और उससे अतिरिक्त ब्रह्मविद (ब्रह्म को जानने वाले) कहे जाते हैं। ये अपने से भी श्रेष्ठ ब्रह्म में लीन योनि मुक्त होते हैं।

ये ब्रह्म लीन व्यक्ति योनि मुक्त होते हैं। अर्थात् जन्म नहीं लेते। जो जन्म नहीं लेता, वह मरता भी नहीं है। अतः ये न जन्म लेते हैं और न मरते हैं। ये योनि मुक्त जीव कैसे बनते हैं ? यह उक्त प्रथम मन्त्र में बताया है कि भंवर में फंसे हंसों में से ही होते हैं। जब इनका जुष्ट (संयोग) परमात्मा से हो जाता है तब ये अमृतत्व को प्राप्त हो जाते हैं।

इस पर भी एक बात समझने की है कि जीवात्मा को अजा कहा है। (श्वे० १-९) अतः जीवात्मा तो पहले ही अजन्मा एतदर्थ अमृत है। तब परमात्मा से जुष्ट होने से इसमें क्या विशेषता आ जाती है, जिसे अमृतत्व और योनि मुक्त होना कहा है ?

यह स्पष्ट है कि यहां अमृतत्व और योनि मुक्त से केवल मात्र यह अभिप्राय है कि ये ब्रह्मलीन जीव जब तक परमात्मा से संतुष्ट रहते हैं तब तक ये जन्म-मरण के बन्धन में नहीं आते।

इस पर भी एक अटल सिद्धान्त है कि जो स्थिति कभी किसी समय आरम्भ होती है, उसका किसी समय अवश्य अन्त भी होगा। अतः यह ब्रह्मलीन अवस्था, जो परमात्मा से जुष्ट होने पर आरम्भ होती है, वह अनन्त नहीं है।

यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि विशेष विभूतियां जो इस मृत्यु लोक में उत्पन्न होती हैं, वे ब्रह्म लीन जीव ही थे।

यह इस प्रकार स्पष्ट होता है। प्रायः जहाँ कहीं भी अवतार होने की कथा पुराणादि ग्रन्थों में लिखी मिलती है, उनमें ब्रह्मा की प्रेरणा अथवा आदेश से ही विष्णु भगवान् इस भू-लोक में आते और यहां जन्म लेते लिखा है। प्रायः यह लिखा मिलता है कि इस भू-लोक के प्राणी विशेष रूप में देवता (श्रेष्ठगण) जब किसी असुर के अत्याचार से त्राहि-त्राहि करने लगते हैं, तब वे ब्रह्मा के पास जाते हैं और ब्रह्मा उनको विष्णु के पास ले जाता है। विष्णु देवताओं और ब्रह्मा की प्रेरणा स्वीकार कर लेता है और तब विष्णु

पुण्यकर्मा माता के पेट से जन्म लेना है और पृथिवी का उस दुष्ट असुर से उद्धार करता है।

इससे यह स्पष्ट है कि ब्रह्मा विष्णु से पृथक् अस्तित्व रखने वाली सत्ता है। अब देखिये, ब्रह्मा किसको कहते हैं!

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते॥

(मनु० १-११)

जो इस सबका कारण एवं अव्यक्त है, जो सत्-असत् (कार्य जगत्) का बनाने वाला है, वह पुरुष लोकों में ब्रह्म कहा जाता है।

यह है ब्रह्म और इसी का वह स्वरूप जो सृष्टि की रचना में लीन होता है, ब्रह्मा कहलाता है। लिखा है :—

यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षट्।
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्ति मनीषिणः॥१-१७॥

जब (परमात्मा) छः (१) महत्—आपः (२) अहंकार (३) तन्मात्रा (४) महाभूत (५) मन (६) इन्द्रियों, का आश्रय लेकर उनको शरीर मानता है तब वह मनीषिक (ब्रह्म) मूर्तिमान हो उठता है।

अतएव ब्रह्मा तो सर्वज्ञ, सर्व व्यापक, सर्व शक्तिमान उस आत्म तत्त्व को कहते हैं, जो परमात्मा के नाम से विख्यात है और विष्णु उससे पृथक कोई ब्रह्म लीन जीव है।

हमारा यह मत है कि भगवान् कृष्ण भी कोई ब्रह्म लीन जीव थे। जब सृष्टि पर असुरों का अत्याचार अत्यधिक हो गया तो ब्रह्मा की प्रेरणा से विष्णु भगवान् का अवतार योगीराज कृष्ण के रूप में हुआ।

महाभारत दाक्षिणात्य पाठ (सभा पर्व) में यह श्लोक यही प्रकट करता है। लिखा है :—

ततः कृष्णो महाबाहुर्भीतानामभयङ्करः।
अष्टाविंशे युगे राजञ्जज्ञे श्रीवत्सलक्षणः॥

तदनन्तर अठाइसवें द्वापर में भयंकर भय से डरे हुओं को अभय दान देने के लिये श्री वत्स (कमल) लक्षणों से युक्त कृष्ण का जन्म हुआ।

योगीराज कृष्ण वृष्णि वंशोत्पन्न वसुदेव के पुत्र जो वर्तमान चतुर्युगी के द्वापर युग में उत्पन्न हुए, वे अवतार थे। वे भगवान् के गुणों से सम्पन्न थे।

●●●

भारत में तस्करी

श्री अश्लेष

ईरान की खाड़ी के मुख पर एक छोटा सा द्वीप है, जिसका नाम 'डुब्राय' (Dubai) है। यहाँ से भारत के अरब सागर के तट के बन्दरगाहों पर तस्करी होती है। यह कहा जाता है कि भारत में तस्करी से लाये गये माल का ८० प्रतिशत से अधिक इस द्वीप से भारत में लाया जाता है।

डुबाय एक छोटा सा मरु भूमि वाला द्वीप है। यहां कुछ भी उत्पन्न नहीं होता, परन्तु यहां करोड़ पति लोग रहते हैं। यहाँ महल बन गये हैं और दुनियां की बढ़िया से बढ़िया मोटर गाड़ियां भागती दिखायी देती हैं। सुन्दर पेशेवर स्त्रियों की भी वहां भरमार है।

यह इस कारण है कि दुनियाँ भर का वह माल जिस पर भारत सरकार कई सौ गुना टैक्स लगाती है, वह इस द्वीप के मार्ग से भारत में चोरी-चोरी पहुंचाया जा रहा है।

यह अनुमान लगाया गया है कि प्रत्येक एक सौ रुपये के माल पर इस द्वीप से चोरी - चोरी भारत में भेजे जाने पर सब प्रकार के व्यय और हानियों का हिसाब लगा कर भी एक सौ रुपया बच जाता है। व्यय और हानियों में मोटर बोटों का व्यय, जिन पर माल डुब्राय अथवा कुवायत इत्यादि से लाया जाता है, उन मल्लाहों का व्यय जो इन मोटर बोटों से खुले सागर पर अपनी मछलियां पकड़ने की नौकाओं में मिलते हैं और तस्करी का माल लेकर भारत के किनारे पर लाते हैं। प्रायः ये मल्लाह अपनी मछली पकड़ने वाली नौकाओं पर यह माल लाते हुए पकड़ लिये जाते हैं और माल ज़प्त हो जाता है तथा तस्करी करने वाले दण्ड पा जाते हैं। यह सब व्यय और हानि कुछ विदेशी बीमा कम्पनियां माल का बीमा कर सहन करती हैं और यह हानि उस माल की कीमत पर पड़ती है, जो इन सब कठिनाइयों को पार कर भारत में बिकता है।

तस्करी का माल इस प्रकार के सब व्यय सहन कर भी नियमित ढंग से आने वाले माल से सस्ता मिलता है। इस पर भी यह शतप्रतिशत से अधिक लाभ दे जाता है।

लोग इन तस्करों को गालियाँ दे सकते हैं और उन भारतीयों की निन्दा भी की जा सकती है जो इस प्रकार के माल को खरीदते हैं, परन्तु सरकार और उक्त टीका-टिप्पणी करने वाले यह भूल जाते हैं कि इतना जोखिम का काम करने वालों को इतना बड़ा लाभ किस कारण से होता है ?

किसी भी सरकार का यह कर्त्तव्य है कि इस प्रकार के व्यापार को बन्द करे और नियमित व्यापार को ही देश में चलने दे। परन्तु जब इतना बड़ा प्रलोभन चोर और तस्करों को मिलता है तो उस प्रलोभन को समाप्त करना क्या प्रथम कार्य नहीं।

तनिक विचार किया जाये कि यह क्यों होता है ? इस तस्करी का सबसे बड़ा कारण है अपने देश में और विदेशों में वस्तुओं के दाम में इतना बड़ा अन्तर कि सब प्रकार के व्यय और हानियां सहन कर भी तस्करी करने वाले करोड़ों का लाभ उठा लेते हैं। इस चित्र का एक दूसरा भी पहलू है। वह यह कि हमारी सरकार प्रत्येक ऐसी वस्तु, जो हम खरीदते हैं, पर कितना टैक्स हमसे लेती है ?

सरकार केवल उन वस्तुओं पर ही टैक्स नहीं लेती, जो विदेशों से इस देश में आती हैं, वरंच यह उन वस्तुओं पर भी टैक्स लेती है जो अपने ही देश में बनती हैं। ऐसा भी होता देखा गया है कि एक वस्तु भारत में ही बनी हुई भारत में महंगी है और वह विदेश में सस्ती बिकती है।

इस समस्या पर विचार करने का एक अन्य दृष्टिकोण भी है। वह यह कि भारत में ऐसे लोग हैं जो एक रुपये की वस्तु का दाम पांच रुपये देने को तैयार हैं। बीस हज़ार की मोटर का कारखाने का उत्पादन मूल्य आठ हज़ार के लगभग होता है। इस आठ हज़ार में भी यदि सरकार के उत्पादन टैक्स जो वह मोटर के पुर्ज़ों पर लगाती है, सम्मिलित न किया जाय तो दाम और भी कम हो जाते हैं। उदाहरण के रूप में मोटर की 'ब्रेकें' किसी एक कारखाने में बनती हैं, 'हॉर्न' किसी अन्य कारखाने में बनते हैं, 'विण्ड स्क्रीन' किसी अन्य कारखाने में बनती हैं। प्रत्येक ऐसी वस्तु पर उत्पादन टैक्स पृथक-पृथक देना पड़ता है। इतनी कम वस्तु का इतना बढ़ा हुआ दाम होने पर भी लोग भारी संख्या में मोटरें खरीद रहे हैं। यह धन कहां से आता है ?

यदि पूर्ण आर्थिक प्रपंच पर दृष्टिपात किया जाय तो मस्तिष्क चकराने लगता है और इस प्रपंच को देखते हुए प्रत्येक व्यक्ति के मन में यह बात उत्पन्न होती है कि वर्तमान युग में रहने वाले के लिये यह आवश्यक है कि वह दो-तीन हज़ार मासिक की आय करे। परन्तु सबकी बात छोड़ कर यह देश के दस प्रतिशत नागरिकों के लिए भी सम्भव नहीं।

तो क्या किया जाये ? उदाहरण के रूप में दिल्ली में रहने वाले एक व्यक्ति का चित्र खींचें। मकानों के भाड़े बहुत अधिक हैं। नगर निगम के अनथक प्रयत्न करने पर भी पुराने शहर में मकान अन्धेरे, गन्दे और तंग हैं। किसी कॉलोनी में मकान लेकर आने-जाने में भारी कठिनाई है। भूमि बहुत महंगी है और मकान बनाने का सामान भी बहुत महंगा है। दिल्ली की जन संख्या भी बहुत बढ़ रही है।

एक व्यक्ति, जो दुर्भाग्य से महरौली में रहता है और काम करता है दिल्ली सिविल लाइन्ज़ में, उसकी अवस्था का अनुमान लगायें। बसों की ठोकरें खाते हुए दो-अढ़ाई घण्टे काम पर पहुँचने के लिए और इतना ही समय घर पहुंचने के लिए चाहिए। सात घण्टे काम करने के लिए। अर्थात् दिन में ग्यारह-बारह घण्टे जीविकोपार्जन के लिए चाहियें और फिर लम्बी यात्राओं के कारण थकावट। निस्सन्देह वह व्यक्ति खाना-पहनना, सोना और जीविकोपार्जन के अतिरिक्त कोई सार्वजनिक अथवा आत्मोन्नति के कार्य के लिए अवकाश नहीं पा सकता।

वह सवारी के लिए स्कूटर ले और नित्य जीवन को भय में डाल कर बीस-मील आने-जाने का प्रबन्ध करे तो साढ़े चार हज़ार के स्कूटर पर दो सहस्र सरकार को टैक्सों में दे और फिर नित्य पेट्रोल इत्यादि पर व्यय करे। तब भी वह कितना अवकाश पा सकेगा यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता।

ये सब समस्यायें हैं जिनसे निपटने के लिए जनता अनियमित आय करने पर विवश हो रही है। पेट भरने को अन्न चाहिए। उसके लिए काम चाहिए। काम पर जाने के लिए यातायात का साधन चाहिए। लम्बी यात्राओं की थकावट को मिटाने के लिए कुछ पौष्टिक, कुछ उत्तेजक पेय पदार्थ (कम से कम सिगरेट तथा चाय) चाहिए। वेतन कितना भी अधिक क्यों न हो, निर्वाह बिना ऊपर की आय के होना कठिन है।

इस पर भी कुछ ईमानदार लोग हैं। उनका बीज नाश नहीं हुआ, परन्तु

वे न तो स्वयं अपने रहने के स्तर को उचित रख सकते हैं और न ही अपने बच्चों को उचित शिक्षा दे सकते हैं। उनको उचित पौष्टिक भोजन भी नहीं दे सकते। ये लोग या तो निर्धनता और कठिनाई के जीवन को चलाते हैं अथवा आत्म-हत्या अथवा क्रोध में किसी सम्बन्धी की हत्या करने पर विवश हो जाते हैं।

जो ईमानदारी को छोड़ने का साहस कर बेईमानी पर उतर आते हैं, वे प्रायः सुख-सुविधा का जीवन व्यतीत करने लगते हैं। प्रायः ऐसे ही लोगों के लिए तस्करी की जाती है। ये लोग ही सुख-सुविधा का सामान खरीदते हैं।

तस्करी को दूर करने के लिए क्या उक्त कारणों को दूर करना आवश्यक नहीं ? हमारा तो यह मत है कि तस्करी क्या, चोरी, बदमाशी, रिश्वतखोरी, कुनबा परवरी, अभिप्राय यह कि सबके सब अनैतिक काम वर्तमान आर्थिक प्रपंच करा रहा है।

इस आर्थिक प्रपंच के मूल में वर्तमान युग की सभ्यता है। एक शब्द में वर्तमान सभ्यता का अभिप्राय है, सुख भोग मुख्य और अन्य सब कुछ गौण।

(पृष्ठ १० का शेष)

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।

असुर नाम का लोक अज्ञान से आवृत्त है।

तांस्ते प्रेत्यभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

उस लोक में मरने के उपरान्त वे लोग जाते हैं जो अपने में आत्मा की हत्या कर देते हैं। अर्थात् आत्मा के अस्तित्व को भूल कर शरीर की मांगों के पीछे भागते हैं।

युरोप और अमेरिका अपने को प्रगतिशील कहते हैं, परन्तु हमें इसमें ह्रास के लक्षण प्रतीत हो रहे हैं। हमें कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है कि राक्षस-राज रावण की लंका एक शस्त्र विहीन जती सती हनुमान द्वारा फूंकी जाने वाली है।

भावी राष्ट्रपति का चुनाव

श्री अश्लेष

बंगलौर में कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन की समाप्ति पर राष्ट्रपति पद के लिये बोर्ड द्वारा कांग्रेसी प्रत्याशी घोषित किया गया। देश के इस सर्वोच्च पद के लिये श्री संजीव रेड्डी का नाम बोर्ड ने उपस्थित किया है।

इस घोषणा के तुरन्त ही उपरान्त श्री गिरि ने, जो स्थानापन्न राष्ट्रपति का कार्य कर रहे थे, स्वतन्त्र रूप से राष्ट्रपति के लिये प्रत्याशी के रूप में अपने नाम की घोषणा कर दी।

सबसे हास्यस्पद स्थिति यह है कि श्रीमती इन्दिरा गांधी ने राष्ट्रपति के लिये बोर्ड के निर्णय को नपसन्द किया है और इसमें कारण यह बताया है कि वह राष्ट्रपति पद के लिये दलगत निर्वाचन नहीं चाहतीं। श्रीमती इन्दिरा जगजीवन राम जी के नाम का समर्थन करती थीं, इस कारण कि वे एक अछूत जाति के घटक हैं और यह अछूतोद्धार का एक बहुत उत्तम उदाहरण होता।

यद्यपि उन्होंने यह नहीं बताया कि अब वे किसका समर्थन करेंगी, परन्तु उन्होंने यह कह दिया है कि गिरी का नाम सबसे पहले उन्होंने ही प्रस्तावित किया था।

कांग्रेस के प्रधान श्री निजलिंगप्पा ने राष्ट्रपति पद के लिये कांग्रेसी प्रत्याशी श्री संजीव रेड्डी का नाम घोषित करते हुए कहा है कि श्री जगजीवनराम को प्रधान मन्त्री का समर्थन प्राप्त था।

बंगलौर से नई दिल्ली पहुंचते ही श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने पत्र-प्रतिनिधियों से यह कहा कि राष्ट्रपति पद के लिये प्रत्याशी का चुनाव दलगत न होकर देश की बहु सम्मति से होना चाहिये। अर्थात् वे कांग्रेस बोर्ड द्वारा घोषित प्रत्यशी के विरुद्ध हैं। एक प्रतिनिधि ने पूछा कि जब श्री ज़ाकिर हुसैन का नाम प्रस्तावित किया गया था, क्या श्रीमती गांधी ने विपक्षी दलों से सम्मति ली थी। इस पर श्रीमती गांधी ने कहा कि जिन जिन से वह मिली थीं,

सबने कहा था कि वे ज़ाकिर हुसैन का विरोध केवल विरोध के भाव से कर रहे हैं।

श्री निजिलिंगप्पा ने यह रहस्योद्घाटन भी किया कि निर्वाचन बोर्ड में किसी ने यह युक्ति उपस्थित की थी कि राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री के अनुकूल व्यक्ति होना चाहिये; क्योंकि दोनों का परस्पर सामीप्य रहता है।

हमारा यह मत है कि यह सब कुछ, जो कांग्रेसी नेता आज अथवा कभी भी कुछ कहते हैं, वह जनता के साथ वंचना खेलने के लिये ही कहते हैं।

कांग्रेस ने राष्ट्रपति पद को कभी भी देश का प्रतिनिधि पद नहीं माना। वे राष्ट्रपति को कांग्रेस दल का प्रत्याशी ही मानते रहे हैं। पण्डित नेहरू तो राष्ट्रपति पर शासन करते प्रतीत होते थे। यदि किसी समय नेहरू जी बाबू राजेन्द्र प्रसाद से अपने आदेश को नहीं मनवा सके तो इस लिये नहीं कि नेहरू जी ने अपना अधिकार अनियमित माना हो, वरंच इसलिये कि बाबू राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति पद भी छोड़ने के लिये तैयार हो जाते थे।

अब भी यदि श्रीमती इन्दिरा जी का प्रत्याशी स्वीकार हो जाता तो श्रीमती इन्दिरा उसे पूर्ण देश का प्रतिनिधि घोषित करतीं। परन्तु संजीव रेड्डी के निर्वाचन को ठीक ढंग पर नहीं हुआ कहने लगी हैं।

डा० ज़ाकिर हुसैन के विषय में भी श्रीमती इन्दिरा का कथन सत्य से दूर है। इस कथन का अभिप्राय यही प्रकट होता है कि श्रीमती इन्दिरा ने केवल उन लोगों से ज़ाकिर हुसैन के विषय में पूछा था जो राष्ट्रपति के निर्वाचन में बेईमानी और निजी द्वेष के आधार पर बात कर रहे थे। यह बत अशुद्ध है कि उस समय उन्होंने विपक्षी दलों से सम्मति ली थी।

अब भी कांग्रेस बोर्ड में बात होने तक श्रीमती इन्दिरा ने किसी विपक्षी दल से बात नहीं की। यदि की होती तो वह पत्रप्रतिनिधि सम्मेलन में बतातीं।

वास्तव में राष्ट्रपति पद के लिये राजनीतिक अथवा किसी भी अन्य दल में इस पद के लिये प्रत्याशी की चर्चा होनी ही नहीं चाहिये। किसी दल का प्रतिनिधि इस पद के लिये प्रत्याशी नहीं होना चाहिये। एक व्यक्ति, जिसने अपनी सारी आयु भर कांग्रेस अथवा किसी राजनीतिक दल में कार्य किया हो, उसकी नीतियों और सिद्धान्तों के निर्माण में भाग लिया हो, राष्ट्रपति पद पर आसीन होते ही कैसे एक निष्पक्ष, स्वतन्त्र विचार का व्यक्ति बन सकता है?

कांग्रेस के लोग सदा जनता को धोखा देते रहे हैं। ये अपने को असाम्प्रदायिक कहते हुए कभी हिन्दू-मुसलमान के रूप में विचार करते हैं, कभी

अछूत-छूत जाति के रूप में, कभी उत्तर-भारतीय और दक्षिण-भारतीय के रूप में। इसी प्रकार ये लोग समझते हैं कि जीवन भर जो लोग मुसलमानों, सिक्खों और अन्य सम्प्रदायों के तलवे चाटते रहे हैं अथवा कांग्रेसियों को देश पर उपमा देते रहे हैं, वे राष्ट्रपति पद पर नियुक्त होते ही सत्य, न्याय, ईमानदारी की मूर्ति बन जायेंगे।

एक ओर तो देश में ऐसे मन्त्री उपस्थित हैं, जो संविधान की रक्षा की शपथ लेकर संविधान को तोड़ देने की घोषणा करते हैं और हमारे राष्ट्रपति संविधान की रक्षा की शपथ लिये हुए भी मौन हैं और फिर वे कहते हैं कि राष्ट्रपति पद पर दलगत गन्दगी से ऊपर का आदमी होना चाहिये।

इन्हीं लोगों ने अपने मूर्खतापूर्ण व्यवहार से यह कहावत विख्यात करा रखी है कि 'Politics is the last resort of scoundrels' हम इस कहावत को मिथ्या मानते हैं, परन्तु जब स्वार्थवश अथवा मूर्खतावश कोई राजनीतिक नेता कहता कुछ है और करता कुछ अन्य है तो वह उक्त उक्ति का अपने आचरण से समर्थन करता है।

राष्ट्रपति का पद प्रधान मन्त्री के अनुकूल हो अथवा न हो, यह कोई शर्त नहीं है। राष्ट्रपति संविधान की रक्षा करने वाला देश का कल्याण-चिन्तन करने वाला और न्याय का पक्ष लेने वाला व्यक्ति होना चाहिये।

राष्ट्रपति का पद राजनीतिज्ञों के लिये हो। यह सदा किसी न्यायप्रिय, सत्य प्रिय, निर्भीक देश भक्त और निःस्वार्थ भाव रखने वाले व्यक्ति को मिलना चाहिये। राजनीयिज्ञ दलों की ओर से इसके लिये किसी का नामांकन नहीं होना चाहिये। न ही राजनीतिक दल इसके लिये अपने दल के, संसद अथवा विधान सभाओं के सदस्यों को किसी प्रकार का आदेश दें। सब निर्वाचित सदस्यों को स्वीकृत्ति हो कि वे किसी भी प्रत्याशी को मत दे सकें।

घेराव हिन्दू का

श्री आनन्द कुमार अग्रवाल

'घेराव'-कम्युनिस्टों द्वारा आविष्कृत आन्दोलन का नया तरीका तो नहीं कहा जा सकता परन्तु उनके पुराने तरीकों में से वह भी एक है। गत दो तीन वर्षों से घेराव की बड़ी धूम है। वे घेराव करते हैं शासकों का ताकि उनके अराष्ट्रीय गतिविधियों पर किसी प्रकार की पाबन्दी न लगाई जाय। वे घेरते हैं पूंजीपतियों को ताकि मजदूरों और मालिक का भेद मिट जाय। इसके द्वारा शिक्षाधिकारी घेरे जाते हैं अपने युवा आन्दोलन द्वारा अधिकाधिक युवकों तक मार्क्स, लेनिन, स्टालिन, माओ का सिद्धान्त प्रचारित करने की क्षुद्र मनोवृत्ति लेकर। और इन सबके पीछे एकमेव उद्देश्य होता है देश में घोर अशान्ति और अराजकता उत्पन्न कर व्यवस्था छिन्न भिन्न करना जिससे सीमा पर खड़ी चीन की सेना निर्विघ्न घुस आये और भयंकर नर-संहार लूटपाट के ताण्डव द्वारा लाल क्रान्ति कर कम्युनिस्ट अपनी सत्ता कायम कर सकें।

ईर्ष्या, द्वेष, घृणा से उत्पन्न इस घेराव की प्रक्रिया आज हिन्दु के साथ भी हो रही है। आज हिन्दू चारों तरफ से घिरा हुआ है। हिन्दुओं की श्रद्धा भूमि, प्रेरणा स्थल, आशा एवं स्फूर्तिदायिनी भारत माता पर आज ऐसे कुशासन का राज्य है जो खुले आम धर्म निरपेक्षता अर्थात् धर्म विमुखता का डंका पीट रहा है। अपने आपको हिन्दू कहने वाला हिन्दुस्तान में उपेक्षित है। उसके लिए अलग से हिन्दू कोड बिल, हिन्दू मैरेज एक्ट बना हुआ है। यदि हिन्दू न बता कर कोई ईसाई, मुसलमान बताये तो वह विदेशों से प्राप्त मदद के अलावा इन धर्मविमुख शासकों की भी विशेष कृपादृष्टि का पात्र माना जाता है। यहां तक कि हिन्दुओं के ही अंग यदि अपने आप को 'हरिजन, आदिवासी, आदिमजाति लिख दें तो विशेष सुविधा प्राप्त कर हिन्दुओं से भिन्न रहने की तथा बताने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

यह एक परम्परा सी बन गई है कि कहीं दंगा हुआ तो आरोप लगाया जाता है, हिन्दुओं ने ही किया क्योंकि वे बहुसंख्यक हैं। क्या अल्पसंख्यक लुटेरे,

अत्याचारी, दुराचारी नहीं हो सकते। छेड़छाड़ करने वाला गुण्डा यदि दस भले आदमियों द्वारा पीटा जाय तो क्या यही न्याय है कि गुण्डा अल्पसंख्यक है इसलिये बहुसंख्यकों को सजा दी जाय? पर इस देश में अभी वही कुछ हो रहा है, जो उस समय होता था जब हम पराधीन थे। यह उस समय से होता चला आ रहा है जब पठान, मुगल, अँग्रेज यहाँ के शासक थे।

आज कैसा दुर्दैव है कि गुरु गोविन्दसिंह, महावीर, बुद्ध, कबीर के अनुयायी अपने गुरुओं के बड़े बड़े स्मारक बनाकर, ग्रन्थ लिखकर, पूजा अर्चना, धर्म प्रचार कर एक बात को भुला देना चाहते हैं कि सिक्ख, जैन, बौद्ध, कबीरपंथी सम्प्रदाय का जन्म देश-काल-परिस्थिति अनुसार हिन्दु धर्म की रक्षा के लिये एवं उसके प्रचार-प्रसार के लिये किया गया था न कि मुसलमान ईसाई, पारसी की तरह हिन्दु से इतर-धर्म की स्थापना की गई थी। परन्तु आज सर्वत्र यही दृश्य है कि अपने को हिन्दु से भिन्न कहने में लगता है जैसे कोई गौरव प्राप्त होता हो।

पुरी के जगद्गुरु श्री शंकराचार्य ने शास्त्रों में वर्णित छुआछूत की व्याख्या क्या कर दी कि उन पर संविधान विरोधी बातें करने का आरोप मढ़ा गया। संसदससस्य साल्वे ने अस्पृश्यता की बात करने वाले पर कोड़े लगाने की सजा की मांग की और अनेकों ने न जाने क्या क्या नहीं कहा। राष्ट्रीय एकता के लिये उनका वक्तव्य हानिकारक बताया गया। अपने आपको हिन्दुत्व के पुजारी कहने वाले राजनैतिक नेताओं ने भी शंकराचार्य की आलोचना करके अपने दल की स्थिति सुदृढ़ करने का कार्य किया। इससे हो सकता है कि तात्कालिक रूप से दल की स्थिति सुदृढ़ हो गई हो पर उस 'हिन्दू राष्ट्र' के मूलभूत उद्देश्य का क्या होगा?

शंकराचार्य का वक्तव्य जिस सरकार की नजरों में इतना खतरनाक है, क्या वह सरकार बता सकती है कि कनुसान्याल के शत्रू-राष्ट्र-चीन की साम्राज्यवादी लिप्सा की पूर्ति हेतु खुलेआम गठित माओवादी साम्यवादी दल के विरुद्ध क्या कदम उठाया गया है? शेख अब्दुल्ला जैसे नमकहराम और देश-द्रोहितापूर्ण वक्तव्य देने वाले के लिए क्या कर रही है? उसके साथ ही सठियाये दिमाग के राजाजी, जो कश्मीर को दस वर्षों के लिये अमरीका, रूस और ब्रिटेन को सोंपकर उनपर निर्णय के लिये छोड़ देने को कहते हैं, उनके विरुद्ध क्या किया? अक्साईचीन चीन को और कश्मीर पाकिस्तान को देकर विश्वशान्ति का पाठ पढ़ाने वाले जयप्रकाश को कौन सी सजा दी? बेरुबाड़ी, १९६५ में जीता हुआ पकिस्तानी भूभाग, तिब्बत और भारत का १९६२ में चीन को युद्ध में दिया हुआ भाग, हाल ही में कच्छ का भू प्रदेश न्यायाधिकरण

का सौंपकर पाकिस्तान को हिस्सा देने वाले लोगों को क्या किया गया? भारत को खण्डित, आक्रान्त, दिशाविहीन, मित्रविहीन, आन्दोलन असन्तोष की ज्वाला में धधकता, असुरक्षित, लुंज पुंज करने के लिये पूर्णरूपेण जिम्मेदार इन कांग्रेसियों को कौन सी सजा दी गई? यही न कि उन्हें उच्चासनों पर बिठाया गया और महात्मा, सन्त, राष्ट्रपिता, पद्मभूषण, भारत रत्न आदि उपाधियों से सन्मानित किया गया।

परिवार नियोजन को मुसलमानों ने अपने धर्मविरुद्ध घोषित कर छुट्टी पा ली। उसका शिकार हो रहा है हिन्दू। गांव के अज्ञान कृषकों पर जबर्दस्ती हो रही है। मुसलमान तो कहता है कि ज्यादा बच्चे होने से भीख मांगेगा पर अपने को वह मुसलमान तो कहेगा। ऐसी स्थिति का मुकावला करने के लिए हिन्दुओं को समाप्त करना ही श्रेयस्कर है, ऐसी सरकार की नीति दिखाई देती है। अन्यथा हर बच्चा पेट ही नहीं दो हाथ लेकर भी आता है। देश की बहुतायत जनसंख्या के अनुकूल उद्योग धन्धे प्रारम्भ न कर विदेशी ऋणों से बड़े बड़े कारखाने, बांध, उद्योग स्थापित न कर यदि उसे अपनी आर्थिक सीमाओं तक कम यंत्रशक्ति और अधिक मानवशक्ति का उपयोग किया जाता तो बेकारी की यह समस्या न आती और जनसंख्या (हिन्दू) आज बोझ प्रतीत न होता।

जो हिन्दूत्व के समर्थक हैं वे साम्प्रदायिक संकुचित, पुरातनपंथी, रूढ़िवादी कहे जाते हैं। जो अहिन्दु हैं या हिन्दू पैदा होकर ईसाई, मुस्लिमों के प्रशंसक, संरक्षक हैं, कम्युनिस्ट होने के नाते खुले आम देशद्रोही हैं, उन्हें प्रगतिवादी समाजवादी, नये युग के निर्माता आदि आदि शब्दों से सम्बोधित कर सम्मान दिया जाता है।

सब तरफ से पिट रहा है हिन्दू। अपनों से और परायों से। कहीं भी दंगा हो नुकसान होता है हिन्दू बहुसंख्यकों का। हिन्दुओं के विरुद्ध मुसलमानों का कम्युनिस्टों की छत्रछाया में मोपलस्तान बना मल्लपुरम। नागालैण्ड बना ईसाइयों और कांग्रेसियों के सहयोग से। पाकिस्तान के निर्माण में जैसे अंग्रेजों मुसलमानों, कांग्रेसियों का सहयोग रहा, ठीक उसी तरह यह भी हो रहा है। हर मोर्चे पर हिन्दुओं को छोड़कर शेष सब एकत्रित हो जाते हैं—कांग्रेसी, कम्युनिस्ट, मुस्लिम, ईसाई आदि। जहां राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबंध लगे और मुस्लिम सेना के गठन की छूट हो, जहां शंकराचार्य द्वारा अनेकानेक दोषों से युक्त गीत जन-गण-मन के समय अनुपस्थित होने पर, रोष प्रकट

किया गया, परन्तु खुले ग्राम मद्रास में राष्ट्रीय ध्वज जलाने वालों को कुछ न किया जाय, जहां फादर फरर के राष्ट्रद्रोही कृत्यों का दोषी होने पर उसे सजा न देकर महाराष्ट्र से लाकर ग्रान्ध्र में बसा दिया गया, मानो वह महाराष्ट्र की ग्रपनी समस्या थी ग्रौर ग्रान्ध्र में चले जाने से वह ग्रब समस्या नहीं रही हो, ऐसे समस्याग्रों की खान शासनकर्ताग्रों से हिन्दुस्तान में हिन्दू ही निर्वासित हैं।

धर्मान्तरण के लिए ईसाई को भी हिन्दू मिलता है ग्रौर मुसलमान को भी हिन्दू ही मिलता है। शायद ही सुनेंगे कि कोई ईसाई मुसलमान बना या मुसलमान ईसाई बना। न ही इन दोनों का झगड़ा हुग्रा ऐसा सुनेंगे। इनके लिए झगड़ने की वस्तु है तो वह है हिन्दू।

इस प्रकार घिरते, सिसकते, सिमटते, हिन्दू की रक्षा के लिए भगवान ने गीता में वचन ही नहीं दिया ग्रपितु बुद्ध, नानक, गुरु गोविन्द, रामदास, चैतन्य, रामकृष्ण, विवेकानन्द, दयानन्द के रूप में ग्रवतरित होकर रक्षा भी की है। इसीलिए ग्रब प्रतीक्षा है कि श्री कृष्ण की, गाण्डीवधारी होकर भी हताश ग्रर्जुन को गीता का ग्रमर सन्देश सुनाने के लिए। प्रतीक्षा है भगवान राम की, सामान्य प्राणी वानरों में स्फूर्ति उत्पन्न कर लंका ले चलकर राक्षसों का नाश करने के लिए।

प्रभो ! हिन्दू को सम्बल तथा सद्बुद्धि दो। ●●●

संरक्षक सदस्य

पिछले ग्रंकों में हम १२ सदस्यों के नाम प्रकाशित कर चुके हैं। इस मास निम्न सदस्यों के शुल्क प्राप्त हुए हैं। परिषद् इनकी ग्राभारी है।

१३ श्री भूदेव प्रसाद
द्वारा श्री रामचन्द्र प्रसाद श्याम सुन्दर, मुहल्ला दालपट्टी
पत्रालय झरिया जि० धनबाद (बिहार)

१४ श्री एस० एल० राज़दान
जी ७०, नगर निगम कालौनी, भाई परमानन्द मार्ग,
किंग्स्वे कैम्प, दिल्ली–९

१५ श्री सूर्य कान्त गुप्त
गोगरी जमालपुर (मुङ्गेर बिहार)

१६ श्री कृष्ण चन्द्र गुप्त
c/o श्री गौरीशंकर मिश्रीलाल
रामगंज कानपुर

१७ प्रिन्सिपल हिन्दी महाविद्यालय
नाला कुन्टा Nalla Kunta
युनिवर्सिटी रोड, हैदराबाद-२०

राष्ट्रपति और उसके अधिकार

श्री सच्चदेव

डाक्टर ज़ाकिर हुसैन की एकाएक मृत्यु से राष्ट्रपति का आसन रिक्त हो गया है। इस आसन पर बैठने वाले का नया निर्वाचन होगा। इस कारण यह लाभकारी होगा कि हम राष्ट्रपति के कर्त्तव्यों और अधिकारों पर अवलोकन करें। भारत में राष्ट्रपति पद ग्रहण करने वाले व्यक्ति को एक शपथ लेनी पड़ती है। वह शपथ इस प्रकार है—

I A., B. do $\frac{\text{swear in the name of God}}{\text{solemnly affirm}}$ that I will faithfully execute the office of President (or discharge the functions of the President) of India and will to the best of my ability preserve, protect and defend the Constitution and the law and that I will devote myself to the service and well-being of the people of India.

The Constitution of India Sec. 60

यह शपथ संविधान की धारा ६० में दी गयी है और सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश अथवा किसी उच्च न्यायाधीश के सम्मुख राष्ट्रपति को यह शपथ लेनी पड़ती है।

धारा ६१ में लिखा है कि जब राष्ट्रपति संविधान की अवहेलना करे तो उस पर संसद मुकद्दमा (impeachment) कर सकती है।

यह बात खेदपूर्वक कहनी पड़ती है कि सन् १९६७ में जब बंगाल के मन्त्री मण्डल ने संविधान की धज्जियां उड़ानी आरम्भ की थीं, तब हमारे राष्ट्रपति ने अपने शपथानुसार कर्त्तव्य का पालन नहीं किया। वे उन मन्त्री-मण्डलों को जो हाई कोर्ट के निर्णय की अवहेलना कर कानून विपरीत घेराव इत्यादि को प्रोत्साहन दे रहे थे, सहन करते रहे।

क्या राष्ट्रपति संविधान और कानून की रक्षा कर रहे थे ?

यह क्यों था ? पण्डित जवाहर लाल नेहरू के समय में कुछ ऐसी प्रथा चला दी गयी थी कि जिससे राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री के अधीन समझा जाने लगा है।

डा० राजेन्द्र प्रसाद को एक दो बार प्रधान मन्त्री ने आज्ञा देने का यत्न भी किया था। यद्यपि डा० राजेन्द्र प्रसाद और पण्डित जवाहर लाल नेहरू

एक ही राजनीतिक विचारधारा के अनुगामी थे; इस पर भी एक दो बार दोनों में मतभेद हुआ था और जवाहर लाल ने राष्ट्रपति पर शासन करने का यत्न किया था। यद्यपि एक दो बातों में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने नेहरू का कहना मानने से इन्कार किया था और पण्डित नेहरू इसे कडुवा घूंट समझ कर पी गये थे, परन्तु बात भीतर ही भीतर निश्चय हो जाने से यह भ्रम बन गया था कि प्रधान मन्त्री राष्ट्रपति को आज्ञा दे सकता है और राष्ट्रपति को प्रधान मन्त्री की बात माननी चाहिये।

डाक्टर राधाकृष्णन् के समय पर या तो कोई मतभेद का अवसर ही नहीं आया अथवा आया तो भीतर ही भीतर दबा दिया गया। डा० ज़ाकिर हुसैन के समय तो ऐसे अवसर आये थे कि जब राष्ट्रपति को अपने कर्तव्यों का पालन करने से केन्द्रीय मन्त्री मण्डल ने बांधा था और या तो राष्ट्रपति ज़ाकिर हुसैन यह नहीं मानते थे कि राष्ट्रपति defender of constitution (संविधान का संरक्षक) है और वह इस कर्तव्य पालन में प्रधान मन्त्री की आज्ञा की अपेक्षा नहीं रखता अथवा उनको बंगाल सरकार का, कानून और संविधान के प्रति विद्रोह दिखायी ही नहीं दिया।

सन् १९६७ में जब बंगाल का मन्त्री मण्डल संविधान की धज्जियां उड़ा रहा था, तब राष्ट्रपति मौन बैठा था। प्रधान मन्त्री तो अपने दल की पराजय हो जाने के कारण कुछ करने में लज्जा अनुभव कर रही थीं। राष्ट्रपति संविधान के अनुसार दलीय व्यक्ति नहीं होता। अतः उसे दलगत झगड़ों का विचार छोड़ कर अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिये था।

प्रश्न यही उपस्थित होता है कि क्या भारत का राष्ट्रपति संविधान से बाधित है कि वह संविधान सम्बन्धी कार्यों में प्रधान मन्त्री के अधीन है?

श्री जवहरलाल नेहरू का विचार था कि भारत का राष्ट्रपति इंगलैंड के सम्राट की भांति निष्क्रिय है। यही कारण है कि नेहरू साहब का भारत के प्रथम राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद से विवाद हुआ था।

हमारा संविधान का ज्ञान हमें यह बताता है कि भारत का राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री के अधीन नहीं, वरंच उस पर अंकुश के रूप में है। इंगलैण्ड का सम्राट तो एक निरीह व्यक्ति की भान्ति है। वह न तो किसी को स्वेच्छा से लाभ पहुंचा सकता है और न ही किसी को हानि पहुंचा सकता है। यही कारण है कि इगलैण्ड के सम्राट का 'इम्पीचमैंण्ट' नहीं हो सकता, परन्तु भारत के राष्ट्रपति का 'इम्पीचमैंण्ट' (संसद के सामने मुकद्दमा) हो सकता है। इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रपति के कुछ अधिकार हैं। वह उनके अनुसार काम कर सकता है। यदि वे काम संविधान के विपरीत हों तो उस पर

मुकद्दमा (impeachment) हो सकता है।

संविधान में राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्री के परस्पर सम्बन्ध के विषय में भी लिखा है :

There shall be a Council of Ministers with the Prime Minister at the head to aid and advise the President in the exercise of his functions.

Sec. 74 (1)

अर्थात्....एक मन्त्री मण्डल होगा, जिसका प्रमुख प्रधान मन्त्री होगा। यह मन्त्री मण्डल राष्ट्रपति को सम्मति और सहायता देगा, जिससे वह अपने नियत कार्यों को कर सके।

फिर लिखा है :—

The Ministers shall hold office during the pleasure of the Constitution, Sec. 75 (2)

मन्त्री तब तक रह सकेंगे, जब तक राष्ट्रपति की इच्छा होगी। और भी लिखा है :—

All executive action of the Government of India shall be expressed to have been in the name of the President.

Sec 77 (1)

अर्थात्—भारत सरकार के सब कार्यकारी काम राष्ट्रपति के नाम पर होंगे।

प्रधान मन्त्री के कार्यों का भी उल्लेख है—

It shall be the duty of the Prime Minister :—

(a) to communicate to the President all decisions of the Council of Ministers relating to the administration of the affairs of the Union and proposals of legislations;

(b) to furnish such information relating to the administration of the affairs of the Union and proposals for legislation as the President may call for; and

(c) if the President so requires, to submitt for the considration of the Council of Ministers any

matter on which a decision has been taken by a Minister, but which has not been considered by the Council.

(sec. 77)

अर्थात्—यह प्रधान मन्त्री का कर्तव्य होगा कि :—

(अ) वह राष्ट्रपति को मन्त्री मण्डल का सब निर्णय सूचित किया करे, जिसका सम्बन्ध केन्द्रीय शासन विषयों से है और विधान सम्बन्धी प्रस्तावों से हो।

(ब) केन्द्रीय शासन विषयों और विधान निर्माण सम्बन्धी प्रस्तावों की सूचना राष्ट्रपति को दे।

(ज) यदि राष्ट्रपति चाहे तो मन्त्री-मण्डल के विचारार्थ ऐसे विषय भेज सकता है जो किसी मन्त्री ने बिना पूर्ण मन्त्री-मण्डल से विचार किये निर्णय किये हों।

इन सब उद्धरणों के पढ़ने से कुछ ऐसा आभास मिलता है कि राष्ट्रपति वास्तव में एक राजनीतिक शक्ति है।

संविधान सभा में भी २१ जुलाई सन् १९४७ को श्री नेहरू जी ने यह कहा था,

At the same time we did not want to make the President a mere figure-head like the French President.

(हम यह भी नहीं चाहते कि भारत का राष्ट्रपति ऐसा नमूना मात्र हो जैसा कि फ्रांस का राष्ट्रपति है।)

उस समय (डी० गाल के पूर्व) फ्रांस के संविधानानुसार फ्रांस का राष्ट्रपति सत्तारहित एक नमूने का व्यक्ति होता था।

यह स्पष्ट है कि भारत का राष्ट्रपति पूर्ण देश की जनता का प्रातिनिध्य करता है। जबकि प्रधान मन्त्री केवल बहुमत वाले दल का। राष्ट्रपति की सत्ता बहुमत वाले दल से अधिक होती है और होनी भी चाहिये।

विशेष रूप में जब सत्ताधारी दल पूर्ण मतदाताओं के आधे से कम मतों को प्राप्त किये हैं। यह बात भारत में सन् १९५२ से ही चली आती रही है कि सत्ताधारी दल सदा आधे से कम मतों को प्राप्त करता रहा है। इस अवस्था में राष्ट्रपति का उत्तरदायि व बहुत बढ़ जाता है। इस सत्ताधारी दल द्वारा संविधान को तोड़-मरोड़ कर अपने अनुकूल बनाने के प्रयत्न को रोकना राष्ट्रपति का कर्त्तव्य हो जाता है।

पिछले बीस वर्ष में नागरिकों के मूलाधिकारों में अनेक बार संशोधन

किये गये और यह राष्ट्रपति का कर्त्तव्य था कि वह ऐसा करने से सत्ताधारी दल को रोकने का यत्न करता।

जब-जब भी सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णय दिया कि सरकार का अमुक कार्य संविधान के विपरीत है, कांग्रेस दल ने संविधान को बदल दिया। ऐसे अवसरों पर राष्ट्रपति का कर्त्तव्य था कि नागरिकों के मूलाधिकारों को ऐसे संसद सदस्यों द्वारा बदलने की स्वीकृति न देता, जिसको बदलने के लिये उनको निर्वाचित नहीं किया था। इसके लिये पूर्ण देश के नागरिकों से मत संग्रह का आयोजन (Referundum) होना चाहिये था।

नागरिकों के मूलाधिकार की कांग्रेस दल ने होली खेली। यह इस कारण कि राष्ट्रपति अपना कर्त्तव्य पालन नहीं करते रहे।

अब पुनः राष्ट्रपति का निर्वाचन होने वाला है। कांग्रेस अपने वफ़ादार कांग्रेसियों के नाम उपस्थित कर रही है। इस बार निर्वाचित राष्ट्रपति एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी लेने वाला व्यक्ति होगा। जो कुछ केरल और बंगाल के कम्युनिस्ट कर रहे हैं और जो कुछ असम, आन्ध्र, तमिलनाड की सरकारें कर रही हैं और जिस प्रकार कम्युनिस्ट अपना अराजकता उत्पन्न करने का कार्य मज़दूरों और विद्यार्थियों द्वारा चला रहे हैं, डा० ज़ाकिर हुसैन जैसी कोमल प्रवृत्ति वाला और पूर्व के राष्ट्रपतियों जैसा अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों से अनभिज्ञ राष्ट्रपति राष्ट्र और राज्य की नौका मंझधार में डुबो देगा। यह लगभग निश्चय ही है कि सन् १९७२ में कांग्रेस दल बहु मत प्राप्त नहीं कर सकेगा। यह भी लगभग निश्चय ही है कि दक्षिण पन्थी दल यदि कोई हैं तो वे मूर्खों से भरे पड़े हैं। वे बाईस वर्ष की देश की गतिविधियों को देखते हुए अपना कोई सांझा कार्य-क्रम निश्चय नहीं कर सके। किसी भी दक्षिण पन्थी दल के मस्तिष्क में यह बात समाती ही नहीं कि जब तक वे सब एक नहीं होते तब तक कम्युनिस्टों तथा कांग्रेस, जो कम्युनिस्टों की समर्थक एवं रक्षक बन रही है, हटाया नहीं जा सकता है?

न समझ सकने वाली बात तो यह है कि जिन नीतियों को चला कर कांग्रेस और कम्युनिस्ट देश में अराजकता उत्पन्न कर रहे हैं, उसी नीति को दक्षिण पंथी दल स्वीकार कर कांग्रेस को हटाना चाहते हैं।

कुछ भी हो, सन् १९७२ में देश की अवस्था डांवाडोल होने की सम्भावना बढ़ रही है। इस भावी भयानह स्थिति को रोकने की सामर्थ्य संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को है।

अतः राष्ट्रपति का चुनाव इस बार निस्सन्देह देश के भाग्य का विधायक सिद्ध होगा। ●●●

बुद्ध धर्म पर ईसाई आक्रमरा

श्री ब्रह्मदत्त भारती

(१)

(जून मास की पत्रिका में "ईसा व बुद्ध" शीर्षक लेख पाठकों ने पढ़ा होगा, उस लेख का प्रारम्भिक वाक्य था—"ईसा व बुद्ध में समानता है।" इतना ही नहीं उस लेख के लेखक ईसाई मत से इतने प्रभावित हैं कि अन्त में वे लिखते हैं—"कोई भी दो धर्म एक-दूसरे पर इतना अधिक प्रभाव नहीं डालते जितना कि ईसाई धर्म और बौद्ध धर्म।" और भी "अतः ईसाईयत का ज्ञान बौद्ध धर्म के अध्ययन से ही प्राप्त हो सकता है।"

इन वाक्यों को पढ़ कर कोई भी भारतीय गर्व का अनुभव नहीं करेगा। श्री भारती का यह लेख उसी की प्रतिक्रिया स्वरूप है। हमें यह लेख यहां उद्धृत करते हुए प्रसन्नता हो रही है। आशा है भारती जी सदृश विषय के ज्ञाता विद्वान का लेख पाठकों की भ्रान्ति का निवारण करेगा। —सम्पादक)

गांधीजी ने एक बार कहा था; ईसाईयत एक साम्राज्यवादी मत है। पिछले १९०० वर्षों में ईसाईयत ने साम्राज्यवादी सिद्धान्तों को कुछ त्यागा हो ऐसा दिखाई नहीं देता। वह आज भी दूसरे सब धर्मों और मतों को नष्ट करके मानव जाति पर अपना शासन बिठाने की चेष्टा में सलग्न है।

साम्राज्यवाद तो आज धूल चाट रहा है, परन्तु ईसाईयत का नशा अभी उतरा नहीं। वह आज भी अन्य धर्मों पर आक्रमण करते समय आवश्यकता के अनुसार अच्छे बुरे और नये, पुराने सब ही शस्त्रों का प्रयोग कर रही है। जब इसे बुद्ध धर्म पर प्रहार करना होता है तो बहुधा वह घूम फिर कर एक ही राग अलापती है कि ईसा और बुद्ध में बहुत समानता है। जब उसे ईसाइयों में प्रचार करना होता है तो उन्हें वह यह बतलाती है: ईसाईयत विश्व का सब से बड़ा और श्रेष्ठ मत (ईसाईयत को धर्म कहना एक बहुत बड़ी भूल है) है। यह बुद्ध धर्म से बहुत अच्छा है; बुद्ध को तो ईश्वर का कुछ ज्ञान ही न था जब कि ईसा स्वयं खुदा का बेटा था ("What higher motives could

he offer, knowing as he did, nothing of God or of the value of human soul"–Non-Christian Religions of The Indian Empire by F.E. Trottman).

ईसा और बुद्ध में बहुत समानता है। यह तो सत्य ही है। दोनों मनुष्य थे, दोनों दो टांगों पर चलते थे, कानों से सुनते थे और अपने विचारों का प्रचार शब्दों द्वारा करते थे। किन्तु यदि इसका अभिप्राय यह है कि गौतम के बुद्ध धर्म और ईसा के मत में आध्यात्मिक समानता है तो इस कथन में कुछ अधिक तथ्य नहीं है। जैसे जैसे ईसाईयत को अपनी दोमुंही नीति का प्रयोग करना होता है वैसे ही वह बोलने भी लगती है। सत्य तो यह है कि ईसाईयत ने बहुत कुछ बुद्ध धर्म से सीखा है, और लिया है। ईसाईयत बुद्ध धर्म की छाया मात्र ही है। इसी को छिपाने के लिये वह बार-बार ईसा और बुद्ध में समानता बनाये रखने का प्रयत्न करती है वरना बुद्ध धर्म को भी नष्ट करना ही उसका ध्येय रहा है।

ईसाईयत की बुद्ध धर्म से कभी कुछ प्रेम अथवा सहानुभूति रही हो ऐसा नहीं है। एफ० ई० ट्राटमैन ने, जो इस शताब्दी के आरंभ में बिशप ऑफ रंगून के चैपलेन थे, अपने विचार प्रगट करते हुये कहा था कि ईसाई चर्च का आशय बुद्ध धर्म की हेठी और बुराई करके उसको गिराना नहीं, अपितु उसके ऊपर ही ईसाईयत का भवन खड़ा करना है। गौतम बुद्ध पर आक्रमण करके नहीं अपितु उसके अनुयायियों को बुद्ध की अपूर्णता और दोष दिखा कर उन्हें बुद्ध के विरुद्ध विद्रोह करने पर उतारू करना है। ("It would seem as if the mission of the Church toward Buddhism is not so much to throw down as to build up, not to attack the figure of Gautama......but rather to address itself to those presuppositions of religion which lie at the base of the Buddhist mind and lead many a Buddhist to rebel at the negations of his master"—F.E. Trottman on Buddhhism in Non-Christian Religions In The Indian Empire, published by—Lay Readers Headquarters).

महात्मा बुद्ध ने इस देश में आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व धर्म प्रचार किया। ईसा का जन्म आज से लगभग १९६९ वर्ष पूर्व हुआ। तब भी ईसाई पादरी जब बुद्ध और ईसा में समानता दिखाने का प्रयत्न करते हैं तो वे बुद्ध और ईसा न कह कर सदा ईसा और बुद्ध ही कह कर ईसा को विशेष स्थान

देते हैं। ऐसा करके वे शनैः शनैः ईसा को उस स्थान पर बिठाने का प्रयास कर रहे हैं जो स्थान किसी दूसरी पवित्र आत्मा के लिये है।

चतुर ईसाई पादरी ईसाईयत के हित में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तोड़-फोड़ करते ही रहते हैं। उन्हें हर समय यह डर खाये रहता है कि कभी, किसी तरह ईसा, उसकी ईसाईयत और बाईबल का सिर नीचा न हो जाये। जब कुछ विद्वानों ने यह कहना आरंभ किया कि बुद्ध और ईसा में समानता है और ईसाईयत ने बहुत कुछ बुद्ध धर्म से लिया है तो ईसाई संसार में खलबली मच गयी। महात्मा बुद्ध को पीछे डालने के लिये और ईसा को इस आरोप से बचाने के लिये १८२४ में श्रीरामपुर (कलकत्ता के पास) के एक पादरी, मारशमैन (Marshman) ने यह कहा कि जिसे संसार गौतम बुद्ध समझे बैठा है वास्तव में वह तो मिश्र देश का आपिस (Apis) है। इसके कुछ काल बाद एक अन्य ईसाई. सर विलियम जान्स (Sir William Jones) को अन्धेरे में और भी दूर की सूझी। उन्होंने कहा कि बुद्ध तो और कोई नहीं बल्कि वह तो स्कैंनडेनेविया का वौडन (Woden) है। इससे ईसाई जगत में तालियाँ पिटने लगीं, परन्तु शीघ्र ही उनके सिर पर सैंकड़ों घड़े पानी पड़ गया जब महाराज अशोक की घोषणाओं का संसार को पता चला। इसी भांति एक और ईसाई ने आव देखा न ताव, अपनी पुस्तक में लिख डाला कि बुद्ध धर्म-ग्रन्थों में हमें बहुत कुछ ऐसा पढ़ने को मिलता है जैसे वह सब ईसाईयत की ही प्रतिध्वनि मात्र ही हो। ("On the one hand you find expressions in Buddhist literature which seems almost an echo of the New Testament"—Non–Christian Religions of the Indian Empire)।

ऐसा कहते समय वे सब इस बात को ध्यान में नहीं लाना चाहते कि गौतम बुद्ध ईसा से ५०० वर्ष से अधिक पूर्व इस संसार में थे। उनका मत है कि पिता और पुत्र में समानता होने से यह सिद्ध किया जा सकता है कि पुत्र पिता से पहिले जन्मा होगा। केवल लाठी उनके हाथ में होनी चाहिये!

ईसाई तत्व सदा यह कहा करते हैं कि ईसाईयत प्रेम करना सिखाती है; ईसा प्रेम का प्रतीक है और ईसा ने विश्व शान्ति और मानव प्रेम का प्रचार किया परन्तु परस्पर व्यवहार में ईसाईयत इस विश्व प्रेम का प्रदर्शन कभी नहीं कर पाती। वह सदा दूसरे धर्मों और उनके अनुयायियों को अपना शत्रु ही मानती आयी है। बुद्ध और ईसा में तो बहुत समानता है तो भी ईसाईयत हाथ धो कर बुद्ध धर्म के पीछे उसे नष्ट करने में क्यों लगी है, यह एक आश्चर्यजनक समस्या है।

जब कभी, कहीं भी ईसाईयत बुद्ध धर्म को प्रगति करते देखती है तो वह बौखला उठती है। बुद्ध और ईसा में बहुत समानता होते हुये भी वह बुद्ध धर्म के साथ मैत्री भाव से रहने को तैयार नहीं है। ऐसा इसने सीखा ही नहीं है। फ्रांस में बुद्ध धर्म के अनुयायियों के संबन्ध में लिखते हुए १८९३ में डब्ल्यू एच० जी० हेरी (W. H. G. Herre) ने कहा था : कुछ ही वर्ष हुये कि केवल पेरिस ही में बुद्ध धर्म के अनुयायियों की संख्या ३०,००० से अधिक हो गयी थी। खेद है, ऐसा लगता है मानो ईसा का चर्च बुद्धों का संघ बन कर रह गया हो। (Not less than 30,000 Buddhists among all classes have been counted in Paris alone some years ago. Alas, the Church of Christ has almost become a set of Budhists." —Rev. Dr. Wolff quoted in Scriptural Psychology Against Traditional Phsychology by W. H. G. Herre, **Published by** Evangelical Lutheren Mission, 1893).

आज भी ईसाईयत उसी पथ पर चल रही है जिस पर वह आज से ७० वर्ष पूर्व अग्रसर थी। केवल उसकी युक्ति और व्यूहरचना बदल गई है। उसका ध्येय अभी भी वही है : ईसा और बुद्ध में समानता का शोर मचा कर बुद्ध के अनुयायियों के मस्तिष्क में भ्रान्ति उत्पन्न करके पहिले उन्हें पथ भ्रष्ट करना, फिर पथ-प्रदर्शक बनकर उन्हें ईसाईयत की राह पर डालना। साधारण जनता को यह बता कर कि ईसा और बुद्ध (बुद्ध और ईसा नहीं !) में समानता है, ईसाई पादरियों का छिपा आशय बुद्ध के भक्तों को पथभ्रष्ट करके ईसाईयत की ओर आकर्षित करना है। जब दोनों में समानता है तो किसी को भी श्रद्धांजलि दी जाये कुछ बनता बिगड़ता नहीं। ऐसे विचार वे बुद्ध के भक्तों के मस्तिष्क में बिठाने की चेष्टा कर रहे हैं। क्या वास्तव में बुद्ध और ईसा के आध्यात्मिक विचारों में समानता है ? इसी पर हम अब विचार करने जा रहे हैं।

एक बार महात्मा गांधी अफ्रीका में एक ईसाई महिला के साथ बुद्ध और ईसा पर वार्तालाप कर रहे थे। इसी बीच गांधी जी ने कहा : गौतम बुद्ध के महान प्रेम पर थोड़ी दृष्टि डालने से ही पता चलता है कि वह प्रेम केवल मनुष्य के लिये ही नहीं था अपितु सब जीव मात्र के लिये था। गौतम बुद्ध के कन्धे पर बैठे हुये भेड़ के बच्चे का ध्यान कर मन गद्‌गद् हो उठता है। ईसा में सब जीवों के प्रति यह प्रेम अप्राप्य था। (Look at Gautama's

compassion ! It was not confined to mankind. It was extended to all living beings. Does not one's heart overflow with love to think of the lamb joyously perched on his shoulders ?

One fails to notice this love for all living beings in the life of Jesus"—The Story Of My Experiments with Truth by M. K. Gandhi p. 115).

गौतम बुद्ध ने संसार को विश्व प्रेम का संदेश दिया। उन्होंने सब जीवों के हित में प्रचार किया, उनकी रक्षा करना सिखाया। हिंसा पाप है, गौतम-बुद्ध का सबसे बड़ा उपदेश है। इसके विपरीत ईसा ने क्या सिखलाया ? उसने कहा (ईसाईयत आज भी इसको मानती आ रही है) कि केवल मनुष्य मात्र में ही आत्मा है, पशु और पक्षी आत्महीन हैं ! तभी तो ईसाइयों ने बड़े-बड़े कारखाने पशु-पक्षियों को मारने के लिये खोले हुये हैं। तभी तो प्रतिदिन वे उन्हें मार-मार कर उनका भक्षण करते हैं। यह बुद्ध और ईसा के विचारों में इतनी बड़ी असमानता है कि कोई बालक भी इस से प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता। परन्तु यदि कोई जान बूझ कर अपनी आंखें बन्द कर ले तो यह असमानता समानता में नहीं बदल सकती।

यह महान् देश कई विशिष्ट मत-मतान्तरों की जन्म भूमि रहा है। वैदिक धर्म ने आत्मा को अमर माना है और यह भी माना है कि आत्मा बार बार जन्म लेती है। गौतम बुद्ध ने भी यह माना है कि मनुष्य बार बार जन्म लेता है। उन्होंने "कर्म" को भी विशेष स्थान दिया है। क्या ईसा ने भी कभी ऐसा प्रचार किया ? हमें कहीं ऐसा देखने को नहीं मिलता। ईसा की ईसाइयत के अनुसार केवल यही जन्म है। न इससे पहिले कुछ था, न इसके बाद कुछ होगा। मरने पर देह को दबा देना चाहिये; अन्तिम दिन (?) आयेगा तो यह सब मृत शरीर उठ बैठेंगे और फिर उनके गुनाहों का फैसला खुदा करेगा ! इस "यही एक जन्म है" के मत ने संसार में बहुत उपद्रव मचा रखा है। इस ईसाई मत को मानने वाले तभी कहते हैं : "सब यहाँ ही हो जाता है।" वे यह भूल जाते हैं कि सब यहां तो होता ही है, परन्तु सब इस एक जन्म में ही नहीं हो जाता। आध्यात्मिक-स्तर पर यह एक और बड़ा अन्तर बुद्ध धर्म और ईसाईयत में दिखाई पड़ता है जो छिपाये छिप नहीं सकता।

(अगले अंक में समाप्त)

संरक्षक सदस्य

"शाश्वत सत्यों, सिद्धान्तों, जीवन-दर्शन का निश्चय ही व्यापक प्रसार होना आवश्यक है। हालांकि इस क्षेत्र में कई पत्र तथा पत्रिकाएं प्रयत्नशील हैं, परन्तु शाश्वत वाणी की अपनी प्रतिमा है।" ये उद्गार प्रकट किये हैं बांगरोद के श्री नाथुलाल चौधरी ने। श्री चौधरी का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

जन्म—६ मई १९४३ को बांगरोद के एक किसान परिवार में; सन् १९६२ में हायर सैकण्डरी की परीक्षा उत्तीर्ण कर कुछ वर्षों तक स्थानीय समाचार पत्र में सम्पादन कार्य किया। आजकल इन्दौर से प्रकाशित दैनिक स्वदेश के बांगरोद क्षेत्र के अधिकृत सम्वाददाता हैं। १९६६ में इटरमीजियेट की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी कार्यकल में आर्य समाज के सम्पर्क में आने से नास्तिक से आस्तिक बन गए। अब भारतीय जनसंघ के सक्रिय कार्यकर्ता हैं तथा जिला रतलाम के संगठन मन्त्री हैं।
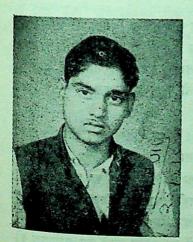
ये हैं हमारे एक अन्य संरक्षक सदस्य छपरा (बिहार) के श्री लक्ष्मण प्रसाद।

(जिन सदस्यों ने अपने चित्र नहीं भेजे, कृपया अवश्य भेजें।)

समाचार समीक्षा

●

"बंकिम" पर बंकिम प्रहार

दैनिक हिन्दुस्तान के २ मार्च, ६६ के रविवासरीय परिशिष्ट में स्व० बंकिमचन्द्र चटर्जी का "रामायण की एक विलायती आलोचना" शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया गया। इस लेख से पाठकों में खलबली मच गई। निरन्तर पाठकों के पत्र प्रकाशित होने लगे कि ऐसा अनर्थकारी वह लेखक कौन है, कहां रहता है ? कुछ तो उससे से दो-दो हाथ तक करने की योजना बनाने लगे।

स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्राण, साहित्य-सम्राट, ऋषिकल्प स्व० बंकिमबाबू पर भी उन्हीं के देश में और उन्हीं के देशबान्धवों द्वारा इस प्रकार प्रहार हो सकता है, उनकी रचनाओं की दुरालोचना हो सकती है, उनकी आस्तिकता, आस्था एवं देशभक्ति पर संदेह किया जा सकता है, इसकी कदाचित, कोई कल्पना न करे। किन्तु तथ्य यह है कि ऐसा सब कुछ इसी देश में और देशबान्धवों द्वारा किया गया।

दैनिक हिन्दुस्तान के सम्पादक अथवा सम्पादकीय विभाग की ओर से इस विषय में कोई स्पष्टीकरण नहीं किया गया और न ही जन-भावना से खिलवाड़ करने के लिए किसी प्रकार की क्षमा याचना की गई। परिणाम यह हुआ कि पाठक प्रशासन की शरण में गये और दिल्ली के उपराज्यपाल ने समाचारपत्र के उक्त अंक को जब्त कर लिया।

हम विचार स्वातन्त्र्य के समर्थक हैं। दैनिक हिन्दुस्तान की प्रति जब्त होने का समाचार सुन कर हमको भी उतना ही आघात पहुंचा जितना कि किसी भी अन्य विचार स्वातन्त्र्य के समर्थक व्यक्ति को पहुंचा होगा। किन्तु इसके लिए हम प्रशासन को उतना दोषी नहीं समझते जितना कि समाचारपत्र के कर्ताधर्ताओं को। क्योंकि विकृतरूपेण प्रकाशित उक्त लेख पर पाठकों की जो प्रतिक्रिया व्यक्त हुई थी, उन भावनाओं का आदर करते हुए सम्पादक को चाहिए था कि उसका प्रतिवाद अथवा प्रतिकार कर देते। लेख में अनुवाद की

भयंकर भूलें थीं, प्रस्तुतीकरण निम्नस्तर का था और साथ ही लेख के उद्देश्य पर प्रकाश डाले बिना उसकी सही भावना को समझना साधारण पाठक के समझ से परे की बात थी।

हमें प्रसन्नता है कि प्रशासन ने उक्त अंक पर से अब प्रतिबन्ध उठा लिया है। किन्तु पाठकरूपी न्यायालय ने पत्र को क्षमा कर दिया हो, इसमें हमें सन्देह है। प्रतिबन्ध को हटवाने के लिए जिस प्रकार का प्रयत्न किया गया वह नितान्त अशोभनीय था। इसको प्रशासन नहीं अपितु जनसंघ विरोधी अभियान बनाया गया। इस प्रक्रिया में बंगाल की माओवादी सरकार तथा बंगाल विधान सभा के सभी वामपक्षी, देश भर के अकवि, अकहानीकार, तुक्तक-मुक्तक रचयिता, सबने एक स्वर से जनसंघ को ही कोसा।

इस प्रसंग में यह भी स्मरणीय है कि दिल्ली महानगर परिषद में कांग्रेस-दल के नेता श्री शिवचरण गुप्त ने जनसंघ की आलोचना के साथ-साथ "शाश्वत वाणी" को अपनी विकृत बुद्धि से लपेटने का यत्न किया है। उप-राज्यपाल डा० झा को प्रेषित अपने पत्र में श्री गुप्त लिखते हैं- "इस मासिक पत्रिका (शाश्वत वाणी) से जनसंघ के नेताओं के सम्बन्धों से इन्कार नहीं किया जा सकता।"

'शाश्वत वाणी' के दुरालोचकों को हम सूचित, सावधान एवं सचेत करना चाहते हैं कि शाश्वत वाणी में जब उक्त लेख प्रकाशित हुआ था तो उसके साथ हमने निम्न टिप्पणी प्रकाशित की थी :

भारतीय संस्कृति के मर्मज्ञ स्वर्गीय बंकिमचन्द्र के जीवन काल में पाश्चात्य पण्डितों ने भारतीय शास्त्र तथा साहित्य की कपालक्रिया आरम्भ करदी थी। भारतीय वाङ्मय की इस दुर्गति से दुःखित होकर उन्होंने यह व्यंग्यलेख लिखा था। इसमें प्रदर्शित मूढ़ता एवं मनोवृत्ति पाश्चात्य पण्डितों के विषय में आज भी अक्षरशः सत्य है। और भारत के दुर्भाग्य से आज भी पाश्चात्य पण्डितों के शिष्य-प्रशिष्य इस देश में शासन कर रहे हैं।

हम समझते हैं कि श्री गुप्त भी उसी शिष्य परम्परा के व्यक्ति हैं, अन्यथा शाश्वत वाणी को लपेटने का दुस्साहस वे न करते। क्यों कि इस टिप्पणी के परिपेक्ष्य में कोई कैसा भी नासमझ क्यों न हो, ऋषितुल्य स्वर्गीय बंकिम बाबू के विषय में वह धारणा नहीं बना सकता जो दैनिक हिन्दुस्तान की असावधानी के कारण बनी और फिर पत्रों के माध्यम से प्रसारित हुई।

हम दैनिक हिन्दुस्तान के सम्पादक को सुझाव देते हैं कि इन अराष्ट्रीय तत्वों की शरण में जा कर वातावरण को विकृत करने में सहायक होने की अपेक्षा वह अपने समाचार पत्र के सुधार में संलग्न हों तो अधिक उपयुक्त होगा।

संविधान का संघात :

देशघाती तत्वों के इस देश में अव्यवस्था फैलाने के कुकृत्यों का समाचार हम आये दिन समाचारपत्रों में पढ़ते रहते हैं। इन कुकृत्यों में कम्युनिस्टों का प्रमुख एवं प्रत्यक्ष हाथ होता है तथा अन्य वामपक्षी दलों का उन्हें नैतिक समर्थन प्राप्त होता है। सरकार को प्रतिदिन ही इस विषय में सावधान किया जाता है किन्तु सरकार के कान में जूं तक नहीं रेंगती। जूं न रेंगने का भी कारण है। वह कारण है सरकार में स्वयं वामपंथियों की विद्यमानता। अन्यथा क्या कारण है कि एक प्रदेश का मुख्य मंत्री तथा एक संसद सदस्य वक्तव्य प्रसारित कर कहें कि कम्युनिस्ट शासन का अभिप्राय ही यह है कि शासन में रह कर सविधान की धज्जियां उड़ा कर जन जीवन को अस्त-व्यस्त कर देना और इस प्रकार क्रान्ति (अर्थात् विनाश) का मार्ग प्रशस्त करना।

हमारा अभिप्राय केरल में मुख्य मन्त्री नम्बूदिरीपाद तथा संसद सदस्य गोपालन के ७ जुलाई के वक्तव्य से है। केन्द्रीय राजमन्त्री श्री शुक्ल ने संसद में यह तो स्वीकार किया कि उक्त वक्तव्य भारत के संविधान के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध है तथा संसदीय जनतन्त्री व्यवस्था के विपरीत है। किन्तु वे इस पर कोई निरोधात्मक कार्यवाही करने के लिए उद्यत नहीं हैं। वक्तव्य देने के ३ सप्ताह बाद तक (जब ये पंक्तियां लिखी जा रही हैं,) स्थिति यह है कि दोनों द्रोहियों को "बातचीत के लिए दिल्ली बुलाया है।" इतने में ही सरकार के कर्तव्य की इति श्री हो गई है।

क्यों न हो ? क्यों कि प्रछन्न कम्युनिस्ट प्रधानमंत्री आज देश में स्वयं संविधान की अवहेलना कर जिस तथाकथित समाजवादी शासन को स्थापित करने के अपने पिता के संकल्प को पूर्ण करने के लिए कृतसंकल्प है उस में उसको गोपालन, मेनन, नम्बूदिरीपाद, बसु सदृश समाजविरोधी तत्वों की सम्मिलित शक्ति रूपी सहायता की आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति सहर्ष और सोत्साह की भी जा रही है। बैंकों के राष्ट्रीय करण का प्रकरण और उसके समर्थन में इन सबका हंगामा इसका प्रमाण है।

इस प्रक्रिया में प्रधानमंत्री सर्वमान्य औपचारिकता को भी निभाने के लिए उद्यत नहीं। मोरारजी भाई से जिस प्रकार वित्त विभाग छीना गया और जिस प्रकार संसद का अधिवेशन प्रारम्भ होने से ३६ घटे पूर्व ही बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया, यह प्रधानमंत्री की उच्छृंखलता का उदाहरण हैं और इसमें उक्त सभी विरोधी तत्वों का देवी इंदिरा को समर्थन प्राप्त है।

संरक्षक सदस्य

१ केवल एक सौ रुपये भेजकर परिषद् के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बनकर रहेगा।

संरक्षक सदस्यों को सुविधाएँ—

१ परिषद् के आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। इस वर्ष लगभग २५ रुपये मूल्य की पुस्तकें प्रकाशित की जाएँगी।

२ परिषद् की पत्रिका 'शाश्वत वाणी' आप जब तक सदस्य रहेंगे निःशुल्क प्राप्त कर सकेंगे।

३ परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ आप २५ प्र० श० छूट पर प्राप्त कर सकेंगे।

४ जब भी आप चाहेंगे अपनी धरोहर वापिस ले सकेंगे। धन मनी-आर्डर द्वारा भेज सकते हैं।

पिछले मास में परिषद् ने निम्न तीन पुस्तकें प्रकाशित की हैं जो सदस्यों को बिना मूल्य भेजी जाएंगी।

१ समाजवाद एक विवेचन-ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००

२ गांधी और स्वराज्य—ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००

३ भारत में राष्ट्र—ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००

परिषद् का आगामी प्रकाशन

इतिहास में भारतीय परम्पराएं
ले० श्री गुरुदत्त मू० बारह रुपये

(इतिहास लेखन में भारतीय परम्परा का वर्णन—भारतीय इतिहास पर पाश्चात्य 'पंडितों' के कथन का युक्तियुक्त खण्डन इस पुस्तक में पढ़िये। पुस्तक सम्पूर्ण रूप से पुनः लिखी गई है।)

भारतीय संस्कृति परिषद के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं शक्तिपुत्र मुद्रणालय दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

सितम्बर १९६९ वर्ष ६ — अंक ६ रजि० क्र० ६६८६/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

१. सम्पादकीय	— —	३
२. बैंकों का राष्ट्रीयकरण	श्री सचदेव	१०
३. हमारे संरक्षक सदस्य	—	१६
४. दर्शन शास्त्रों का प्रयोजन	श्री गुरुदत्त	१७
५. अस्तित्व की रक्षा	श्री विद्यानन्द 'विदेह'	२१
६. बुद्ध धर्म पर ईसाई आक्रमण	श्री ब्रह्मदत्त भारती	२३
७. यह कैसा प्रजातन्त्र	श्री गंगाशरण 'तृषित'	३०
८. युगद्रष्टा वीर सावरकर जी के हिन्दुत्व एवं हिन्दू राष्ट्र सम्बन्धी विचार एवं उद्गार (२)	—	३१
९. प्रतिक्रिया के शब्द	श्री उमाकान्त उपाध्याय	३४
१०. चन्द्रलोक की प्रथम यात्रा	श्री आदित्य	३९
११. समाचार समीक्षा	—	४३

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

निवेदन

'शाश्वत वाणी' का सितंबर मास का अंक आपके सामने है। कृपया अवलोकन कीजिये। हमें विश्वास है, यह आपको पसन्द आयगा।

पिछले दस वर्षों से यह पत्रिका निरंतर प्रकाशित हो रही है। अपने क्षेत्र में इसका पर्याप्त प्रभाव भी पड़ रहा है। इसका प्रमाण यह है कि स्थान-स्थान पर हमारे पाठक हमारी पत्रिका एवं हमारी परिषद् के अन्य प्रकाशनों के प्रचार एवं प्रसार में सक्रिय सहयोग देते हैं।

पत्रिका का उद्देश्य है वर्तमान युग की राजनैतिक, सामाजिक सांस्कृतिक एवं अन्य सभी समस्याओं का विश्लेषण करना एवं उनका सुझाव भारतीय परम्पराओं के आधार पर ढूंढना। अपने ढंग की यह एक मात्र पत्रिका है।

इस दृष्टि से देखने पर आप पायेंगे कि इसका व्यापक प्रसार होना चाहिये। हम इसमें आपका सहयोग चाहते हैं। वह इस प्रकार--

१. क्या आप स्वयं इसके वार्षिक ग्राहक हैं ? यदि नहीं तो अवश्य बनें। पत्रिका का शुल्क है केवल ५ रुपये। बीस रुपये एक साथ भेज कर आप पांच मित्रों को ग्राहक बना सकते हैं।

२. अपने मित्रों एवं सहयोगियों को इसका ग्राहक बनायें। यदि आप चाहते हैं कि उनको प्रभावित करने के लिये उनको पत्रिका का अंक नमूने के रूप में भेजा जाये तो उनके पते हमको लिख भेजिये। हम आगामी अंक उनको भेज देंगे।

३. हमारी परिषद् का संरक्षक सदस्य बनिये—विवरण भीतर के पृष्ठों में देखें।

मंत्री—शाश्वत संस्कृति परिषद्

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

●

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

●

सम्पादक
अशोक कौशिक

●

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

●

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

हमने जून मास के अंक में यह स्पष्ट करने का यत्न किया था कि भारत में अराजकता विद्यमान है। जुलाई अंक में हमने यह सिद्ध किया था कि इस अराजकता का मूल कारण भारत की प्रजातन्त्रात्मक वर्तमान पद्धति है।

अब हम बताना चाहते हैं कि इस प्रजा-तन्त्रात्मक पद्धति का कौन-सा स्वरूप है जो वर्तमान अराजकता को उत्पन्न कर रहा है। इस स्वरूप के निम्न लक्षण प्रकट हुए हैं, जो हमारे विचार में अराजकता-मूलक हैं।

भारत में पिछले निर्वाचन के समय इक्कीस करोड़ से अधिक मतदाता थे। भारत में शिक्षितों की संख्या दस-पन्द्रह प्रतिशत से अधिक नहीं। इन शिक्षितों में यदि उन शिक्षितों की गणना की जाये जो भारत के हित-अहित का चिन्तन करने की योग्यता रखते हैं, तो वह संख्या एक-दो प्रतिशत से अधिक नहीं रह जाती। इनमें से भी यदि धर्म, न्याय और निस्वार्थ भाव रखने वालों की गणना की जाये तो ऐसे लोगों का अनुपात पूर्ण जनता और मतदाताओं में दस सहस्र में एक भी नहीं रह जाता। इसमें कारण यह है कि जो शिक्षा बच्चों को दी जाती रही है, वह

उक्त गुण उत्पन्न करने के लिये नहीं अपितु केवल बालक-बालिकाओं को धन अर्जन करने तथा धन से भोग एवं सुख उपलब्धि के लिये ही दी जाती है। यदि कहीं धर्म, न्याय, देश-हित, लोक-सेवा, मानव-कल्याण का उल्लेख शिक्षा में आता है, तो वह आकस्मिक होता है। जीवन के लक्ष्य के रूप में नहीं होता।

परिणाम स्वरूप ज्यों-ज्यों वर्तमान शिक्षा का प्रसार हो रहा है, पढ़े-लिखे जन लोभी, लालची, झूटे, छल-कपट करने वाले, स्वार्थी, पूर्वग्रहों से ग्रसित और हठी होते जाते हैं। त्याग, तपस्या, इन्द्रियों पर दमन, पर-हित-भावना, देश और राष्ट्र का ज्ञान लोप होता जाता है।

कहने का अभिप्राय यह है कि भारत को एक अन्धेर नगरी बनाया जा रहा है और निस्सन्देह इसमें राजा गबरगण्ड अर्थात् महा मूर्ख बन रहे हैं। ये गबरगण्ड देश भर में समाजवाद लाने में जी-जान से लगे हैं। इसका अभिप्राय यह है कि 'टके सेर भाजी टके सेर खाजा' इस देश में हो रहा है।

इसका अभप्राय यह नहीं कि गुड़ और खल एक भाव हो रहे हैं। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि सबको समान करने का यत्न किया जा रहा है।

जब भी समाजवाद का समाघोष होता है तो इस घोष का विरोध भी होता है। विरोध का आधार यह है कि योग्यता के अनुसार सुख, सम्पदा, मान और ज्ञान का वितरण होना चाहिये; देश में उत्पन्न होने से ही जीने, खाने, पहनने, मकान में रहने और मनोरञ्जन का अधिकार नहीं मिलता है। परन्तु समाजवाद का आधार परिश्रम, योग्यता, चरित्र, नैतिकता और देश और जाति का कल्याण करना नहीं, वरन्‌ देश में उत्पन्न हो जाना मात्र है।

यदि परिश्रम, योग्यता और अन्य सद्‌गुणों से कोई व्यक्ति अधिक प्राप्त कर लेता है तो यह कूक लगायी जाने लगती है कि अधिक आय और अधिक व्यय पर सीमा बांध दी जाये।

इसी को तो गबरगण्ड का राज्य कहा जा सकता है। ऐसे राज्य में जब अन्य किसी प्रकार से दूसरों के श्रम और योग्यता के मूल्य को कम नहीं किया जा सकता तो राष्ट्रीयकरण के पर्दे की ओट में, परिश्रमियों और योग्यों से छीन कर अयोग्यों, प्रमादियों और आलसियों में बांटने का प्रयास किया जाता है।

प्रजातन्त्र का अभिप्राय है समानाधिकार। पहले सम्पत्ति देने में समानाधिकार और फिर छीना-झपटी करने में; और क्योंकि देश में मूर्ख और अयोग्यों की संख्या अत्यधिक होती है, इस कारण प्रजातन्त्रात्मक पद्धति का अनिवार्य अन्त है योग्य, परिश्रमी और भले लोगों का धन सम्पद छीन कर

मूर्ख, अयोग्यों और धूर्त्तों में बांटा जाये ।

धूर्त्तों की संख्या भी बहुत कम होती है, परन्तु अपने विशिष्ट गुण से वे सरल चित्त और कम समझ, कम शिक्षितों को भ्रम में डालकर अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं । वर्तमान ढंग के प्रजातन्त्रात्मक पद्धति की वकालत करने वाले अधिकांश व्यक्ति प्रायः धूर्त होते हैं । उसका कारण यह है कि वे जानते हैं कि जन-साधारण के पास न तो साधन होते हैं और न समय, जिससे कि वे राज्य-कार्य की पेचीदगियों को जान सकें । फलस्वरूप उनकी भावनाओं को आन्दोलित कर ये धूर्त स्वयं चौधरी बन जाते हैं ।

वर्तमान प्रजातन्त्रात्मक पद्धति का कोई भी वकील सीने पर हाथ रख कर बताये कि वोट पाने के लिये धन और अन्य प्रलोभन काम करते हैं अथवा नहीं ? सर्वसाधारण, जिनका राजनीतिक विषयों में बहुत कम ज्ञान होता है, उनको झूठी बातें बता कर मत प्राप्त किये जाते हैं अथवा नहीं ?

प्रजातन्त्र का यह अभिशाप भारत में तो अत्यधिक है ही, परन्तु अमरीका और इंग्लैण्ड जैसे देशों में भी कम नहीं है । अमरीका में भी राष्ट्रपति के चुनाव पर बाजे बजाये जाते हैं । झण्डियां लगायी जाती हैं और सहस्रों प्रकार के प्रलोभन प्रस्तुत किए जाते हैं । प्रभावशाली लोगों को बड़ी-बड़ी पदवियों के प्रलोभन दिये जाते हैं और निम्न स्तर के लोगों के समक्ष सामान्य सुविधाएँ प्रस्तुत की जाती हैं ।

इन प्रलोभनों में एक प्रलोभन यह भी है कि देश के पूँजीपति समाप्त कर दिये जायेंगे, बड़ी आय वालों की सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण कर दिया जायेगा, इत्यादि-इत्यादि ।

पिछले बाईस वर्षों से यह समाघोष मतदाताओं को रिश्वत के रूप में दिया जाता रहा है कि बड़ी और छोटी आय में अन्तर कम कर दिया जायेगा । यह तो स्पष्ट ही है कि ऐसा नहीं हो रहा, परन्तु इस समाघोष पर चुनाव लड़े जाते रहे हैं । नेहरू जैसे प्रभावशाली व्यक्ति को भी इस प्रकार के मिथ्या समाघोष करने पड़े थे । इतना ही नहीं, अपनी स्थिति को बचाने के लिये संसद तक के सामने नेहरू को झूठ बोलना पड़ा था । विदेश मन्त्री और रक्षा मन्त्री तो नित्य ही संसद में झूठ बोलते हैं । इसका कारण यह है कि भीतरी नीति की बात वे संसद में कह नहीं सकते । उनकी धारणा है कि संसद एक सार्वजनिक संस्थान है और वहां अनेकों विषयों पर सत्य नहीं बोला जा सकता ।

भला उस संसद का लाभ ही क्या है जिसके सामने देश के जीवन-मरण के प्रश्न पर भी सत्य नहीं कह सकते ?

प्रजातन्त्र में प्रथम दोष यह है कि इससे धूर्त्तों का राज्य स्थापित होता है और देश में मूर्खों की सृष्टि होती है।

सब मनुष्य शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और यहां तक कि आर्थिक सामर्थ्य में भी समान नहीं होते और न सुख-सम्पदा प्राप्ति में समान हो सकते हैं। यह ईश्वरीय विधान है। अतः समता किसी बात में सम्भव नहीं। कितना भी समान-वातावरण, शिक्षा और साधन उपलब्ध कराये जायें, योग्यता और सामर्थ्य में समान उन्नति नहीं हो सकती और धन-सम्पदा इसी असमता का प्रतीक है।

परन्तु प्रजातन्त्र के मूल सिद्धान्त यह हैं कि कम से कम कुछ बातों में सब समान हैं। मनुष्य के उत्कृष्ट गुणों में समता नहीं लायी जा सकती और इस समता की आड़ में निकृष्ट गुणों की सृष्टि हो जाती है।

अतः प्रजातन्त्र में दूसरा दोष यह है कि वह मनुष्य की निकृष्ट प्रवृत्तियों को उभारता है और इससे समाज का पतन होता है। प्रायः सब प्रजातन्त्र देशों में नैतिक दृष्टि से ह्रास हुआ है। यहाँ तक कि ऐसे निकृष्ट कार्य जब इन देशों के समाज में फैल जाते हैं तो सरकार, जनता की होने के नाते, उन निकृष्ट प्रवृत्तियों को कानून से मान्य करने पर विवश हो जाती है।

इस बात का उदाहरण इंग्लैण्ड में 'unnatural crimes' (समान यौन सम्बन्ध) को क्षम्य स्वीकार करना, और गर्भपात को वैधानिक कृत्य स्वीकार करना है। अमरीका में सार्वजनिक प्रदर्शन के फ़िल्म तथा नाटकों में पुरुष-स्त्रियों का नग्न रूप में मंच पर आना क्षम्य हो गया है। पत्र-पत्रिकाओं में नग्न चित्रों का प्रदर्शन स्वीकार कर लिया गया है।

बंगाल में मज़दूरों को अपने ही मालिकों को लूट लेना स्वीकार किया जाने लगा है।

भारत में किसी की भी सम्पत्ति पर सरकारी अधिकार वैध बन गया है और मूल्य न देना अथवा जो मन में आये वह दे देना, वैधानिक हो गया है।

अतः प्रजातन्त्र में दूसरा दोष यह है कि जनता में अनैतिकता की वृद्धि होती है और फिर उस अनैतिकता को लोगों का स्वाभाविक अधिकार मान लिया जाता है।

मत प्राप्त करना प्रजातन्त्र में मुख्य बात है। जो अधिक मत प्राप्त कर ले, वह सफलता प्राप्त कर सकता है। अधिक मत प्राप्त करने वाले को न केवल राजनीतिक नेता माना जाता है, वरंच उसे अन्य सब मानवीय गुणों में भी श्रेष्ठ मान लिया जाता है।

परन्तु अधिक मत प्राप्त करना मानवीय गुणों के अतिरिक्त अन्य गुणों

से अधिक सम्भव होता है। मानवीय गुणों से अतिरिक्त कौन से ऐसे अन्य गुण है, जिनसे मतदाता प्रभावित होते हैं; उन्हें यहां बताने की आवश्यकता नहीं। कुछ तो हम ऊपर बता ही आये हैं, परन्तु उस प्रकार के मानवेतर गुणों के प्रयोग का प्रभाव ही यहां बताने से अभिप्राय है। उनका प्रभाव प्रत्याशी नेता पर होता है। उसकी अपनी दृष्टि में, वास्तविक गुणों की अपेक्षा मत प्राप्त करने के गुणों को अधिक स्थान मिलता है। सत्य बोलने वाले को गुणी कहा जाना चाहिये, परन्तु किसी भी प्रजातन्त्र देश में मोटी-मोटी बातें भले ही जनता को सत्य बतायी जा सकें, परन्तु वास्तविक बात बतानी सम्भव नहीं होती। यदि बता दी जाये तो जनता से मत प्राप्त करना सम्भव नहीं हो सकेगा।

उदाहरणार्थ कुछ ही समय पूर्व के इन्दिरा मुरारजी भाई के विवाद को लिया जा सकता है। विवाद पदों की स्पर्धा पर है। यह स्पर्धा उस समय भी थी, जब प्रथम बार इन्दिरा गांधी प्रधान मन्त्री पद प्राप्त करने के लिये यत्न करने लगी थीं। तब से इन्दिरा गांधी मन में भय मानने लगी थीं कि यह व्यक्ति उसका प्रतिस्पर्धी है। प्रधान मन्त्री का पद संसदीय कांग्रेस दल के सदस्यों द्वारा निर्वाचन से प्राप्त हो सकता है। यद्यपि संसद सदस्य अपने क्षेत्र के नेता हैं; इस पर भी उनको भी मूर्ख बना कर ये पद प्राप्त किये जा सकते हैं। इन्दिरा गांधी ने अनियमित रूप से एक आदेश बंगलौर कांग्रेस कमेटी को भेज दिया। इसमें कुछ वैसी बातें लिखी थीं, जिससे बैंकों का राष्ट्रीयकरण भी समझा जा सकता था। साथ ही उसकी एक अन्य इच्छा थी कि राष्ट्रपति उसके पक्ष का व्यक्ति हो। इसके लिये श्री जगजीवनराम का नाम प्रस्तुत कर दिया। वह निर्वाचन बोर्ड को स्वीकार नहीं हुआ। बोर्ड ने संजीव रेड्डी का नाम स्वीकार किया। इस पर श्रीमती गांधी जी को अपने विपरीत षड्यन्त्र दिखाई दिया और उन्होंने मुरार जी भाई से वित्त विभाग छीन लिया। मुरार जी ने गिला किया। बात संसदीय दल के सामने आने वाली थी; इस पर इन्दिरा जी ने बैंकों का सरकारीकरण का करतब कर दिखाया। इस करतब को देख संसदीय कांग्रेस दल के सदस्य गद्-गद् हो गये। अब यह विवाद पद-लोलुपता का न रह कर राष्ट्रीयकरण का हो गया है।

इसी प्रकार के मानवेतर कार्य प्रजातन्त्र में करने पड़ते हैं, जिनसे जनता अथवा संसद सदस्यों से भी छल-छद्म (stunt) कर मत प्राप्त किये जाते हैं।

इस प्रकार के स्टंटों को मान की दृष्टि से देखा जाता है। धीर-वीर, जान को हथेली पर रख कर सत्य पर आरूढ़ रहने वालों की अपेक्षा कुटिल,

छली, वाग्जाल फैलाने वाले मान पाने लगते हैं। परिणाम यह हो रहा है कि सभी प्रजातन्त्र देश पिछड़ रहे हैं। इसका एक ज्वलन्त उदाहरण वर्तमान युग में उपस्थित हुआ है। वर्तमान युग से हमारा अभिप्राय अमरीका के द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त के व्यवहार से है। अमरीका पिछले बीस वर्ष में तीन क्षेत्रों में पराजित हुआ है। प्रथम ताईवान में, द्वितीय कोरिया में और तीसरे वीयतनाम में। यह पराजय इस कारण नहीं हुई कि अमरीका चीन से भी दुर्बल है। इसका एक ही कारण है कि अमरीका में प्रजातन्त्र है और चीन में धक्केशाही। प्रजातन्त्र धक्केशाही के सामने ठहर नहीं सकता।

भारत में भी बंगाल और केरल सरकारों के सामने केन्द्रीय सरकार घुटने टेके हुए है। यह नहीं कि भारत सरकार का पक्ष दुर्बल है, वरंच वह इस कारण है कि केरल और बंगाल में कम्युनिस्ट पार्टियाँ जो कि प्रजातन्त्र की विरोधी हैं वे अधिक संगठित हैं और केन्द्र की कांग्रेस में कोई समन्वय नहीं है। किसी भी प्रजातन्त्र दल में समन्वय हो ही नहीं सकता। क्योंकि प्रजातन्त्र भानुमती का पिटारा होता है। इसमें संगठन का आधार नेता बनने की महत्वाकांक्षा है और इस महत्वाकांक्षा में भी धन, सम्पद, मान की लालसा साधन हैं। यदि इसके साथ पद के उत्तरदायित्व को पूरा करने की इच्छा हो तो इस लालसा को भी ठीक माना जा सकता है।

प्रजातन्त्रात्मक पद्धति में एक अन्य दोष भी है। वह यह कि संसद-सदस्यों के कथन एवं कार्य सुरक्षित हैं। मन्त्री-गण तथा संसद-सदस्य संविधान की सौगन्ध खाकर सदस्य बन सकते हैं, परन्तु ये उस सौगन्ध का उल्लंघन करते हुए किसी प्रकार के दण्ड के भागी नहीं हो सकते। संसद के बाहर के किसी भी व्यक्ति का ये अपमान कर सकते हैं और वह व्यक्ति अरक्षित है। संसद के सदन में बैठा हुआ सदस्य किसी बाहर के व्यक्ति को गद्दार, देश-द्रोही, बेईमान, गरीबों का रक्त चूसने वाला, डाकू, चोर इत्यादि किसी भी विशेषण से विभूषित कर सकता है, परन्तु बाहर का व्यक्ति अपनी रक्षा नहीं कर सकता। यदि वह व्यक्ति संसद के विषय में कुछ भी निन्दात्मक शब्द कह दे तो 'स्पीकर' उस व्यक्ति को बुला कर दण्ड दे सकता है।

इसका उदाहरण कुछ दिन हुए भारत की लोक सभा में उपस्थित हुआ था। पुरी के शंकराचार्य जी ने हिन्दू धर्म और अछूत प्रथा के विषय में एक वक्तव्य दिया और संसद में अनेकों सदस्यों ने उन्हें फांसी तक लगा देने के वक्तव्य दिये। स्वामी जी पर किसी ने मुकद्दमा भी चला दिया। वे न्यायालय से मुक्त हो गये। अब उन संसद सदस्यों के विपरीत कुछ भी कार्य:

वाही नहीं की जा सकती। कोई यह भी नहीं कह सकता कि संसद-सदस्यों पर इन वाक्यों के लिये मान-हानि का दावा कर सके।

प्रधान मन्त्री संसद में गलत बात बता सकता है। बाहर का कोई व्यक्ति उससे जवाब-तलब नहीं कर सकता।

इस अनुत्तरदायित्व के परिणामस्वरूप संसद कभी अपनी मिथ्या नीतियों के द्वारा देश को शत्रुओं के हाथ में भी सौंप सकती है। पांच वर्ष के उपरान्त वह ससद बदल जाती है और नई ससद उस कार्य के प्रति, जो जाने वाली संसद ने किये हैं, उत्तरदायी नहीं ठहरायी जा सकती।

यह कहा जाता है कि संसद तो देश की प्रतिनिधि संस्था है और यदि वह कुछ गलत बात करती है तो वह बात देश द्वारा की गई माननी चाहिये। यह युक्ति तो ठीक है, परन्तु देश की जनता को तो सरकार की गुप्त बातें बतायी भी नहीं जा सकतीं। कभी बतायी जाती हैं तो वे अधूरी अथवा असत्य होती हैं। इस कारण जनता का उत्तरदायित्व इसमें कैसे हो सकता है? पंचवर्षीय निर्वाचनों के समय तो झूठ बोल-बोल कर अथवा मिथ्या वचन दे-देकर मत प्राप्त किये जाते हैं और जब संसद निर्वाचित हो जाती है तो वह ऐसे काम करने लगती है, जिनका निर्वाचन के समय भास भी नहीं होता।

चीन से सम्बन्धों के विषय में नेहरू की सरकार यही करती रही। यहां तक कि संसद को भी वर्षों तक यह नहीं बताया गया कि चीन भारत के एक भाग में सड़क बना कर अधिकार किये हुए है। बाद में बिना युद्ध की तैयारी के ये संसद में कहते रहे कि वे चीन के आक्रमण का मुकाबला कर सकते हैं और जब आक्रमण हो गया तो प्रधान मन्त्री ने कह दिया कि चीन ने धोखा दिया है। परन्तु उन्होंने जो संसद को धोखा दिया और उसके साथ देश को धोखा दिया, उसका क्या हुआ?

अतः चौथा महान् दोष प्रजातन्त्र में यह है कि यह राज्य अनुत्तरदायित्व पूर्ण है।

प्रजातन्त्रात्मक राज्य पद्धति में दोष तो और भी हैं, परन्तु इसे अस्वीकार करने के लिये इतने भी पर्याप्त हैं। वमर्तान युग के यूरोप के दास यह कहते हैं कि इससे अच्छी पद्धति और है ही नहीं। ये अनभिज्ञ और विचारों के दास इस योग्य नहीं कि देश का शासन इनके हाथों में रखा जाये।

प्ररन्तु इसका विकल्प क्या है? क्या सैनिक शासन? अथवा कम्युनिस्ट ढंग का राज्य? नहीं, प्रजातन्त्र का स्वाभाविक परिणाम समाजवाद है और समाजवाद का अन्त कम्युनिज्म में होता है। यह तो आकाश से गिरे, खजूर पर लटके रहे वाली बात है। तो फर क्या हो? इस विषय में हम आगामी अंक में लिखेंगे।

* * *

बैंकों का राष्ट्रीयकरण (एक विवेचना)

श्री सचदेव

जिस बात का श्रीगणेश सन् १९५० में नेहरू सरकार ने किया था, वह आज सन् १९६९ में अथवा एक–दो और वर्षों तक पूर्ण हो रही प्रतीत होती है ।

भारत में एक नारा श्री जवाहरलाल ने सन् १९२७ में लगाया था। तब नेहरू जी तीन दिन की रूस की यात्रा से लौटे थे और पूर्ण रूप से कम्युनिस्ट बन कर आये थे। वहाँ से आने पर इन्होंने कम्युनिज्म और रूस पर लेख लिखने प्रारम्भ कर दिये थे।

गांधी जी को इनके लेख और इनके कम्युनिज़म–समर्थक कार्य पसन्द नहीं आये थे, परन्तु गांधी जी स्वयं अपनी नेतागीरी की चिन्ता में थे। वे चुपके-चुपके जवाहरलाल जी को मना करते रहे, परन्तु प्रत्यक्ष रूप में जवाहरलाल की ख्याति में सहायक होते रहे। सन् १९२९ में नेहरू जी कांग्रेस के प्रधान बन नहीं सकते थे, यदि गांधी जी उनकी सहायता न करते ।

सन् १९२९ में गांधी जी मेरठ कम्युनिस्टों के मुकद्दमे के बन्दियों को देखने गयेथे ।

इसके उपरान्त भी जवाहरलाल जी ने स्वयं का, कम्युनिज़म का समर्थक होना छिपाकर नहीं रखा। सन् १९४५ में 'Discovery of India' में श्री नेहरू जी ने अपनी पूरी सहमति कम्युनिज्म से प्रकट की थी। यहां तक कि कार्ल मार्क्स को कृष्ण इत्यादि अवतारों की श्रेणी में माना था। सन् १९४६ में श्री गांधी जी ने पुनः नेहरू जी को कांग्रेस का प्रधान इसलिए बनवाया, जिससे वे अन्तरिम स्वराज्य सरकार में और पीछे स्वराज्य सरकार में प्रधान मन्त्री बन सकें।

जब ज़मींदारियां ज़प्त करने की आज्ञा पर बिहार के कुछ ज़मींदारों ने नागरिकों के मौलिक अधिकारों के अधीन हाई कोर्ट में याचिका उपस्थित की तो हाई कोर्ट ने उन जमींदारों को सरकार द्वारा लेना अवैध ठहराया था। इस पर नेहरू सरकार ने सन् १९५५ में संविधान में संशोधन करा दिया।

उस संशोधन में यह स्वीकार किया गया था कि :—

Not withstanding anything contained in Article 13.

no law providing for the aquisition by the State of any estate or of any rights theirin or the extinguishment or modification of any such rights, shall be deemed to be void on the ground that it is inconsistent with or takes away or abridges any of the rights conferred by Artick 14, Artic 19 or Artic 13.

इसका भावार्थ यह है कि जब कोई राज्य-सरकार किसी जमींदारी जागीर इत्यादि को लेने का कानून पास कर ले तो उस कानून पर किसी अदालत में चाराजोई नहीं की जायेगी ।

कोई यह भी अदालत में पूछ नहीं सकेगा कि कौन से सार्वजनिक काम के लिये सम्पत्ति ली जा रही है । और न ही उसके प्रतिकार में दिये मूल्य के विषय में कोई आपत्ति कर सकेगा ।

जब जमींदारी उन्मूलन का प्रश्न देश के सामने था तो किसी भी बुद्धि-शील व्यक्ति ने सरकार के इस प्रकार सम्पत्ति ले लेने पर आपत्ति नहीं की थी ।

जमींदार क्या थे, क्यों थे, कैसे थे, इसके विषय में न तो संविधान में किसी प्रकार का उल्लेख है और न ही पीछे राज्यों द्वारा बनाये कानूनों में इस बात का उल्लेख था । कोई जमींदारी छोटी है या बड़ी, ईमानदारी से बनी है अथवा बेईमानी से, ऐसा कोई भेद-भाव नहीं किया गया ।

जब जमींदारों पर कुल्हाड़ा चलाया गया था तो उस समय भारतीय जनसंघ की स्थापना ही हुई थी । इस दल ने भी अपने घोषणा पत्र में यह लिखा था कि जमींदारियों का राष्ट्रीयकरण किया जाये ।

देश में कोई भी दल ऐसा नहीं था जो राष्ट्रीयकरण पर लगाम लगाने के लिये आवाज़ उठाता । स्वतन्त्र पार्टी बनी सन् १९५९ में, परन्तु देश के सब दलों ने इसे पूंजीपतियों का दल कह कर इसकी निंदा करनी प्रारम्भ कर दी ।

जनसंघ ने भी इसकी आर्थिक नीति का विरोध किया । एक समय था, जब जनसंघ की कार्यकारिणी के एक सदस्य ने जनसंघ की आर्थिक नीति में संशोधन कराने का यत्न किया था । परन्तु अन्य सदस्य चुप रहे और कालान्तर में उस सदस्य को दल से बाहर निकाल दिया गया । वह सदस्य भी यह चाहता था कि सरकार, जब किसी की सम्पत्ति को ले, तो उस व्यक्ति को अधिकार हो कि वह न्यायालय में सरकार के निर्णय की परीक्षा कराये, सम्पत्ति लेने में कोई सार्वजनिक लाभ है अथवा नहीं तथा सम्पत्ति का मूल्य जो दिया जाना हो, उसके विषय में चाराजोई न्यायालय में हो सके । जनसंघ की कार्यकारिणी

ने उस सदस्य की बात को नहीं सुनी और सरकार के पक्ष में प्रस्ताव पारित कर दिया था।

इसके उपरान्त जनसंघ ने एक उद्देश्य तथा नीति-पत्र छपवाया और पारित किया और उसमें स्पष्ट शब्दों में, समष्टि (समाज) का अधिकार व्यक्ति के ऊपर है, ऐसा घोषित किया।

उस समय यह बार-बार कहा गया था कि आज जमींदारों की सम्पत्ति के विरुद्ध यह कुठाराघात है, कल पट्टेदारों के विपरीत होगा, फिर छोटे-छोटे भूमिपतियों पर होगा। इसी प्रकार नगरों की सम्पत्ति पर भी होगा।

आखिर यही हुआ है। जो बात श्री जवाहरलाल नेहरू सन् १९२७ में कहते थे, सन् १९३६ में लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कही थी, जो संविधान में अस्पष्ट शब्दों में पास कराई थी, वही सन् १९५६ में आबड़ी में और सन् १९६४ में भुवनेश्वर में करने को कह रहे थे। वही बात आज सन् १९६९ में श्रीमती गांधी कह रही हैं।

वे सब लोग जो जवाहरलाल जी के कथन पर लीपा-पोती करते रहते थे, यदि आज भी नहीं समझे कि यहां आर्थिक तानाशाही स्थापित हो रही है तो वे यह देखेंगे कि निकट भविष्य में रूस और चीन से भी बुरी अवस्था इस देश की होने वाली है।

हम जवाहरलाल और श्रीमती गांधीको उन सब लोगों की अपेक्षा, जो आर्थिक स्वतन्त्रता के पक्षपाती होते हुए भी जवाहरलाल द्वारा घोषित तथा अपने काल्पनिक समाजवाद की प्रशंसा करते थे और करते हैं, अधिक ईमानदार मानते हैं। उनकी नीति अशुद्ध हो सकती है, परन्तु सन् १९२७ में जो कुछ इन लोगों ने कहा, सन् १९५० में, जो उन्होंने संविधान में दर्ज कराया, सन् १९५५ में जो संविधान में सशोधन कराया था, वही आज वे कर रहे हैं।

इन्दिरा जी कहती हैं कि बैंकों का राष्ट्रीयकरण उस महा योजना का एक छोटा सा पग है और बहुत बड़ी-बड़ी बातें आने वाली हैं। वे अपने सिद्धान्त के अनुसार ठीक बात और ईमानदारी पूर्वक कहती हैं।

१४ बैंकों के राष्ट्रीयकरण से इन्दिरा जी ने बैंकों की सम्पत्ति पर ही हाथ साफ नहीं किया, वरंच जनता के २००० करोड़ रुपये से भी अधिक पर अधिकार कर लिया है।

अंग्रेजी के साप्ताहिक 'आर्गेनाईज़र' में एक समाचार से यह प्रतीत होता है कि हमारी सरकार ने रिज़र्व बैंक द्वारा, सरकार से अधिकार में लिये बैंकों में जमा करने वाले लोगों को, अपना रुपया उन बैंकों में ले जाने से मना कर

दिया है जो सरकार के अधिकार में नहीं है। अभिप्राय यह कि यह बैंकों का राष्ट्रीयकरण ही नहीं हुआ, वरंच यह जनता के २००० करोड़ रुपये से अधिक पर सरकार ने डाका डाला है।

यह है राष्ट्रीयकरण। अब आगे क्या होगा ? किस बात की भविष्यवाणी श्रीमती इन्दिरा ने की है, वह अब जानना कठिन नहीं है। लक्ष्य यह है कि पूर्ण देश के नागरिकों के परिश्रम और परिश्रम की उपज पर मन्त्री-मण्डल में बैठे दस-बीस व्यक्तियों का अधिकार हो। साथ ही यदि आप इसके विरुद्ध कुछ कहेंगे तो आपकी ज़बान बन्द कर दी जायेगी।

देश पशुओं का बाड़ा बनने जा रहा है। ऐसा बाड़ा जिसमें गाय, भैंस बां-बां की पुकार भी नहीं कर सकेंगे। सब के गले में रस्सा होगा और रस्सा होगा मन्त्रियों के हाथ में।

यह भयानक चित्र हम अपने लेखों और वक्तव्यों द्वारा लोगों के सम्मुख बहुत पहले से रखते आ रहे हैं, परन्तु लोग कह देते थे कि ऐसा कुछ नहीं होने वाला। आज भी इस सिद्धान्त को कि व्यक्ति के भी कुछ अधिकार हैं, जिनको कोई राज्य छीन नहीं सकता, सब मानते तो हैं, परन्तु उन्हें ये समाजवादी और कम्युनिस्ट धीरे-धीरे छीन रहे हैं, कोई समझ नहीं पा रहा।

पूर्ण समाज ही मूर्खों की बनती जा रही है और इस मूर्ख समाज में धूर्तों का शासन सुदृढ़ होता जा रहा है। इस बैंकों के राष्ट्रीयकरण का विरोध किसी ने इस कारण नहीं किया कि यह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर कुठाराघात हुआ है। कुछ स्वतन्त्र दल के लोगों के अतिरिक्त अन्य किसी ने संसद में इस दृष्टिकोण से समस्या रखी ही नहीं।

जनसंघ तो पहले से ही व्यक्ति का किसी प्रकार का अधिकार मानता नहीं। इस सन्दर्भ में एक घटना का उल्लेख पाठकों के मनोरञ्जन के लिये दे दें तो ठीक रहेगा।

दिल्ली की एक आर्य समाज ने कॉरपोरेशन में अपने लिये मन्दिर बनवाने का नक्शा भेजा था। उस मन्दिर के साथ कुछ कमरे पुस्तकालय, वाचनालय और धर्मार्थ औषधालय के लिये भी थे। कॉरपोरेशन की निर्माण कमेटी ने नक्शे को अस्वीकार कर दिया। यह इस कारण कि एक आर्य समाज के मन्दिर के साथ पुस्तकालय इत्यादि नहीं होने चाहियें।

कॉरपोरेशन के एक वरिष्ठ अधिकारी को यह विचित्र घटना बतायी गई। वे आर्य समाज की बात को उचित मानते हुए भी कहने लगे कि सरकार आर्य समाजों को पुस्तकालय खोलने की स्वीकृति क्यों दे ?

यह है जनसंघ का समाजवाद । उलटे हाथ से विचार-प्रसार में भी बाधा डाली जा रही है ।

संसद में भी बैंकों के राष्ट्रीयकरण का विरोध इस आधार पर किया गया है कि जिस ढंग से इन्दिरा जी ने राष्ट्रीयकरण किया है, वह ठीक नहीं । इन भले लोगों से पूछो कि ढंग अच्छा है या बुरा है, इसमें क्या तथ्य है, जब यह प्रचलित कानून के अनुसार है । प्रश्न यह था कि यह २०० करोड़ रुपये की लूट का अधिकार सरकार को है क्या ? किस नैतिक कानून से है ? उस रुपये को सरकार के हाथ क्यों दिया जाये ? क्या यह सत्य नहीं कि करोड़ों रुपये जो सहकारी समितियों को ऋण दिया गया है, वह लोग खा-पी गये हैं ? क्या यह सत्य नहीं कि सरकारी उद्योगों में घाटा इस कारण है कि उनमें ऐसे अनुत्तरदायी लोग प्रबन्ध कर रहे हैं, जिनका एक पैसा भी उद्योगों में नहीं है और जो जितना वेतन पाते हैं, उससे कम परिश्रम करते हैं ? क्या यह सत्य नहीं कि करोड़ों रुपये 'तेजा शिप-कम्पनी' सरकार से ऋण ले गयी है और सरकार वसूल नहीं कर सकी । क्या यह ठीक नहीं कि बीमा कॉरपोरेशन में 'बोनस' नहीं दिया जा सकता; क्योंकि बीमा कराने वालों का रुपया गलत स्थानों पर लगाया जा रहा है । दिल्ली में सुपर बाजार की पूंजी कहां है ?

अब परिश्रमी लोगों की पूंजी से खिलवाड़ करने के लिये यह बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया है ।

परन्तु इस आधार पर संसद में विरोध करने वाले अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं । कदाचित् एक-आध ही था ।

हमारा तो कहना है कि कांग्रेस एक समाजवादी दल है । अतः कोई भी दल जो समाजवाद का पक्ष लेता है, कांग्रेस का विरोध नहीं कर सकता । यदि वह विरोध करेगा तो उसका विरोध प्रभावहीन होगा ।

हमें तो यह समझ नहीं आ रहा कि प्रजा सोशलिस्ट तथा अन्य समाजवादी दल भला किस लिये कांग्रेस का विरोध करते हैं ? ये तीनों समाजवादी दल हैं । थोड़ा न्यूनाधिक अन्तर हो तो हो, अथवा शीघ्र और देर से करने की बात हो तो हो, परन्तु लक्ष्य तीनों का एक ही है । समाजवाद का स्पष्ट अर्थ है प्रत्यक्ष में आर्थिक स्वतन्त्रता और वास्तव में है आर्थिक परतन्त्रता ।

ईमानदारी से धन अर्जन करने की स्वतन्त्रता और ईमानदारी से उसे व्यय करने की स्वतन्त्रता है आर्थिक स्वतन्त्रता, परन्तु कांग्रेस, समाजवादी और कम्युनिस्टों की आर्थिक स्वतन्त्रता का अर्थ है कि ईमानदारी और बेईमानी की बात छोड़ कर, आय तथा व्यय पर सीमा ।

प्रजातन्त्र का नाम ले- लेकर इन वाम पंथी दलों ने प्रजा को परतन्त्रता

की शृंखलाओं में बाँधा है।

हमारा यह मत है कि कांग्रेस अथवा कोई भी समाजवादी तथा साम्यवादी दल सत्ताधारी होगा तो परतन्त्रता अवश्यम्भावी है। कांग्रेस तथा समाजवादी दलों का विरोध समाजवाद का विरोध है। यदि समाजवाद का विरोध नहीं कर सकते तो ऐसे विरोधी दल की कोई आवश्यकता नहीं है।

किसी सार्थक सिद्धान्त के आधार पर कोई राजनीतिक दल सन् १९५१ में बना होता तो कदाचित् कुछ हो सकता था। अब कदाचित् 'बस छूट गयी है'। इस पर भी जब तक बोलने और लिखने की स्वतन्त्रता है, हम यहाँ कहे बिना नहीं रह सकते कि (१) कांग्रेस और सब वाम-पक्षीय दल सैक्युलरिजम का नाम लेकर हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति का विरोध करते हैं।

(२) कांग्रेस और सब वाम-पक्षीय दल समाजवाद का नाम ले-लेकर मानव को पशु और राज्य को पशुओं के बाड़े का ग्वाला बना रहे हैं।

(३) कम्युनिज्म की निन्दा करते हुए भी कांग्रेस और अन्य वाम-पक्षी दल देश में आर्थिक तानाशाही और राजनीतिक दासता स्थापित करने के लिए कटिबद्ध हैं। सिद्धान्ततः वे कम्युनिज्म लाने के पक्ष में हैं।

अतः कांग्रेस तथा किसी अन्य दल का विरोध कुछ अर्थ नहीं रखता; यदि हिन्दु धर्म संस्कृति के उद्धार के लिए, धर्मयुक्त आर्थिक स्वतन्त्रता के लिये और कम्युनिज्म की प्रत्येक गतिविधि के विरोध के लिये दल का निर्माण नहीं किया जाता और यह ही एक क्षीण सी आशा की किरण रह गयी है।

बैंकों के राष्ट्रीयकरण पर विचार के समय और पीछे भी श्रीमती इन्दिरा गांधी ने, यह बार-बार घोषणा की है कि वे कम्युनिस्ट नहीं हैं। ठीक है, नहीं होंगी, परन्तु उनके राज्यकाल में देश ने लम्बे-लम्बे पग कम्युनिज्म की ओर उठाये हैं। उन सब पगों का श्रीमती जी ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन किया है।

इस सबका एक ही उपाय है कि कांग्रेस को शीघ्रातिशीघ्र सत्ता से पृथक् किया जाये। कांग्रेस को सत्ता से पृथक् करने का अभिप्राय है कि वाम पंथी दलों और लोगों को सत्ता से हटाया जाये। अन्यथा देश शीघ्र ही कम्युनिज्म की चक्की में पिसेगा।

बैंकों का राष्ट्रीयकरण से अगला पग है कि या तो अन्य बैंकों का भी राष्ट्रीयकरण हो, अन्यथा उनका गला घोंट दिया जाये अर्थात् ऐसी स्थितियां उत्पन्न की जायें कि उनके दिवाले पिट जायें।

कांग्रेसी मन्त्री-मण्डल को रुपये का चस्का लग गया है। वह छूट नहीं सकता। कोई भी समाजवादी दल इस चस्के से बच नहीं सकता। **

हमारे संरक्षक सदस्य
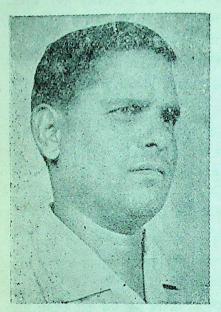
राजनीति, वैदिक धर्म, हिन्दुत्व, आर्य संस्कृति इत्यादि सभी विषय 'शाश्वत वाणी' में पढ़ने से मिलते हैं। मैं भारत-वासियों से अनुरोध करता हूं कि सभी आर्य (हिन्दू) 'शाश्वत वाणी' के ग्राहक बनें। ये उद्‌गार है नवी पेट (जि. निजामाबाद) के डा० लक्ष्मणराव आर्य के।

डा० लक्ष्मणराव आर्य-समाज तथा भारतीय जनसघ के कर्मठ कार्यकर्ता हैं तथा नवी पेट में आयुर्वेद चिकित्सालय चला रहे हैं।

शाश्वत संस्कृति परिषद द्वारा प्रकाशित साहित्य के प्रचार एवं प्रसार में विशेष रुचि लेने के लिये परिषद् श्री राम सरोज (चित्र नीचे) का विशेष रूप से आभार प्रदर्शित करती है।

संरक्षक सदस्य श्री राम सरोज 'संगीतकार' पो० बगहा (चम्पारण-बिहार)

हमारे अन्य संरक्षक सदस्य श्री भूदेव प्रसाद (मुहल्ला विद्याघाट, खगड़िया) जि० मुंगेर)

दर्शन शास्त्रों का प्रयोजन

श्री गुरुदत्त

यह हमने अपने 'शंकर एक महान् तार्किक' नाम के एक लेख में लिखा था कि दर्शन शास्त्र वेदान्त वाक्यों के अस्पष्ट पदों को स्पष्ट करने के लिए नहीं लिखे गये, वरंच ये स्वतन्त्र रूप से, वेद शास्त्रों को प्रामाणिक ग्रन्थ न मानने वालों के समक्ष वैदिक सिद्धान्तों को सत्य सिद्ध करने के लिये लिखे गये हैं।

सबसे मुख्य वैदिक सिद्धान्त है :—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥
(श्वे० ३-२)

परमात्मा एक ही है, दो-तीन मत जानो। वह परमात्मा सब लोकों (नक्षत्रादि) का सृजन करता है। उनका पालन करता है और फिर उनका प्रलय करता है।

इस और ऐसे ही अन्य वैदिक सिद्धान्तों को सत्य सिद्ध करने के लिये दर्शन शास्त्र लिखे गये हैं, परन्तु उनको सिद्ध करने के लिए वेदान्त वाक्यों की साक्षी की न तो आवश्यकता अनुभव की गई है और न ही उचित समझा गया है।

परन्तु हमने अपने पूर्व लेखों में बताया है कि श्री स्वामी शंकराचार्य जी यह मानते हैं कि दर्शन सूत्र वेदान्त वाक्यों को मणियों को बांधने वाले सूत्र की भांति ग्रथित करते हैं। अभिप्राय यह कि ब्रह्म सूत्र वेदान्त वाक्यों के गौण सहायक (ancillary) मात्र हैं।

ब्रह्म सूत्रों में सिद्धान्त प्रतिपादित करते समय कभी किसी वेद-वाक्य का उद्धरण नहीं दिया गया। न ही उनकी ओर संकेत किया गया है। ऐसा तो है कि किसी सिद्धान्त को सिद्ध करने के उपरान्त यह कह दिया गया कि ऐसा वैदिक शास्त्रों में भी लिखा है। जैसे ब्रह्म सूत्र (१-१-२, ३, ४) में

मूल सिद्धान्तों को युक्ति से बताया है। वहां यह बताया है कि जगत् के बनाने, पालन और प्रलय करने वाला ब्रह्म है। इसमें युक्ति यह है कि कोई पदार्थ बिना किसी के बनाये नहीं बनता। न ही किसी का, पालन करने वाले के बिना, पालन हो सकता है। जब युक्ति से वह निश्चय हो गया तब कह दिया —

मान्त्रवर्णिकमेव च गीयते ।। (ब्र० सू०—१-१-१५)

अर्थात् (मान्त्रवर्णिकम्) मन्त्र वर्ण में प्रतिपादित (एव) भी (च) और (गीयते) गाया जाता है।

इसका अभिप्राय है कि जो कुछ ऊपर प्रथम १४ सूत्रों में कहा गया है, वह (वेद) मन्त्रों में भी गाया गया है।

ऊपर के १४ सूत्रों में क्या सिद्ध किया गया है? यह इस लेख का विषय नहीं। इस पर भी इतना सकेत तो किया ही जा सकता है कि पूर्व के सूत्रों में ब्रह्म को जगत् का कारण माना है। ब्रह्म को ज्ञान (वेद) का देने वाला माना है। जगत् का, समन्वय रूप से चलाने वाला ब्रह्म माना है। ब्रह्म में चेतन आत्म-तत्त्व परमात्मा ईक्षण करता है। यह ईक्षण करने वाला प्रकृति अर्थात् जड़ पदार्थ नहीं। आत्म तत्त्व है। यह आत्म तत्त्व जीवात्मा से भिन्न है।

सूत्रकार लिखता है कि ये बातें हमने युक्ति से सिद्ध की हैं और वेद मन्त्रों में भी ये इसी प्रकार वर्णन की गयी हैं।

हमारे इस विचार का कि ब्रह्म सूत्र सत्य को प्रकट करने में वेदा वाक्यों से पृथक् प्रयास है, सूत्रकार स्वयं भी घोषित करता है। वह कहता है :

छन्दोऽभिधानान्नेति चेन्न तथा चेतोर्पणनिगदात्तथा हि दर्शनम् ।।

(ब्र० सू० १-१-२५)

छन्दो + अभिधानात् + न + इति + चेत् + न + तथा + चेतो + अर्पण + निगदात् + तथा + हि + दर्शनम् ।।

यदि छन्दों में कहा गया है तो (मान्य) नहीं। (यह वेद को न मानने वाला कहता है।) सूत्रकार उत्तर देता है न सही। वहाँ वेदों में तो चित्त (को एकाग्र करने) के लिए कहा गया है और दर्शन शास्त्र में भी तो सिद्ध किया गया है।

अभिप्राय यह है कि नास्तिक जो वेद को स्वतः प्रमाण नहीं मानता,

वह कह सकता है कि वेदों में लिखा होना प्रमाण नहीं। इस पर दर्शनाचार्य दर्शन शास्त्र के महत्व की बात कहते हैं। 'तथा दर्शनम्' और दर्शन अर्थात् युक्ति से भी तो हमने वही बात कही है।

परन्तु यह बात स्वामी शंकराचार्य जी को मान्य नहीं। वे इस सूत्र का भ्रान्त और सर्वथा अस्पष्ट अर्थ करते हैं।

साथ ही वह दर्शन शास्त्र को क्या मानते हैं, इसे वह एक अन्य स्थान पर इस प्रकार लिखते हैं —

तस्य समस्तजगत्कारणस्य ब्रह्मणो व्यापित्वं, नित्यत्वं, सर्वज्ञत्वं, सर्वशक्तित्वं, सर्वात्मत्वमित्येवंजातीयका धर्मा उक्ता एव भवन्ति। अर्थान्तरप्रसिद्धानां च केषांचिच्छब्दानां ब्रह्मविषयत्वहेतुप्रतिपादनेन कानिचिद्वाक्यानि स्पष्टब्रह्मलिङ्गानि संदिह्यमानानि ब्रह्मपरतया निर्णीतानि। पुनरप्यन्यानि वाक्यान्यस्पष्टब्रह्मलिङ्गानि सदिह्यन्ते— किं परं ब्रह्म प्रतिपादयन्त्याहोस्विदर्थान्तरं किंचिदिति। तन्निर्णयाय द्वितीयतृतीयौ पादावारभ्येते।

(शं० भाष्य १-२ का आरम्भ)

अर्थात्—उस समस्त जगत् के कारण ब्रह्म की व्यापकता, सर्वज्ञता, सर्वशक्तित्व, स्वामित्व एवं इस प्रकार के धर्म अर्थ कहे गये हैं। इनमें से कुछ शब्दों के दूसरे अर्थ होने के कारण ब्रह्म विषय के हेतु प्रदिपादन करने के लिए कुछ वाक्यों के स्पष्ट ब्रह्म के अर्थ होने में संदेह हो उठता है। उनको ब्रह्मपरक निर्णय करने के लिये, साथ ही अन्य वाक्यों में जहां ब्रह्म के अर्थ स्पष्ट नहीं हैं अर्थात् सन्देह है कि वे ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं अथवा किसी अन्य का। इसके निर्णय के लिए दूसरा और तीसरा पाद लिखा जा रहा है।

इसका अभिप्राय यह है कि सूत्र वेदान्त वाक्यों की अस्पष्टता को स्पष्ट करने के लिए लिखे गये हैं। हमारा मत है कि यह ठीक नहीं। दर्शन शास्त्र का यह प्रयोजन नहीं।

वास्तविक बात तो यह है कि जो शास्त्र अथवा जो वाक्य स्पष्ट नहीं, वह शास्त्र और वाक्य अशुद्ध कहा जाता है। हमें वेदादि ग्रन्थों तथा उपनिषद् ग्रन्थों में अस्पष्ट कुछ भी नहीं प्रतीत होता। स्वामी शंकराचार्य जी एक मिथ्या विचार को लेकर चले थे। वे समझ रहे थे कि 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।' अतः इस विचार को जब वे उपनिषादादि ग्रन्थों में नहीं पाते अथवा इसका विरोध पाते थे तो वहां अपनी भूल न मान उपनिषदादि ग्रन्थों को अस्पष्ट मानने लगे थे और जहां वे उपनिषदादि ग्रन्थों के भ्रान्त अर्थ कर गये हैं, वहां ब्रह्म सूत्रों के अर्थ भी विकृत कर गये हैं।

उनके अर्थ के अनर्थ करने का एक उदाहरण देकर हम अपने वक्तव्य को समाप्त करना चाहते हैं।

एक सूत्र है :—

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ।। (ब्र० सू०—१-२-१)

इसका स्पष्ट सरल अर्थ है (सर्वत्र) सब स्थान पर। (प्रसिद्धो) प्रसिद्ध (बात) (उपदेशात्) कही जाने से।

वह प्रसिद्ध बात है कि यह कार्य जगत् है। यह बना है, यह चल रहा है और इसका प्रलय भी होगा। इस संसार में यदि कोई एक बात प्रसिद्ध है तो यही है कि जगत् है। यह सत्य है, बना है, प्रलय को प्राप्त होगा और अब चल रहा है। इससे अधिक प्रसिद्ध बात और नहीं हो सकती।

परन्तु स्वामी शंकराचार्य तो यह धारणा बना कर निकले थे कि जगत् मिथ्या है, यह भ्रम है। तब भला यह प्रसिद्ध बात वह कैसे मान सकते थे? अतः उन्होंने सूत्र के अर्थ विकृत करने आरम्भ कर दिये। वे सूत्र के अर्थ करते हुए कहते हैं—छान्दोग्य उपनिषद् (२-१४, १, २) के अर्थ अस्पष्ट हैं। वहां संशय है कि वे मन्त्र ब्रह्मपरक हैं अथवा जीवात्मापरक? अतः उक्त सूत्र उस तथा वैसे वाक्यों के अर्थ स्पष्ट करने के लिये है। सूत्र कहता है कि जो बात प्रसिद्ध है, वह मान लो।

यह अर्थ बनते नहीं। इसको मानने से पूर्ण पाद के अर्थों में अन्तर पड़ जायेगा।

यदि ब्रह्म सूत्र के प्रथम अध्याय के पूर्ण द्वितीय पाद को पढ़ा जाये तो यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि वहां परमात्मा और जीवात्मा में भेद बताया गया है और श्री स्वामी जी अपने पूर्वग्रहों से ग्रसित इसमें केवल परमात्मा के ही अस्तित्व को सिद्ध करने में लगे हैं।

हम अपने किसी आगामी लेख में इस पाद की पूर्ण विवेचना लिखकर बतायेंगे कि कैसे ब्रह्म सूत्रों के रचने वाले महर्षि व्यास परमात्मा और जीवात्मा को पृथक-पृथक पदार्थ मानते थे।

अतः हमारा यह कहना है कि दर्शन शास्त्र (Knowledge or Philosophy) सत्य की खोज की विद्या है। सत्य की खोज में ये अनुमान प्रमाण, जिसका दूसरा नाम युक्ति है, का प्रयोग करते हैं। वैदिक दर्शन शास्त्रों में विशेषता यह है कि उन्होंने वेदादि शास्त्रों में वर्णित सत्य सिद्धान्तों को अनुमान प्रमाण से सिद्ध किया है। ●●

अस्तित्व की रक्षा

श्री विद्यानन्द 'विदेह'

हिन्दु-तनु में व्यापी व्यावहारिक अस्पृश्यता वैसी ही है, जैसी संसार में अन्यत्र है। स्वच्छ व्यक्तियों में अस्वच्छ व्यक्ति सर्वत्र अस्पृश्य होते हैं। भारत में से अस्पृश्यता के निवारण के लिये न किसी आन्दोलन की आवश्यकता है, न सरकारी कानूनों की। इस समस्या के समाधान के लिये एकमात्र आवश्यकता है अस्पृश्य बने हुए वर्गों के रहन-सहन को स्वच्छ और सुन्दर करके उन्हे स्पृश्य बनाने की।

साबरमती आश्रम में हरिजनों को स्वच्छता का इतना सुन्दर प्रशिक्षण दिया जाता था कि वहां हरिजन बालक-बालिका तथा नर-नारी सवर्णों से भिन्न पहिचाने नहीं जाते थे। उनके शरीर, वस्त्र तथा कुटीर सवर्णों की अपेक्षा कहीं अधिक स्वच्छ रहते थे। सवर्णों को उनकी कुटीरों में बैठना-उठना प्रिय और रुचिकर लगता था।

हिन्दु-समाज की अनेक संस्थायें अस्पृश्यों की हितैषिणी होने का दम भरती हैं। किन्तु उनमें से वह कौन-सी संस्था है जो हरिजन-बस्तियों में जाकर हरिजनों को अपनी कुटीरें स्वच्छ और शोभनीय रखने की शिक्षा देती है। इन पक्तियों को लिखते हुये मेरी लेखनी रो रही है और मेरा मानस अकुला रहा है। असली बात तो यह है कि रहन-सहन की दृष्टि से अधिकांश सवर्ण भी अस्पृश्यों की सी ही स्थिति में हैं। गन्दे घर, गन्दी गलियां, गन्दे वस्त्र, गन्दा वातावरण—यही अस्पृश्यता का रूप है।

मैं आर्यसमाज, सनातन धर्म, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, आर्य युवक परिषद् तथा आर्यवीरदल से अनुरोध करता हूं और साथ ही सरकारी ग्राम-सुधार तथा नगरशोधक विभागों से, अपि च स्वयं सरकारों से निवेदन करता हूं कि वे हरिजन अस्पृश्यों तथा सवर्ण अस्पृश्यों की बस्तियों, गलियों तथा गृहों को स्वच्छ और आकर्षक बनाने की गुरुतम साध में अपने धन, जन और समय का सदुपयोग करें। एक समय था, जब यूरोप के देशों में भारत की अपेक्षा कहीं अधिक अस्पृश्यता का बोल बाला था। जबसे वहां सम्पूर्ण जनता का रहन-

सहन समानरूपेण स्वच्छ और उच्च हुआ, तबसे वहां अस्पृश्यता का न नाम है, न निशान। भारत में भी वैसा ही करना होगा।

हिन्दु जाति की उपर्युक्त संस्थायें पर्याप्त सबल हैं। मिशनरी लाइन पर प्रशिक्षण-प्राप्त उनके मिशनरी व्रती बनकर अस्पृश्यों के रहन-सहन को स्वच्छ और शोभनीय बनाने में जुट जायें तो कुछ ही वर्षों में भारत से अस्पृश्यता का नामो-निशान मिटाया जा सकता है।

हिन्दु शिक्षण-संस्थाओं के हजारों-लाखों अध्यापक अध्यापिकायें तथा विद्यार्थी दीर्घ अवकाशों में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सुपर्याप्त कार्य कर सकते हैं। लोक-सभा, राज्य-सभाओं तथा विधान-सभाओं के सभ्य-सभ्या भी सभाओं के अवकाश के दिनों में योजनाबद्ध रीति से अस्पृश्यता-निवारण के सुकार्य में जुट सकते हैं।

एक और दृश्य है जिसे देख-देखकर ज्ञानी जन खून के आंसू बहाया करते हैं। लाखों नहीं, करोड़ों हिन्दु अखंड कीर्तनों में अपना अमित धन, समय और शक्ति का व्यय करते हैं। इन कीर्तनों के विषय में एक बार वेदमूर्ति भट्ट श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने लिखा था, 'कीर्तनों की यह बाढ़ सर्वथा अनुत्पादक है। यदि इतने ये कीर्तनकार अस्पृश्यों को स्पृश्य बनाने में अपने आपको लगा दें तो वह महती उत्पादक भक्ति होगी। ऐसा किया जाये तो वे करोड़ों आदि-वासियों तथा अस्पृश्यों को विधर्मी होने से बचा सकेंगे और उन्हें राम तथा कृष्ण के भक्त बनाये रख सकेंगे।'

समाज-शास्त्रियों और स्मृतिकारों ने हिन्दु-समाज की जो क्षतियां की हैं, उसकी भरपाई की दिशा में भी कुछ किया जाना चाहिये। विशेषकर सवर्णों में जो यह भावना घर कर गयी है कि संस्कृत का हर वाक्य और हर श्लोक परम प्रमाण है, अस्पृश्यता निवारण की दिशा में एक बहुत बड़ी बाधा है। संस्कृत साहित्य में सब कुछ आर्ष और मानवीय ही नहीं है, उसमें बहुत कुछ अनार्ष, अश्लील और अमानवीय भी है। प्रमाण माने जाने वाले संस्कृत के सभी ग्रन्थों को अस्पृश्यता-निवारण की दृष्टि से सद्यः शोधने की अनिवार्य आवश्यकता है। ऐसा किये बिना रूढ़िप्रिय हिन्दु-जाति के मस्तिष्क की सफल चिकित्सा कर सकना सर्वथा असम्भव होगा। किसी भी जाति के मस्तिष्क की चिकित्सा उसके अन्य समस्त रोगों के उन्मूलन के लिये प्रथम आवश्यकता है। (क्रमशः)

बुद्ध धर्म पर ईसाई आक्रमण

श्री ब्रह्मदत्त भारती

गतांक से

(२)

बुद्ध धर्म और ईसाइयत में बहुत असमानता है। यह दिखाना कुछ कठिन नहीं है। ईसाइयत स्वयं ही इसको समय समय पर स्वीकार करती है, केवल गैर ईसाइयों से इस मूल सत्य को छिपाये रखना चाहती है। बुद्ध धर्म और ईसाइयत में कुछ देखने भर की ही समानता है, जिसे कुछ लोग उभार कर दिखाने की चेष्टा करते हैं। "There is a certain resemblance between Buddhism and Christianity which some are inclined to emphasise"—Studies in Buddhism And Christianity by A.H. Small, published by Student Volunteer Missionary Union, London. इसी पुस्तिका के आरंभ में ही (पृ. ६ पर) यह भी कहा गया है : हिन्दू धर्म को समझने के लिये ईसाई मिशनरी के लिये यदि वह भारत जायेगा, बुद्ध धर्म को भली-भान्ति समझना आवश्यक है। चीन, जापान, कोरिया, सियाम, बरमा और लंका को जाने वाले ईसाई मिशनरी को बुद्ध धर्म का केवल सामना ही करना न होगा, उसे सन्तोषजनक समाधान भी प्रस्तुत करना होगा। जब तिब्बत के साथ यातायात आरंभ होगा तो वहां भी ईसा के दूतों को बुद्ध धर्म का ही सामना करना पड़ेगा। यह पुस्तक विशेषकर पादरी विद्यार्थियों के लिये तैयार की गयी थी। इसमें उनको बताया गया था कि किस प्रकार बुद्ध धर्म का मुकाबला करना चाहिये। इसी के पृष्ठ ६८ पर पादरी विद्यार्थियों को यह बताया गया गया है कि गौतम बुद्ध और ईसा में बहुत बड़ी असमानता है। गौतम केवल एक गुरु मात्र था और ईसा साक्षात् मुक्तिदाता ! ("The Buddha himself was not divine; he was not a Saviour, but a guide"— p. 32) यह ठीक ही है। गौतम बुद्ध ने

अपने शिष्यों से दिल खोल के कहा था : मुक्ति चाहते हो तो ज्ञान उपार्जन करो, तुम्हारी मुक्ति तुम्हारे अपने हाथ में है । इसके विरुद्ध ईसा ने कहा (?) मैं अपना बलिदान देता हूँ, तुम्हें मुक्ति मिलेगी । भीषण असमानता । एक मरे और किसी दूसरे को मुक्ति मिले; राम खाये और श्याम का पेट भरे ! मैक्स-म्यूलर ने कहा था : "India is a nation of philosophers"—Six Systems of Indian Philosophy by Max Muller (भारत तत्त्वज्ञानी और दार्शनिकों का देश है । यहां यदि ईसाइयत ऐसा संदेश दे भी तो ऐसे मुक्तिदाता पर लोग हँसे बिना नहीं रहेंगे । इस देश का बच्चा भी यह जानता है कि स्वयं मरे बिना कभी कोई स्वर्ग नहीं गया ।

यह प्रचार और प्रसार का युग है । जो जितना अधिक चिल्लायेगा और शोर करेगा, उतना ही अधिक संसार उसे सुनेगा । यह अनिवार्य है कि जब बार बार कुछ कानों में पड़ेगा अथवा जिसे दृष्टि बार बार देखेगी, उसका अंश मस्तिष्क में अवश्य अटक कर रह जायेगा । ईसाइयत के पास धन और साधन पर्याप्त मात्रा में हैं । इनके सहारे सत्य और मिथ्या दोनों का प्रचार यह खूब तन, मन और धन लगा कर करती है । बुद्ध धर्म के अनुयायियों को ईसाइयत की ओर लाने के लिये बार बार वह यह भी कहती आयी है कि ईसा के समान गौतम बुद्ध भी कुमारी पुत्र प्रसिद्ध था । यह दोहरी तलवार है जिसका प्रयोग ईसाइयत एक ओर बुद्ध भक्तों को पथभ्रष्ट करने के लिये करती है और दूसरी ओर उन गैर-ईसाइयों का, विशेषकर उन हिन्दुओं का, मुँह बन्द करने के लिये करती है, जो सर्वदा ईसा की मां मेरी के कुमारपन की खिल्ली बड़ी सफलता पूर्वक उड़ाया करते हैं । ईसाइयत ने कच्ची गोलियां नहीं खेली हैं । वह अपना अच्छा, बुरा भली प्रकार पहचानती है । इसी कारण जब वह ईसाई जनता को उपदेश देती है, तो ईसा को ऊँचे स्तर पर बिठाने के लिये वह कहती है : ईसा कुमारी-पुत्र था, परन्तु बुद्ध को सर्वसाधारण की भान्ति उसकी मां ने जन्म दिया था । ("Jesus was son of a Virgin mother; Gautam a was son of a continent mother".)

यदि यह कहा जाये कि ईसा के जन्म के समय ईसाइयत ने जन्म लिया और ईसाइयत के साथ ईसाई झूठ भी अपने पाँव फैलाने लगा तो कुछ अनुचित न होगा । बाईबल में स्वयं ही यह कहा गया है कि ईसा की मां के सात बच्चे थे । सात बच्चों की मां कुमारी कैसे हुयी, यह भी एक ऐसी उक्ति ही हो सकती है जो सामान्य मानव की बुद्धि के बाहर है । "Is not this (Jesus) the carpenter, the son of Mary, the brother of

James, and Jones and of Juda and Simon ? And are not his sisters here with us ?" — Bible, Mark VI:3) अपना काम निकालने के लिये ईसाइयत शब्दों का तोड़-फोड़ भी करती है, उनका आकार भी बदलती है और आवश्यकता होने पर उन्हें नये-नये अर्थ भी देती है । न्यू टैस्टामैन्ट के प्राचीन ग्रीक अनुवाद में शब्द "एडैलफोस" (adelphos) का प्रयोग किया गया था । जिसका अर्थ है "एक ही पिता, माता से" । फिर सात बच्चों की मां कुमारी कैसे बनी ? यह भी एक ईसाई चमत्कार मात्र ही है ।

अपना काम निकालने के लिये ईसाइयत हर प्रकार के शस्त्रों का प्रयोग करती है । जब कोई ईसा की कुमारी मां के सम्बन्ध में अपनी कोई, ऐसी खोज संसार के सामने रखता है, जिससे यह सिद्ध हो कि ईसा की कुमारी मां की कहानी एक ढकोसला है तो सारा ईसाई जगत उसके विरुद्ध मोर्चा लेने पर उतारू हो जाता है । रोमन कैथोलिक चर्च तो बराबर ऐसी पुस्तकों की एक सूची तैयार किये रहता है जिसको वह इनडैक्स एक्सपरगेटोरियस (Index Expurgatorius) के नाम से पुकारता है । इसमें जिन पुस्तकों के नाम रहते हैं उन्हें पढ़ना ईसाइयों के लिये वर्जित है । यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस किसी पुस्तक में भी ईसा की मां के कुमारपन को झुठलाया गया हो उस पुस्तक का नाम इसमें अवश्य रहेगा । ईसाइयत का यह पुराना विचार है कि वह जो कहती है वह सब सत्य, केवल सत्य और पूर्ण सत्य है और जो दूसरे लोग कहते हैं वह सब झूठ ।

जब अंग्रेजों का साम्राज्य फैला तो विजित देशों में अंग्रेज पुस्तक विक्रेता भी आ धमके । उन्होंने भी ईसा की मां कुमारी थी, के प्रचार में अपना योग दिया । उन्होंने ऐसी सब पुस्तकों की बिक्री से इन्कार कर दिया, जिनमें यह सिद्ध किया गया था कि यह कहानी एक मन घड़ंत ढकोसला है । रैशनलिस्ट प्रैस एसोसिएशन (Rationalist Press Association Limited) ने कई पुस्तकें ईसाइयत का असली रूप दिखाने के लिये छापीं । इनमें से एक पुस्तक में हमें यह पढ़ने को मिलता है : हिब्रू में "अलमाह" का अनुवाद कुमारी कर दिया गया जो कि अशुद्ध है । (And the word "Virgin" given in the passage from Isaiah is a mistranslation, which eminent Hebraists, of the type of Dr. A. B. Davidson disingenously suffer to remain unaltered, and without comment. The Hebrew Almah mistranslated "Virgin" is given in the Septuagint as parthenos (virgin), where, perhaps, the source of

the blunder in Matthew, the Septuagint being used by the writers of the New Testament, and by the Jews generally. Almah means "a young woman of marriageable age." ईसा का चर्च चाहता था कि ईसा को कुमारी पुत्र की पदवी देकर साधारण जनता की आँखों में ऊँचा उठाया जाये । इसी लिये उसने शब्दों के अनुवाद भी मनमाने कर दिये । ईसाइयत ने यहीं पर सब्र नहीं किया, ४३१ ई० में ईसा की माँ को खुदा की मां (Mother of God) की पदवी दी और ५५३ ई० में उसे सदा कुमारी (Ever Virgin) कहा गया। अब ईसाई मानते हैं कि वह "बच्चा पैदा होने से पहिले, बच्चा पैदा होने के समय और बच्चा पैदा होने के बाद" भी कुमारी है ("She is a virgin before birth, during birth, and after birth"—Christendom by Einar Molland, p. 21) इस प्रकार ईसाइयत ने सात बच्चों की मां को कुमारी बना दिया, भले ही यह चमत्कार सामान्य मानव की बुद्धि के बाहर क्यों न हो !

ईसा को शिक्षा कब और कहाँ हुई, यह कोई विश्वास के साथ नहीं कह सकता । इस पर भी ईसाई पादरी जिनका व्यवसाय ही बाईबल के गीत गाना है, यह कहते नहीं थकते कि बाईबल को लिखने वाले लोग शेष मानव जाति से ऊँचे स्तर पर रहने वाले थे । यह एक बहुत बड़ा मजाक है । वे लोग कितने ऊँचे स्तर के लोग थे, इस पर भी हम कुछ विचार करेंगे । जिस रूप में बाईबल आज संसार के सामने है, यह इसका असली रूप नहीं है । इसमें बहुत कांट-छांट होती रहती है । लगभग ६० कथाओं में से केवल चार रखी गयीं और शेष यह कर नष्ट कर दी गयीं कि वे अप्रामाणिक थीं । सत्य यह है कि जो रखी गयीं, उनके प्रामाणिक होने का भी कोई प्रमाण नहीं है । ये चार इस लिये स्वीकार की गयीं कि इनमें ईसा का खूब बखान था । इन चार के लिखने वाले, अथवा इन कहानियों के मूल रचयिता साधारण लोग थे जो मछली पकड़ कर जीवन निर्वाह करते थे । वे सब अशिक्षित अथवा कुशिक्षित थे । यह अद्भुत बात है कि इन 'ऊंचे' स्तर वाले लोगों ने ईसा की जीवनकथा कुछ इस प्रकार कही है कि उनमें कुछ न कुछ अंतर और भिन्नता है । यदि यह माना जाये कि ये कथायें किसी और ने उन के कहने पर लिखीं तो यह मानना पड़ेगा कि उन लिखने वालों ने अपने मन से जो चाहा लिख दिया । ऐसा नहीं तो, उन लिखने वालों ने वही तो लिखा होगा जो उन चारों ने

उनसे कहा। इन चार कथाओं के अतिरिक्त बाईबल में और भी बहुत कुछ है। बाईबल के दो भाग हैं। बाईबल के रूप भी कई हैं। एक रोमन कैथोलिक बाईबल है; एक प्रोटैसटैन्ट बाईबल है। प्रोटैसटैन्ट ईसाई कैथोलिक बाईबल को पोप का कपट और छल (Popish imposture) बताते हैं। ग्रीक कैथोलिक बाईबल में कई ऐसे अंश हैं जो रोमन कैथोलिक बाईबल में नहीं हैं। क्रुसोस्टम (Chrysostom) जिसने बाईबल को बाईबल का नाम दिया, वह स्वयं ही बाईबल में जो सब कुछ है, उस सब को स्वीकार नहीं करता। अमरीका के प्रधान टॉमस जैफरसन ने एक बार कहा था—("It is between fifty and sixty years since I read the Apocalyse (Revelation), and I then considered it merely the ravings of a maniac....what has no meaning, admits of no explanation". (मैंने ५० वर्ष हुए बाईबल के उस अंश को पढ़ा था जिसमें खुदा ने अपने को प्रगट किया है। मुझे ऐसा लगा कि वह सब एक पागल का पागलपन है। जिसका कुछ अर्थ ही नहीं, उसका भाष्य क्या हो सकता है! डीन फैरर (Dean Ferar) ने बाईबल के लिये कहा कि यह अन्धकारमय युग में अन्धकारपूर्ण पुस्तक पिछड़े हुये लोगों के लिये लिखी गयी थी। ("The Bible is a barbarous book, written in a barbarous age, far a barborous people.") काऊंट टालस्टोय (Count Tolstoy) ने भी अपने विचार प्रकट करते हुये कहा: इससे बड़ी बेहूदा और क्या हो सकती है कि खुदा (ईसा) की मां कुमारी भी थी और मां भी। इस मत (ईसाइयत) की नींव ही ऐसे सिद्धान्तों पर रखी गयी है कि कोई भी इन पर विश्वास नहीं कर सकता। ("What can be more absurd than that the mother of God was both a mother and a Virgin....the very foundations of this religion admitted by all and formulated in the Nicene creed, are so absurd and immoral....that man can not believe in them."—What Is Religion—by Count Tolstoy) ऊँचे स्तर का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

इंगलैण्ड, अमरीका, फ्रांस, रूस और दूसरे पाश्चात्य देशों में तो ईसाइयत का प्रभाव समाप्त सा ही हो गया है। जब कभी किसी का जन्म हो, बपतिस्मा हो, किसी का विवाह हो अथवा कोई मर जाये तो ही लोग चर्च की ओर मुंह करते हैं, वरना ईसाइयत से वे लोग हाथ धो चुके हैं। इसी कारण चर्च और

उसके उच्च अधिकारियों की अपनी आय और आराम में कमी होती दिखाई देती है। इस घाटे को पूरा करने के लिये वे बाहर के दूसरे देशों में ईसाइयत का प्रभाव बनाये रखने की सिरतोड़ कोशिश कर रहे हैं। इसी योजना के अधीन वे भारत, जापान, इन्डोनेशिया, बर्मा, लंका इत्यादि देशों में जोर शोर से इस बात का प्रचार कर रहे हैं कि ईसा और बुद्ध में बहुत समानता है। इसी लिये वे चाहते हैं कि बुद्ध के अनुयायियों को ईसा का भक्त बना लिया जाये।

जब किसी देश में राजनैतिक दासता आती है तो उस देश के लोगों को विजेता की अच्छी और बुरी बातें भी स्वीकार करनी ही पड़ती हैं। साम्राज्यवाद विशेषकर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये तलवार और लेखनी दोनों का ही प्रयोग करता है। ऐसा ही अंग्रेज जाति ने भी किया। सब प्रकार का सच और झूठ कह कर इन देशों में रहने वालों को यह विश्वास दिलाने की भरसक कोशिश की कि ईसा और बुद्ध में बहुत समानता है। यदि किसी ने उसके विरुद्ध आवाज उठाई, तो कपोल-कल्पित कथा कह कर उसका न केवल अनादर ही किया अपितु उसके लिये आर्थिक उन्नति के सब रास्ते बन्द कर दिये गये। शनैः शनैः सत्य का गला घुट गया। ईसाइयत और उसके उच्च अधिकारी यह भली भान्ति जानते हैं कि ईसाइयत का आधार बुद्ध धर्म ही है, जो भारत वर्ष में जन्मा। साम्राज्यवादी ईसाइयत को यह सत्य स्वीकार करते हुये लज्जा लगती है, उसके आत्म सम्मान को चोट सी लगती है। उसके लिये कितनी शर्म की बात है कि उसने भारत से कुछ लिया हो, चाहे वह आध्यात्मिक ही क्यों न हो। यह उसे स्वीकार नहीं कि जो लोग उसके राजनैतिक दास हों, उन्हीं का धर्म उनके साम्राज्यवाद के मत से ऊँचा हो।

ईसा और बुद्ध में बहुत समानता है, का राग अलापते हुये ईसाई पादरी बुद्ध धर्म में एक बहुत बड़ी कमी भी दिखाते हैं। वे कहते हैं कि बुद्ध धर्म में रागहीनता को जो बहुत महत्व दे रखा है, वह ईसाइयत में कहीं नहीं। यह पूर्णतया सत्य ही है। क्या इससे भी यही सिद्ध नहीं होता कि बुद्ध धर्म और ईसाइयत में बहुत असमानता है। जब गौतम बुद्ध ने अपने शिष्य से पूछा: यदि तेरी वे हत्या कर दें? शिष्य ने कहा: मृत्यु कोई बुरी वस्तु नहीं है, मैं उल्टे चोट नहीं करूंगा। यह है अहिंसा जिसका प्रचार बुद्ध ने अपने जीवन में किया और जिसका पालन उसके शिष्यों ने यथा शक्ति किया। इसके विपरीत ईसा ने क्या उपदेश दिया: मैं संसार में शान्ति प्रसार करने नहीं आया हूं,

तलवार देने आया हूँ। मैं मनुष्य को मनुष्य के विरुद्ध, बेटी को मां के विरुद्ध, पुत्र को पिता के और पिता को पुत्र के विरुद्ध करने आया हूं। मनुष्य के शत्रु उसके अपने ही घर के लोग होंगे। ईसा ने यह भी कहा : जो अपने बाप, बहन, भाई, मां और अपने आप से भी नफरत नहीं करता वह मेरा शिष्य नहीं हो सकता। ईसाई पादरी तो ईसा को दया तथा प्रेम का प्रतीक कहते हैं। दया और प्रेम के राजा के अपने वक्तव्यों से तो दया और प्रेम के स्थान पर घृणा और क्रोध ही टपकता है। फिर बुद्ध और ईसा में समानता का ढोल पीटना निरर्थक है।

बुद्ध और ईसा की जीवन कथाओं में बहुत सी समानता दिखती है, इसमें कुछ सन्देह नहीं। परन्तु इनके बल पर यही निश्चित हो सकता है कि ईसाइयत की स्थापना बुद्ध धर्म के पद चिन्हों पर हुई है। इससे निस्सन्देह यही प्रमाणित होता है कि बुद्ध धर्म को पृथक करके ईसाइयत का अपना कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। अर्नस्ट बुनसन, सीडल और आर्थर लिली (Ernest Bunsen, Seydel, Arthur Lillie) जैसे विद्वानों ने यह दिखाने की तो अवश्य कोशिश की है कि बुद्ध और ईसा की जीवन-कथाओं में समानता है, परन्तु इस जांच के फलस्वरूप यह कहते वे सदा ही हिचकिचाये हैं कि ईसाइयत का आधार बुद्ध धर्म पर ही है चाहे वह कितना कुरूप क्यों न हो! पाश्चात्य विद्वान इतना कह कर ही अपना मुंह बन्द कर लेते हैं कि ईसा और बुद्ध में बहुत समानता है। हम भी मानते हैं कि बुद्ध और ईसा की जीवन-कथाओं में आश्चर्यजनक समानता है, परन्तु यह स्वीकार करना संभव नहीं कि उनके अध्यात्मवाद एक से हैं। जब हम यह मानते हैं कि ईसा और बुद्ध में समानता है तो हम इतना भी मानते हैं कि ईसाइयत ने जो कथायें बाईबल में डाल रखी हैं, वे बहुत सी, कुछ अक्षरशः, बुद्ध की जीवनी और बुद्ध धर्म से ली गयी हैं। क्या ही अच्छा होता यदि पाश्चात्य देश छाया के पीछे न भाग कर स्वयं देह-आत्मा को ही स्वीकार करके उसके पांव में ही अपना मस्तक झुकाते।

"यह कैसा प्रजातन्त्र"

श्री गंगाशरण 'तृषित'

'यह कैसा प्रजातन्त्र गणतन्त्र,
प्रजा-जन पग-पग पर यहां दबाये जाते हैं ।
चुन जाने के बाद हमारे नेता गण,
अन्धे और बहरे हो जाते हैं ।
फिर न उन्हें कुछ भी दिख पाता,
और न वह कुछ सुन पाते हैं ।
यह कैसा प्रजातन्त्र !

चुन जाने से पहले वह कहते थे,
हम भारत-भूमि पर राम-राज्य लायेंगे ।
भारत-भूमि से भ्रष्टाचार मिटायेंगे ,
जो स्वयं भ्रष्ट, क्या भ्रष्टाचार मिटायेंगे ।
जो रावण के वंशज, क्या राम-राज्य लायेंगे ,
अपने सपने अपनों के द्वारा आज मिटाये जाते हैं ।
यह कैसा प्रजातन्त्र !

जो भीषण गर्मी से दूर योजनों रहते हैं,
जिनको न शीत कभी सताता है ।
क्षुधा की पीड़ा को जो नहीं जानते,
निगल जायें सौ-सौ को एक साथ ।
दुःखी, दरिद्र से ना उनका कोई नाता है ,
आज वही अच्छे नेता कहलाये जाते हैं ।
यह कैसा प्रजातन्त्र !

अब तो नेता जी के दर्शन भी दुर्लभ हैं,
हेरा फेरी से मिलता उनको अवकाश नहीं ।
चाटुकार जन उनको घेरे रहते हैं,
दीन दुखी जा सकते उनके पास नहीं ।
बिन पैसे हर-वस्तु सुलभ हो जाती है,
जनता का कष्ट न ये कभी समझ पाते हैं ।
यह कैसा प्रजातन्त्र गणतन्त्र ?
प्रजा-जन पग-पग पर यहां दबाये जाते हैं ।

युगद्रष्टा वीर सावरकर जी के हिन्दुत्व एवं हिन्दू राष्ट्र सम्बन्धी विचार एवं उद्गार

: २ :

पिछले लेख में मैंने विपक्षियों के आक्षेपों का उल्लेख किया था एवम् हिन्दूराष्ट्र के पक्ष की कुछ बातों की व्याख्या भी की थी। आज मैं अपने सहयोगियों की शंकाओं का समाधान करने का प्रयत्न करूंगा।

मेरे पास इस देश के अतिरिक्त विदेशों से हिन्दू बन्धुओं के पत्र आये हैं, नैपाल, मारीशस, ब्रिटिश-ग्याना, श्रीलंका एवम् अफ्रीका के हिन्दूधर्मावलम्वी सभी मतों के लोग इसमें हैं। वैदिक आर्य समाजी, वैदिक सनातनी एवम् बौद्ध भिक्षु भी। जब मैं हिन्दू महासभा अध्यक्ष के नाते इन वर्षों में देश के सभी अंचलों में गया तो सिक्ख, जैनी एवम् ऐसे भी सज्जनों से बातें की हैं जो क्षेत्रीय कुछ मान्यताओं या भाषाओं के आधार पर किसी दूसरे राजनैतिक या सामाजिक संगठनों की भूमिका बांधे हुए हैं।

मुझे बड़ा हर्ष है कि हर स्थान पर मुझे इस भावात्मक हिन्दू एकता का—दिग्दर्शन हुआ है। यह प्रश्न दूसरा है कि मेरी मान्यता के अनुसार राजनैतिक दृष्टि से हिन्दू एकता का प्रादुर्भाव नहीं हो रहा, किन्तु मेरी इस परिभाषा कि 'भारत से उत्पन्न प्रत्येक विचार पक्ष को हिन्दुत्व कह कर माना जाय' को सभी ने स्वीकार किया है, मेरी इस उक्ति का भी किसी ने खण्डन नहीं किया कि भारत शब्द प्रिय होने पर भी हिन्दू शब्द से अधिक व्यापक नहीं है। ये सब बातें अधिक प्रचार प्रसार से स्थिर होती हैं। हिन्दू दृष्टि से ऐसा प्रयास एक लम्बे समय से नहीं हुआ। अतः हिन्दुत्व के बारे में विदेशियों द्वारा फैलाये गये भ्रम ही स्थिर होते गये।

इन पत्रों में किये गये प्रश्नों का सारांश एवम् उद्देश्य लगभग मिलते-जुलते ही हैं। वास्तव में ये शंकायें भी नहीं बल्कि उद्गार हैं, जिनसे विरोध नहीं, आत्मीयता ही प्रतीत होती है।

नैपाल के बन्धु ने पूछा है कि क्या हिन्दूराष्ट्र संसार में एक ही हो सकता है ? क्या वह एक मात्र भारत ही या अन्य देश भी ? ब्रिटिशग्याना एवम् श्रीलंका के मित्रों ने यह कहा है कि उनका विचार था, हिन्दुत्व आपका यह ग्रन्थ हिन्दू धर्म की मीमांसा या धर्म शास्त्र जैसी कोई आध्यात्मिक कृति होगी। मारीशस के मित्र ने कोई शंका न उत्पन्न करके, इस बात की सम्पुष्टि ही की है कि मैंने मूलाधार हिन्दूराष्ट्र के स्थान पर हिन्दुत्व को ही दिया है। यह एक विशाल एवम् प्रगतिशील दृष्टिकोण है। —हिन्दुत्व के आधार पर ही यदि हिन्दुस्तान में, जो हिन्दू धर्म का उद्गम स्थान है, उसमें हिन्दूराष्ट्र की पुर्नस्थापना की कल्पना के हेतु जो राजनैतिक, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि हिन्दुत्व पुस्तक में शृंखलावद्ध है, उसकी विवेचना में आप सफल रहे हैं। आपने जैसे अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ १८५७ के स्वातंत्र्य समर में उसके प्रथम परिच्छेद में ही स्वधर्म के बिना स्वराज्य का कोई स्वरूप नहीं (Swaraja without swadharma is baseless) आपकी उसी दृष्टि से इनकी विवेचना भी बड़ी श्रेयस्कर है।

नैपाल के सज्जन भी स्वयं ही अपनी शंका का निवारण अपने पत्र में करते हैं–(जिसका स्वयं ध्यान उनको आया कि नहीं) कि आपने हिन्दू की परिभाषा में मातृभूमि शब्द के स्थान पर पुण्य एवम् पितृभूमि रक्खा है। यह अच्छा लक्षण है। व्याख्या बड़ी सार्वभौम हो गई है और पत्र बड़ा कलात्मक है। किन्तु फिर भी नैपाल के बन्धु के मन में यह शंका कैसे उत्पन्न हुई कि हिन्दुस्तान को ही हम हिन्दूराष्ट्र मानते हैं, जबकि विपरीत ही हो रहा है कि हिन्दुस्तान ही आज अहिन्दुस्तान बना हुआ है एवम् नैपाल ही केवल स्पष्ट रूप से स्वतंत्र नैपाली हिन्दूराष्ट्र एवम् हिन्दू राज्य है। हम तो बौद्धों को भी हिन्दू मानते हैं। जापान इत्यादि भी बौद्ध हिन्दू राज्य हैं। ऐसे देशों की स्पष्ट स्वीकारोक्ति भी तब सम्भव हो जायगी यदि यहां भारत में हिन्दू राष्ट्र ही नहीं, हिन्दू राज्य का हमारा स्वप्न साकार हो जाय तो। हम हिन्दुत्व को जब एक विचारधारा मानते हैं, तब यह स्पष्ट हो गया कि उसके आधार पर बना हिन्दू राष्ट्र भारतीय एवम् हिन्दुस्तानी राष्ट्र की तुलना में अधिक व्यापक सिद्ध होगा। मानव सम्पर्क के नाते भी कोई बाहर का व्यक्ति—भारतीय या हिन्दुस्तानी नहीं बन सकता, किन्तु संसार का प्रत्येक मनुष्य हिन्दू बन सकता है। अतीत में भी बना है। तब हम विचारों की कसौटी पर कांट-छांट करते हैं किन्तु क्षेत्रीय राष्ट्रवाद से तो समूचे मानवीय पक्ष की ही अवहेलना होती है यह इसकी मूल त्रुटि है। वस्तुतः हिन्दुत्व की तुलना में इसका कलेवर सीमित एवम् संकुचित है और जब संसार में आपका वैचारिक राष्ट्रवादों से टकराव,

होगा, आप अनुपात में एक छोटी एवम् सीमित स्थिति में होंगे, इसीलिए जब संसार में ईसाई, इसलामी एवम् आज साम्यवाद के आधार पर रूस (१९४२ में) अपनी विचारधारा का एक राष्ट्र है तो ५० करोड़ हिन्दुओं को भी अपने इस मूल निवास स्थान में हिन्दूराष्ट्र की नितान्त आवश्यकता है। क्योंकि भारतीय शब्द का विकास—विस्तार नहीं हो सकता। अतः वह गतिमान नहीं एक स्थिर (static) है। इसी कारण वह त्याज्य है, क्यों कि सिद्धान्त निरूपण के समय तो आपको एक उदात्त और एक व्यापक आधार को ही स्वीकार करना पड़ेगा। इसीलिये अन्य शब्दों की तुलना में हिन्दुत्व अधिक श्रेयस्कर है। हिन्दुत्व के हिन्दूराष्ट्र, हिन्दूधर्म, संस्कृति, हिन्दूइज्म इत्यादि शब्द विरोधी नहीं, बल्कि उसके सहायक एवम् अनुपूरक तत्त्व हैं। इसमें हिन्दू धर्म सबसे निकट है, किन्तु जो बल, तेज, विशालता हिन्दुत्व में मुझे प्रतिभासित होती है वह अन्य किसी शब्द में नहीं। विचार पक्ष के नाते ये राजनैतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक आर्थिक सभी तत्त्वों का ऐसा सन्तुलित सामजस्य जो इसमें है वह अन्य किसी में नहीं। किन्तु मुझे आश्चर्य है कि आज इसी शब्द के प्रति हिन्दुओं में क्यों इतनी उदासीनता एवम् हीन भावना उत्पन्न हो गई है, इसका निराकरण करना ही सभी हिन्दुओं का ध्येय होना चाहिए।

नये संरक्षक सदस्य

१. डा० लक्ष्मण राव आर्य, वैद्य शास्त्री,
आयुर्वेद विज्ञान शिरोमणि, आर. एम. पी.,
पो. नवीपेट जि. निज़ामाबाद (आंध्र)

२. श्रीमती लक्ष्मी देवी,
जी ६२५ सरोजिनी नगर,
नई दिल्ली

प्रतिक्रिया के शब्द

श्री उमाकान्त उपाध्याय बी. ए. आनर्स. जो. डी. सी. एस

(शाश्वत वाणी के जुलाई अंक में प्रकाशित श्री टेकचन्द शर्मा के लेख 'काश आज पण्डित जी होते' पर श्री उमाकान्त उपाध्याय ने जो पत्र हमें लिखा है, एवं अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है उसे हम यथायथ यहां प्रकाशित कर रहे हैं। पत्र एवं प्रतिक्रिया स्वयं में स्पष्ट होने से हम किसी प्रकार को टिप्पणी की आवश्यकता नहीं समझते। हां, प्रतिक्रिया का स्वागत अवश्य करते हैं।—सम्पादक)

'शाश्वत वाणी' के जुलाई अंक में प्रकाशित श्रीयुत पं॰ टेकचन्द जी शर्मा का विचारोत्तेजक लेख–"काश, आज पण्डित जी होते !" पढ़ा। जनसंघ की मिश्रित अर्थ-व्यवस्था, जाति-पांति, छूत-छात उन्मूलन सम्बन्धी समाघोषों तथा 'ईश्वर से भी जूझने' के उद्घोषों को देखकर यह कैसे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये कार्लमार्क्स के आस-पास के ही हैं और भारतीयता इनमें कुछ भी नहीं।

जनसंघ जिन मानसिक उलझनों से होकर गुजर रहा है, अवश्य ही असन्तोषजनक तथा क्षोभकारी हैं। उसकी स्थिति द्विधाग्रस्त शार्दूल की-सी हो रही है। वह अपने लक्ष्यों को तत्परता, तेजी, तथा स्पष्ट रूप से प्रकाश में नहीं ला रहा, यह सह्य नहीं है।

राष्ट्रीय उन्नयन में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का महत्त्व-पूर्ण योगदान होता है। वस्तुतः ये चारों तत्त्व अन्तः सम्बन्धित हैं और देश के भविष्य की प्रगति के दिशा-संकेतक हैं। राजनैतिक अभ्युत्थान के लिए आर्थिक एवं सामाजिक न्याय का स्थापित होना जितना आवश्यक है, उतनी ही आर्थिक एवं सामाजिक न्याय की रक्षा के लिए राजनैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना भी आवश्यक है। क्योंकि आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक समानताओं से व्यक्ति के शरीर का विकास होता है। सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना से व्यक्ति का नैतिक एवं मानसिक धरातल ऊंचा उठता है।

किन्तु एक बात यह गौर कर लेने की है कि आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना राजनैतिक शक्ति के अधीन होती है। और यह शक्ति प्रजातंत्र में राजनैतिक दलों के पास होती है। अधिकांश दलों पर समाजवादी या साम्यवादी रंग चढ़ा हुआ है। यह सही है कि समाजवाद के आर्थिक तथा सामाजिक कार्यक्रम बाहर से क्रान्तिकारी और आकर्षक हैं। पर यह भी सही है कि समाजवादी व्यवस्था में व्यक्ति का केवल एकांगी विकास होता है, सर्वांगीण नहीं। समाजवादी व्यवस्था में शरीर के लिए व्यवस्था तो होती है, आत्मा के लिए नहीं, क्योंकि उसे नैतिक, साँस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों में कोई आस्था नहीं होती।

इसलिए जब हम समाजवाद की चर्चा करते हैं तो सर्व प्रथम हमें उसकी मूल स्थापनाओं को समझ लेना चाहिए। समाजवाद की भित्तियाँ हैं —वर्ग संघर्ष, भौतिकवादी दृष्टिकोण तथा नियन्त्रण की अतिशयता। नियंत्रण की उग्रता इतनी तीव्र है कि व्यक्ति को रोटी के बदले वह उससे नैतिक, आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन की स्वतंत्रता तक का अपहरण कर लेता है। वह नागरिकों के शारीरिक विकास के लिए योजना बनाते समय उसकी आत्मा के लिए भी योजना बनाने लगता है। समाजवाद को समाज में आर्थिक समानता के लिए यह अधिकार नहीं दिया जा सकता कि वह यह भी कानून बनाए कि एक व्यक्ति कितनी शादी करे, कितनी बार स्त्री प्रसंग करे और कितने बच्चे पैदा करे। समाजवाद यह कानून तो बना सकता है कि व्यक्ति कितनी सम्पत्ति रखे, सम्पत्ति किस प्रकार अर्जित करे; लेकिन कानून यह नहीं हो सकता कि वह अपनी अर्जित-सम्पत्ति का कितना खर्च करे, और किस प्रकार खर्च करे? समाजवाद यह सब करना चाहता है। इससे व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अपहरण होता है।

और साम्यवाद का तो कहना ही क्या? वहाँ सिवा रोटी की सुविधा के और कोई सुविधा ही नहीं है। वह रोटी भी अपनी इच्छानुसार नहीं, सरकारी इच्छा पर निर्भर है। वहां मानव का मेकेनाइजेशन होता है। और उस मानव की सन्तान भी मेकेनाइज्ड। वहां व्यक्तिगत सम्पत्ति की छूट नहीं होती। बल्कि उस पर सामूहिक नियंत्रण होता है। इससे उत्पादन घटता है। उत्पादन घटने से राष्ट्रीय ऋण बढ़ता है। इससे राष्ट्रीय सम्मान और पौरुष का पतन होता है। लोगों का मनोबल गिर जाता है, उनका पतन और परतंत्रता निश्चित होती है।

आज यही कुछ रूस में हो भी रहा है। यदि वहां विचार स्वातंत्र्य तथा प्रेस पर प्रतिबन्ध न होता तो यह रहस्य सबको विदित हो गया होता कि

किस प्रकार धीरे-धीरे रूस आर्थिक परतंत्रता की ओर बढ़ता जा रहा है। और आज उसे अपने शत्रु से ही लेकर खाना पड़ रहा है।

इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि आर्थिक क्षेत्र में समाजवादी कार्यक्रम बड़े क्रान्तिकारी हैं। उनमें केवल बाहरी रौनक है। भीतर से उसमें खोखलापन है। समाजवादी सिद्धान्तों के इस खोखलेपन को यदि आम जनता समझ गई तो भारत में क्या दुनियां के किसी भी देश में समाजवाद या साम्यवाद टिक नहीं सकता। जहाँ टिक सका है, वहाँ से भी इसका बोरिया बिस्तर गोल होना ही है। यह बात जरूर है कि इसकी बुराइयों के प्रकट होने में और उनके परिणामों को समझने में समय मिलेगा।

कम्युनिस्ट कार्यक्रमों से जनसंघ के कार्यक्रमों की तुलना करना और यह कहना कि जनसंघ का कार्यक्रम कम्युनिस्ट कार्यक्रम के मुकाबले कुछ नहीं है —सही नहीं है। जनसंघ के कार्यक्रमों में जहाँ मानव के शरीर पक्ष के विकास का स्थान है, वहाँ उसके आत्मिक और मानसिक विकास व चिन्तन के लिए भी स्थान है। वह मानव के नैतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के विकास में आस्था रखता है। **यह बात और है कि जनसंघ के नेता और कार्य कर्ता अपनी आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थापनाओं का जगत व्यापी प्रचार नहीं कर रहे हैं, और उसके महत्त्व का प्रतिपादन नहीं कर रहे हैं। साथ ही वे अपने असली रूप में दुनियां के सामने उभड़ कर आने से भी कतरा रहे हैं। कुछ तो अपने विराट् रूप को कभी कभी प्रकट भी कर देते हैं-पर कुछ दूसरे उस पर लीपा-पोती का कार्य करते रहते हैं।**

आर्थिक समानता और सामाजिक समानता के सिद्धान्त साम्यवाद या समाजवाद की बपौती नहीं हैं—यह भारतीय संस्कृति की देन है। जब समाजवाद का जन्म भी न हुआ था, उस युग में मनुष्य मनुष्य के बीच समता का सम्बन्ध था। एक दरिद्र उतना ही सुखी व स्वतत्र था, जितना आकण्ठ वैभव में निमग्न चक्रवर्त्ती सम्राट। प्राचीन भारतीय राजतंत्र आधुनिक समाजवादी प्रजातंत्र से समुन्नत थे।

तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में जाति-पांति, छुआछूत, ऊंच-नीच का रोग नहीं था। यह तो मध्य-ऐतिहासिक काल की उपज है, कोई सामाजिक विधान नहीं।

गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर वर्ण-व्यवस्था जरूर थी। किन्तु इसमें छुआछूत तथा अस्पृश्यता को स्थान नहीं था। भारतीय समाज का जातियों और उपजातियों में विभाजन शास्त्रोत्तर काल की देन है। इसलिए छूत-अछूत जांति-पाँति को सहन नहीं किया जा सकता।

मानव सन समान हैं। इसलिए सबको समान सुविधा, समान अवसर मिलना ही चाहिये। जाति-पाँति, छूत-अछूत का अड़ंगा समाप्त होना चाहिये। इसलिए जनसंघ जब इनके उन्मूलन का समाघोष लगाता है तो उसमें सच्ची भारतीय संस्कृति की गन्ध होती है। उसमें समाजवाद ढूँढना सही नहीं है। यह सही है कि ये कार्यक्रम समाजवाद के भी हैं, लेकिन इनके पीछे मूल भावना व आधार की खोज होनी चाहिए। समाजवाद का मूलाधार घृणा-विद्वेष पर आधारित, सामूहिक नियंत्रण तथा वर्ग संघर्ष से पीड़ित आर्थिक व्यवस्था है। जबकि जनसंघ के कार्यक्रमों का लक्ष्य नैतिकता, स्वप्रेरित सहयोग सहिष्णुता पर आधारित एक आध्यात्मिक समाज की रचना है।

जाति व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था एक ही चीज नहीं है। जाति व्यवस्था का आधार घृणा है। वर्ण व्यवस्था का आधार गुण, कर्म, स्वभाव हैं। जाति-पांति को उन्मूलित किया जा सकता है। पर व्यक्ति व्यक्ति में जो उनके गुणों, स्वभावों और कर्मों में अन्तर होता है, उसे नहीं मिटाया जा सकता है। और यह तर्क कि जूता बेचने वाले ब्राह्मण को चर्मकार और हरिजन प्रोफेसर को ब्राह्मण क्यों न कहा जाय ? तो इसका निर्णय इस बात से होना चाहिये कि वर्ण व्यवस्था एक आध्यात्मिक, सामाजिक व्यवस्था थी। आधिदैविक और आधिभौतिक विद्याओं के विद्वानों को ही ब्राह्मण कहा जाता था। आसुरी विद्याओं के जानकार ब्राह्मण नहीं होते थे। विद्या के साथ-साथ त्याग, तपस्या संयम, सन्तोष और सहिष्णुता तथा सदाचरणशील जीवन भी आवश्यक है। विद्वान होते हुए भी कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता जब तक उसमें दूसरे सारे सद्गुण और सुसंस्कार न पाये जायँ। रावण का उदाहरण सर्व विदित है। वशिष्ठ से विश्वामित्र का संघर्ष मुख्यत: संस्कारों का ही संघर्ष था।

भारतीय संस्कृति में व्यक्तिगत सम्पत्ति का विरोध नहीं है लेकिन survival of the fittest में भी उसका विश्वास नहीं है। उसकी निष्ठा वर्ग सहयोग और वर्ग साहाय्य में है। इसलिए आज के प्रजातंत्र में व्यक्ति को अबाध और असीम सम्पत्ति रखने की छूट नहीं दी जा सकती। क्योंकि वह पाश्चात्य विचार धाराओं एवं मध्य ऐतिहासिक काल की संस्कृतियों की चका-चौंध में–"कामये दुःखतप्तानाम् प्राणिनामार्ति नाशनम्" भूल चुका है। इस लिए वह निर्बाध सम्पत्ति का अधिकार भी खो चुका है। अतएव सीमित सम्पत्ति का अधिकार वर्ग संघर्ष को टालने और वर्ग सहयोग को बढ़ावा देने का आधार बिन्दु है। और इस व्यवस्था की आत्मा भारतीय संस्कृति के

पास ही है, कार्ल मार्क्स के पास नहीं।

भारत में समाजवाद का आना या न आना इस बात पर निर्भर करता है कि उसके विरोध में राष्ट्रवादी शक्तियां क्या कुछ करती हैं। निश्चय ही जनसंघ की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो सकती है यदि वह अपने विशुद्ध रूप में कार्य करे और हिन्दू राष्ट्र में जागृति ला सके। जिस प्रकार हिन्दू संस्कृति अन्य संस्कृतियों का चर्वण कर गई, उसी प्रकार इस समाजवाद को भी अपना ग्रास बना ले सकती है। आवश्यकता है अपनी इस मूल भावना व मूल लक्ष्यों को अनावृत रूप से ईमानदारी के साथ दल के भीतर प्रशिक्षित करने की और दल के बाहर इनके प्रचार की। उसी लगन और निष्ठा से जिससे कि साम्यवादी अपने लक्ष्यों और सिद्धान्तों का (प्रचार) करते हैं।

किन्तु आज दल के भीतर ऐसे ही लोग ज्यादा हैं जो दल के सिद्धान्तों और लक्ष्यों को ठीक-ठीक नहीं समझते। और दल में भी समझाने की कोई व्यवस्था नहीं। अधिकांश लोग धर्मवाद और हिन्दुत्व के आकर्षण से ही इसमें आये हैं। आने के वक्त उनके दिमाग में यह बात होती है कि हिन्दूराष्ट्र के लिए, धर्म व्यवस्था के लिए इसके पास उत्साहपूर्ण कार्यक्रम होंगे। बाद में उन्हें निराशा होती है कि वैसा वहां कुछ भी नहीं बताया जाता। और यह सर्व विदित है कि ध्येय की पवित्रता और आदर्श की उच्चता को बिना जाने दल में निष्ठा नहीं उत्पन्न होती। दल परिवर्तन का रोग भी इसी निष्ठा-हीनता का परिचायक है।

अल्प संख्यकों को साथ रखने और हिन्दू राष्ट्र विरोधियों को सन्तुष्ट रखने की नीति कांग्रेस की तुष्टीकरण नीति से पृथक नहीं मानी जा सकती। इतिहास साक्षी है,—हमने कितनी ही ईदें और कितने ही मुहर्रम मना कर देख लिए हैं पर कोई हमारा नहीं हुआ। उलटे हमारे अपने लोगों को ही हम से छीनता रहा। अब होली-दीवाली मनाने के लिए हम अकेले ही काफी हैं। यह चेतना जाग्रत होनी चाहिए। क्योंकि देवों का असुरों से कभी मेल नहीं हुआ।

हम अपने इस विशुद्ध रूप को दूसरे दलों में मिला कर बचा भी नहीं सकते। साथ ही इससे अपने महापुरुषों की तपस्या और हिन्दू जनता की आशा को आघात लगेगा। जनसंघ से सारे हिन्दू राष्ट्र को आशा है और उस पर गर्व भी। इसलिए उसमें कोई दल अपनी सत्ता विलीन करे और उसके लक्ष्यों को ईमानदारी से मानने का बचन दे तो यह माननीय हो सकता है। अन्यथा दूसरे दलों में उनके कार्यक्रमों को मानते हुए अपनी सत्ता का विलय करना जनसंघ की १८–१९ वर्षों की तपस्या को लात मारने और हिन्दू जनता की आशाओं पर तुषारपात करने के बराबर ही होगा। * * *

चन्द्रलोक की प्रथम यात्रा

श्री आदित्य

२१ जुलाई सन् १९६९ तदनुसार आषाढ़ शुक्ला सप्तमी विक्रम सम्वत् २०२६ भूलोक के इतिहास में चिरस्मरणीय दिवस रहेगा। इस दिन प्रातः (भारतीय समय के अनुसार) इस भूलोक के मानव ने चन्द्र की भूमि पर पग रखा था।

इस घटना की कल्पना कब से की जा रहीहै यह बत ाना कठिन है। बहुत प्राचीन काल से बालक चन्द्र लोक पर बैठी चर्खा कात रही सुन्दरी से विवाह की अभिलाषा करते रहे हैं, परन्तु इस घटना का पूर्व रूप तो एक फ्रांस के उपन्यासकार जूलियस वर्न ने From Earth to Moon नाम के उपन्यास में सन् १८६५ में दिया था।

वास्तव में यह घटना मनुष्य की उस अन्तर प्रेरणा का ही परिणाम कही जा सकती है, जिससे प्रेरित हो मनुष्य ऐवरेस्ट की चोटी पर चढ़ने का यत्न करता रहा है अथवा छोटे से जहाज पर सवार हो अज्ञात सागर में कोलम्बस हिन्दुस्तान के सागर का मार्ग ढूंढने चल पड़ा था अथवा मनुष्य दक्षिणी और उत्तरी ध्रुवों पर पहुंचने का यत्न करता रहा है। यह प्रेरणा भारतीय शास्त्रों के अनुसार आत्मा को परमात्मा से मिलाने की उत्कट इच्छा के अनुरूप ही है।

वेदों में एक मन्त्र है, जिसमें यह वर्णन किया गया है कि आत्मा और परमात्मा सजातीय सखा और परस्पर सहचारिता रखने की इच्छा वाले तत्त्व हैं। ये दोनों सखा एक दूसरे से मिलने की इच्छा में लीन रहते हैं। जीवात्मा की इस इच्छा का ही परिणाम है कि यह परमात्मा से निर्मित रहस्यों को जानने के लिए निरन्तर नया से नया प्रयत्न करता रहता है।

कभी मनुष्य यह नहीं जानता कि वह क्यों दक्षिण ध्रुव पर जा रहा है, जहां की सर्दी में मनुष्य का रक्त बर्फ की भांति जम जाता है अथवा वह हिमालय की सबसे ऊंची चोटी पर चढ़ने का यत्न क्यों कर रहा है, जहां सांस लेने के लिए वायु भी नहीं है? इस पर भी वह अन्तरप्रेरणा से प्रेरित यत्न कर रहा है।

यह कहा जाता है कि जीवात्मा अपने सखा सजातीय को ही ढूंढता हुआ भटकता फिरता है।

उस तक पहुचने के दो मार्ग हैं। एक तो मार्ग है उसकी बनी इस अद्भुत सृष्टि के रहस्यों की खोज कर उसके विषय में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करना। एक दूसरा मार्ग भी है। कदाचित् जब मानव यह अनुभव कर लेता है कि यह दृश्य जगत् उसे अपनी यात्रा के शतांश से भी कम पड़ाव तक ही ले जाने में सक्षम है तो वह इस दुरूह मार्ग को छोड़ उस सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी सखा को ढूंढने के लिए जगत् की चौथी विभा (dimension) में प्रवेश करने का यत्न करता है। वह उस उद्देश्य को अन्तर्चक्षुओं से देखने का यत्न करता है। इसे हमारे शास्त्र में अध्यात्म का मार्ग कहते हैं।

कुछ भी हो, जगत् की खोज के मार्ग से उस अवर्णनीय को ढूंढने का, वैज्ञानिकों का २१ जुलाई वाला प्रयास, अभूतपूर्व और अद्वितीय है।

आज से १२ वर्ष पूर्व रूस निर्मित एक यान में यूरी गैगरीन नामक हवाबाज़ ने पृथिवी के आकर्षण क्षेत्र से बाहर होकर उड़ान की थी। इस दिशा में रूस भूमण्डल के सब देशों से आगे था। उस समय एक रूसी अधिकारी ने यह घोषणा की थी—In the interstellar search, which is being carried by U. S. S. R. and U. S. A., it has become clear that Socialism provides a better launching pad than any capitalistic system.

अर्थात्—-अन्तरिक्ष के कार्यक्रमों ने जो संयुक्त राष्ट्र अमरीका और संयुक्त राष्ट्र रूस द्वारा चलाये जा रहे हैं, यह स्पष्ट रूप में प्रकट कर दिया है कि समाजवादी ढांचा इस प्रकार के कार्यक्रम के लिये पूंजीपति ढांचे से श्रेष्ठ साधन उपस्थित कर रहा है।

परन्तु दुनियां ने आज देख लिया है कि उस कार्यक्रम का और वस्तुतः सन वैज्ञानिकों के और तकनीकी उन्नति के कार्यों का सम्बन्ध राजनीति तथा आर्थिक प्रपंचों से नहीं, वरंच मनुष्य के व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रयत्नों का फल है। व्यक्ति विचार निर्माण करता है और फिर समाज उसको कार्यान्वित करता है। वैज्ञानिक उन्नति में व्यक्ति ही मुख्य है, समाज का ढांचा नहीं। समाज तो सदा स्वतन्त्र व्तक्तियों के पीछे रहा है और रहेगा। कभी मानवीय दुर्बलताओं के कारण स्वतन्त्र मानव एक दूसरे का विरोध करने लगते हैं तथा पशुओं के झुण्ड गड़रियों से हांके जाते हुए आगे निकल जाते हैं, परन्तु अन्तिम विजय स्वतन्त्र मानव तथा उनके समाज की ही होती है।

कुछ भी हो, जब ऐपोलो ११ उड़ता हुआ चान्द पर पहुंचा तो रूस का लूना १५ वहां पहले ही पहुंचा हुआ था। यह कहा जाता है कि वह तब तक

चांद पर मण्डराता रहा, जब तक ऐपोलो ११ का ईगल डोंगा चान्द के तल पर उतर नहीं गया। बाद में उसने भी उतरने का यत्न किया, परन्तु वह चान्द के तल से इतने जोर से टकराया कि चकनाचूर हो गया। यह तो रूसी वैज्ञानिकों की बुद्धिमत्ता का प्रमाण है कि उनके लूना १५ में कोई मनुष्य सवार नहीं था।

ऐपोलो ११, १६ जुलाई प्रातः ६-३२ पर पृथ्वी से चल कर जब चान्द से ३००० फुट की ऊंचाई पर रह गया तो वह चान्द के चारों ओर चक्कर काटने लगा और इसका चान्द पर उतरने वाला गण्डोला मुख्य यान से पृथक हो गया। गण्डोले का नाम ईगल था और मुख्य यान का कोलम्बिया। कोलम्बिया नाम जूलियस वर्ने के उपन्यास के यान कोलम्बनायड के नाम पर रखा गया था।

ईगल २१ जुलाई को चांद के धरातल पर उतरा। उसमें नील आर्मस्ट्राग तथा ऐविन ऐल्डरिन चान्द की भूमि पर उतरे। ये वहां कई घण्टे तक रहे। वहां उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका का झण्डा गाड़ दिया और वैज्ञानिक यन्त्र गाड़ दिये। वहां की मिट्टी और पत्थर के टुकड़े लेकर वे अपने गण्डोले में रख उड़ कर वापिस मुख्य यान के साथ आ मिले। २४ जुलाई की रात को ये प्रशान्त महासागर में उतरे।

यह अभूतपूर्व कार्य जो अमरीका के खर्बों (कई मिलियन डालर) के व्यय से सम्पन्न हुआ है, मानव जति के स्मरण इतिहास में सर्वोत्कृष्ट चमत्कार ही माना जायेगा। अपोलो ११ में १५,००,००० पुर्जे लगे थे और यह चार भागों में था। चारों भाग जब खड़े थे तो इनकी ऊंचाई ३५० फुट थी। लगभग कुतुब की मीनार के बराबर ऊंचा था। इसका भार ६४,८४,२८० पौण्ड था। इतने बड़े यान में बहुत सा भाग तो उस पदार्थ को लिये हुये था, जिसके जलने से यह महान् यान भूमि से उड़ कर ऊपर गया था।

एपोलो का एक भाग भूमि के तीसरे चक्कर में फेंक दिया गया था। दूसरा भाग ईगल जब चाँद की सतह से उड़कर मुख्य यान से मिला तथा इसके यात्री एवं चांद से लाये पदार्थ मुख्य यान में गये तो उसे भी पृथक कर दिया गया और मुख्य यान पृथ्वी की ओर बढ़ने लगा। तीसरा भाग पृथ्वी के समीप लौटने पर अलग कर फेंक दिया गया और चौथा भाग अन्तरिक्ष यात्रियों को तथा अन्य पदार्थों को लेकर पृथ्वी पर पैराशूटों की सहायता से उतरा। उस समय इसका भार केवल कुछ सहस्र पौण्ड ही था।

इस यात्रा ने संयुक्त राज्य अमेरिका के मान में भारी वृद्धि की है। यों तो मानव जाति की प्रकृति पर भारी विजय है, परन्तु यदि इस की तुलना

ब्रह्माण्ड से की जाये जो प्रकृति से भर रहा है तो यह विजय नगण्य ही रह जाती है ।

चान्द पृथ्वी से ढ़ाई लाख मील के लगभग दूर है । सूर्य पृथ्वी से ९ करोड़ तीस लाख मील की दूरी पर है । ब्रह्माड के कई ऐसे नक्षत्र हैं, जो पृथ्वी से इतने दूर हैं कि उनका अन्तर सौर वर्षों में लिखना कठिन है । उनका अन्तर प्रकाश वर्षों में लिखा जाता है । एक प्रकाश वर्ष १,८६,३०० × ६० × ६० × २४ × ३६० मील के बराबर होता है और ऐसे नक्षत्र हैं जो पृथिवी से ३,००० प्रकाश वर्षों के अन्तर पर हैं ।

इससे मनुष्य का यह करतब जो हम मानवों के लिए अद्भुत और चमत्कारक प्रतीत होता है, वह ईश्वर द्वारा रचे जगत् की तुलना में कुछ भी गणना नहीं रखता ।

इस पर भी यह अभूत पूर्व तो है । चान्द के विषय में कई विचार हैं कि यह कब और कैसे वना ? इस रहस्य के विषय में वहाँ से लाये गए पत्थर कुछ बतायेंगे । इससे ज्ञान की वृद्धि होगी ।

अभी तो चान्द की आयु और निर्माण के विषय में दो मुख्य विचार है। एक तो यह कि यह पृथिवी का वह भाग है जो टूट कर दूर जा पृथ्विवी के चारों ओर धूम रहा है । इस विचार के अनुसार वर्तमान ज्योतिषी यह कहते हैं कि पृथिवी को बने ४,५०,००,००,००० (चार अरब पचास करोड़) वर्ष हुए है । इस स्थान पर भारतीय ज्योतिषियों की गणना से पृथिवी की रचना काल बताना भी ठीक होगा । ब्रह्म दिन को १,९६,००,००,००० (एक अरब छयानवे करोड़) हो चुके हैं और पृथिवी को बने १९,२६,००,००० (उन्नीस करोड़ छब्बीस लाख) सौर वर्ष हो चुके हैं ।

वर्तमान वैज्ञानिक ज्योतिषियों की गणना से चान्द को पृथिवी से अलग हुए लगभग (३,००,००,००,०००) तीन अरब वर्ष हुए हैं । भारतीय ज्योतिषियों के अनुमान से चान्द को अलग हुए लगभग १,००,००,००,००० (एक अरब) वर्ष हुए हैं ।

परन्तु चान्द के विषय में कई वैज्ञानिक उक्त विचार को नहीं मानते । वे कहते हैं कि चान्द पृथिवी का पुत्र नहीं, वरंच यह बहुत छोटे-छोटे नक्षत्रों के किसी कारण से एकत्रित हो जाने और उनके पृथिवी के चारों ओर घूमने लग जाने के कारण बना है ।

कुछ भी हो, वैज्ञानिक कुछ न कुछ विचार इस विषय में बतायेंगे । अभी से बहुत आशायें बांधी जा रही हैं ।

समाचार समीक्षा

वोल्गा से गंगा तक :

राष्ट्रपति के निर्वाचन का बड़े नाटकीय ढंग से पटाक्षेप हुआ। राजनीति निपुण भविष्यवक्ताओं के पूर्वानुमान, दृढ़ धारणायें, अंकगणित का लेखा-जोखा सब गलत सिद्ध हुए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्री गिरि की विजय बहुत ही अल्पमतों से हुई है। इससे उनके विपक्षी जन भले ही सान्त्वना प्राप्त कर लें किन्तु राष्ट्रपति पद तो इससे उनके हाथ में नहीं आ जाता। भविष्य में इस विजय का परिणाम जो भी खेल खिलाये, इतना निश्चय है कि किंवदन्तियों के अनुसार एक बार तो २१ अगस्त से पूर्व ही संसद भंग कर देश में जो राष्ट्रपति शासन लागू होने वाला था, वह कुछ काल के लिये टल गया है। कितने काल के लिये ? यह भविष्य स्पष्ट करेगा।

राष्ट्रपति निर्वाचन के परिणामों के विश्लेषण में श्री गिरि की विजय को देवी इंदिरा की विजय और श्री रेड्डी की पराजय को कांग्रेस दल की पराजय माना जा रहा है। एक ओर एक और दूसरी ओर पूरा दल। किन्तु क्या तथ्य यही है ? नहीं। तथ्य इसके विपरीत है। वह यह है कि एक ओर देवी इंदिरा, भारत के सभी देशद्रोही राजनैतिक दल एवं व्यक्ति, संसार के सभी वामपन्थी दलों का नैतिक सहयोग एवं प्रोत्साहन और सबसे बढ़ कर विदेशी धन का बाढ़ के पानी की भांति गिरि के पक्ष में प्रवाह। और दूसरी ओर केवल मात्र विघटित कांग्रेस दल और कुछ उसके बिखरे हुए अन्य-मनस्क समर्थक।

चुनाव परिणाम और मतों की गणना के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है। देवी इंदिरा ने श्री गिरि की विजय के तुरन्त बाद कहा था कि जब सारी दुनिया के सामने इस बात का प्रचार किया जा रहा था कि प्रधानमन्त्री के नेतृत्व ने समर्थन खो दिया है तो उनके सामने सिवाय इसके कोई चारा ही नहीं रह गया कि वे भी अपना करिश्मा दिखावें। उनका कहना था कि श्री रेड्डी को उनकी इच्छा के विरुद्ध राष्ट्रपति पद के लिये कांग्रेसी उम्मीदवार बनाया जाना केवल उनको अपमानित करने के उद्देश्य से किया गया था। देवी इंदिरा ने यह भी कहा कि उन्होंने पुराने नेताओं को सर्वहारा वर्ग की मदद से चुनौती दी है।

श्री गिरि की विजय के तुरन्त बाद मास्को रेडियो से इस समाचार का हर्षोल्लासपूर्वक प्रसारण, रूसी सरकार के सरकारी समाचार पत्र 'प्रावदा' का विशेष अग्रलेख एवं सर्वप्रथम श्री गिरि की विस्तृत जीवनी का प्रकाशन आदि-आदि अनेक तथ्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि वोल्गा के गंदले जल

के निर्मल गंगा में प्रबल प्रवाह द्वारा ही देवी इंदिरा के विरोधियों को पराजित किया गया है ।

कांग्रेस कार्य समिति की २५ अगस्त की बैठक शान्त वातावरण में सम्पन्न हुई और उसी प्रकार श्मशान की शान्ति से दो प्रस्ताव पारित कर तथा कांग्रेस दल को संकट-मुक्त घोषित कर विसर्जित हो गई । इससे पूर्व कार्य समिति की बैठक की तिथियां २२ तथा २३ अगस्त के लिये निर्धारित की गई थीं । किन्तु उसको जब २५ अगस्त के लिये स्थगित किया गया तो सभी बुद्धिशील लोगों ने अनुमान लगा लिया था कि 'सिण्डीकेट' तथा 'इण्डिकेट' में से कोई भी इस समय शक्ति परीक्षण के लिये उद्यत नहीं है । बैठक से पूर्व जिस प्रकार दोनों गुटों द्वारा परस्पर की छीछालेदर तथा दोषों का आरोपण एवं प्रत्यारोपण किया जा रहा था उससे ही यह स्पष्ट था कि मनों के गुबार बैठक से बाहर ही निकाल कर वहां शान्ति से समझौते की खिचड़ी पकाई जायगी ।

किन्तु क्या कार्यसमिति के सर्वसम्मत स्वीकृत प्रस्ताव सिण्डीकेट की स्पष्ट पराजय के सूचक नहीं हैं ? हमारे लिये सिण्डीकेट की जय-पराजय का इतना महत्व न होता यदि शासन की बागडोर गलत हाथों में न जाती । स्पष्ट है कि शासन की बागडोर इस समय पूर्णतया देवी इंदिरा के हाथों में है । और भी स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो वह मेनन के हाथों में है, कम्युनिस्टों के हाथों में है । इतना ही नहीं आज भारत का शासन रूस का कठपुतली शासन ही कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी ।

क्या सिण्डीकेट और देश के अन्य दक्षिणपन्थी कहे जाने वाले दल इस तथ्य की ओर ध्यान देकर स्थिति को सुधारने का संकल्प लेंगे ? कांग्रेस कार्यसमिति में मूर्खतापूर्ण प्रस्ताव पारित कर अपने सिद्धान्तों की बलि देकर देवी इंदिरा के चरणों में नतमस्तक सिण्डीकेट से अब किसी प्रकार की अपेक्षा रखना व्यर्थ है । दक्षिण पन्थी दल भी थोथी राजनीति के पलड़े में बैठकर सिण्डीकेट जैसी गति को ही प्राप्त हो गये हैं । आजीवन जो गांधी की नीतियों को देशघातक समझते रहे, नेहरू के कुकृत्यों की आलोचना करते रहे, वे ही आज नेहरू को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और गांधी पर उनके पत्रों के विशेषांक प्रकाशित होते हैं । वे देवी इंदिरा की कार्यविधि की आलोचना तो करते हैं किन्तु उसके साहस की दाद दिये बिना भी उनको चैन नहीं आता । मानो अपने पापों का प्रायश्चित्त कर रहे हों । किन्तु देश के प्रति किये गये पापों के प्रायश्चित्तस्वरूप वे क्या कर रहे हैं ?

प्रश्न फिर भी प्रश्न बना रह जाता है कि राष्ट्र का क्या होगा ? कौन उबारेगा इस डूबती नौका को ? क्या हिन्दू अब भी नहीं चेतेगा ? देश की

इस डगमगाती एवं निमग्नोन्मुख नौका को यदि कोई उबार सकता है तो वह केवल हिन्दू राष्ट्र-वाद ही है। आज देश को हिन्दूराष्ट्र-वाद एवं हिन्दुत्व-निष्ठ नेता की नितान्त आवश्यकता है।

समाजवाद एवं नेहरू परिवार :

गुजरात प्रदेश कांग्रेस की मुख पत्रिका 'कांग्रेस पत्रिका' ने प्रधानमन्त्री पर आरोप लगाया है कि वे पिछले पन्द्रह वर्षों से कांग्रेस दल के समाजवादी कार्यक्रम को क्रियान्वित करने में असफल रही है। पत्रिका का कहना है कि इन वर्षों में नेहरू परिवार ही प्रधानमन्त्री के पद पर आसीन रहा है और पिछले १५ वर्षों में श्रीमती गांधी इस स्थिति में रही हैं कि वे चाहतीं तो इस सम्बन्ध में जिम्मेदार व्यक्तियों को वे सलाह दे सकती थीं।

पत्रिका का कहना है कि पिछले २० वर्षों में सरकार पर हावी रहे लोगों से यह पूछा जाय कि उन्होंने प्रशासन इस भांति क्यों चलाया कि जिससे 'धनी और अधिक धनी तथा निर्धन और अधिक निर्धन' होते गये। कांग्रेस के चरचरे गुट के विषय में पत्रिका का कथन है कि जब उसने दस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम पर अमल न किये जाने के लिये मोरार जी भाई पर प्रहार किया तो प्रधानमन्त्री इस सम्बन्ध में आवश्यक स्पष्टीकरण देने में असफल रहीं। चरचरे गुट के प्रति प्रधानमन्त्री के मौन को महत्वपूर्ण बताते हुए पत्रिका ने कांग्रेसियों का आह्वान किया कि बैंकों के सरकारीकरण में उन्होंने इतना विलम्ब क्यों किया इसके लिये प्रधानमन्त्री से जवाब तलब किया जाय।

पत्रिका ने स्मरण कराया कि यह कांग्रेस की परम्परा रही है कि महत्वपूर्ण निर्णय पारस्परिक विचार-विनिमय के बाद लिये जाते हैं। परन्तु प्रधानमन्त्री ने बैंकों के राष्ट्रीयकरण और मोरारजी भाई से वित्त मन्त्रालय लेने के निर्णय जिस अशोभनीय जल्दबाजी में किये, उससे लगता है कि प्रधानमन्त्री तानाशाह बनती जा रही हैं। पत्रिका के सम्पादकीय में बंगलौर अधिवेशन में प्रधानमन्त्री द्वारा उठाये गये प्रश्न एकता किस लिये' की कटु आलोचना की गई। यही प्रश्न कम्युनिस्ट और उनके सहयोगी भी जो दिल से कांग्रेस को नेस्तनाबूद करना चाहते हैं, उठा चुके हैं। प्रधानमन्त्री को चेतावनी देते हुए पत्रिका ने कहा है कि कम्युनिस्ट सरकारी पूंजीवाद और तानाशाही में विश्वास रखते हैं इस लिये वे कांग्रेस के कुछ वारिष्ठ और पुराने नेताओं के विरुद्ध विषाक्त प्रचार कर रहे हैं। प्रधानमन्त्री को कम्युनिस्टों से 'प्रगतिशील व्यवहार' का प्रमाणपत्र पाकर प्रसन्न नहीं होना चाहिये। पत्रिका ने प्रधानमन्त्री पर आरोप लगाया है कि वह दूसरों को राष्ट्रीयकरण का विरोधी ठहराती हैं और स्वयं को 'निर्धन जनता की हिमायती' घोषित करती हैं। पत्रिका का कहना है कि अब तक **राष्ट्रीयकरण के दुःखद परिणामों से**

दुःखित समझदार लोग अनुभव करने लगे हैं कि महत्वपूर्ण प्रश्नों पर जल्दबाजी में नहीं अपितु बड़े गम्भीर और धैर्यपूर्ण विचार के बाद निर्णय किया जाना चाहिये। सरकारी क्षेत्र के संस्थानों में होने वाले भारी नुकसान पर भी पत्रिका ने बल दिया है।

उपरिलिखित समाचार किसी समीक्षा की अपेक्षा नहीं रखता। इतना हम अवश्य कहेंगे कि २५ अगस्त की कार्य समिति के निर्णय पर गुजरात कांग्रेस ने २६ की प्रातः तक तो किसी प्रकार की टिप्पणी करने से इन्कार कर दिया था किन्तु हम इतना भी जानते हैं कि इसी कांग्रेस पत्रिका के आगामी अंक में उस बैठक की कार्यवाही की पुष्टि अवश्य प्रकाशित होगी। क्या ऐसी कांग्रेस और उसके ऐसे नेताओं के हाथ में देश कभी सुरक्षित रह सकता है?

विदेशी मिशनरियों से दो शब्द :

अगस्त मास के मध्य में शिमला में नेशनल क्रिश्चियन डेमोक्रेटिक पार्टी के प्रथम अधिवेशन में देश के विभिन्न प्रदेशों से एकत्रित प्रतिनिधियों ने एक प्रस्ताव में कहा है कि विदेशी मिशनरियों के क्रिया-कलाप इस देश में देशद्रोहिता का प्रसार करते हैं। उनका मुख्य उद्देश्य भारतीय संस्कृति को विकृत करना तथा राजनीतिक, आर्थिक एवं वैचारिक दृष्टि से भारतीय ईसाई समुदाय पर प्रभुत्व स्थापित कर देश की एकता एवं राजनैतिक स्थिरता को विच्छिन्न करना है। प्रस्ताव में सरकार से अनुरोध किया गया है कि वह सभी विदेशी मिशनरियों को देश से वहिष्कृत कर दे। उसी अधिवेशन में एक अन्य प्रस्ताव द्वारा १ ‸२७ के चर्च एक्ट में परिवर्तन एवं संशोधन की मांग भी की गई। अपने ज्ञापन में पार्टी ने प्रधानमन्त्री से मांग की है कि इस देश में कार्य करने के लिये विदेशी मिशनरियों के पास जो विदेशी धन आता है उस पर प्रतिबन्ध लगाया जाय। ज्ञापन में यह भी कहा गया है कि इन विदेशी मिशनरियों की निष्ठा भारत के प्रति नहीं अपितु विदेशों के प्रति होती है। अतः इनके क्रिया-कलापों पर कड़ी निगरानी रखी जानी चाहिये। ज्ञापन में कहा गया है कि पार्टी की यह दृढ़ धारणा है कि इन विदेशी मिशनरियों की गति-विधियां भारत देश के लिये तो हानिप्रद हैं ही, भारतीय ईसाईसमुदाय के लिये भी ये विशेषरूपेण हानिप्रद हैं।

जो कुछ भी इस अधिवेशन में हुआ अथवा कहा गया, वह हम आज से नहीं, अनेक वर्षों से कहते आये हैं। अनेक सहयोगी संस्थायें एवं समाचार पत्रिकायें भी इस विषय में समय समय पर सरकार एवं जन साधारण को सावधान करती रही हैं। क्या भारत सरकार और भारतवासी ईसाई मिश-नरियों के इन कुचक्रों एवं षड्यन्त्रों की ओर ध्यान देंगे?

* * *

संरक्षक सदस्य

१ **केवल एक सौ रुपये भेजकर परिषद् के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बनकर रहेगा।**

संरक्षक सदस्यों को सुविधाएँ—

१ परिषद् के आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। इस वर्ष लगभग २५ रुपये मूल्य की पुस्तकें प्रकाशित की जाएँगी।

२ परिषद् की पत्रिका 'शाश्वत वाणी' आप जब तक सदस्य रहेंगे निःशुल्क प्राप्त कर सकेंगे।

३ परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ आप २५ प्र० श० छूट पर प्राप्त कर सकेंगे।

४ जब भी आप चाहेंगे अपनी धरोहर वापिस ले सकेंगे। धन मनी-आर्डर द्वारा भेज सकते हैं।

पिछले मास में परिषद् ने निम्न तीन पुस्तकें प्रकाशित की हैं जो सदस्यों को बिना मूल्य भेजी जाएंगी।

१ समाजवाद एक विवेचन-ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००

२ गांधी और स्वराज्य—ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००

३ भारत में राष्ट्र—ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००

परिषद् का आगामी प्रकाशन

इतिहास में भारतीय परम्पराएं (प्रेस में)
ले० श्री गुरुदत्त मू० बारह रुपये

(इतिहास लेखन में भारतीय परम्परा का वर्णन—भारतीय इतिहास पर पाश्चात्य 'पंडितों' के कथन का युक्तियुक्त खण्डन इस पुस्तक में पढ़िये। पुस्तक सम्पूर्ण रूप से पुनः लिखी गई है।)

भारतीय संस्कृति परिषद के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं शक्तिपुत्र मुद्रणालय दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

अक्तूबर १९६९ [illegible] ८/६०

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

१.	सम्पादकीय	--	३
२.	देश पतन की ओर	श्री अश्लेष	७
३.	अस्तित्व की रक्षा	श्री विद्यानन्द 'विदेह'	१३
४.	योगीराज कृष्ण	श्री सचदेव	१५
५.	इतिहास लेखन की प्राचीन भारतीय शैली	श्री राजेन्द्र सिंह	१९
६.	भारतीय समाजवाद	श्री गुरुदत्त	२४
७.	स्पष्टीकरण के शब्द	श्री टेकचन्द शर्मा	३०
८.	दक्षिण पूर्वी एशिया में राम राष्ट्रीय एकता के प्रतीक	श्री लल्लनप्रसाद व्यास	३५
९.	समाचार समीक्षा	—	३८
१०.	स्पष्टीकरण	श्री बलराज मधोक	४२

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

देश में अराजकता विद्यमान है और उस अराजकता का कारण है प्रजातन्त्रात्मक राज्य-प्रणाली। प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली में कौन कौन से ऐसे अवगुण हैं, जिनके कारण अराजकता पनप रही है—ये पूर्व के तीन लेखों में बता चुके हैं। कुछ लोगों का मत भले ही इससे भिन्न हो, परन्तु भूमण्डल में घट रही घटनायें हमारे कथन की साक्षी हैं। प्रजातन्त्र के एक विद्वान प्रवक्ता ने कहा था :-

Democracy ensures freedom for all in all matters provided one is prepared to give the same freedom to others.

प्रजातन्त्र में सबके लिये सब विषयों में स्वतन्त्रता है। शर्त यह है कि वही स्वतन्त्रता, जो हम भोगना चाहते हैं, दूसरों को भी देने के लिये तैयार हों।

हमारे धर्म शास्त्रियों ने भी धर्म की यही परिभाषा उक्त कथन के लाखों वर्ष पूर्व की थी। उन्होंने कहा था—

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

अर्थात्--जो अपने अनुकूल नहीं वह दूसरों के साथ भी व्यवहार में मत लाओ।

ये दोनों सिद्धान्त ठीक हैं। इनके अनुसार

प्रजातन्त्र एक धर्म युक्त तन्त्र माना जायेगा, परन्तु व्यवहार में ऐसा देखा नहीं जाता। कुछ बातें हमने अपने पूर्व के लेख में बतायी हैं जो आज प्राय: सब प्रमुख प्रजातन्त्रात्मक देशों में हैं और वे बातें धर्मानुसार नहीं हैं। अपितु उक्त डैमोक्रैसी के सिद्धान्तानुसार भी नहीं हैं।

आज का प्रचलित प्रजातन्त्रवाद धीरे धीरे वर्ग संघर्ष को प्रोत्साहन देता है। भारत में भी यह वर्ग-संघर्ष चल रहा है और दिन प्रतिदिन उग्रतर होता जा रहा है। इसका अन्त शक्ति द्वारा होगा और एक वर्ग के ही रहने में होगा। वही वर्ग रहेगा, जिसकी संख्या अधिक है। भूमण्डल में मूर्ख अधिक हैं और बुद्धिमान कम। प्रमादी और परद्रव्यापहारी अधिक हैं। परिश्रमी और ईमानदार कम हैं। भोग विलास में रत अधिक हैं और सद्‌गुणी, त्यागी और तपस्वी कम हैं। इन्द्रिय-लोलुप अधिक हैं और संयमी कम।

अत: प्रजातन्त्र में केवल यह श्रेणी रह जायेगी जो मूर्ख, प्रमादी, परद्रव्यापहारी, भोग-विलास में रत और इन्द्रियलोलुप होगी। बुद्धिमान्, परिश्रमी, ईमानदार, त्यागी, तपस्वी और संयमी निःशेष कर दिये जायेंगे अथवा वे दास बना कर राजनीतिक कोल्हू चलाने के लिये रख लिये जायेंगे।

हम वर्तमान प्रजातन्त्र को मूर्खों का राज्य समझते हैं। यह हम न केवल भारत के विषय में ही कह रहे हैं, वरंच सब प्रजातन्त्रात्मक देशों के विषय में कहते हैं। कम्युनिस्ट देशों में भी प्रजातन्त्रात्मक शासन है। अन्तर केवल मात्र यह है कि कम्युनिज्म में प्रजातन्त्र की पराकाष्ठा अर्थात् एक वर्ग का ही अस्तित्व हो गया है। यह कहा जा सकता है कि कम्युनिस्ट देशों में प्रजातन्त्र अर्थात मूर्खता की पराकाष्ठा पहुंच गयी है। कम्युनिस्ट देश अपने आपको 'peoples democracy' जनता की डैमोक्रैसी कहते हैं। स्पष्ट है कि वहां बहुसंख्यक, अभिप्राय यह है कि मूर्ख, प्रमादी, परद्रव्यापहारी, बेईमान और भोग-विलासियों का राज्य है।

यही कारण है कि हम वर्तमान युगीन प्रजातन्त्र शब्द को ही निन्दनीय मानते हैं। वास्तव में धर्म राज्य ही प्रजातन्त्र राज्य है। धर्म और प्रजातन्त्र की व्याख्या हमने ऊपर दी हैं। वे पर्यायवाचक हैं, परन्तु प्रजातन्त्र के मिथ्या अर्थ लगाये गये हैं। इस कारण प्रजातन्त्र और धर्म राज्य में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया है।

आज के प्रजातन्त्र में यह माना जाता है कि किसी देश में सब वयस्क नर-नारी समान हैं और उन्हें समान अधिकार हैं। यह वस्तु-स्थिति के विपरीत और अन्यायसंगत है। सब समान नहीं हैं। इस कारण सबके समान अधिकार नहीं। अतः यह धर्म राज्य नहीं। धर्म राज्य वह है जो जिसके

योग्य है, वह ही उसका अधिकारी है। इसको गुण, कर्म, स्वभावानुसार व्यवस्था कहते हैं। इसी का नाम हिन्दू धर्म शास्त्रों में वर्णाश्रम व्यवस्था है।

इस धर्म व्यवस्था को प्रजातन्त्र कहा जा सकता है, परन्तु वर्तमान युग के प्रजातन्त्रवादियों ने वर्तमान प्रजातन्त्र की ऐसी दुन्दुभि बजा रखी है कि वास्तविक प्रजातन्त्र का स्वर कहीं सुनाई नहीं देता और कोई सुनता भी नहीं।

उस घोर मिथ्या नाद से पृथक् होने के लिए ही हम अपने प्रजातन्त्र का नाम धर्मवाद देते हैं।

हमें जनमत तो प्राप्त करना नहीं है। इस कारण सबके मुख में मिठाई देने का आश्वासन देने की आवश्यकता नहीं। हम यथार्थ बात कहते हैं। जो जिसके योग्य होगा, उसको वह अधिकार देना हम उचित मानते हैं। यह है हमारा धर्मवाद।

इस सिद्धान्त का क्या परिणाम होगा, वह हम संक्षेप में बता देना चाहते हैं।

(१) सब लोग सब बातों में सम्मति देने के अधिकारी नहीं हो सकते। जो जिस बात में सम्मति देना चाहता है, उसकी योग्यता उसे प्राप्त करनी चाहिये।

(२) राज्य कोई एक काम नहीं है। इसी प्रकार समाज सेवा एक काम नहीं है। राज्य में अनेक कार्य हैं। कुछ ऐसे कार्य हैं, जिन्हें विशिष्ट गुण वाले ही कर सकते हैं। अतः राज्य कार्य न तो एक प्रकार के लोग कर सकते हैं। न ही सब लोग राज्याधिकारी निर्वाचित कर सकते हैं।

इसी प्रकार समाज सेवा में कई प्रकार के कार्य हैं। अतः समाज सेवक सब प्रकार के लोग निर्वाचित नहीं कर सकते और जो भी निर्वाचित हो जायें वे सब प्रकार के समाज सेवक नहीं हो सकते।

(३) राज्य कार्य मुख्य रूप में तीन प्रकार के हैं। एक धर्म व्यवस्था (legislation) देना। दूसरे, शान्ति व्यवस्था (law and order) तथा सुरक्षा (defence) स्थापित करना। तीसरे, न्यायाधिकरण (judiciary) निर्माण करना।

इसमें धर्म व्यवस्था देना और शान्ति व्यवस्था स्थापित करना न तो एक समान कार्य हैं और न ही एक व्यक्ति के अधीन हो सकते हैं। दूसरे शब्दों में प्रधानमन्त्री या तो धर्म सभा (legislative body) का मुखिया हो सकता है अथवा वह शान्ति व्यवस्था का चालक (Head of the administration) हो सकता है। दोनों कार्य—शान्ति व्यवस्था और धर्म व्यवस्था एक ही व्यक्ति

के अधीन होने से जो (administration) शासन को सुगम होगा, वही धर्म व्यवस्था में हो जायेगा।

अनधिकारी एवं अयोग्यों के हाथ में शासन होने के कारण ही इंगलैंड में सह-यौन सम्बन्ध वैध करने पड़े हैं और सुविधा के लिये गर्भपात की स्वीकृति देनी पड़ी। यही कारण है कि अमेरिका में सार्वजनिक नाट्य शालाओं में नग्न नृत्य वैध करने पड़ रहे हैं। शान्ति व्यवस्था रखने वाले अपना काम सुगम करने के लिये धर्म के स्वरूप को बिगाड़ रहे हैं।

जब धर्म व्यवस्था, शासन तथा न्याय व्यवस्था एक ही व्यक्ति के हाथ में हो और वह व्यक्ति बहु-संख्यक मत-दाताओं के मत से निर्वाचित हो तो अनर्थ ही होने की सम्भावना हो सकती है।

ऐसी अवस्था में शासक की सुविधा के लिए ही कानून बनेंगे और शासक की सुविधा के लिए ही कानून के अर्थ लगाये जायेंगे।

(४) समाज सेवा भी एक कार्य नहीं है, इसमें मुख्य रूप में छः कार्य हैं। (१) जीविकोपार्जन की शिक्षा; (२) नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा, (३) शिक्षकों का निर्माण; (४) राष्ट्रीयता का अर्थ और भावना उत्पन्न करने का कार्य; (५) देश की अर्थ-व्यवस्था का संचालन; (६) अयोग्य, अपंग, वृद्ध और ब्राह्मण वर्ग (विद्वानों) के पालन का प्रबन्ध।

ये छः कार्य भी शासकों के हाथ में चले गये तो समाज सेवा के स्थान पर शासन सेवा अथवा राज्य सेवा हो जायेगी और यदि सब राज्य कार्य एक ही व्यक्ति के हाथ में हुए तो राज्य सेवा और समाज सेवा प्रधान मन्त्री तथा उसके दल की सेवा हो जायेगी।

अतः हमारा यह दृढ़ मत है कि राज्य कार्य समाज सेवा से पृथक होना चाहिये। राज्य-कार्य के विभिन्न विभाग पृथक-पृथक ढंग से और विभिन्न व्यक्तियों द्वारा अपनी-अपनी विशेष योग्यता के अनुसार सम्पन्न होने चाहियें। इसी प्रकार समाज सेवा के कार्य भी पृथक-पृथक गुण, कर्म और स्वभाव के लोगों के हाथ में होने चाहियें।

आगामी-अंक में हम, राज्य तथा समाज के विभिन्न कार्यों को कौन करे, इस का वर्णन करेंगे। यह बताने का भी यत्न करेंगे कि इन कर्मों के करने वालों का चयन किस प्रकार और किन के द्वारा हो।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इन सब कार्यों का समन्वय कैसे हो और आपत्कालीन स्थिति में किस प्रकार कार्य हो? इस विषय पर भी हम अपने अगले लेखों में प्रकाश डालेंगे।

देश पतन की ओर

श्री अश्लेष

सितम्बर मास की पत्रिका में हमने बैंकों के राष्ट्रीयकरण के विषय में अपने विचार लिखे थे। इस राष्ट्रीयकरण के उपरान्त क्या हुआ, यह हम आज लिखना चाहते हैं।

बैंकों के राष्ट्रीयकरण के तुरन्त बाद श्रीमती इन्दिरा गांधी ने यह घोषणा की थी कि उन्हें श्री संजीव रेड्डी के विरुद्ध कुछ नहीं कहना है। उनको वह अच्छा प्रत्याशी मानती हैं। श्री संजीव रेड्डी के नामांकन पत्र पर हस्ताक्षर कर यह प्रकट किया कि वे कांग्रेस के मनोनीत प्रत्याशी का समर्थन करती हैं।

बैंकों के राष्ट्रीयकरण का देश के वाम-पंथियों ने समर्थन किया। भारत देश में दक्षिण पथ की आवाज़ बहुत मन्द है। अतः बैंकों के राष्ट्रीयकरण का विरोध सैद्धान्तिक रूप में नहीं हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि श्रीमती इन्दिरा ने यह समझा कि उन्होंने अपनी विशेष बुद्धि का परिचय दिया है और देश उनके साथ है। अतः उन्होंने अपने स्वत्व को स्थिर रखने के लिए कांग्रेस की नौका को छोड़ देश का नेतृत्व सम्भालने का यत्न किया। श्रीमती जी ने कांग्रेस द्वारा राष्ट्रपति पद के लिए मनोनीत प्रत्याशी को छोड़ एक स्वेच्छा से खड़े प्रत्याशी का समर्थन करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने उस प्रत्याशी का, जिसके नामांकन-पत्र पर हस्ताक्षर किये थे, समर्थन छोड़ दिया।

कांग्रेस के कर्णधार, अभिप्राय यह कि सिण्डीकेट के नेता कितने संजीव रेड्डी के पक्ष में थे, कहना कठिन है। इतना तो स्पष्ट है कि वे सबके सब अपने पक्ष में थे और अपने को कांग्रेस में जीवित रखने के लिए संजीव रेड्डी साहब का आश्रय ले कर बढ़ना चाहते थे, परन्तु संजीव रेड्डी पण्डित मोती लाल की पोती और पण्डित जवाहर लाल की इकलौती बेटी के समान सुदृढ़ आश्रय सिद्ध नहीं हुए।

कांग्रेस का नाम ले लेकर कांग्रेस के कर्णधार, अभिप्राय यह कि सिण्डी-

केट के नाम से विख्यात् नेतागण अपनी नेतागिरी बनाये रखना चाहते थे, परन्तु श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने कांग्रेस में फूट डलवा दी और पर्याप्त संख्या में ऐसे लोग अपने साथ कर लिये जो कांग्रेस का सदस्य होने का लाभ उठाते हुए वाम पंथ के पोषक थे। यह तब ही हो सका, जब एक सुयोग्य राजनीतिज्ञ की भाँति देवी इन्दिरा ने अपने स्वत्व की रक्षा के लिए आत्मा की आवाज़ की कूक लगा दी।

इसमें श्रीमती इन्दिरा का दोष नहीं है। आज युग की राजनीति में स्वार्थ सिद्धि के लिए कान्शैंस, (ज़मीर) का आश्रय लेना एक सद्गुण बन चुका है। भारत में तो यह परीक्षण पहले भी चलता रहा है। कितनी ही बार गाँधीजी ने अपने अन्तरात्मा की आवाज़ के नाम पर अपने देशवासियों को धोखा दिया था। आखिर यही एक बात तो गाँधी जी और नेहरू परिवार में सांझी रही है।

इस आत्मा की आवाज़ और आत्मा की स्वतन्त्रता ने लगभग ४० प्रतिशत कांग्रेसियों को कम्युनिस्ट प्रत्याशी का समर्थक बना दिया। सिण्डीकेट कांग्रेस में अनुशासन की डुग्गी पीटते हुए केवल साठ प्रतिशत को ही अपने साथ रख सकी। वास्तव में दोनों पक्ष स्वार्थ के लिए ऊँचे आदर्शों की डुग्गी पीट रहे थे।

काँग्रेस से विद्रोह करने वाले इन्दिरा जी के चालीस प्रतिशत साथी कम्युनिस्टों से मिल कर कांग्रेस के प्रत्याशी को पराजित करने में सफल हो गये। कांग्रेस को कांग्रेसियों ने ही कम्युनिस्टों की लाठी से पीट दिया।

आत्मा की पुकार का हो-हल्ला करने वाले क्या सत्य ही आत्मा रखते हैं? यहां यह प्रश्न नहीं। प्रश्न यह है कि उनके हो-हल्ला ने देश को मूर्ख बनाया है अथवा नहीं? साथ ही यहाँ हम यह बताना चाहते हैं कि कांग्रेस में अनुशासन के नाम पर अपना उल्लू सीधा करने वाले केवल साठ प्रतिशत ही थे, परन्तु जब कांग्रेसी, अनुशासन भंग करने वालों से पराजित हुए तो चारों खाने चित्त हो गये। पच्चीस अगस्त की कार्यकारिणी के अधिवेशन तक अनुशासन के पक्षपाती अंगुलियों पर गिने जाने के योग्य ही रह गये थे। श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा और उनके लगभग पचास साथी ही प्रत्यक्ष रूप में अनुशासन के समर्थक रह गये और शेष अनुशासन को ही अनुशासन भंग का नाम देने लगे।

सबसे मजेदार बात यह रही कि भारत के न्याय मन्त्री को यह न्याययुक्त प्रतीत हुआ कि गिरि ही कांग्रेस के प्रतिनिधि थे, संजीव रेड्डी नहीं।

गिरि साहब के राष्ट्रपति पद पा जाने पर सबसे अधिक प्रसन्नता रूस को

हुई। अमेरिका ने भी प्रसन्नता प्रकट की और भारत की हो-हल्ला करने वाली जनता ने भी बगलें बजायी हैं।

अब यह कहा जा रहा है कि इन्दिरा जी ने कांग्रेस की लाज रख ली। कांग्रेस कार्यकारिणी के, 'सिण्डीकेट' के अतिरिक्त सदस्यों ने, कांग्रेस को बचा लिया।

हम कांग्रेस की विचारधारा को नहीं मानते। इस कारण कांग्रेस बच गयी है और किसी की करनी से बची है, इससे हमारा सरोकार नहीं। हमारा सम्बन्ध तो देश से है। कारण यह कि अपने कर्मफल के अधीन हम इस भूमण्डल पर भारत जैसे देश में उत्पन्न हुए हैं और उसकी भलाई-बुराई से सम्बन्धित हैं। हमारा यह मत है कि बंगलोर में सम्पन्न कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन से लेकर २५ अगस्त को सम्पन्न दिल्ली में कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक तक जो कुछ हुआ, उसका प्रभाव देश पर बहुत गम्भीर हुए बिना नहीं रह सकता। देश के पतन में इन दिनों ये घटी घटनायें प्रबल भाग लेंगी।

इन घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि देश में कोई भी दल ऐसा नहीं है जो देश में हो रहे नैतिक पतन की चिन्ता करता हो? कांग्रेस के दोनों पक्षों ने नैतिकता का बहिष्कार कर स्वार्थपरता की पराकाष्ठा दिखायी है। सबसे अधिक दंगा करने वाले, झूठ बोलने वाले, स्वार्थरत दल की विजय हुई है।

कोई माने अथवा न माने, देश में दक्षिण और वाम-पंथों में पृथकीकरण हुआ है। राष्ट्रपति के चुनाव में सब समाजवादी दलों ने गिरि को मतदान किया है और उन दलों ने जो वाम पंथ के समीप है, सजीव रेड्डी को मत दिया है। कांग्रेस में भी प्रायः वे जो कम्युनिस्ट विचारधारा के समीप हैं, वे गिरि के पक्ष में हो गये हैं और जो कम्युनिस्टों को सन्देह की दृष्टि से देखते थे, उन्होंने संजीव रेड्डी को मत दिया है। जनसंघ और स्वतन्त्र दल वालों ने अपने दूसरा मत संजीव रेड्डी को दिया है।

श्रीमती इन्दिरा गांधी के करतब ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि वे राजनीतिक कलाबाज़ियों में अपने पूर्वजों से कम योग्य नहीं, वरंच कुछ अधिक ही हैं। कभी कोई श्रीमती जी का जीवन चरित्र लिखने बैठेगा तो उसे इनका इतिहास जवाहर लाल जी के पिता श्री मोतीलाल नेहरू, के कारनामों से आरम्भ करना लाभप्रद प्रतीत होगा। यह देशद्रोह की एक ज्वलन्त कथा होगी।

स्वतन्त्र दल पर भी कांग्रेस में घटी घटना का प्रभाव पड़ा है और उनकी कार्यकारिणी ने यह स्वीकार किया है कि आर्थिक नीति की बात

छोड़ कर भी वह दल किसी भी देशभक्त और प्रजातन्त्रात्मक दल से मिल सकता है। इसका अर्थ हम यह समझे हैं कि स्वतन्त्र दल अब जनसंघ की आर्थिक नीतियों से मतभेद रखते हुए भी, उससे सहयोग करने को तैयार है।

परन्तु जनसंघ एक ऐसा दल है जो अपनी नीतियों में 'कन्फ्यूज़्ड' (भ्रान्त मन) है। इसके अध्यक्ष का वक्तव्य इस बात का सूचक है। श्री अटल बिहारी ने कहा है कि हम दक्षिण और वाम पंथ के झगड़े में नहीं पड़ते। परन्तु बाजपेयी जी तो हिन्दू और मुसलमान के झगड़े में भी नहीं पड़ना चाहते। ये महापुरुष पंजाब में पंजाबी और हिन्दी के झगड़े में भी पड़ना नहीं चाहते।

झगड़ा एक ओर से नहीं होता, यह दोनों ओर से होता है। जब कांग्रेस, सब समाजवादी दल और कम्युनिस्ट दल जनसंघ को साम्प्रदायिक हिन्दू दल और पैसे वालों का दल मानते हैं, तो मानो अथवा मानो, तुम हिन्दू और पूंजीपतियों का दल बनोगे ही।

उनके कहने के प्रभाव से तो तब ही बच सकते हो जब अपने को हिन्दू और पूंजीपति स्वीकार कर इन दोनों शब्दों की व्याख्या कर इनकी आवश्यकता और श्रेष्ठता सिद्ध कर सको। मुख से कहते जाओ कि तुम समाजवादी हो और कहो कि समाजवाद की व्याख्या तुम्हारी अपनी है तो काम नहीं बनेगा। समाजवाद की व्याख्या तो उनकी ही मानी जायेगी जो शुद्ध वैज्ञानिक समाजवादी बने रहे हैं। जो न तोता न बटेर हैं, उनकी बात कोई नहीं मानेगा।

यदि अपने को हिन्दू कहलाने से आपको वोट कम मिलने का डर है तो लोग भी जानते हैं कि वोटों के डर से आप अपने को भारतीय कहते हैं। इसी प्रकार से आपका अपने को दक्षिण पंथी न मानना भी श्रमिकों का वोट मांगने के उद्देश्य से समझा जाता है।

वास्तविक बात यह है कि सब दलों की भान्ति आपके मस्तिष्क पर भी मतों की प्राप्ति का भूत सवार है और आप देश की वास्तविक स्थिति का न तो विश्लेषण कर पाते हैं और न ही मन की बात कह पाते हैं।

श्री भाई महावीर जी ने वक्तव्य दे दिया कि श्री बलराज जी ने, जो मिस्टर मसानी के साथ सर्वोच्च न्यायालय से गिरि द्वारा जारी किये अध्यादेश पर स्थगन आज्ञा ली थी, वह दल के निर्णय पर नहीं थी।

श्री दत्तो पंत जी ने अभी अभी एक लेख में कहा है कि अमेरिका में भी बैंकों की स्वतन्त्रता नहीं है।

जनसंघ के एक अन्य प्रवक्ता ने कहा था कि जनसंघ बैंकों के राष्ट्रीयकरण के विरुद्ध नहीं था। जहाँ तक हमें स्मरण है, यह श्री जगदीश माथुर थे।

उन्होंने कहा है कि यह स्वत: असफल होने वाला है।

जनसंघ को बैंकों के राष्ट्रीयकरण में केवल मात्र आपत्ति यह है कि यह उचित समय पर और उचित ढंग से नहीं हुआ। इसमें राजनीतिक उद्देश्य निहित हैं।

हमारा यह मत है कि ये सब बातें भ्रमित मस्तिष्क के कारण हैं।

जनसंघ को भी चिन्ता लग रही प्रतीत होती है कि यदि यह सिद्धान्त निश्चय हो जाये कि संसदीय दल और संसदीय दल के नेता दल से ऊपर हैं तो जन संघ की पूर्ण शक्ति ही क्षीण हो जायेगी। इसी कारण श्रीमती गांधी की बात गलत कहनी पड़ी। सच्चाई दोनों में नहीं है।

श्रीमती इन्दिरा गाँधी का जुलाई-अगस्त मास का पूर्ण व्यवहार इस बात का सूचक रहा है कि वे काँग्रेस को अपने अधीन मानती हैं और जब तक वे प्रधान मन्त्री हैं, किसी को उनकी आज्ञा की अवहेलना की स्वीकृति नहीं हो सकती।

जनसंघ के नेता यद्यपि स्वयं यही चाहते हैं, परन्तु वे इसे सिद्धान्त रूप में स्वीकार नहीं कर सकते। कारण स्पष्ट है कि राजनीति में भी मत-मतान्तरों की भाँति पाखण्ड चलाये जा रहे हैं। यदि इन्दिरा गाँधी के विरोधी यही बात कहते जो वह स्वयं कह रही हैं, तो उनको प्रजातन्त्र का विरोधी घोषित करतीं और जब स्वयं कहती हैं तो वे इसे युक्तियुक्त व्यवहार कहती।

ठीक यही होगा। यदि कहीं दल संसद नेता का विरोध कर देता तो दल को नियन्त्रण में बाँधने की बात कह दी जाती और नेता की मान-प्रतिष्ठा करने का आदेश हो जाता। इस समय जनसंघ के प्रधान और जनसंघ संसद दल के नेता एक ही व्यक्ति हैं।

यह तो हुई दलों की बात। हम यह समझते हैं कि जो कुछ जुलाई और अगस्त में भारत में हुआ है, उसने देश में कम्युनिस्टों के प्रभाव को बढ़ा दिया है। इसने देश में सरकार का जनता की आय पर अपार अधिकार कर दिया है। इसने जनता में स्वतन्त्रता से जीविकोपार्जन करने वालों को भारी कठिनाई में डाल दिया है। निश्चय ही देश को कम्युनिस्टों के पंजे में ले जाने की ओर प्रगति हुई है।

यह विचार कि जैसे अन्य देशों में समाजवादी यह समझ कर कि उनकी नीति से देश को हानि हुई है, राष्ट्रीयकरण को वापिस ले लेंगे वैसे ही भारत में होगा, ठीक प्रतीत नहीं होता।

इस पर भी यह असम्भव नहीं। परन्तु इसके लिये जनता को सचेत, सतर्क और सज्ञान करने की आवश्यकता है। यह इस प्रकार के भ्रमोत्पादक वक्तव्यों से नहीं हो सकता कि अमेरिका में बैंकों की स्वतन्त्रता

नहीं है। बैंकों से सट्टे बाजी को सहायता मिलती है, बैंकों से निर्धनों और किसानों को धन नहीं मिलता था। आदि-आदि।

हमारा इसमें कहना यह है कि न तो बैंकों की सट्टोरियों को सहायता, बैंकों के राष्ट्रीय-करण के लिए युक्ति है और न ही अयुक्ति। जब देश में सट्टेबाजी वैध है, जब प्रायः सब सरकारें जुआ खेलती और खिलाती हैं तो यह बैंकों पर आरोप निराधार है।

हम तो सरकार का बैंकों के राष्ट्रीयकरण में कोई अधिकार नहीं समझते। यह इसलिए कि सब प्रकार के भले काम करने के लिये सरकार के पास पहले भी बैंक थे। उनसे सरकार किसानों और रिक्शा वालों की भलाई करने में सर्वथा स्वतन्त्र थी और है। उन बैंकों को रखते हुए अन्य बैंकों पर अधिकार करने में कोई न्याय-संगत युक्ति नहीं। उन बैंकों में रुपया जमा कराने की प्रेरणा सरकार देती थी और भी अधिक दे सकती थी।

सरकारी उद्योग असफल हो रहे हैं। सरकारी बैंकों का दिवाला पिट रहा है। उनका घाटा जनता से कर प्राप्त करके पूरा किया जा रहा है। ऐसी अवस्था में निजी सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त करना न केवल अन्याय है वरंच पाप भी है।

सरकार के पास राजनीतिक शक्ति है। सेना और पुलिस भी है और यदि जनता की जमा पूँजी भी सरकार के हाथ में दे दी गयी तो यह सुगमता से जनता को ठेंगा दिखा सकती है। सब कम्युनिस्ट देशों में यही किया जा रहा है।

जो लोग बैंकों के राष्ट्रीयकरण को साधारण घटना मानते हैं, वे शीघ्र ही अपना मुख बन्द किया जाता भी देखेंगे।

देश में दल से धोखा करने की प्रथा को चार चाँद लगाने वाली श्रीमती इन्दिरा जी ने अन्य दलों में भी कुछ ऐसा ही करने की प्रथा की सम्भावना को प्रोत्साहन दिया है।

यदि भ्रम में फसे हुए देश के विद्वानों के प्रमाद और अनभिज्ञता के कारण इस देश में कम्युनिज्म आया तो उत्तरदायी वही होंगे, जो प्रमादी और अनभिज्ञ होते हुए भी देश और दलों के नेता बने हुए हैं।

बैंकों का राष्ट्रीयकरण निश्चय कम्युनिज्म की ओर एक महान पग है और कम्युनिज्म का अर्थ है कि देश के मन्त्री-मण्डल की तानाशाही। रूस में मन्त्री मण्डल का नाम 'प्रेज़िडियम' है। बस यही अन्तर दोनों में रह जायेगा। श्रीमती इन्दिरा गाँधी का दल को अंगूठा दिखाना मन्त्री मण्डल को 'प्रेज़िडियम' बनाने की ओर पग है।

अस्तित्व की रक्षा [१४]

श्री विद्यानन्द 'विदेह'

अस्पृश्यता अपने आपमें कोई साकार—मूर्त वस्तु नहीं है। अस्वच्छ और घिनौना रहन-सहन ही अस्पृश्यता का जनक है। उच्चताभिमानी ब्राह्मण भी जब शौचालय में मल-मूत्र का त्याग करने के बाद आबदस्त लेकर बाहर निकलता है तो वह अपने हाथों को अस्पृश्य समझता है। और जब वह मिट्टी या साबुन मलकर अपने हाथों को स्वच्छ कर लेता है, तब उसके हाथ फिर स्पृश्य बन जाते हैं।

अस्पृश्यता-निवारण का एकमात्र हल है अस्पृश्यों के रहन-सहन को और सुन्दर बनाना। ऐसा हो जाने पर अस्पृश्यता इस देश से ऐसे विदा हो जायेगी, जैसे वह इस देश में कभी थी ही नहीं। यह कार्य हमें केवल हिन्दु अस्पृश्यों के लिये नहीं, अहिन्दु अस्पृश्यों के लिये भी करना है। मुसलमान और ईसाई इस देश में हिन्दुओं के लिये इसी कारण अस्पृश्य बने रहे कि उनका रहन-सहन और उनके घरों का वातावरण सवर्णों के लिये अस्वच्छ था। यह असत्य है कि हिन्दु सवर्णों ने विदेशी धर्मों का अवलम्बन करने के कारण मुसलमानों और ईसाइयों को अस्पृश्य समझा। कारण अस्वच्छता अथवा अशुचिता के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं था।

हिन्दुमात्र को और साथ ही समस्त हिन्दु-संस्थाओं को योजनाबद्ध रीति से ऐसी संसाधना करनी चाहिये कि सम्पूर्ण हिन्दु-जाति के रहन-सहन की स्थिति समान अथवा समस्तर हो जाये।

भारत के खाद्य-मन्त्री, माननीय श्री जगजीवनराम ने शंकराचार्य श्री निरंजनदेव के एक वक्तव्य पर क्षुब्ध होकर वह बात कह डाली जो कहनी नहीं चाहिये थी। राजनीति ने राजनीतिज्ञों को सर्वथा नीतिशून्य बना दिया है। अन्यथा किसी भी सभा या समाज में किसी गन्दे व्यक्ति को श्री जगजीवनराम के पास बिठा दिया जाये तो वह चाहे कहें कुछ नहीं, पर अपने मन में वह

खीझेंगे अवश्य । यदि उन्हें ऐसी बस्ती में ले जाया जाये जहां घर-घर और गली-गली में अस्वच्छ और गन्दा वातावरण है तो, मेरा विश्वास है, वह वहां न भोजन करेंगे, न निवास करेंगे—शीघ्रातिशीघ्र वह वहां से विदा होना चाहेंगे ।

हमारे देश में कितने जाति-पांति-तोड़क मण्डल बने, कितने ही अन्तर्जातीय विवाह संस्थान स्थापित हुये । सब ही बिना खिले मुर्झा गये । मुर्झाने का कारण यही था कि सबने डालियों और पत्तों पर पानी छिड़का, मूल को नहीं सींचा। यूरोप में अस्पृश्यता के अभाव का एकमात्र कारण जनता के रहन-सहन का समस्तर होना है । कभी रूस में संसार के किसी भी देश की अपेक्षा अस्पृश्यता का अभिशाप कहीं अधिक था । रहन-सहन की समस्तरता ने समूचे रूस में से अस्पृश्यता का निर्मूलन कर दिया है । आज भी संसार में जहां-जहां रहन-सहन के स्तर में जमीन-आसमान का अन्तर है, वहीं-वहीं अस्पृश्यता का अभिशाप विद्यमान है । सम्पूर्ण हिन्दु-जाति में रहन-सहन का समस्तर हो जाने पर जाति-पांति अनायास ही सदा के लिये ग़ायब हो जायेगी और रोटी-बेटी के सारे भेदभाव समाप्त हो जायेंगे । तब न केवल हिन्दुओं में अन्तर्जातीय विवाह सामान्य हो जायेंगे, अपितु हिन्दु जाति के युवक अहिन्दु कन्याओं का सहजतया वरण करेंगे । तब विना शुद्धि-आन्दोलन के ही इस देश के समस्त मुस्लिम और क्रिश्चियन परिवार हिन्दु-तनू में ऐसे विलीन होंगे, जैसे नदियां सागर में विलीन होती हैं । श्री छागला के शब्दों में हिन्दुस्तान के मुसलमान और ईसाई हैं तो हिन्दुमहासागर के रक्तांश ही । अस्पृश्यता की बाधा समाप्त होते ही रक्त ज़ोर मारेगा और वे पुनः अपने मूल-सागर में प्रविष्ट होंगे ।

आगामी कुछ लेखों में मैं अस्पृश्यता-निवररण की योजना प्रस्तुत करूंगा। मैं चाहूंगा कि शाश्वत वाणी के पाठक मेरे सुझावों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करें और अपनी ओर से भी सुझाव प्रस्तुत करें ।

जो व्यक्ति कान में तेल और आंख में सफ़ेदा डालकर सोता है, उसे न सुनाई देता है न दिखायी देता । हिन्दुजाति और उसके नेता कान में तेल और आंख में सफ़ेदा डालकर पर्याप्त सो लिये हैं । अब समय है कि चेतें, कान खोलकर सुनें, आंख खोलकर देखें और वह करें जो करना चाहिये । अन्यथा अस्तित्व के साथ सर्वस्व नष्ट हो जायेगा ।

योगीराज कृष्ण

श्री सचदेव

विगत एक अंक में हमने लिखा था कि हम महाभारत ग्रन्थ को कपोल कल्पित नहीं मानते। उस ग्रन्थ में धर्म, अर्थशास्त्र, मोक्ष प्राप्ति के उपायों के वर्णन के साथ-साथ इतिहास भी है।

भगवान् कृष्ण उस ग्रन्थ के इतिहास-अंश के एक पात्र हैं। वे परमात्मा का अवतार माने जाते हैं। उक्त लेख में हमने अवतारवाद के विषय में लिखते हुए यह बताया था कि कुछ जीव मुक्त अथवा ब्रह्म लीन होते हैं। श्वेताश्वतर (१-६,७) के प्रमाणसे हमने यह बात स्पष्ट की थी। ये मुक्त जीव ही समय समय पर सोलहों कला पूर्ण अथवा आंशिक रूप में अवतार लेते रहते हैं।

भगवान् कृष्ण, अदिति के बारहवें पुत्र विष्णु के अवतार थे। महाभारत में ही प्रचुर मात्रा में ऐसे प्रमाण विद्यमान हैं। एक कथा हम यहां वर्णन कर दें तो बात स्पष्ट हो जायेगी। जब भगवान् कृष्ण अपने वंश के सभी लोगों को लेकर द्वारिका में जाकर बस गये थे, तब की बात है।

इन्द्र, देव लोक के राजा की उपाधि थी। तत्कालीन देवलोक के राजा इन्द्र एक बार द्वारिका में आये और कृष्ण से कहने लगे कि हिमाचल प्रदेश का राजा नरकासुर देवताओं को बहुत कष्ट दे रहा है। वह एक बार आकर माता अदिति के कुण्डल उठा कर ले गया। तुम भी अदिति के पुत्र हो, तुम्हें अपनी माता की इस धरोहर की रक्षा करनी चाहिये।

यहां अदिति के कुण्डलों के विषय में दो शब्द लिख दिये जायें तो ठीक होगा। जैसे इन्द्र देवलोक के राजा की उपाधि थी, वैसे ही अदिति देव लोक में राजमाता की उपाधि प्रतीत होती है। किसी समय ये कुण्डल किसी विजय के प्रतीक देवताओं के पास आ गये और उनकी मूल्यवान् वस्तुओं में माने जाने लगे। कदाचित् 'कोहनूर' हीरे के समान होंगे। इस हीरे का भी एक इतिहास है। कुछ लोग तो इसे महाराजा युधिष्ठिर के राजमुकुट का अंग मानते हैं। अब यह इंगलैण्ड के राजा के मुकुट को सुशोभित कर रहा है। 'कोहनूर' एक बहुत बड़ा हीरा था। अब इसको तोड़ कर तीन टुकड़े कर दिये गये हैं और इस समय ये तीनों टुकड़े इंगलैण्ड के राजमुकुट में सुशोभित हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि दो मूल्यवान् हीरे थे जो देवताओं की राजमाता के कुण्डलों में जड़े हुए थे और नरकासुर उनको देवताओं से छीन लाया था।

इन्द्र उनको वापिस पाना चाहता था। ये हीरक जड़ित देवताओं के कुण्डल देवताओं के मान का प्रतीक हो गये थे।

जब इन्द्र स्वयं नरकासुर से युद्ध कर वे कुण्डल वापिस नहीं ले सका तो वह कृष्ण के पास द्वारिका में आया और बोला :—

अदित्या चोदितः कृष्ण तव मात्राहमागतः।
कुण्डलेऽपहृते तात भौमेन नरकेण च ॥
निदेशशब्दवाच्यस्त्वं लोकेऽस्मिन् मधुसूदन।
तस्माज्जहि महाभाग भूमिपुत्रं नरेश्वर ॥

(महा-सभा दक्षिणात्य पाठ)

हे कृष्ण! मैं तुम्हारी माता अदिति की आज्ञा से आया हूं। हे तात! भूमिपुत्र नरकासुर ने उसके कुण्डल हरण कर लिये हैं। माता का आदेश सुनने के पात्र तुम ही दिखायी देते हो। अतः तुम इस नरकासुर को मारकर पृथ्वी का भार हलका करो।

कृष्ण इस कार्य को करने के लिये तैयार हो गया, परन्तु उसने इन्द्र से दो बातों की सहायता मांगी। कृष्ण ने कहा कि नरकासुर का देश पहाड़ी है। वहां सेना से युद्ध नहीं हो सकता। उसे परास्त करने के लिये गरुड़ विमान और सुदर्शन चक्र दो, तो युद्ध हो सकता है।

यह प्रसिद्ध है कि नरकासुर उस देश का राजा था जो आजकल नेफा कहलाता है। उस देश में भली भांति स्थित सेना का सामना करने के लिये बहुत ही सुदृढ़ विमान की आवश्यकता मानी गयी होगी। यही कृष्ण ने मांगी।

इन्द्र ने ये दोनों वस्तुयें कृष्ण को देनी स्वीकार कीं तो कृष्ण इसे ले समर पर चल पड़ा। यहां लिखा है कि घोर युद्ध के उपरान्त नरकासुर मारा गया और कृष्ण ने रुक्मिणी के साथ गरुड़ पर सवार हो देवताओं की राजमाता अदिति के पास जा वे कुण्डल उसको दिये।

यहां भगवान् उपाधि की भी व्याख्या कर दी जाये तो ठीक होगा। भगवान् का अर्थ परमात्मा नहीं है। भगवान् का अर्थ विष्णुपुराण में इस प्रकार वर्णन किया है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गणा ॥ (विष्णु०.. ६-५-७४)

सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान, वैराग्य। ये लक्षण भगवान् शब्द के पता चलते हैं। यह निर्विवाद है कि परमात्मा का 'ओं' नाम संसार के किसी पदार्थ का नाम नहीं। यह केवल मात्र परमात्मा के लिये ही प्रयुक्त होता है। इस नाम के साथ साथ कहीं भी भगवान् का शब्द प्रयोग नहीं होता।

अन्य नाम जब वे संसार के प्राणियों अथवा दिव्य शक्ति युक्त पदार्थों के लिये प्रयुक्त होते हैं, तब ही भगवान् शब्द से स्मरण किये जाते हैं। अतः भगवान् शब्द परमात्मा का वाचक नहीं। इस शब्द से दिव्य गुण युक्त मनुष्यों अथवा पार्थिव पदार्थों को स्मरण किया जाता है।

भगवान् की उपाधि कई ऋषियों-महर्षियों के लिये भी प्रयोग की गयी है। बाल्मीकीय रामायण में भी ऋषियों के लिये भगवान् शब्द प्रयोग किया गया है। उदाहरण के रूप में वहां यह श्लोक आया है—

स्वस्त्यात्रेयश्च भगवान् नमुचिः प्रमुचिस्तथा।
अगस्त्योऽत्रिश्च भगवान् सुमुखो विमुखस्तथा॥ (वा०-रा०-उ०-१-३)

(स्वस्त्यात्रेय, भगवान् नमुचि, प्रमुचि तथा अगस्त्य, अत्रि, और भगवान् समुख तथा विमुख पधारे थे।)

इस प्रकार सब के लिये नहीं, वरंच कुछ ऋषियों के लिये ही भगवान् नाम से स्मरण किया गया है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि भगवान की उपाधि भी कृष्ण को इस कारण नहीं दी गयी कि वे परमात्मा थे, वरंच इसलिये कि वे ऐश्वर्ययुक्त, धर्म परायण, कीर्ति, लक्ष्मी युक्त थे। वे ज्ञान और वैराग्य के भी स्वामी थे।

यहाँ भगवान् कृष्ण के अपने वचनानुसार वैराग्य की भी परिभाषा बता देना चाहते हैं। वैराग्य के अर्थ भगवान् कृष्ण संसार का त्याग नहीं मानते थे। सन्यास से उनका अर्थ है—

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते॥ (भ०-गी०५-४)
अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥ (भ०-गी०--६-१)

वैराग्य के अर्थ संसार छोड़ देने से नहीं। वास्तविक संन्यासी वह ही होगा जो निर्द्वन्द्व होकर कर्म फल का आश्रय छोड़ कर कर्म करता है। कर्म और हवन यज्ञादि छोड़ देने वाले को संन्यासी नहीं कहते।

इस लेख से पूर्व के लेख में और इसमें हमने यह प्रकट करने का यत्न किया है कि भगवान् कृष्ण अवतार तो थे, परन्तु विष्णु नाम के मुक्त जीव के। मुक्त जीव परमात्मा में लीन ब्रह्माण्ड में विचरते हैं।

ब्रह्माण्ड को परब्रह्म कहते हैं। इसमें चार पदार्थ उपस्थित हैं। परमात्मा, जीवात्मायें और प्रकृति जो कार्य जगत् का उत्पादान कारण है। चौथे इसमें मोक्ष प्राप्त ब्रह्म लीन व्यक्ति। ये ब्रह्म लीन व्यक्ति परमात्मा में लीन होने से आनन्दमय होते हैं और स्वेच्छा से विचरते हैं। यही हैं जो मर्त्य लोक में, जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, तो धर्म की स्थापना के लिये स्वेच्छा से जन्म लेते हैं।

विष्णु दक्ष कन्या अदिति का बारहवाँ पुत्र था। इन्द्र विष्णु का छोटा भाई था। देवताओं ने राज्य का कार्य-भार तो इन्द्र को दिया, परन्तु विष्णु को प्रथम लोक पाल नियुक्त किया। विष्णु दूसरा लोक पाल था। था। लोक पाल का अर्थ है कि जनता की रक्षा करने वाला। किनसे रक्षा करने वाला? दुष्ट निरंकुश असुर नरेशों से। यह देखा गया था कि जब कोई मनुष्य शरीर, धन अथवा जन बल से शक्तिशाली हो जाता है तो उसके मस्तिष्क में भ्रम छा जाता है कि :—

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ।।भ०-गी० १६-१३।।
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ।।१६-१४।।
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ।।१६-१५।।

वह समझने लगता है कि मैंने आज इतना पा लिया है और अब मैं इस मनोरथ को पाऊँगा। मेरे पास इतना धन एकत्रित हो गया है और फिर भी इतना और हो जायेगा।

यह मेरा शत्रु मेरे द्वारा मारा गया है और भी मुझसे मारे जायेंगे। मैं ईश्वर हूं, सब मेरे लिये हैं। मैं सिद्ध हूं, बलवान हूं और सुखी हूं।

मैं बहुत बड़ा धनी हूं। मेरे साथी-जन बहुत हैं, मेरे समान दूसरा कोई नहीं। मैं यज्ञ करूंगा, दान करूंगा।

ऐसे दुष्ट स्वभाव के लोगों से जन साधारण की रक्षा के लिये लोक पाल नियुक्त किये जाते हैं। इसी प्रकार के लोकपाल विष्णु, वरुण, शिव इत्यादि थे। इनमें विष्णु ने जनता की बहुत रक्षा की और मोक्ष प्राप्त करने के उपरान्त भी वह जन्म लेता रहा और दुष्टों से जन साधारण की रक्षा करता रहा।

ये हैं अवतार। भगवान् कृष्ण भी वर्तमान मन्वन्तर की अट्ठाईसवीं चतुर्युगी के द्वापर के अन्त में वसुदेव तथा देवकी के घर उत्पन्न हुए। ये भी भगवान् विष्णु का अवतार थे।

अभी तक हमने यह बताया है कि विष्णु कौन था और अदिति के पुत्र विष्णु ने ही अवतार लेकर जनता की रक्षा की थी। हम अगले लेख में यह बतायेंगे कि विष्णु का नाम जब अवतार रूप में लिया जाता है तो परमात्मा नहीं समझना चाहिये।

इतिहास लेखन की प्राचीन भारतीय शैली

श्री राजेन्द्र सिंह

विदेशियों के मिथ्या प्रचार के परिणामस्वरूप स्वयं को 'प्रगतिशील' कहने वाले वर्तमान भारतीय इतिहासकार यह समझते हैं कि प्राचीन भारतीय इतिहास लिखना नहीं जानते थे। यही तथाकथित विद्वान् जब भारत की प्राचीन शिल्पकलाओं, ललितकलाओं, चिकित्साशास्त्र आदि के विषय में विचार व्यक्त करते हैं, तब भारत की तात्कालिक उन्नति को देख कर आश्चर्य-चकित हो उठते हैं। इन्हीं विद्वानों के मतानुसार कला के प्रत्येक क्षेत्र में भारतीयों (हिन्दुओं) ने श्रेष्ठता प्राप्त कर ली थी। परन्तु जब यही विद्वान् यह कहते सुने जाते हैं कि हिन्दू (आर्य) अपना इतिहास लिखना नहीं जानते थे तब इन तथाकथित विद्वानों की कुशाग्र-बुद्धि (?) पर हंसी आती है। जिस जाति ने कला के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति कर सफलता प्राप्त कर ली हो, वह जाति इतिहास लिखने में अनभिज्ञ हो, ऐसा मानना अपनी बुद्धि का खोखलापन प्रदर्शित करना ही कहा जा सकता है।

प्राचीन हिन्दुओं की, इतिहास-लेखन से अनभिज्ञता को सिद्ध करने के लिये कुछ एक विद्वान् एक बड़ा ही अद्भुत और विचित्र तर्क प्रस्तुत किया करते हैं। ऐसे विद्वानों का कथन है कि—

'चूंकि हिन्दू आरम्भ से ही 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के विचार को मानते चले आये हैं, इस कारण इस मिथ्या जगत् के ही एक अंग (इतिहास) की ओर उन्होंने कभी कोई ध्यान ही नहीं दिया। वे इस मिथ्या संसार से छुटकारा पाने की ही सोचते रहे। अतएव इतिहास लिखने की भला उन्हें सुधि ही कहाँ थी ?'

यह है उक्त विद्वानों का वह विचित्र तर्क। ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या का सर्वप्रथम समाघोष जगद्गुरु आद्य शङ्कराचार्य ने लगाया था। जगद्गुरु से सहस्रों वर्ष पूर्व महर्षि व्यास ने महाभारत को लिखवाने के लिये भगवान् गणेश का स्मरण किया था और महाभारत का स्वाध्याय करने वाले मनीषी यह भली-भांति जानते हैं कि सम्पूर्ण महाभारत श्री गणेश ने ही महर्षि व्यास

के आदेशानुसार लिखा था। महाभारत में इस ग्रन्थ के इतिहास होने की पुष्टि निम्न प्रकार से की गयी है :—

इतिहासे महापुण्ये बुद्धिश्च परिनैष्ठिकी ॥
धर्मशास्त्रमिदं पुण्यमर्थशास्त्रमिदं परम् ।
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना ॥

--आदिपर्व ६२।१७, २३

अर्थात् यह परम पवित्र इतिहास, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और मोक्षशास्त्र है जिसे अमितबुद्धि व्यास ने रचा है।

यह किन लोगों का इतिहास है, यह भी लिखा है—

भरतानां महज्जन्म तस्माद् भारतमुच्यते ।
महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

—स्वर्गारोहण पर्व ५।४५

अर्थात् भरतवंशियों (चन्द्रवंशी) के महान् जन्म का इसमें (महाभारत में) वर्णन होने से इसे भारत कहते हैं और महान् तथा भारी होने से इसे महाभारत कहते हैं। जो इस निरुक्ति को जानता है वह समस्त पापों से प्रमुक्त हुआ कहा जाता है।

इस प्रकार महाभारत की अन्तः साक्षी से यह चन्द्रवंशी राजाओं का इतिहास है। ऐसी स्थिति में यह तो कोई मूर्ख ही कह सकता है कि महाभारत इतिहास नहीं है। यह दूसरी बात है कि इतिहास होते हुए भी इसमें अन्य विशेषताएँ हैं। अन्य विशेषताओं की विद्यमानता से इसके इतिहास होने में सन्देह करना व्यर्थ है। महाभारत ग्रन्थ में राम-रावण के युद्ध को एक सत्य घटना माना गया है। राम-रावण का युद्ध रामायण में विस्तारपूर्वक वर्णित है। अतः रामायण भी एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है।

यह तो हुई आद्य शङ्कराचार्य से पूर्व की बात।

इतिहासकार आद्य शङ्कराचार्य को प्रायः ७वीं शताब्दी (ईसा की) में स्वीकार करते हैं। अब विचारणीय तथ्य यह है कि कश्मीरी पण्डित कल्हण ने १०वीं शताब्दी के समीप राजतरङ्गिणी नामक एक ग्रन्थ रचा था, जिसमें वह स्वयं स्वीकार करता है कि इस ग्रन्थ में कश्मीर के राजाओं का इतिहास वर्णित है। इसी प्रकार इतिहास की संज्ञा से विभूषित ऐसे अनेकों ग्रन्थ आज भी उपलब्ध होते हैं जो "ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या" वाले युग की ही देन हैं।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि उक्त विद्वानों के विचित्र तर्क कितने खोखले और मूर्खतापूर्ण हैं । इस प्रकार के 'प्रगतिशील' विद्वानों की भारत में न्यूनता नहीं है । एक ढूंढो तो सहस्रों मिलते हैं । इसी प्रगतिशील परिपाटी के भारत में एक अन्य अतिप्रसिद्ध विद्वान् हैं—श्रीयुत् रमेश चन्द्र जी मजूमदार । यह एक बहुत बड़े इतिहासकार माने जाते हैं । आप भारत के कतिपय प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों के कुलपति और प्रधानाचार्य भी रह चुके हैं । इतिहास शब्द की परिभाषा देते हुए आप अपनी ऐतिहासिक पुस्तक के प्रथमाध्याय के प्रथम वाक्य में लिखते हैं—

'इतिहास मनुष्य की सफलताओं का वृत्तान्त है ।'

—प्राचीन भारत, पृष्ठ १

(मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, वाराणसी, पटना से प्रकाशित)

इतिहास शब्द की उक्त परिभाषा कितनी विचित्र और भोंडी है, यह उक्त वाक्य से सुस्पष्ट है । इन महानुभाव से पूछा जा सकता है कि यदि मनुष्य की सफलताओं के वृत्तान्त का नाम ही इतिहास है, तो फिर मनुष्य की असफलताओं के वृत्तान्त का नाम इतिहास क्यों नहीं है ? उक्त वाक्य ही बतलाता है कि भारत का इतिहास किस प्रकार के इतिहासकारों ने लिखा है ।

इतिहास जगत् में ऐसा कहा जाता है कि श्रीयुत् मजूमदार संस्कृत के महान् पण्डित हैं । सम्भव है कि यह सत्य हो, परन्तु इतिहास शब्द की उक्त व्याख्या से तो कम से कम ऐसा सिद्ध होता नहीं । अस्तु ! इस विषय में अधिक कहना व्यक्तिगत आक्षेप मान लेना वर्तमान समाज की परम्परा-सी बन गयी है । अतः इस सन्दर्भ में अधिक नहीं, अपितु इतना कहना ही पर्याप्त है कि श्रीयुत् मजूमदार ने इतिहास शब्द की व्याख्या संस्कृत-साहित्य के सर्वथा प्रतिकूल की है ।

इतिहास शब्द के दो अर्थ बनते हैं । वे क्रमशः इस प्रकार से हैं :—

१—इति ह शब्दः पारम्पर्योपदेशे अव्ययम् । इति हास्तेऽस्मिन्नितिहासः ।

अर्थात् परम्परा से जो कहा जाता है कि ऐसा हुआ था, वह इतिहास है ।

इसका अभिप्राय यह हुआ कि ऐसी कथाएँ जो परम्परागत चली आ रही हैं, वे इतिहास हैं ।

द्वितीय अर्थ इस प्रकार है—

२—इति हैवमासीदिति यः कथ्यते स इतिहासः ।

अर्थात् यह निश्चय से ऐसा हुआ, ऐसा जो कहता है, वह इतिहास है।

इसका अभिप्राय यह है कि ऐसी घटना जो वास्तव में घटी हो, वह इतिहास है।

इतिहास शब्द के उक्त दोनों अर्थों में अन्तर है। प्रथम अर्थ परम्परागत कथाओं वाला है। यहाँ विचारणीय यह है कि परम्परागत घटनाएँ अथवा कथाएँ सत्य भी हो सकती हैं और मिथ्या भी। अभिप्राय यह है कि यदि कोई लेखक किसी कहानी को कल्पित करे और वह परम्परागत चली आये तो कल्पना होते हुए भी वह इतिहास कहलाएगी।

उदाहरण के रूप में पञ्चतन्त्र की विश्वविख्यात कथाएं हैं जिनमें पशु-पक्षियों के पारस्परिक सम्वादों के माध्यम से नीति-विषयक मानवीय बातों को समझाने का प्रयास किया गया है। पशु-पक्षियों का मानव की भाँति शास्त्रार्थ करना अथवा उनमें मानवोचित बातों का घटना मिथ्या है। इस पर भी चूँकि ये कथाएँ परम्परागत चली आयी हैं और लोग उनको मान्यता देते हैं, इसलिये इतिहास हैं।

एक अन्य दृष्टि से भी ऐसी कथाएँ इतिहास हैं। यह सत्य है कि मानव की भाषा में अथवा उसकी शैली में पशु-पक्षी शास्त्रार्थ नहीं कर सकते और न ही उनमें मानव के साथ घटित होने वाली घटनाएं घट सकती हैं। परन्तु यह तो सत्य ही है कि उन पशु-पक्षियों द्वारा जो बातें मानव के विषय में कही गयी हैं, वे सर्वथा सत्य हैं। यह भी सत्य है कि मानव शास्त्रार्थ करते हैं और नीति-विषयक वैसी ही बातें प्रायः कहते हैं, जैसी कि पशु-पक्षियों के मुख से कहलवायी गयी हैं। और ऐसा कहलावाना मानव पर पूर्णतः सत्य घटित होता है। अतः इस दृष्टि से भी वे कथाएँ इतिहास हैं। यही कारण है कि महा-भारतादि ग्रन्थों के कतिपय अध्यायों में ऋषियों-महर्षियों ने राजाओं आदि को अनेक पशु-पक्षियों की कथाएं सुनाते हुए उनको इतिहास शब्द से पुकारा है।

उदाहरण के रूप में धर्मराज युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म से यह प्रश्न किया कि राजा एक दुर्लभ राज्य को पाकर भी सेना-कोषादि साधनों से रहित हो तो सभी दृष्टियों से बलवान् शत्रु के सामने कैसे टिक सकता है?

इसके उत्तर में भीष्म ने कहा—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
सरितां चैव सम्वादं सागरस्य च भारत ।।

—महाभारत शान्तिपर्व ११३।२
(गीता प्रेस गोरखपुर संस्करण)

अर्थात्–हे भारत ! इस विषय में विज्ञ पुरुष सरिताओं और समुद्र के रूप में एक प्राचीन इतिहास का दृष्टान्त दिया करते हैं ।

यहाँ नदियों और समुद्र के पारस्परिक सम्वाद को इतिहास का नाम दिया गया है, जबकि तथ्य यह है कि नदी और समुद्र जड़ होने से सम्वाद नहीं कर सकते । अब चूँकि इस सम्वाद में राजा के लिये दिये गये उपदेश सत्य हैं, इस लिये यह इतिहास है ।

इसके अतिरिक्त इतिहास शब्द का दूसरा अर्थ तो प्रसिद्ध है ही । अर्थात् सत्य घटना ही इतिहास है । वह घटना किसी भी विषय की हो सकती है । यदि विषय धर्म है तो धर्म का इतिहास कहलाएगा । इसी प्रकार रसायन का इतिहास, अन्तरिक्ष का इतिहास, आयुर्वेद, मानव, सभ्यता, विज्ञान, संस्था, कारखाने, सृष्टि आदि का इतिहास समझना चाहिए ।

प्रगतिशील विद्वानों का कथन है कि प्राचीन भारतीय द्वितीय अर्थ वाला इतिहास लिखना नहीं जानते थे । इनके विपरीत भारतीय परम्परा को मान्यता देने वाले विद्वान् रामायण-महाभारतादि ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए बताते हैं कि ये ग्रन्थ भारत का इतिहास दर्शाते हैं । इस मान्यता पर आक्षेप करते हुए प्रगतिवादियों का तर्क है कि इनको इतिहास नहीं माना जा सकता, क्योंकि ये सभी ग्रन्थ काव्य में लिखे गये हैं और काव्य में लिखा गया ग्रन्थ इतिहास नहीं हो सकता ।

इसी प्रकार के अन्य अनेकों निराधार और मूर्खतापूर्ण कुतर्क इन महानुभावों ने प्रस्तुत किये हैं । इससे पूर्णतः सिद्ध हो जाता है कि इतिहास लेखन की प्राचीन भारतीय शैली को समझने का घोर परिश्रम न करते हुए इस विचित्र परिपाटी के विद्वान् व्यर्थ में ही अपनी मूर्खतापूर्ण और अयुक्तियुक्त बातों से पृष्ठों को काला करने का पापकर्म कर रहे हैं, जिससे भारत का प्राचीन इतिहास श्वेत से काला बन गया है । यह सब इन प्रगतिवादियों की मिथ्या दृष्टि का कुफल है ।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि उस शैली को समझा जाय, जिस शैली में भारत का प्राचीन इतिहास लेखनी बद्ध है । यही प्रस्तुत लेखमाला का विषय है ।

अतएव सर्वप्रथम प्रश्न उपस्थित होता है कि वह शैली कैसी है, किन ग्रन्थों में लिखी हुई है, वह समझी जा सकने योग्य है अथवा नहीं ? इस विषय पर आगामी लेखों में विचार किया जायेगा । ●

भारतीय समाजवाद

●

श्री गुरुदत्त

कुछ दिन हुए कांग्रेस के अध्यक्ष श्री निजलिंगप्पा ने बैंकों के राष्ट्रीयकरण के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए समाचार-पत्रों के प्रतिनिधियों से कहा था कि वे भारतीय समाजवाद के पक्ष के हैं।

इस पर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि भारतीय समाजवाद है क्या ? इसमें और श्रीमती इन्दिरा गांधी अथवा मार्क्स और एंजल्स के समाजवाद में कुछ अन्तर है अथवा नहीं ? एस० एस० पी० और पी० एस० पी० का समाजवाद भी भारतीय समाजवाद ही है क्या ? यदि हम कुछ दूर की बात पूछें तो प्रश्न यह हो जायेगा कि यह भारतीय जनसंघ का समाजवाद क्या है ?

इन प्रश्नों का उत्तर तो श्री निजलिंगप्पा दें, उनको ही देना चाहिये। परन्तु इस 'भारतीय समाजवाद' पर हम अपने कुछ विचार व्यक्त करना चाहते हैं।

भारतीय समाजवाद किसी प्रकार से भी भारतीय शास्त्रों का वाक्य नहीं है। हमारा जो कुछ थोड़ा सा शास्त्रों का ज्ञान है, इसमें समाजवाद का शब्द कहीं दिखायी दिया नहीं। समाज शब्द तो है। वाद शब्द भी नास्तिक्य और आस्तिक्य के संदर्भ में आया हो तो आया हो। अन्यथा वाद शब्द भी शास्त्रीय शब्द नहीं। वाद, वाद-विवाद के स्वरूप में तो दिखायी दिया है, परन्तु किसी सिद्धान्त के साथ इस को जोड़ा हुआ बहुत कम दृष्टिगोचर होता है।

परन्तु यह शास्त्रीय शब्द है अथवा नहीं ? यह इतना गम्भीर प्रश्न नहीं, जितना कि इस शब्द के अर्थों के विषय में है। भारतीय समाजवाद एक नवीन शब्द भी हो सकता है। किसी भी जीवित भाषा में नवीन शब्द घड़े जाना विस्मयकारक नहीं। परन्तु इस नवीन शब्द के निर्माण के साथ इसके अर्थ भी तो निश्चय होने चाहियें। साथ ही इस शब्द के अर्थों में और युरोपियन समाजवाद, यदि हम उसे इस नाम से पुकारने की धृष्टता करें, के अर्थों में क्या अन्तर है यह भी स्पष्ट करना चाहिए।

वर्तमान युग का समाजवाद भिन्न-भिन्न लेखकों, नेताओं, दार्शनिकों और देशों के कर्णधारों के मस्तिष्क में भिन्न भिन्न अर्थ रखता प्रतीत होता है। वास्तव में ऐसा नहीं है। कार्ल मार्क्स से लेकर भारतीय जनसंघ की कार्यकारिणी के सितम्बर सन् १९६९ के प्रस्ताव तक, सब समाजवादों में एक समान विचार प्रवाह है। यह विचार प्रवाह अपने बाहरी कलेवर में भिन्न भिन्न होता हुआ भी सत्त्व रूप में एक ही है। देखिये, समाजवाद के लक्षण जैसे

Encyclopaedia of the Labour Movements के Vol III पृष्ठ पर दिये हैं । वे इस प्रकार हैं :— Socialism is a working class doctrine and movement aiming through the class struggle, at the collective control of society, by the capture of the state machine by the workers and the establishment of self-government in industry.

समाजवाद के इस लक्षण में निम्न बातें आयी हैं :

(१) यह कर्मचारी वर्ग का सिद्धान्त है ।

(२) वर्ग संघर्ष से इसका समाज में चलन लाना ।

(३) कर्मचारियों द्वारा राज्य सत्ता को हथिया कर समाज का सांझा नियन्त्रण स्थापित करना ।

(४) उद्योगों में स्वायत्तता स्थापित करना ।

ये चार धारायें हैं जो प्रत्येक समाजवाद में समान रूप से चलती हैं । अन्तर इन बातों में दिखायी देता है कि कोई किसको कर्मचारी मानता है और किसको नहीं मानता ? उदाहरण के रूप में आर्य समाज का उपदेशक अथवा पुरोहित कर्मचारी कहलायेगा अथवा नहीं ? इस बात में मतभेद है। परन्तु कोई भी कर्मचारी हो, उसका समाज के प्रत्येक कार्य पर नियन्त्रण में अधिकार होगा ।

इसी प्रकार मतभेद है कि सांझे नियन्त्रण से समाज का कोई कार्य बचा भी है अथवा नहीं ? चीन में कई 'कम्यून' में पुरुष और स्त्री के समागम पर भी नियन्त्रण हैं । भारत में बच्चे उत्पादन करने पर नियन्त्रण की बात चल रही है । यद्यपि अभी जनता को विवश नहीं किया जा रहा, परन्तु भय और मनोद्गारों का आश्रय ले नियन्त्रण चलाया जा रहा है ।

इसी प्रकार के मतभेद हैं । उद्योग क्षेत्र के स्वराज्य में कौन-कौन भागीदार हो ? दुर्भाग्य से आज अनेक देशों में शिक्षा संस्थान भी उद्योग हो गये हैं । अधिक से अधिक आप इनको 'subsidized industry' (वह उद्योग जो सरकारी सहायता से चलते हैं) ही कह सकते हैं । इस उद्योग में सम्मिलित विद्यार्थी और चपरासी भी प्रबन्ध में अपना प्रातिनिध्य चाहते हैं । कदाचित् भारतीय जनसंघ का समाजवाद इतना कुछ नहीं चाहता ।

हमारा यह कहना है कि भूमण्डल के सब समाजवादों में समान विचार-धारा यह है कि समाज की प्रत्येक गतिविधि पर सब कर्मचारियों का नियन्त्रण राज्य सत्ता के द्वारा चलाया जाये ।

अब प्रश्न यह है कि निजलिंगप्पा साहब का भारतीय समाजवाद क्या

सरकारी सत्ता के बिना चलेगा अथवा सरकारी सत्ता से ? इसी प्रकार भारतीय जनसंघ ने अपने समाजवाद में क्या कहीं इस बात का संकेत मात्र भी किया है कि समाज पर नियन्त्रण राज्य सत्ता के अतिरिक्त चलेगा।

वास्तविक बात यह है कि आज के युग में समाजवाद के अर्थ एक ही हैं और जो भी समाजवाद का नाम लेता है, उसका आशय यह ही है कि राज्य-सत्ता हथिया कर (by the capture of state machine) समाज पर राज्य कार्यों के अतिरिक्त भी समाज की गतिविधियों पर, नियन्त्रण प्राप्त किया जाये।

राज्य कार्य तो केवल तीन हैं—

(१) शान्ति व्यवस्था (law and order)। इसमें देश की सुरक्षा भी सम्मिलित है।

(२) धर्म की व्यवस्था (legislative work)

(३) न्यायाधिकरण (judiciary)। अन्य कार्य सामाजिक हैं, परन्तु समाजवादी उक्त तीन कार्य करने वाले के हाथ में अर्थात् राज्य कर्मचारियों को समाज के सभी कार्यों में नियन्त्रण देना चाहते हैं।

यदि तो भारतीय समाजवाद भी यही चाहता है तो हमारा विनम्र निवेदन है कि वे उसके साथ वर्तमान शब्द भी लगा दें जिससे यह भ्रम न रहे कि वे कहीं किसी प्राचीन भारतीय प्रथा का उल्लेख कर रहे हैं।

वर्तमान भारत में तो माता-पिता, बच्चों का पालन-पोषण न कर सकने पर गर्भपात की स्वीकृति मांग रहे हैं। वर्तमान भारत के कम से कम कुछ विद्वान् सार्वजनिक दृष्टि में पुरुष-स्त्री को चुम्बन करने का अधिकार देना चाहते हैं। वे पुरुष-स्त्री के गुह्य अंगों का प्रदर्शन भी चाहते हैं। अतः वर्तमान भारतीय समाजवाद भी समझ में आ सकता है, परन्तु भारतीय समाजवाद से यह गंध आती है कि वे कहीं किसी शास्त्रीय सिद्धान्त की चर्चा कर रहे हैं।

शास्त्रों में समाजवाद शब्द कहीं देखा नहीं। कम से कम वर्तमान अर्थों में यह नहीं है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि भारत देश में समाज और व्यक्ति का कभी विश्लेषण हुआ ही नहीं और शास्त्रकार जानते ही नहीं थे कि समाज कैसे और क्यों निर्माण किया गया।

समाज-व्यवस्था भारतीय शास्त्रानुसार समाजवाद नहीं कही जाती थी, वरंच इसका नाम वर्ण व्यवस्था था। वर्ण गुण, कर्म और स्वभाव से निश्चय किये जाते थे। कब और किनसे ? निस्सन्देह राज्य सत्ता द्वारा नहीं। इसका निश्चय करने वाले आचार्य लोग होते थे।

सब से पहले यज्ञोपवीत संस्कार, कहीं राजा अथवा राज्य सत्ताधीश नहीं कराता था।

वेद पढ़ने के अधिकारी को यज्ञोपवीत देकर गुरुकुल में प्रवेश मिलता था। आज तो राज्य का यह आदेश है कि शिक्षा में प्रवेश सब को मिले। यह हम मानते हैं कि सबको उन्नति का अवसर मिलना चाहिये, परन्तु जो बालक-बालिकायें वर्ण माला भी नहीं पढ़ सकतीं, उनके लिये भी अवसर का कुछ अर्थ हो सकता है क्या ?

हम यहां केवल प्राइमरी की प्रथम श्रेणी की बात नहीं कर रहे। हम तो यह भी कह रहे हैं कि कालेजों में भी सब स्कूलों से निकले विद्यार्थियों को प्रवेश की मांग की जाती है।

इसी प्रकार गुरुकुलों में आचार्य ही यह निश्चय करते थे कि किसको युद्ध करने की, अस्त्र-शस्त्र चलाने की और राज्य करने की शिक्षा मिले और किसको व्यापार, कृषि तथा अध्यापक बनने की उपाधि मिले।

स्मृति शास्त्र में इस बात का उल्लेख तो है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य कुमार का यज्ञोपवीत अमुक वयस् में हो जाये, परन्तु यह तो कहीं लिखा देखा नहीं गया कि यदि ब्राह्मण कुमार अक्षर भी पढ़ अथवा स्मरण नहीं कर सकता तो बलपूर्वक उसके गले में यज्ञोपवीत डाल दिया जाये। यदि निर्धारित वयस् में ब्राह्मण कुमार को यज्ञोपवीत न दिया जाये तो क्या हो ? वह व्रात्य हो जाये। व्रात्य का अभिप्राय है जातिच्युत।

अत: सबसे प्रथम बात यह है कि वर्ण-व्यवस्था की स्थापना आचार्यों के हाथ में होती थी, किसी राज्याधिकारी के नहीं।

इसी प्रकार प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था राज्य सत्ता के पृथक रह कर ही करने का विधान है।

यह ठीक है कि प्राणी मात्र को विकास के लिये अवसर मिलना चाहिये, परन्तु यदि इस अवसर के प्रदान में राज्य सत्ता का हस्तक्षेप होगा तो अवसर की उपलब्धि में रियायत होगी ही और वह रियायत अनधिकारियों के लिये होगी।

अत: समाजवाद और वर्ण-व्यवस्था में प्रथम और आवश्यक भेद है राज्य के हस्तक्षेप का। समाजवाद चलता है देश की सरकार द्वारा और वर्ण-व्यवस्था चलती है आचार्यों और विद्वानों द्वारा।

दूसरी बात, जिसमें वर्ण-व्यवस्था और समाजवाद में भेद है गुण, कर्म और स्वभाव में अधिकारों की है। मनुष्य का वर्ण (status in society) गुण, कर्म और स्वभाव से निश्चय होता था। सब को सब प्रकार के अधिकार

हों, यह वर्ण व्यवस्था में स्वीकार नहीं किया गया। समाजवाद में सब को समान अधिकारों की व्यवस्था है। एक बात यह भी कही जाती है कि सबको जीने का अधिकार है। वर्ण व्यवस्था इसको नहीं मानती।

यदि गुण, कर्म और स्वभाव से कोई ऐसा है कि उसे जीवन का अधिकार नहीं दिया जाये तो नहीं भी दिया जाता। उदाहरण के रूप में कोई व्यक्ति पर-द्रव्यापहारी है और मना करने पर भी नहीं मानता तो वह जीने का भी अधिकारी नहीं है। एक अन्य उदाहरण लें कोई आलसी और प्रमादी किसी प्रकार का कार्य नहीं करता और इससे वह भूखा मरने लगता है तो उसे भूखा मरना ही चाहिये। अतः जीने का भी सबका अधिकार वर्ण-व्यवस्था में नहीं। गुण, कर्म और स्वभाव से जीने योग्य को ही जीने दिया जा सकता है।

वर्तमान युग के समाजवाद में और वर्ण-व्यवस्था में प्रथम अन्तर तो यह है कि वर्ण व्यवस्था करना राज्य-कार्य नहीं। यह आचार्यों का काम है। दूसरा अन्तर वर्ण-व्यवस्था और वर्तमान युग के समाजवाद में है कि मानवों के अधिकार, उनके गुण, कर्म, स्वभावानुसार होते हैं। केवल किसी स्त्री के पेट से उत्पन्न होने से नहीं बनते।

बस यही समाज है और यही वर्ण-व्यवस्था अथवा समाजवाद है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि समाज के घटकों के लिये उपयुक्त कार्य निर्धारित करना और उस कार्य के अनुसार उनको अधिकार देना। इसके अतिरिक्त समाज में और कुछ नहीं है। इन्हीं दो कामों की व्याख्या में बहुत सी बातें की जाती हैं। मूल रूप में ये दो बातें ही हैं।

हमने यह बताया है कि समाजवाद में समाज के घटकों के लिये कर्म का निश्चय करना राज्य के हाथ में है। राज्य हम उस संस्था को कहते हैं जो कि देश में शान्ति व्यवस्था स्थिर रखने का काम करती है। जो देश की सुरक्षा का प्रबन्ध करती है और जो समाज में धर्म व्यवस्था स्थापित करती है। इन कार्यों को करने वाले को राज्य कहते हैं। ऐसी संस्था के हाथ में लोगों के कार्य निश्चित करने का अधिकार देना समाजवाद है और वर्ण-व्यवस्था में यह कार्य देश के आचार्यों का काम माना है।

कर्म करने वालों के अधिकारों का निश्चय करना प्राचीन काल में तो आचार्य ही करते थे, परन्तु ये आचार्य धर्म के रूप में ही कर सकते थे। उनकी व्यवस्था का पालन यदि कोई न करे तब वह सरकार से दण्डनीय होता था।

उदाहरण के रूप में समाजवादी सरकार यह निश्चय करती है कि एक क्लर्क का वेतन १५० रुपया मासिक हो। वर्ण व्यवस्था में यह कार्य अर्थ शास्त्र के आचार्यों का है। उन आचार्यों का जो राज्य से सीधा अथवा दूर का भी

सम्बन्ध नहीं रखते ।

परन्तु यदि कोई व्यक्ति आचार्यों द्वारा दी गयी व्यवस्था का उल्लंघन करता है तब सरकार उस वेतनधारी की रक्षा के लिये हस्तक्षेप करती है ।

हमने बताया है कि भारतीय पद्धति में समाजवाद का अस्तित्व नहीं । वर्ण-व्यवस्था है । आधार भूत अन्तर समाजवाद और वर्ण-व्यवस्था में यह है कि समाजवाद में समाज के दोनों प्रमुख कार्य राज्य करता है और वर्ण-व्यवस्था में वे दोनों कार्य आचार्यों द्वारा किये जाते हैं । राज्य केवल उस समय हस्तक्षेप करता है जब कोई आचार्यों द्वारा संचालित व्यवस्था का विरोध अथवा उल्लंघन करता है ।

हमने यह बताया है कि वर्तमान युग के समाजवाद में, समाज की गतिविधियों पर अधिकार राज्य सत्ता का है और वर्ण व्यवस्था में व्यवस्था तो आचार्य करते हैं, परन्तु उस व्यवस्था का उल्लंघन अथवा विरोध राज्य रोकता है ।

दोनों पद्धतियों में गुण-दोष और इनसे समाज का कल्याण-अकल्याण किसी दूसरे लेख में लिखेंगे । यहां तो इतने से ही अभिप्राय है कि भारतीय समाजवाद का नाम लेने वाले श्री निर्जलिगप्पा वास्तव में समाज पर नियन्त्रण राज्य सत्ता का ही चाहते हैं । अतः वे समाजवाद की मुख्य और परम दूषित बात को ही मानते हैं ।

हमारा यह कहना है कि भारतीय समाजवाद का नाम लेने वाले अपने आप को ठगते हैं और जनता को भी पथभ्रष्ट करते हैं । समाजवाद शब्द के अर्थ हैं राज्य सत्ता का समाज की प्रत्येक गतिविधि पर अधिकार । यह एक अत्यन्त दूषित व्यवस्था है ।

इसके विपरीत वर्ण-व्यवस्था जो यदि शुद्ध गुण, कर्म और स्वभाव से चलायी जाये तो वह समाज के लिये कल्याणकारी हो सकती है ।

समाज की व्यवस्था निश्चित करने का अधिकार केवलमात्र स्वतन्त्र विद्वानों को ही देना चाहिये । राज्य तो यह देखने के लिये है कि वर्ण-व्यवस्था का पालन हो रहा है अथवा नहीं ।

भारतीय समाजवाद इसको विख्यात करने वाले, राज्य सत्ता के अतिरिक्त किस प्रकार से इसको चलाना चाहते हैं, यह उनको स्पष्ट करना पड़ेगा ।

हम वर्णों की व्यवस्था और वर्णों के अधिकारों के विषय में राज्य का हस्तक्षेप नहीं चाहते । यह समाज के विद्वान व्यक्तियों का कार्य है, राज्याधिकारियों का नहीं ।

स्पष्टीकरण के शब्द

●

श्री टेकचन्द शर्मा

(जुलाई मास की प्रत्रिका में प्रकाशित श्री टेकचन्द शर्मा के लेख 'काश आज पण्डित जी होते' की प्रतिक्रियास्वरूप श्री उमाकान्त का लेख सितम्बर मास की प्रत्रिका में 'प्रतिक्रिया के शब्द' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत लेख द्वारा श्री शर्मा अपना तथा पाठकों का संशय निवारण कर रहे हैं। श्री शर्मा जी की इस बात से हम किंचित् भी सहमत नहीं हैं कि लेख को छोटा करने में हमने अपनी लेखनी रूपी छुरी द्वारा उनके लेख को 'ज़िबह' कर के रख दिया है। क्योंकि शर्मा जी का उलाहना मिलने पर हमने पुनः उनकी पाण्डुलिपि को पढ़ा और यही पाया कि उनके लेख की आत्मा को बरकरार रखते हुए अपनी लेखनी द्वारा हमने उसे तराश कर उसके बेडौल शरीर को सुडौल ही किया है। अभी भी यदि किसी को सन्देह हो तो वे सज्जन उस लेख की पाण्डुलिपि का श्री शर्मा जी के पास निरीक्षण कर सकते हैं। -सम्पादक)।

शाश्वत वाणी के सितम्बर मास के अंक में, गत जुलाई मास के अंक में प्रकाशित अपने लेख के सम्बन्ध में श्री उमाकान्त की प्रतिक्रिया पढ़ कर मेरा संशय सही ही निकला है कि मेरे लेख द्वारा मेरा अभिप्राय स्पष्ट नहीं हो पाया है। वस्तुस्थिति यह है कि मैं स्वयं भी अपना ही लेख 'शाश्वतवाणी' में पढ़ कर चकित सा रह गया था। स्थानाभाव के कारण उस लेख को आधा करने के उद्देश्य से सम्पादक महोदय ने अपने कलम की छुरी कुछ इस तरह फेरी कि वह 'जिबह' हो कर रह गया। यह दुःख मैंने सम्पादक महोदय को व्यक्त भी किया था। अतः आवश्यक है कि उस लेख को पुनः स्पष्ट किया जाय।

अपने लेख द्वारा मेरा उद्देश्य यह बताना था कि किस प्रकार प्रथम आम चुनाव के अनुभव की पृष्ठभूमि में जनसंघ को अपने आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रम की स्पष्ट रूपरेखा निर्धारित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई तथा इस उद्देश्य के लिये कार्यसमिति की बैठक आमन्त्रित की गई और किस प्रकार यह

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न सदस्यों में तीव्र मतभेद होने के कारण अनिर्णीत ही टाल देना पड़ा और दुर्भाग्य से आज जनसंघ की स्थापना के १८ वर्ष बाद भी स्थिति यथावत् बनी हुई है। आर्थिक कार्यक्रम के विषय में जनसंघ के नेता नित नये स्वर निकाल रहे हैं और परिणाम इसके कार्यकर्त्ताओं की मानसिक उलझन में वृद्धि के रूप में प्रकट हो रहा है।

जहां तक जनसंघ के आर्थिक कार्यक्रम का प्रश्न है भारतीय पद्धति की हवाइयाँ तो छोड़ी गईं लेकिन मसाले के लिये नक्ल की गई कम्युनिस्टों की। यही कारण है कि आज इसकी प्रत्येक हवाई से लाल तारे निकलते दीखते हैं।

अपने लेख में मैंने लिखा था कि जनसंघ की रीति नीति और कार्यक्रमों को देखकर अब यह निश्चित है कि इस देश में कम्युनिज्म अवश्य आवेगा क्योंकि इसे लाने में जनसंघ ही सर्वाधिक सहायक हो रहा है। कोई समय था जनसंघ कम्युनिस्टों को गद्दार, देशद्रोही, विदेशी एजेण्ट और अपना 'शत्रु नम्बर एक' घोषित करता था। गत आम चुनाव के बाद उन्हीं, अपने नम्बर एक शत्रु गद्दार, देशद्रोही और विदेशी एजेण्टों के साथ निहायत निर्लज्जता से मन्त्रिमण्डलों में सम्मिलित हो गया है। ऐसा करके जनसंघ ने कम्युनिस्टों पर देशद्रोही और गद्दार होने का इलजाम लगाने के अपने अमोघ अस्त्र से अपने को न केवल सदा के लिये वंचित ही कर लिया, बल्कि इसने यह भी स्वीकार कर लिया कि उन पर उक्त आरोप लगा कर वह आज तक झूठ बोलता रहा है। वे तो वास्तव में भारत के सच्चे सपूत, देश भक्त और सगे भाई ही थे अन्यथा जनसंघ उनके साथ बैठकर एक ही थाली में कैसे मुँह मार सकता था? यदि यह बात नहीं तो कोई समझाये कि देशद्रोहियों का साथ देने वाले को देशद्रोही, गद्दारों का साथ देने वाले को गद्दार और देश के नम्बर १ शत्रुओं का साथ देने वाले को देश का अव्वल नम्बर का शत्रु न कहा जाय तो क्या कहा जाय? क्या यह गलत है कि केवल जनसंघ के ही इस कृत्य से कम्युनिस्टों को देश में आज वह सम्मान (रिस्पैक्टेबिलिटी) प्राप्त हो गई है जिसके लिये कम्युनिस्ट कब से लालायित थे। जनसंघ के अतिरिक्त शेष अन्य दल यदि मिल कर भी प्रयत्न करते तो भी वे सब भारतीय जीवन में कम्युनिस्टों को यह सम्मान प्राप्त नहीं करवा सकते थे। जनसंघ द्वारा प्रदान किये गये देश भक्ति के इस सर्टिफिकेट के लिये कम्युनिस्ट सदा के लिये उसके आभारी रहेंगे। (कम्युनिज्म ने आधार प्रदर्शित करना नहीं सीखा है— सम्पादक)

कम्युनिस्टों को रिस्पैक्टेबिलिटी प्रदान कर देने के बाद जनसंघ ने उनकी विचारधारा और कार्यक्रमों को भी स्वीकार करके और अपना कर इस

रिस्पैक्टेबिलिटी में चार चांद और लगा दिये हैं। क्या यह गलत है कि जनसंघ के ही भारतीय मजदूर संघ में घरना, तालाबन्दी, हड़ताल और घेराव को कोई स्थान नहीं है? वर्ग संघर्ष और क्या होता है? यह सब कम्युनिस्ट कार्यक्रम नहीं तो और क्या हैं? हाँ, नक्सलवादियों की भांति अभी लूटपाट और हिंसा को उचित ठहराना शेष है। परन्तु यदि इसी तरह अक्ल बन्द और नक्ल जारी रही तो वह दिन भी दूर नहीं है। कहां गया भारतीय मजदूर संघ का "विश्वकर्मा दिवस"? कौन सी वह मजबूरी थी कि कम्युनिस्ट पार्टी के नेता डांगे के इस आदेश को कि 'मई दिवस' के जलूस में शामिल हुआ जाय, सघ के नेताओं ने सिर झुका कर स्वीकार कर लिया?

राष्ट्रीयकरण कम्युनिस्ट विचारधारा का मुख्य लक्ष्य है। परन्तु क्या हमने नहीं देखा कि बैंक राष्ट्रीयकरण पर कम्युनिस्टों की मार के आगे जनसघ पसीज कर किस प्रकार 'द्रविड़ प्राणायाम' कर रहा है। जनसंघ की 'कलाबाजी' का आनन्द लेने के लिये इस प्रश्न पर इसके नेताओं के गत दो मास के वक्तव्य और समाचार पत्रों में प्रकाशित जनसंघ कार्य-समिति की कार्रवाई का विवरण ही निगाह से गुजार देना पर्याप्त है। और अब तो जनसघ ने यह खुली घोषणा कर दी वह कम्युनिस्टों से भी उग्र (?) आर्थिक कार्यक्रम जनता के सामने पेश करने जा रहा है।

कम्युनिस्टों को रिस्पैक्टेबिलिटी जनसघ प्रदान करे, उनके कार्यक्रमों को वह अपनाये, उनकी विचारधारा के सामने मस्तक वह झुकाये तो कोई बताये कि बबूल के पेड़ बो कर वह आम कहां से पायेगा? कम्युनिस्ट खुश हैं कि उनके जनसंघ की "आम की बगिया" फल फूल रही है।

यह सब स्थिति आज क्यों उत्पन्न हुई है? क्योंकि जनसंघ ने अपना एकमात्र आधार 'हिन्दुत्व' जिसके सहारे वह कम्युनिज्म से टक्कर ले सकता था, छोड़ दिया है। छोड़ दिया? बल्कि उसका ऐसा सत्यानाश पीटा है कि वह आज पहचान में भी नहीं आ रहा। इस मिलावट के जमाने में यार लोगों ने हिन्दू, हिन्दुत्व, हिन्दू राष्ट्र तक को अछूता नहीं छोड़ा। हिन्दू शब्द तो मानों जनसंघ के (नेताओं के) लिये गाली के समान हो गया है। जनसंघी नेता इस शब्द से ऐसा बिदकता है जैसे लाल कपड़े से सांड। प्रतिक्रियावादी और प्रतिगामी कहलाने का भय इन पर इस बुरी तरह हावी हो गया है कि इन्होंने 'हिन्दू' को 'पंचतत्व का पुतला' बना कर रख दिया है। गुरु नानकदेव ने तो एक द्विधापूर्ण स्थिति में यह दार्शनिक वाक्य कहा बताते हैं कि "हिन्दू कहा ते मारया, मुसलमान मैं नां। पंचतत्व का पुतला ते नानक मेरा नांव।" परन्तु जनसंघ को बिना किसी कारण ही कंपकंपी छूट गई और अपनी उस

एकमात्र विशेषता को त्याग दिया जो इसका 'ईमान' और 'जान' थी। इस विशेषता के अतिरिक्त जनसंघ में और कौन से सुरखाब के पर लगे हैं कि हिन्दू जनता इनके पीछे दौड़ी आये ? और यह भी किस मुँह से जनता को अपने पीछे आने को कह सकते हैं ?

काबा किस मुंह से जाओगे गालिब ।
शर्म तुमको मगर नहीं आती ।।

यदि आर्थिक विचारधारा और कार्यक्रम को ही मुख्य आधार और खुसूसियत बनाना है तो फिर कांग्रेस, कम्युनिस्ट और अन्य वामपक्षी दलों के त्याग, अनुभव और हथकण्डों के आगे आप कौन सी गिनती में हैं ? कम्युनिस्टों का लक्ष्य लंगूर बनाना है जब कि आपका लक्ष्य था गणेश। अपना लक्ष्य भूल कर यदि कम्युनिस्टों की होड़ और नक्ल करते गये तो एक दिन देखेंगे कि सूंड मुंह में लगाने की बजाय दुम के स्थान पर लगा गये हैं। और 'विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्' की कहावत आप पर चरितार्थ हो कर रहेगी। कम्युनिस्टों से प्रत्येक बात में होड़ और उनकी नक्ल से जनसंघ के साधारण कार्यकर्त्ता में कम्युनिस्ट विचारधारा और कार्यक्रम के लिये आदर का भाव उत्पन्न हो रहा है। आदर आगे बढ़ कर श्रद्धा हो जाता है। जनसंघ का साधारण कार्यकर्त्ता यदि यह सोचना शुरू कर दे कि हमारे पास अपना और कुछ नहीं और अपने सौन्दर्य को बढ़ाने के लिये हमें सब कुछ कम्युनिस्टों से ही लेना है तो फिर जनसंघी कहलाने की बजाय सीधे कम्युनिस्ट ही क्यों न कहलाया जाय, कम्युनिस्ट पार्टी को ही क्यों न अपनाया जाय !

हसीना ने जहां के चाहने से फायदा क्या है ।
उसी को क्यों न चाहें, हुस्न को पैदा किया जिसने ।।

जनसंघ की देशभक्ति असन्दिग्ध है। इसमें इसके शत्रुओं को भी कोई सन्देह नहीं है। परन्तु सन्दिग्ध है इन मित्रों की बुद्धि। कौन नहीं जानता कि बुद्धिमान शत्रु की अपेक्षा नादान दोस्त अधिक खतरनाक सिद्ध होता है।

गत राष्ट्रपति चुनाव में जनसंघ की भूमिका से क्या उक्त बात सिद्ध नहीं होती ? कांग्रेस का विकल्प बनने की इच्छा या प्रयत्न को कौन बुरा कह सकता है ? जयचन्द की दिल्ली के सिंहासन पर बैठने की इच्छा में कोई गलत बात नहीं थी। ऐसा होना स्वाभाविक ही था। परन्तु वह यदि अपने पौरुष से पृथ्वीराज को परास्त करके दिल्ली का सम्राट बन जाता तो यशोगान होता। गौरी की सहायता ले कर भी यदि दिल्ली की गद्दी प्राप्त करने में सफल हो जाता तो भी जय-जयकार होता और इतिहास में कलंकित न होता।

लेकिन पृथ्वीराज से केवल ईर्ष्या और द्वेष से अन्धा हो कर उस नादान ने जो कुछ किया, उसी के कारण यह देशद्रोही कह कर याद किया जाता है। दूसरे की नाक काटने के लिये अपना सिर ही गंवा देना कौन सी बुद्धिमानी है?

मेरा दावा है कि कम्युनिस्ट जीवन पद्धति से हिन्दू जीवन पद्धति न केवल श्रेष्ठ है बल्कि कम्युनिस्ट देशों तक में ५० वर्ष के परीक्षण के बाद कम्युनिज्म में जो त्रुटियाँ उनके सामने पेश आने लगी हैं और जिनका हल उन्हें प्राप्त नहीं हो रहा, उनका समाधान भी हिन्दू जीवन पद्धति प्रस्तुत करती है। काश ! जनसंघ नेता 'श्री वाजपेयी 'हिन्दू' शब्द से चिढ़ना छोड़ और हीन भावना का त्याग कर 'हिन्दू तन-मन, हिन्दू जीवन, रग-रग हिन्दू मेरा परिचय' का मधुर गान अपने कण्ठ से देशवासियों को सुनाने का साहस बटोर पाते। (क्या यह सच है कि श्री बाजपेयी को स्वयं की रचित उक्त कविता अब नितान्त अप्रिय हो गई है ?—सम्पादक)

ये हैं हमारे संरक्षक सदस्य

श्री सूर्यकान्त गुप्त

निवासी गोगरी जमालपुर

मुश्कीपुर (बिहार)

हमारे नये संरक्षक सदस्य

१९. श्रीमती शान्ति रुहेजा
५८/७९ न्यू रोहतक रोड,
नई दिल्ली-५

२०. कु० सुमति देवी, मुकुट नारायण रैना
द्वारा श्री उमाकान्त रैना
पो० आ० डघेड़ (कोठी रघुपुर)
त० आनी जि० कुल्लू (हि० प्र०)

विजयदशमी के अवसर पर

दक्षिण पूर्वी एशिया में राम राष्ट्रीय एकता के प्रतीक

—श्री लल्लनप्रसाद व्यास

दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में ऋग्वेद के अतिरिक्त यदि कोई भारतीय देवता या महापुरुष सबसे अधिक लोकप्रिय है तो वे हैं राम। आश्चर्य की बात तो यह है कि जो देश बौद्ध धर्मावलम्बी नहीं हैं, उनमें भी मर्यादा पुरुषोत्तम राम और रामायण उतने ही प्रचलित हैं जितने वे किसी बौद्ध देश या भारत में। भारत की तरह कतिपय इन देशों में भी राम उनके बिल्कुल अपने हैं जैसे भारत में भारतवासियों के।

थाईलैंड यद्यपि बौद्ध देश है, किन्तु साथ ही राम का भक्त भी। थाई-वासियों के रामायण ज्ञान का अनुमान आप इसी से लगा सकते हैं कि एक बार एक व्यक्ति ने एक छोटे से बालक से प्रश्न किया कि जब सीता इतने समय तक रावण की लंका में रही तो वह चाहते हुए भी उन्हें अपनी पत्नी क्यों नहीं बना सका, तो उसने उत्तर दिया कि सीता के शरीर से एक ऐसी अग्नि ज्वाला निकलती थी, जिससे कि अगर राम के अतिरिक्त उन्हें कोई छूता तो वह जल जाता। एक साधारण बालक का यह रामायण ज्ञान यह सिद्ध करता है कि थाई जीवन में राम और रामायण की लोकप्रियता की जड़ें कितनी गहरी हैं।

थाई-रामायण का नाम है रामकियेन अर्थात रामकीर्ति। यहाँ की रामायण का कथानक मूलतः बाल्मीकीय रामायण से ही लिया गया है और समय-समय पर अनेक रामायण यहाँ लिखी भी जा चुकी हैं। किन्तु सबसे अधिक प्रामाणिक और लोकप्रिय रामायण सन् १८०७ में नरेश राम प्रथम ने लिखी। इसी नरेश की वंश परम्परा आज भी थाईलैंड में चली आ रही है और आज के नरेश भूमिबल अतुल तेज भी अपने नाम के साथ राम लगाते हैं। थाई रामायण के कथानक का मूल भारतीय होने के बावजूद इसे अपने देश के गुण और विशेषताओं से युक्त बना लिया गया है। ऐसा कि प्रत्येक थाईवासी यही समझता है कि राम उनके देश में ही हुए और रामायण की घटनायें उनके ही देश में ही घटित हुईं।

और प्रमाण भी ले लीजिये। थाईलैंड में अयोध्या नामक नगरी भी है। अयोध्या ही नहीं, लोपबुरी (लवपुरी) भी है। बैंकॉक के एक प्रसिद्ध

म[illegible] चित्रित है । यहाँ के राष्ट्रीय संग्रहालय में राम की अनेक मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं । भवन के बाहर भी राम की मूर्ति है ।

थाईलैंड का पड़ोसी देश है कम्बोडिया, जिसके प्रसिद्ध अंगकोर मन्दिरों की दीवालों के पत्थरों पर रामायण के दृश्य उत्कीर्ण हैं । इसी प्रकार लाओस के कुछ मन्दिरों में भी रामकथा के दृश्य उत्कीर्ण हैं । इन देशों में राम से सम्बन्धित नृत्य-नाटक राजमहलों से लेकर साधारण स्थलों पर भी खेले जाते हैं ।

यह बात तो हुई बौद्ध देशों की । साथ ही मलयेशिया और इण्डोनेशिया जैसे इस्लाम धर्मावलम्बी देश भी राम भक्ति में किसी से पीछे नहीं । मलय रामायण का नाम है हिकायत सिरीरामा । मलय देश में रामायण की लोकप्रियता का पता इसी से लगाया जा सकता है कि यहां सड़कों के किनारे रोचक कार्यक्रम आयोजित करने वाले रामायण की घटनाओं का अभिनय करते हैं, तत्सम्बन्धी गाने गाते हैं और चर्मपटों के माध्यम से रामायण के पात्र बनाकर उनका अभिनय करते हैं । यह अभिनय कला यहां बहुत विकसित है और जनसाधारण इसमें बहुत रुचि लेता है । मलयेशिया में लक्ष्मण नौसेना के एडमिरल को कहते हैं, जो शूर-वीरता का द्योतक है ।

इण्डोनेशिया तो दक्षिण पूर्व एशिया मे राम और रामकथा का सबसे बड़ा प्रेमी है । इण्डोनेशिया में रामकथा के प्रति प्रेम देख कर यह निर्णय कर पाना कठिन हो जाता है कि राम और रामायण के प्रति निष्ठा भारत में अधिक है या इण्डोनेशिया में । फर्क सिर्फ इतना है कि भारत राम को भगवान के रूप में देखता है और इण्डोनेशिया एक महापुरुष के रूप में । यहाँ की रामायण का नाम है रामायण काकविन जो सम्भतः नवीं शताब्दी में लिखी गई थी । रामकथा का प्रचार बाली और जावा द्वीपों में विशेष रूप से है, बाली तो हिन्दू द्वीप है और वह पूर्णतः रामकथा से आप्लावित है, किन्तु मुस्लिम बहुल जावा के जोगजोकर्त्ता में राम सम्बन्धी नृत्य-नाटक विश्व भर में प्रसिद्ध है । जोगजोकर्त्ता के निकट ही स्थित परमवनन के मन्दिर की प्रस्तर भित्तियों पर सम्पूर्ण रामकथा उत्कीर्ण है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन देशों में राम सर्वत्र पूज्य और वन्दनीय हैं । धर्म, जाति, भाषा और वर्ग उनकी श्रेष्ठता के मार्ग में नहीं आते । सभी उन्हें अपना महापुरुष या राष्ट्रीय पुरुष मानते हैं और उनसे सम्बन्धित नाट्य-नृत्य या अन्य लीला देख कर पुलकित होते हैं और राम साहित्य पढ़ और सुन कर आनन्दित होते हैं, सत्प्रेरणा प्राप्त करते हैं । चाहें बौद्ध देश थाईलैंड

का बौद्ध हो, चाहे मलय देश और जावा द्वीप का मुसलमान हो और चाहे बाली द्वीप का हिन्दू हो, सभी के लिए राम समान रूप से महान और श्रेष्ठ हैं। मैंने देखा इण्डोनेशिया के जावा द्वीप में यत्र-तत्र रामलीला होते हुए, जिसमें मुस्लिम अभिनेतागण बड़ी निष्ठा और कुशलता से राम, लक्ष्मण, हनुमान आदि का अभिनय कर रहे थे और हजारों की संख्या में वहाँ के एकमात्र मुस्लिम निवासी बड़ी तन्मयता से उसे देख रहे थे। वे रामलीला और राम सम्बन्धी नृत्य-नाटकों को अपने देश की कला मानते हैं, राम सम्बन्धी मूर्ति और मन्दिरों को अपने देश की सांस्कृतिक धरोहर मानते हैं और बड़े गौरव के साथ वे दूसरों को दिखाते हैं कि यह सांस्कृतिक धरोहर हमारी अपनी है।

अब प्रश्न उठता है कि जब राम सम्बन्धी साहित्य और सांस्कृतिक अवशेष इन देशों में सभी के द्वारा वन्दनीय है और राम इन देशों में राष्ट्रीय एकता के प्रतीक हैं तो भारत में ऐसा क्यों नहीं? भारत में राम राष्ट्रीय एकता के प्रतीक क्यों नहीं और उनसे सम्बन्धित सांस्कृतिक धरोहर सभी निवासियों की अपनी क्यों नहीं? बल्कि कुछ राज्यों में प्रचलित पाठ्य-पुस्तकों में समाविष्ट राम और कृष्ण सम्बन्धी पाठों को अलग निकालने की मांग क्यों की जाती है?

इसलिए सत्य तो यह है कि जब तक इस देश के सभी निवासी, चाहे वे जिस धर्म, जाति और वर्ग के हों, इस देश की मूल सांस्कृतिक धरोहर को अपनी नहीं मानते तब तक यहाँ सच्ची राष्ट्रीय एकता सम्भव नहीं हो सकती। राष्ट्रीय एकता का यही ठोस आधार है। अवास्तविक और दिखावे की बातों से सच्ची राष्ट्रीय एकता सम्भव नहीं होती और सदैव अलगाव की प्रवृत्ति बनी रहती है जिसका दुष्प्रभाव एक बार यह राष्ट्र विभाजन के रूप में भुगत चुका है। इस सत्य का साक्षात्कार जितनी शीघ्रता से भारतीय जनमानस, विशेषकर देश के कर्णधारों को हो सके, उतना ही राष्ट्र के लिए श्रेयस्कर होगा। जब तक ऐसा नहीं होता, यही माना जाएगा कि हमने देश के दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन के बाद भी उससे कोई सबक नहीं सीखा और राजनैतिक स्वार्थ राष्ट्रहित पर हावी रहे।

दक्षिण पूर्व एशिया, विशेषकर इण्डोनेशिया जैसे देशों की विभिन्न यात्राओं से राम के सर्वमान्य महत्व को देख कर मेरे मन में सदैव यही एक भावना उठती रही, काश, हमारे देश में भी ऐसा होता। जब ऐसा होगा, वह दिन तब भारत के लिए कितना शुभ होगा। वही दिन राजनैतिक विद्वेष और स्वार्थपरता पर सांस्कृतिक एकता और सद्भावना की विजय का दिन होगा। ●

समाचार समीक्षा

दल-दल में धंसो अवसरवादिता की राजनीति

सद्यः सम्पन्न राष्ट्रपति चुनाव के उपरान्त प्रधानमन्त्री देवी इंदिरा ने विकराल रूप धारण कर लिया है। अपनी स्थिति को बनाये रखने के लिये वे कर्त्तव्याकर्त्तव्य, एवं कथ्याकथ्य का विचार न कर स्वेच्छाचारिता का ताण्डव कर रही हैं। अपने स्वर्गीय पिता के कृत्यों की स्मृति को सजीव करने में भी वे सतत प्रयत्नशील हैं। उनके पिताश्री के युग में यह प्रबल प्रश्न उपस्थित हुआ था कि राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री में किसका अधिकार प्रबल है। देवी इंदिरा राष्ट्रपति पद पर तो अपने मनोनुकूल व्यक्ति को निर्वाचित कराने में सफल हो गई हैं, किन्तु दल के अध्यक्ष और प्रधानमन्त्री में कौन वरिष्ठ एवं अनुकरणीय है, इस विषय में वे फतवा दे रही हैं और अपने कथन की पुष्टि में अनेक अनर्गल अपवादों के साथ ब्रिटेन के शासक मजदूर दल का उदाहरण भी प्रस्तुत कर अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना चाहती हैं। यह संघर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ है।

कांग्रेस की भाँति देश का दूसरा बड़ा राजनीतिक दल जनसंघ भी इससे अछूता नहीं है। इस विषय में विशेष उल्लेखनीय यह है कि जनसंघ अपने अनुशासन के लिये प्रख्यात है। समाचारपत्र-पाठकों को स्मरण होगा कि देवी इंदिरा ने अपने समर्थन में जब ब्रिटेन के मजदूर दल का उदाहरण दिया तो जनसंघ के अध्यक्ष श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने तुरन्त इसकी आलोचना की और इस बात पर बल दिया कि दल का नेता सर्वोपरि है।

पाठकों को हम एक और बात का स्मरण कराते हैं। विगत आम चुनावों के समय जनसंघ के अध्यक्ष पद पर श्री बलराज मधोक आसीन थे। आम चुनाव में श्री मधोक तथा श्री बाजपेयी संसद के सदस्य निर्वाचित हुए। श्री बाजपेयी को संसदीय दल का नेता चुना गया। किन्तु दल के अध्यक्ष श्री मधोक ही थे। सदन में एक बार जब श्री मधोक कश्मीर-मुक्ति मोर्चे पर प्रतिबन्ध की माँग कर रहे थे तो श्री बाजपेयी ने तुरन्त उठ कर श्री मधोक को बीच में ही टोकते हुए कहा था—यह मांग माननीय सदस्य की व्यक्तिगत हो सकती है, हमारे दल की नहीं। बत उनका उक्त सिद्धान्त कहाँ था?

अभी कुछ दिन पूर्व जनसंघ के केन्द्रीय बोर्ड ने श्री मधोक को सत्परामर्श दिया है कि वे भविष्य में सोच समझ कर वक्तव्य दें। इसके लिये तीन उदाहरण भी प्रस्तुत किये गये हैं। आश्चर्य, क्षोभ एवं दुःख की बात है कि उन तीन में से दो बातों को जनसंघ के अध्यक्ष श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने स्वयं उसी रूप में स्वीकारा अथवा प्रस्तुत किया है, जिसमें श्री मधोक ने इससे पूर्व किया था। इस सन्दर्भ में हम अपने पाठकों एवं जनसंघ कर्णधारों को साप्ताहिक हिन्दुस्तान के २८ सितम्बर के अंक पर दृष्टिपात करने का सत्परामर्श देंगे, जिसमें श्री बाजपेयी ने पाठकों के अनेक प्रश्नों के उत्तर में अनेकानेक तथ्यों का उद्‌घाटन किया है।

हमारा सभी राजनीतिक दलों को यह सत्परामर्श है कि वे अवसरवादिता की राजनीति का परित्याग कर राष्ट्रप्रेम का परिचय प्रस्तुत करें अन्यथा कालप्रवाह के थपेड़े उन्हें कहां ले जा कर पटकेंगे, इसकी उन्हें कल्पना कर लेनी चाहिये।

मुस्लिम साम्प्रदायिकता की चरम सीमा :

देवी इंदिरा के शासन के इतिहास का यदि निष्पक्ष रूप से विश्लेषण कर उसका लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाय तो उससे स्पष्ट हो जायगा कि अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिये किस निम्नतर उपकरणों का वे प्रयोग कर रही हैं। देवी गांधी के इस दुःशासन काल में साम्प्रदायिकता का जो भयावह ताण्डव हुआ वह न तो असली गांधी के जीवन काल में (जो मुसलमानों के मसीहा और प्रोत्साहक पीर थे) और न देवी इंदिरा के पिता-श्री एवं मौलाना आज़ाद के सम्मिलित कुशासन में हुआ था।

कहा जा रहा है कि अहमदाबाद के दंगों में पाकिस्तान का हाथ है। हम इन दंगों में पाकिस्तान को सहायक मानते हैं, और इसमें किसी को किसी प्रकार का सन्देह भी नहीं होना चाहिये। किन्तु पाकिस्तान इन दंगों का प्रवर्तक नहीं है। प्रवर्तक है—अहमदाबाद का वह पुलिस इंस्पैक्टर शेख, जिसने आरती की थाली एवं रामचरित् मानस जैसी पवित्र पुस्तक को लात मारी। प्रवर्तक हैं–निरीह गउओं एवं उनके संरक्षक सन्तों पर निर्मम प्रहार करने वाले विधर्मी। सबसे प्रमुख प्रवर्तक हैं–देवी इंदिरा और उनके कम्युनिस्ट एजेंट जो अहमदाबाद में कांग्रेस महासमिति का अधिवेशन करने का प्रबल विरोध कर रहे थे। कामरेड इंदुलाल याज्ञिक और कामरेड डांगे के वक्तव्य तथा इसके विपरीत कांग्रेसी तुर्कों की चुप्पी इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं।

'मानस' के रचयिता तुलसी की इस मातृभूमि और मुसलमानों के मसीहा और अहिंसा के तथाकथित अवतार महात्मा गांधी की भी जन्मभूमि में एक

विधर्मी शेख 'मानस' को लात मार कर सीना ताने, यह देवी इंदिरा के लिये शायद लज्जा की बात न हो। क्योंकि वे इसे यदि लज्जाजनक समझतीं तो इस विषय में कुछ तो बोलतीं। उनका और उनके प्रिय मियां फखरुद्दीन का इस विषय में मौन इस बात का प्रमाण है कि उनके लिये यह कोई लज्जाजनक घटना नहीं है। और इस सारे काण्ड में मियां फखरुद्दीन अली अहमद, मुस्लिम लीग तथा अन्य मुस्लिम नेताओं की क्या भूमिका रही होगी, यह पाठकों के विचार करने की तथा शर्मदार सरकार के जांच करने की बात है।

इस प्रसंग में राज्य सभा की बैठक में संसोपा के सदस्य श्री राजनारायण द्वारा मियां फखरुद्दीन अली अहमद पर लगाये गये आरोप विशेष स्मरणीय हैं। भारत की जनता मियां फखरुद्दीन के उन कारनामों को शायद अभी भूली नहीं होगी जो उन्होंने अपने आसाम मन्त्रिमण्डल के सदस्य काल में किये थे।

देश में इस अनिश्चितता एवं अस्थिरता के वातावरण को देखते हुए न केवल देवी इंदिरा और उनके समर्थकों को सरकार से त्यागपत्र देने की मांग करनी चाहिये अपितु कांग्रेस सरकार को ही त्याग पत्र देकर 'केयर टेकर' सरकार की स्थापना करनी उपयुक्त है। तभी देश विनाश से बच सकता है अन्यथा नहीं।

(राष्ट्रीय) चरित्रहीन जगजीवनराम

केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के वरिष्ठ सदस्य और देवी इंदिरा की दुःशासनी नीतियों के प्रबल समर्थक बाबू जगजीवनराम ने १० वर्ष से आय-कर की अदायगी नहीं की है। एक फिल्मी अभिनेता को इसी प्रकार के आयकर के गोलमाल में जेलयात्रा करनी पड़ी। तथा-कथित नेता उतने ही अपराधी होने पर शीर्षस्थ हैं। इतना ही नहीं उनके बचाव के लिये देवी इन्दिरा मुस्कुराकर कहती हैं कि वे 'भूल गये थे।'

स्मरण रहे, ये भूलने वाले जगजीवनराम वे ही हैं जिनको इस गांधी शताब्दि वर्ष में देवी इंदिरा राष्ट्रपति पद पर प्रतिष्ठित करने के लिये अपनी प्रतिष्ठा तक की बाजी लगाने को तत्पर हो गईं थीं।

एक और कांग्रेस सरकार का पतन

सितम्बर के अन्तिम सप्ताह में मणिपुर की कांग्रेस सरकार के पतन का समाचार भी उतनी ही चर्चा का विषय रहा है, जितनी कि अन्य प्रदेशों की सरकारों के समय हुआ था। मणिपुर की कांग्रेस सरकार का आकार-प्रकार जितना छोटा था, उस अनुपात में जितना डिफैक्शन यहां हुआ उतना कहीं नहीं हुआ। लगभग आधे से कुछ ही कम सदस्यों ने कांग्रेस सरकार के प्रति प्रस्तुत अविश्वास प्रस्ताव का समर्थन किया।

विशेष उल्लेखनीय यह भी है कि उन्हीं दिनों देवी इंदिरा पूर्वांचल के दौरे पर दौड़ लगा रही थीं। क्या वे ही इसके लिये बधाई की पात्र हैं ?

असफल विदेशी नीति का उदाहरण

सितम्बर के अन्तिम सप्ताह में ही पाठकों ने दुःख के साथ यह समाचार पढ़ा होगा कि मियां फखरुद्दीन की चाल में फंस कर अथवा जानबूझ कर ही भारत सरकार ने मुस्लिम शिखर सम्मेलन में जो मात खाई है, उससे भारत की प्रतिष्ठा पर प्रबल प्रहार हुआ है। पाकिस्तान अपने प्रचार में कितना सतर्क और सबल है, विपरीत इसके हमारा प्रचारतन्त्र कितना दुर्बल है इसका भी प्रमाण इस आघात से मिल गया है। यद्यपि भारत के हितचिन्तक अनेक बार सरकार को सावधान करते रहे हैं कि विदेशों में भेजे जाने वाले भारत के राजदूतों में इस योग्यता का होना आवश्यक है कि वे भारत की प्रतिष्ठा को बनाये रखने में समर्थ हों। विपरीत इसके हमारी कांग्रेस सरकार अब तक, कुछ अपवादों को छोड़कर केवल उन व्यक्तियों को ही राजदूत नियुक्त करती रही है, जो विधर्मी, वामपन्थी, शराबी-कबाबी हों अथवा जिनकी पत्नियां आकर्षक हों। नेहरू साहब ने तो पत्नी का आकर्षक होना विशेष योग्यता ही घोषित कर दिया था।

क्या 'राबात' के मुस्लिम शिखर से भारत सरकार की आंखें खुलेंगी ? हमें तो इसमें सन्देह है। तो फिर·······

(पृष्ठ ४६ का शेष)

कि सद्परामर्श किसके लिए होना चाहिए।

मैं पांचजन्य के पाठकों से तथा जनसंघ के प्रशंसकों से यह भी अनुरोध करूँगा कि वे समाचार-पत्रों या कुछ स्थायी तत्वों के मिथ्या प्रचार का शिकार न बनें। भारतीय जनसंघ को मैंने अपने खून से सींचा है। आज देश की परिस्थिति यह माँग करती है कि राष्ट्रवादी शक्तियाँ मिलकर कम्युनिस्टों और पाकिस्तानी तत्वों की चुनौती का मुकाबला करें। भारतीय जनसंघ को इस राष्ट्रवादी मोर्चे के हरावल दस्ते का काम करना है। आओ हम सब मिलकर संकल्प करें कि अमर शहीद डाक्टर श्यामा प्रसाद मुकर्जी, आचार्य रघुवीर तथा हुतात्मा दीनदयाल उपाध्याय के मार्ग पर चलते हुए जनसंघ को देश सेवा और जनसेवा का सशक्त साधन बनायें।

स्पष्टीकरण

(पिछले दिनों भारतीय जनसंघ के वरिष्ठ अधिकारियों का परस्पर कुछ विवाद समाचार पत्रों में प्रकाशित होता रहा है। जनसंघ के भूतपूर्व प्रधान श्री बलराज मधोक पर कुछ आरोप लगाये गये तथा भारतीय जनसंघ से सम्बन्धित पत्र 'पांचजन्य' ने 'क्या मधोक जी सद्परामर्ष मानेंगे ?' शीर्षक से उन्हें प्रसारित किया।

यह सारा विवाद तथा उसका प्रसारण एक अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। कारण यह है कि इस समय हिन्दुओं के हितों के संरक्षण के लिये यदि कोई राजनीतिक संस्था कुछ भी कार्य कर रही है तो वह भारतीय जनसंघ ही है तथा उसके वरिष्ठ अधिकारियों में इस प्रकार का विवाद न केवल जनसंघ के लिये दुर्भाग्यपूर्ण है, प्रत्युत हिन्दुओं के हितों के लिये तथा देश के लिये भी घातक है।

श्री मधोक जी ने उन आरोपों का स्पष्टीकरण 'पांचजन्य' में प्रकाशनार्थ भेजा है। वह स्पष्टीकरण हमें भी भेजा गया है तथा हम इसका प्रकाशन हिन्दु हितों के लिये तथा जनसंघ के प्रशंसित वर्ग के मनों के संशय का निवारण करने के लिये आवश्यक समझते हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि इससे विवाद समाप्त होगा—सम्पादक।)

'पांचजन्य' के २२ सितम्बर के अंक में उनके राजनीतिक संवाददाता द्वारा, "क्या मधोक जी सद्परामर्श मानेंगे ?" शीर्षक के अन्तर्गत मुख्य पृष्ठ पर दी गई कहानी को मैंने बड़े ध्यान से पढ़ा है। पांचजन्य देश का एक प्रमुख राष्ट्रवादी साप्ताहिक है और जनसंघ के कार्यकर्ता इसको अपना पत्र मान कर पढ़ते हैं। मेरा भी लेखक और पाठक के नाते इससे पुराना सम्बन्ध है। क्योंकि इस कहानी का सम्बन्ध मुझसे है और इस के पढ़ने से मेरे बारे में कई भ्रान्तियाँ पैदा होने की सम्भावना हैं, इसलिए इस कहानी में दिये गए तथाकथित तथ्यों के सम्बन्ध में वास्तविक स्थिति लिख रहा हूं ताकि पांचजन्य के पाठकों के सामने तथा जनता के सामने पूरी तस्वीर आ जाये।

इस कहानी के अनुसार श्री सुन्दरसिंह भंडारी ने, जो इस समय भारतीय जनसंघ के महामंत्री हैं, मेरे द्वारा कार्यसमिति में किए गए निर्णयों के विपरीत सार्वजनिक रूप में अपने व्यक्तिगत विचार व्यक्त करने के कुछ उदाहरण पेश किए हैं और उन पर प्रकाश डाला है। पहला उदाहरण गत वर्ष १६ सितम्बर की कर्मचारियों की हड़ताल का है। कहा गया है कि

मैंने कार्यसमिति के इन्दौर में लिए गए सर्वसम्मत निर्णय के विरुद्ध बंगलौर में एक वक्तव्य दिया। यह बात सर्वथा तथ्यों के विपरीत है। इन्दौर में कार्यसमिति ने अपने प्रस्ताव के द्वारा केवल कर्मचारियों की मांगों का समर्थन किया था। उसमें स्ट्राइक का उल्लेख भी नहीं है। पांचजन्य के पाठक उस प्रस्ताव को ढूँढ कर पढ़ सकते हैं।

उसके बाद सरकार ने १३ सितम्बर को कर्मचारियों की प्रस्तावित स्ट्राइक को एक अध्यादेश के द्वारा अवैध घोषित कर दिया और हड़ताल पर शामिल होने वालों के लिए नौकरी से तुरंत छुट्टी के अतिरिक्त अन्य क्रूर दण्डों का भी विधान किया। मैं उस समय बंगलौर में था। मेरे निर्वाचन क्षेत्र में बहुत से सरकारी कर्मचारी रहते हैं। इसलिए मेरा उनके प्रति कुछ कर्तव्य है। मैंने सोचा कि यदि कम्युनिस्टों के कुप्रचार से इन्होंने अवैध स्ट्राइक में भाग लिया तो नौकरी से हाथ धो बैठेंगे और उनके परिवारों के लोग दुःखी होंगे। इसलिए मैंने वहाँ से एक लिखित वक्तव्य दिया, जिसमें अपनी कार्यसमिति के निर्णय के अनुसार कर्मचारियों की मांगों का जोरदार शब्दों में समर्थन किया। सरकार की स्ट्राइक को अवैध घोषित करने के लिए कड़ी भर्त्सना की और अन्त में कर्मचारियों से अपील की कि वे अवैध स्ट्राइक में भाग लेकर अपनी नौकरी का खतरा मोल न लें और उनको विश्वास दिलाया कि मैं और मेरे साथी उनकी मांगों के लिए संसद के अन्दर और बाहर संघर्ष करेंगे। यह वक्तव्य उसी रूप में बंगलौर के समाचार-पत्रों में छपा था। पांचजन्य का कोई भी पाठक कार्यसमिति के प्रस्ताव और मेरे इस लिखित वक्तव्य को साथ-साथ पढ़े और फिर बताये कि मैंने कौन-सी बात कार्यसमिति के निर्णय के विरुद्ध कही थी। यह तथ्यों का प्रश्न है मत का नहीं और तथ्यों का पता करना कठिन नहीं होना चाहिए।

दूसरा उदाहरण पृथक तेलंगाना के सम्बन्ध में दिया गया है। इस सम्बन्ध में भी हैदराबाद में मेरे द्वारा दिया गया वक्तव्य लिखित था, मौखिक नहीं। उसकी प्रति केन्द्रीय कार्यालय को भिजवाई थी। काश कि श्री भंडारी ने उसको पढ़ लिया होता। मेरे वहाँ के पत्रकार सम्मेलन की सारी कार्रवाई मद्रास के 'हिन्दू' और विजयवाड़ा के 'इण्डियन ऐक्सप्रेस (हैदराबाद में प्रमुख रूप में यही दो समाचार-पत्र चलते हैं) में छपी थी। श्री भंडारी उसको निकालकर पढ़ लेते तो अच्छा होता। वास्तविकता यह है कि मेरे उस वक्तव्य में कहीं भी पृथक तेलंगाना का उल्लेख नहीं है। मैंने उसमें जनसंघ के मत को दोहराया है कि हम चाहते हैं कि केन्द्र में मजबूत और एकात्मक शासन हो फिर चाहे देश में कितने ही 'जनपद' हों। यह भी तथ्यों का प्रश्न है मत का नहीं।

पांचजन्य का कोई भी पाठक इन तथ्यों की जाँच-पड़ताल कर सकता है।

तीसरा उदाहरण चण्डीगढ़ में राष्ट्रपति चुनाव के विषय में दूसरी वरीयता सम्बन्धी मेरे द्वारा दिया गया प्रकाशित समाचार है।

चण्डीगढ़ में जनसंघ अथवा श्री अटल बिहारी वाजपेयी के आदेश पर मैं श्री देशमुख के पक्ष में प्रचार करने के लिए गया था। जनसंघ के संगठन मंत्री श्री यज्ञदत्त मेरे साथ थे। वहाँ मैंने कोई लिखित वक्तव्य नहीं दिया था। पत्रकारों से मौखिक बातचीत हुई थी। वहाँ एक पत्रकार ने मुझ से पूछा कि जनसंघ अपना दूसरा मत किस को देगा। मैंने सहज भाव से उत्तर दिया कि हमारी सलाह है कि दूसरा मत श्री रेड्डी को दिया जाय। मैंने संसदीय अधिकरण का नाम तक नहीं लिया परन्तु संसदीय अधिकरण के सदस्य होने के नाते मैं जानता था कि अनौपचारिक दृष्टि से हमने श्री रेड्डी को दूसरा मत देने का निर्णय कर लिया है और उसकी मौखिक सूचना भी हम अपने सदस्यों को दे रहे हैं। मैंने 'सलाह' की बात कही थी 'आदेश' की नहीं। क्योंकि श्री यज्ञदत्त भी मेरे साथ बैठे हुए थे, इसलिए मैंने 'मैं' के स्थान पर 'हम' का प्रयोग किया। यदि यह बात गलत थी तो श्री यज्ञदत्त वहीं पर मेरी बात की शुद्धि कर सकते थे। जनसंघ के निर्णय के विरुद्ध तो बात तब होती जब मैं श्री गिरि के पक्ष में वोट देने की बात कहता। यह भी तथ्यों का प्रश्न है, जसकी जांच पांचजन्य के पाठक स्वयं कर सकते हैं।

एक और उदाहरण बैंकों के सरकारीकरण का दिया गया है। इस सम्बन्ध में भारतीय जनसंघ की नीति गत बीस वर्ष से स्पष्ट है। १९६७ के चुनाव घोषणा-पत्र तथा 'जनसंघ सिद्धान्त तथा नीति' में भी इस के विषय में स्पष्ट रूप में लिखा हुआ है। भोपाल में कार्यसमिति ने बैंकों के सामाजिक कन्ट्रोल के समय भी एक प्रस्ताव पास किया था। इन सब के होते हुए बैंकों के सरकारीकरण के विषय में नीति निर्धारण का प्रश्न नहीं उठता। मैं दावे से कह सकता हूं कि मैंने बैंकों के राष्ट्रीयकरण के विषय में अभी तक जो कुछ किया है, वह जनसंघ की नीति के अक्षरशः अनुरूप है। मेरी तथा दिल्ली के बहुत से अन्य कार्यकर्त्ताओं की शिकायत तो यह है कि जिस समय श्रीमती इंदिरा गाँधी बैंकों के राष्ट्रीयकरण के नाम पर जनता को अपने पक्ष में और जनसंघ के विरुद्ध भड़का रही थीं, जनसंघ किंकर्त्तव्यविमूढ़ व्यक्ति की तरह हाथ पर हाथ धर कर बैठा रहा। इससे भारतीय जनसंघ को सारे देश में और विशेष रूप में दिल्ली में महान हानि हुई।

इसके बाद इस कहानी में मुझ पर लोक सभा में दलीय अनुशासन की अवहेलना का लाँछन लगाया गया है और उसके कुछ उदाहरण दिए गए हैं।

मुझे खेद है कि वे भी तथ्यों के उतने ही विपरीत हैं जितने के ऊपर दिये उदाहरण।

पहली बात १९६७ में लोकसभा में बंगाल में राष्ट्रपति शासन लागू करने के सम्बन्ध में अविश्वास प्रस्ताव के विषय में कही गयी है। इस अविश्वास प्रस्ताव के पेश होने से दो दिन पहले मैं कलकत्ता में था और वहां की स्थिति का अवलोकन कर मैंने जनसंघ अध्यक्ष की हैसियत से वहाँ पर राष्ट्रपति शासन लागू करने की मांग की थी। दिल्ली वापिस आने पर जब मुझे पता लगा कि श्री अटल बिहारी वाजपेयी अन्य विपक्षी दलों के साथ मिलकर इस सम्बन्ध में सरकार पर अविश्वास प्रस्ताव लाने की बात सोच रहे हैं तो मैंने उन्हें लिखित आदेश भेजा कि जनसंघ दल इस अविश्वास में भागीदार न बने। परन्तु मेरे उस लिखित आदेश की अवहेलना करते हुए उन्होंने अविश्वास प्रस्ताव का समर्थन करने का निश्चय कर अनुशासन को भंग किया। इस हालत में मेरे लिए इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं था कि मैं अपने ही आदेश के विरुद्ध किए जाने वाले काम का समर्थन न करता। आज्ञा वही लोग दे सकते हैं जो आज्ञा का पालन करना भी जानते हों।

जहाँ तक उस घटना का दल के विषय में संसदीय अधिकरण की बैठक बुलाई गई का सम्बन्ध है, उसकी शुरुआत 'स्टेट्समैन' में कार्यसमिति की कार्रवाई को 'लीक' करने से हुई। 'स्टेट्समैन' में प्रकाशित उस समाचार में कहा गया था कि जनसंघ के एक प्रवक्ता ने बताया है कि कार्यसमिति ने कुछ बातों के लिए मेरी भर्त्सना की है। कार्यसमिति में कई बातें होती हैं। यदि उनको इस प्रकार प्रकाशित किया जाने लगे तो कार्यसमिति में बात करने का सारा महत्त्व खत्म हो जायगा। और यह इस प्रकार की पहली ही घटना नहीं थी। इसलिए मैंने श्री अटल जी का ध्यान पत्र लिखकर इसकी ओर खींचा और यह घृणित काम किसने किया उसका पता लगाने का अनुरोध किया। मैंने उनको यह भी लिखा कि पत्र-प्रतिनिधि मेरे पीछे पड़े हुए हैं और मुझे कुछ स्पष्टीकरण देना पड़ेगा।

इण्डियन ऐक्सप्रेस ने मेरी मौखिक बात को जिस रूप में छापा, वह अवांछनीय था। परन्तु जो पत्रकारिता से वाकिफ हैं, वे जानते हैं कि पत्रकार और समाचार-पत्र अपनी रुचि और राजनीति के अनुसार खबरों को काटते-छाँटते और शीर्षक बनाते हैं। ब्लिट्स, लिंक, पैट्रियाट, न्यू एज, मूकधारा, अलजमीयत इत्यादि पत्र हमारे विषय में नित्य क्या कुछ लिखते रहते हैं, उनके आधार पर एक दूसरे का मूल्यांकन करना होता तो जनसंघ नाम की कोई वस्तु ही न रहती। मुझे खेद है इण्डियन एक्सप्रेस में छपे समाचार का

सहारा लेकर राई का पहाड़ बनाया गया और मुझ से बात किए बिना संसदीय अधिकरण की बैठक बुलाने की घोषणा कर दी गयी। इस घोषणा में यह भी कहा गया था कि 'स्टेट्समैन' में कार्यसमिति की कार्यवाही को किसने 'लीक' किया, उसका भी पता लगाया जायगा और कार्रवाई की जायेगी।

१२ सितम्बर से २२ सितम्बर का ससद का पब्लिक अंडरटेकिंग कमेटी का प्रोग्राम बहुत पहले से निश्चित था, इसलिए मैंने श्री अटल जी को लिख दिया कि मैं १७ सितम्बर की संसदीय अधिकरण की बैठक में उपस्थित नहीं रह सकूँगा। साथ ही मैंने उनके द्वारा उठाये गए मुद्दों का लिखित उत्तर भेज दिया और उसकी प्रतियाँ संसदीय अधिकरण के अन्य सदस्यों को भी भेज दीं।

इस पत्र के मिलने के बाद श्री पीताम्बर दास ने मुझसे कहा कि यदि मैं चाहूँ तो संसदीय अधिकरण की बैठक की तिथि बदली जा सकती है। मैंने उन्हें उत्तर दिया कि **हमारी परिपाटी यह रही है कि अधिकरण की बैठक बुलाने से पहले दिल्ली में उपस्थित सदस्य से तिथि और समय के विषय में सलाह कर ली जाती है। इस परिपाटी का उल्लंघन करते हुए मुझसे पूछे बिना तिथि घोषित कर दी गई है। अब मुझ से क्यों पूछते हो। अब यह आपका काम है कि तिथि बदली जाय या नहीं? मैं १२ सितम्बर से २२ सितम्बर तक दिल्ली के बाहर रहूँगा और उसके बाद २८ सितम्बर से फिर दिल्ली के बाहर जाऊँगा। इस उत्तर को 'बैठक में आने से इन्कार' कहना सरासर गलत और मेरे साथ अन्याय करना है।**

मैंने श्री अटल जी को अपने पत्र में यह भी लिखा था कि मेरी दृष्टि में अधिकरण की बैठक बुलाने का कोई औचित्य भी नहीं है। प्रश्न किसी नीति, सिद्धान्त या मर्यादा का नहीं था अपितु इस बात को जानने का था कि कार्यसमिति की कार्यवाही को 'लीक' किसने किया और उसका जो स्पष्टीकरण मेरे नाम से छापा गया, उसमें कितना तथ्य है। मैंने श्री अटल जी को लिखा था कि हम कभी भी मिलकर इन तथ्यों के विषय में बात कर सकते हैं। मैंने उनसे यह भी प्रर्थना की थी कि विवाद को बढ़ा कर राई का पहाड़ न बनने दीजिए क्योंकि 'इससे हानि शायद न उनको होगी और न मुझको होगी, केवल दल का अनिष्ट होगा और मैं जनसंघ के अनिष्ट में भागीदार नहीं बनना चाहता।''

यह तथ्य पाठकों के सामने है। मैं उन्हीं पर छोड़ता हूँ कि फैसला करें।

(शेष पृष्ठ ४१ पर)

श्री गुरुदत्त की बहुचर्चित एवं बहुप्रशंसित रचना

जवाहरलाल नेहरू एक विवेचनात्मक वृत्त

का नया संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण

भारत गांधी नेहरू की छाया में

छपकर तैयार है। नेहरू की स्वरचित जीवनी, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, श्री एन० वी० गाडगिल, महात्मा गांधी की जीवनी लिखने वाले श्री प्यारेलाल तथा अन्य प्रमुख लेखकों की रचनाओं में से लगभग २५० उद्धरणों के आधार पर यह पुस्तक लिखी गयी है तथा राजनीति में रुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी है। मूल्य सजिल्द १०.०० – पाकेट संस्करण ३.००

समाजवाद एक विवेचन

समाजवाद क्या है? धर्म क्या है? धर्मवाद क्या है? क्या दोनों में समन्वय हो सकता है? मूल्य १.००

गांधी और स्वराज्य

देश की राजनैतिक अधोगति क्यों हुई? क्या स्वराज्य गांधी जी की करनी से मिला है? मूल्य १.००

भारत में राष्ट्र

भारत में राष्ट्र कौन सा है? हिन्दू की परिभाषा क्या है? हिन्दू के लक्षण तथा हिन्दू राष्ट्र की विवेचना। मूल्य १.००

धर्म संस्कृति और राज्य मूल्य ८.००

धर्म तथा समाजवाद मूल्य ६.००

श्रीमद्भगवद्गीता एक विवेचन मूल्य १५.००

प्राप्ति स्थान

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०/९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)

नई दिल्ली–१

विजय दशमी के शुभ अवसर पर

विजय दशमी के शुभ अवसर पर हर वर्ष की भान्ति इस वर्ष भी हम एक उपहार योजना चला रहे हैं। पाँच नये पाठकों को पत्रिका एक वर्ष के लिये उपहार में दीजिये।

आप पाँच सम्बन्धियों, मित्रों व परिचितों के पते लिख भेजिये जिन्हें आप पत्रिका एक वर्ष के लिये उपहार में देना चाहते हैं। इनका शुल्क केवल रु० २०(बीस रुपये) आप हमें भेजें। और हम उन पाँच पाठकों को वर्ष भर पत्रिका आपकी ओर से भेजते रहेंगे तथा आपको अपनी ओर से ....

अनुपम उपहार भेजेंगे।

(१) यह उपहार योजना केवल दो मास के लिये है। २५ नवम्बर तक प्राप्त होने वाले फार्म ही इस योजना में स्वीकार किये जायेंगे। इसके बाद पूर्वोक्त नियमों पर ही पत्रिका का शुल्क, आपका अथवा आपके मित्रों का स्वीकार किया जायेगा।

(२) उपहार में आप श्री गुरुदत्त की कोई भी एक अथवा अधिक रचना अथवा पत्रिका में विज्ञापित प्रकाशनों में से अपने पसन्द की चुनी हुई पांच रुपये मूल्य की पुस्तकें मंगवा सकेंगे। भेजने का व्यय लगभग १.५० भी हम देंगे।

(३) इसी प्रकार १० व्यक्तियों का शुल्क ४० रुपये (चालीस रुपये) भेज कर १० रुपये के मूल्य की पुस्तकें उपहार में प्राप्त कर सकते हैं।

(४) पते किसी भी सादा कागज पर स्पष्ट शब्दों में लिखें। साथ ही अपने लिए उपहार की पुस्तकों के नाम भी लिख भेजें।

(५) धन अग्रिम आना आवश्यक है।

सम्पादक
शाश्वत वाणी

भारतीय संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं शक्तिपुत्र मुद्रणालय, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

१. सम्पादकीय	—	३
२. अन्तर्राष्ट्रीय हलचल	श्री आदित्य	७
३. योगीराज कृष्ण	श्री सचदेव	१२
४. गुरु विरजानन्द जी महाराज के विषय में एक ऐतिहासिक तथ्य	—	१५
५. अस्तित्व की रक्षा (१५)	श्री विद्यानन्द विदेह	१८
६. हिन्दु युवतियों का विधर्मियों द्वारा अपहरण— धार्मिक एवं गंभीर राष्ट्रीय समस्या	—ब्रह्मचारी विश्वनाथ जी	२०
७. अद्वैतवाद अथवा त्रैतवाद	श्री गुरुदत्त	२३
८. प्रतिक्रिया का प्रत्यावर्तन	श्री उमाकान्त उपाध्याय	३०
९. समाचार समीक्षा	—	३५

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

अराजकता दुर्बल राज्य के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होती है । दुर्बल राज्य का अभिप्राय है अयोग्यों द्वारा राज्य । वर्तमान काल की प्रजातन्त्रात्मक पद्धति के कारण ही अयोग्यों के हाथ में राज्य आया है ।

प्रजातन्त्रात्मक पद्धति का अर्थ है संसद का सर्वाधिकार पूर्ण संस्था (Sovereign body) होना । यह व्यवस्था इंग्लैण्ड की संसद (पार्लियामेण्ट) से नकल की गयी है । भारत के संविधान में संसद के अधिकारों का कुछ अन्य विधान संस्थाओं के साथ बंटवारा किया गया है, परन्तु अन्य विधान सभायें भी उसी विधि से निर्माण होती हैं, जिससे केन्द्रीय संसद निर्माण होती है । अतः यह बंटवारा किसी प्रकार भी अधिकारों पर सीमा नहीं मानी जा सकती ।

इस बात को तनिक व्याख्या से समझने की आवश्यकता है । सर्वाधिकार संसद के पास नहीं हैं, वरन् संसद का निर्वाचन करने वाले मतदाताओं के पास हैं । अतः देश के सब मतदाता सर्वाधिकार युक्त हैं । क्या देश के सब मतदाता पृथक्-पृथक् अथवा सामूहिक रूप में पूर्ण अधिकारों के पात्र हैं ? वर्तमान प्रजातन्त्रवादी कहते हैं कि मतदाता व्यक्तिगत रूप में तो नहीं, परन्तु समष्टिगत

रूप में सर्वाधिकार रखने के पात्र हैं। इसमें न कोई युक्ति है और न ही कोई प्रमाण।

यदि किसी समुदाय में पृथक्-पृथक् व्यक्ति अयोग्य है तो अयोग्यों का समूह कैसे योग्य हो जायेगा ? समझ में नहीं आ सकता। इसमें कोई युक्ति नहीं। अयोग्यों में बहु-मत अयोग्यता का ही सूचक हो सकता है।

मनुष्यों में कुछ सांझापन है। तभी वे मनुष्य नाम से पुकारे जाते हैं। वह एक वस्तु क्या है, जो सब में सांझी है ? वह मनुष्य का शरीर और इन्द्रियां हैं। शरीर सब में समान हैं। समान पदार्थ से ही बने हैं और एक ही सिद्धान्त पर काम करते हैं, परन्तु न तो मनुष्य केवल मात्र शरीर है और न ही समाज शरीरों का समूह है। मनुष्य में शरीर के अतिरिक्त मन, बुद्धि और आत्मा भी है और ये सब में भिन्न हैं। अतः मनुष्य समाज में समान मन, समान बुद्धि और समान स्तर पर उन्नत विचारों से ही एकमयता देखी जा सकती है। और यह है नहीं। अतः सब मनुष्य समान नहीं हैं। सम-बुद्धि बौद्धिक कार्यों में समान माने जा सकते हैं। सम मन वाले समान स्वाभाविक कर्मों में समान हो सकते हैं और सम-स्तर वाली आत्मा आध्यात्मिक कामों में समान मानी जा सकती हैं। सरल भाषा में, समान गुण तथा समान कर्म और समान स्वभाव वालों को समान श्रेणियों में रखा जा सकता है।

गुण से अभिप्राय जीवन-कार्य (प्रोफ़ेशन) है। मोटे रूप में गुणों से चार प्रकार के कार्यों की कल्पना की गयी है। ब्राह्मण गुण रखने वाले, क्षत्रिय गुण रखने वाले, वैश्य गुण रखने वाले और शूद्र गुण रखने वाले।

इसी प्रकार स्वभाव भी चार प्रकार के माने गये हैं। इनके भी नाम गुणों के नामों पर रखे गये हैं, ब्राह्मण स्वभाव, क्षत्रिय स्वभाव, वैश्य स्वभाव और शूद्र स्वभाव। गुण और स्वभाव से ही कर्म होते हैं। अतः कर्मों के विचार से भी चार प्रकार के मनुष्य हैं। उनके नाम भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रखे गये हैं।

शारीरिक क्रियायें हैं—इन्द्रिय सुख, भूख-प्यास की तृप्ति और यौन क्रिया। ये क्रियायें पूर्ण मनुष्य समाज में समान हैं और इन क्रियाओं की उपलब्धि समान रूप से की जा सकती है, परन्तु इन बातों के अतिरिक्त गुण, कर्म और स्वभाव का निर्माण तथा प्रयोग सब मानवों में समान नहीं है।

गुण और कर्म मुख्य बातें हैं। स्वभाव की विशेष स्थिति है। हमने बताया है कि वर्णाश्रम धर्म में गुण का अर्थ जीविकोपार्जन, अभिप्राय यह कि जीवन कार्य को चलाने की योग्यता है। जीवन कार्य को ही जीविकोपार्जन का काम माना जाता है। यदि कोई व्यक्ति जीवन कार्य कुछ भिन्न रखता है और

उसकी जीविका किसी अन्य बात से बनती है तो यह संयोग अस्वाभाविक माना जाता है और अनिच्छित समझा जाता है । जीविकोपार्जन कार्य ही जीवन कार्य होना चाहिये और दोनों का स्रोत गुण होता है ।

स्वभाव, एक प्रकार से कर्म पर प्रभाव डालता है, परन्तु साथ ही वह कर्म के बार-बार किये जाने से निर्माण होता है । स्वभाव से कर्म और कर्म से स्वभाव बनते हैं । इसीलिये यह कहा जाता है कि यदि मनुष्य जीविकोपार्जन उसी कार्य से करे जो उसका जीवन कार्य हो तो कर्म पूर्ण रूप से स्वभावानुसार हो जाते हैं । यदि कहीं मनुष्य काम तो करे व्यापार का और दिन-रात अध्ययन करे शस्त्रास्त्र प्रयोग का तो उस मनुष्य का जीवन-कार्य स्वभावानुसार नहीं रहेगा और वह न तो व्यापार सफलतापूर्वक कर सकेगा और न ही शस्त्रास्त्र का प्रयोग ।

इस प्रकार मनुष्य समाज गुण, कर्म और स्वभाव से वर्ण बद्ध है । अतः एक गुण, कर्म, स्वभाव वाला मनुष्य दूसरे के कर्मों में सम्मति नहीं दे सकता । इसी कारण हम कहते हैं कि सब मनुष्य समान नहीं और सब कामों में सम्मति नहीं दे सकते । वर्तमान प्रचलित प्रजातन्त्र में सब व्यक्तियों को सब मामलों में सम्मति देने का अधिकार है । इसी को मतदाताओं का सर्वाधिकार सम्पन्न होना कहा जाता है । सब मनुष्य सब विषयों में सम्मति देने के अधिकारी नहीं हो सकते ।

यह अयुक्तिसंगत बात ही मूल कारण है प्रजातन्त्र द्वारा अराजकता उत्पन्न होने में । राज्य कार्य अनेक प्रकार के हैं । इसमें मुख्य रूप में चार प्रकार के कार्य हैं और प्रतिनिधि निर्वाचित होते हैं सबके बहुमत से । जो इन्द्रिय-सुखों, भूख-प्यास तथा यौन क्रियाओं के अतिरिक्त अन्य किसी बात पर सहमत नहीं हो सकते ।

यदि तो राज्य का उत्तरदायित्व सीमित कर दिया जाये उक्त शारीरिक आवश्यकताओं की उपलब्धि में, तब सर्व साधारण के प्रतिनिधि उनमें एक सीमा तक सहमत हो सकेंगे और उनकी पूर्ति में भी सफल हो सकेंगे ।

इसके साथ ही यदि शारीरिक आवश्यकताओं पर नियन्त्रण मन, बुद्धि और आत्मा का होना अवांच्छित हो, तब ही सर्वसाधारण के प्रतिनिधि राज्य-कार्य कर सकते हैं । शारीरिक आवश्यकतायें भी तो मन और बुद्धि से नियन्त्रित हैं और मन, बुद्धि सब में समान न होने से बहुमत निकृष्ट बुद्धि और निकृष्ट मन का सूचक होगा । शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी निम्न कोटि की और निम्न ढंग से ही प्राप्त करायी जा सकेगी ।

बहुमत क्यों निम्न कोटि की योग्यता का प्रतीक होता है ? यह एक गणित

का विषय है। मध्यम (mean) सदा उत्कृष्ट से कम होता है। (mean is always inferior to the best) यह उत्कृष्ट से उतना ही घटिया होता है, गणना किये जाने वालों में जितने घटिया व्यक्ति सम्मिलित होंगे। अतः पूर्ण जनता का मध्यम अर्थात् बहुमत तो बहुत ही घटिया होगा। कारण यह कि हीन मन, हीन बुद्धि और हीन आत्मा के लोग बहुत ही अधिक संख्या में होते हैं। बहुमत सदा हीनता के समीप होगा।

अतएव सर्व साधारण का बहुमत सदा हीनतम मत के समीप होगा। यही कारण है कि प्रजातन्त्रात्मक पद्धति में निकृष्ट गुणों वाले लोग अधिकारों पर आ विराजते हैं।

यहां हम उस प्रजातन्त्र का उल्लेख कर रहे हैं, जिसका प्रादुर्भाव वर्तमान इंग्लैण्ड की संसद के अनुरूप है। भारत में प्रजातन्त्र भी अंग्रेजी प्रजातन्त्र के अनुसार ही है।

इस लेख में हमने प्रजातन्त्रात्मक पद्धति में क्या कमी और क्या दोष हैं, यह बताने का यत्न किया है। हमने यह बताया है कि :—

(१) राज्य कार्य केवल शारीरिक सुविधाओं, भूख-प्यास और यौनतृषा का प्रबन्ध करने के लिये ही नहीं। राज्य कार्य इन बातों की उपलब्धि कराने से बहुत अधिक है।

(२) शारीरिक सुविधा, भूख प्यास और यौन-तृषा की तृप्ति पर भी मन और बुद्धि का नियन्त्रण होना आवश्यक है। अतः ये कार्य भी विना मन, बुद्धि द्वारा विचार किये सम्पन्न नहीं हो सकते। सबको सब स्थानों पर सुविधापूर्वक खानपान और यौन तृषा की तृप्ति करानी सम्भव नहीं। इन पर बुद्धि और मन का नियन्त्रण आवश्यक है। अतः राज्य कार्य सर्वसाधारण की सम्मति का कार्य नहीं है। सर्वसाधारण में यदि कुछ सांझी बात है तो वह भूख-प्यास और यौन-तृषा की तृप्ति ही है। इनमें भी नियन्त्रण सर्व साधारण की बात नहीं।

(३) सर्व साधारण का बहुमत तो निम्न कोटि का मत होगा। बहु मत मध्यम (mean) ही होता है और मध्यम सदा गणना किये जाने वालों में निकृष्टतम स्तर के समीप होता है।

(४) गुण, कर्म और स्वभाव सबके एक समान नहीं होते। इनको चार श्रेणियों में बांटा गया है। ब्राह्मण गुण, कर्म, स्वभाव, क्षत्रिय गुण कर्म स्वभाव, वैश्य गुण कर्म स्वभाव और शूद्र गुण, कर्म, स्वभाव। इन श्रेणियों को वर्ण कहा जाता है।

(५) मनुष्य का जीवन-कार्य गुण, कर्म और स्वभावानुसार होता है। भिन्न-भिन्न जीविकोपार्जन का कार्य और जीवन कार्य एक ही होने चाहियें। भिन्न-भिन्न रखने से मनुष्य जीवन में असफल रहेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

श्री आदित्य

भारत के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में विकृति मुसलमानी और अंग्रेज़ी काल की अन्तर्राष्ट्रीय नीति का परिणाम है। वर्तमान कांग्रेस सरकार अपनी विदेश नीति में सिद्धान्त रूप में अंग्रेज़ी विदेश नीति का अनुकरण करती हुई प्रतीत होती है।

कहने को तो भारत सरकार अपनी विदेश नीति को तटस्थता की नीति घोषित करती है। वास्तव में यह उतनी ही तटस्थता की नीति है, जितनी कि ब्रिटिश सरकार की विदेश नीति थी। ब्रिटिश सरकार अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में अपने को न तो तटस्थ मानती थी और न ही यह थी। मित्र और शत्रु का विचार उसके मस्तिष्क में सदा बना रहता था। इस प्रकार पण्डित जवाहर लाल नेहरू का यह कहना कि भारत की विदेश नीति तटस्थता की नीति है, सत्य से दूर था। उनके मस्तिष्क में भी मित्र और शत्रु का विचार बना रहता था।

इसका प्रमाण भारत का अभी भी ताईवान सरकार अथवा इसराईल सरकार को स्वीकार न करना है।

इन दोनों सरकारों को क्यों नहीं मित्र माना गया ? इसका कारण स्पष्ट है कि ताईवान सरकार और चीन के झगड़े में हम तटस्थ नहीं, वरन् हम चीन के पक्ष को ठीक मानते हैं और ताईवान सरकार को गलत। इसी प्रकार इसराईल में और अरब गणराज्य में झगड़ा है और हम अरब गणराज्य के मित्र हैं, इस कारण इसराईल को स्वीकार नहीं करते।

मुख से मियां मिट्ठू बनने का कुछ अभिप्राय नहीं। वास्तविकता यह है कि हम तटस्थ नहीं हैं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमारा भी एक पक्ष है और दूसरे पक्ष में हमारे शत्रु हैं।

यह कहा जाता है कि अंग्रेजी का शब्द 'Alignment' का अनिवार्य सम्बन्ध परस्पर फौजी समझौते से हैं। 'Alignment' के यह अर्थ गलत हैं।

'Alignment' का अर्थ जैसा कि वैबस्टर शब्द कोश में लिखा है, वह है 'standing in a line' अर्थात् एक पंक्ति में (बौद्धिक रूप में भी) आना। बौद्धिक रूप में एक ही पंक्ति में आने पर सैनिक समझौते की अनिवार्यता नहीं।

अतः जगत् के कुछ राज्यों के हम शत्रु हैं और कुछ के मित्र हैं। इसके साथ ही उनके मित्र हैं, जिनके भारत में रहते हुए अंग्रेज मित्र थे।

अंग्रेज़ भारत में रहते हुए मिश्र, ईरान, टर्की, साऊदी अरब इत्यादि मध्य पूर्वी मुसलमानी राज्यों के मित्र थे। आज स्वतन्त्र भारत भी इन देशों का मित्र है। यह ठीक है कि इनकी मित्रता में अंग्रेज़ का उद्देश्य कुछ और था और वर्तमान भारत सरकार का उद्देश्य कुछ अन्य है। इस पर भी इनसे मित्रता करनी हमने अंग्रेज़ों से सीखी है।

यह सब वर्तमान भारत सरकार ने कैसे सीखा? यह एक प्रश्न है। हमारा इसमें विचार यह है कि कांग्रेस सन् १८८५ से लेकर आज तक ब्रिटिश सरकार के पद चिन्हों पर चलने वाली संस्था है। यह भारत में सरकार बन गई है, परन्तु इसका व्यवहार वही है। ब्रिटिश सरकार ने भारत की बहुसंख्यक जाति हिन्दु को अपने अधीन बनाये रखने के लिए मुसलमानों, ईसाइयों, सिक्खों इत्यादि को अधिमान का स्थान दिया था। ब्रिटिश सरकार का अनुकरण करते हुए कांग्रेस यही सन् १९१५, १९२०, १९४७ में और १९४७ से अब तक निरन्तर कर रही है।

ब्रिटिश सरकार ने १९०६ में मुसलमानों को राजनीतिक अधिमान देने का वचन दिया। सन् १९१६ में कांग्रेस ने इसे स्वीकार कर लिया।

सन् १९२० में इसके मस्तिष्क में यह बात आ गयी कि भारत में सात करोड़ मुसलमान बसते हैं, अतः कांग्रेस एक मुसलमान संस्था के रूप में काम कर सकती है। उन दिनों अंग्रेज अपना प्रभुत्व मध्य पूर्व में जमाने के लिए टर्की के टुकड़े-टुकड़े कर उमसे बने छोटे-छोटे राज्यों को स्वतन्त्रता पूर्वक रहने में सहायक हो गये थे। तदुपरान्त अंग्रेज ने मध्य पूर्व के छोटे-छोटे राज्यों को स्वतन्त्र रहते हुए, इस्लामी नाम से एक कॉन्फैडेरेशन (संघ) बनाने की प्रेरणा देनी आरम्भ कर दी। यह प्रेरणा 'पैन इस्लामिक' (Pan Islamic) आन्दोलन के नाम से जानी जाती है। अंग्रेज का इसमें उद्देश्य यह था कि रूस की प्रगति में एक बहुत बड़ी बाधा खड़ी कर दी जाये।

अंग्रेज सफल नहीं हुआ, परन्तु कांग्रेस अंग्रेज का अनुकरण करते हुए

खिलाफत के मामले में सहायक होने लगी थी। खिलाफत भी पुराने ढंग का एक 'पैन इस्लामिक' संस्थान था। अंग्रेजी सरकार जो कर रही थी, वही कांग्रेस खिलाफत-आन्दोलन को भारत का आन्दोलन बना करने लगी थी।

गांधी जी ने पूर्ण देश की बाजी खिलाफत पर लगा दी थी। उस समय यह कहा जाता था कि कांग्रेस इस कारण खिलाफत के विषय में हस्तक्षेप कर रही है क्योंकि देश में सात करोड़ मुसलमान बसते हैं।

तत्कालीन कांग्रेस के विचार में इन सात करोड़ मुसलमानों के अतिरिक्त जो २८—२९ करोड़ अन्य लोग बसे हुए थे, उनका अस्तित्व था ही नहीं। कांग्रेस मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था हो गई थी।

यहाँ तक कि सन् १९२२ में मोपला फसाद में कांग्रेस ने मोपलों की हिमायत की थी। गांधी जी मोपला के कैदियों की रिहाई मांगते थे और नेहरू जी इसे एक आर्थिक प्रश्न मानते थे।

ब्रिटिश सरकार को मध्य पूर्व के मुसलमानों में पैन-इस्लामिक संस्थान बनाने में सफलता नहीं मिली, प्रत्युत उसे मिस्र छोड़ना पड़ा, स्वेज नहर से हाथ धोने पड़े और अपना पूर्ण एशिया का व्यापार इस मिथ्या नीति पर बलिदान करना पड़ा।

कांग्रेस ने खिलाफत के मामले को हिन्दुस्तान का मामला बना कर हिन्दुस्तान में बसी बहु संख्यक जाति को एक हीन-दीन जाति बना दिया। अंग्रेज की नीति यह थी कि बहुसंख्यक जाति तो बंट जाये बंगाली, मद्रासी, गुजराती, तमिल, मराठा इत्यादि समुदायों में और मुसलमान पूर्ण देश के एक हो जायें।

अंग्रेज की इस नीति को वर्तमान स्वराज्य सरकार भी इसी रूप में चला रही है।

भारत सरकार ने मुसलमानों के रबात में हो रहे इस्लामिक सम्मेलन में सम्मिलित होने के यत्न से वही बात की है, जो सन् १९२० में कांग्रेस ने खिलाफत के मामले को हिन्दुस्तान का मामला बना कर की थी। तब महात्मा गांधी ने यह कहा था कि भारत में सात करोड़ मुसलमान बसते हैं, इस कारण भारत को मुसलमानों के अन्तर्राष्ट्रीय विषय में हस्तक्षेप करने का अधिकार है। यही बात इस रबात कान्फरेंस में सम्मिलित होने के लिए भारत सरकार की लालसा का कारण कही गई है। यह कहा गया है कि क्योंकि भारत में छः करोड़ मुसलमान बसते हैं, इस कारण भारत सरकार का अधिकार है कि वह इस मुस्लिम शिखर सम्मेलन में बैठे।

इसका यह अर्थ निकलता है कि मुसलमान छः करोड़ में होते हुए इस देश में बहुसंख्यक हैं। इससे अधिक संख्या में कोई जाति है ही नहीं।

देश में छः करोड़ मुसलमान हैं और शेष पंजाबी हैं, हरियानवी हैं, राजस्थानी हैं, गुजराती हैं, मराठे हैं, तमिलनाडी हैं। ये सब पृथक्-पृथक् छः करोड़ से कम हैं, अतः भारत में बहुसंख्यक मुसलमान हैं और भारत सरकार का अधिकार है कि मुस्लिम राज्यों के सम्मेलन में बैठे।

यह स्थिति इस प्रकार उत्पन्न की गई है कि मुसलमानों को तो चाहे वे देश के किसी भाग में रहते हों, अपनी संस्कृति और सभ्यता के आधार पर एक जाति माना जा रहा है, परन्तु मुसलमानों के अतिरिक्त जो सैंतालीस करोड़ गैर-मुसलमान बसते हैं, उनके एक जाति का आधार है हिन्दुत्व और हिन्दुत्व सरकार की दृष्टि में एक वर्जित शब्द है। अतः हिन्दुत्व न रहने पर तो यहां मुसलमानी, मद्रासी, बंगाली, गुजराती इत्यादि ही रह जाते हैं और वे पृथक् पृथक् मुसलमानों की अपेक्षा कम हैं।

आज से पहले हिन्दुत्व शब्द और नाम को वर्जित मान भारत सरकार अपने आपको सैक्युलर कहती थी, परन्तु अब इस सम्मेलन में बैठने की लालसा रख कर भारत सरकार ने सैक्युलर के अर्थ मुसलमान मान लिया है।

यह सम्मेलन अल-अक्सा की मस्जिद को आग लगाये जाने के उपरान्त मुसलमानों का एक संगठन बनाने के लिए मुसलमान राज्यों द्वारा किया गया था। मुसलमानी राज्य कुछ यह विचार करना चाहते थे कि इस्लाम की रक्षा कैसे की जा सकती है?

भारत सरकार इस सम्मेलन में इसी विचार में भाग लेना चाहती थी। इस सम्मेलन में वही कार्य सम्पन्न करने का विचार था, जो मध्य काल में करने के लिए खिलाफत निर्माण की गई थी। यही करने भारत सरकार का प्रतिनिधि रबात में पहुंचा था।

यदि वहां उसे बैठने नहीं दिया गया तो इसमें भारत सरकार का दोष नहीं है। भारत सरकार ने तो मुसलमानी राज्यों में बैठने के लिए अपना प्रतिनिधि भेजा था। मूर्ख तो सम्मेलन वाले हैं, जिन्होंने भारत को एक मुसलमानी देश स्वीकार नहीं किया।

शर्म तो आनी-जानी बात है। भारत सरकार का अपमान हुआ तो यह कोई नयी बात नहीं है। सन् १९२० में गांधी के सहायक श्री पण्डित मोती लाल जी ने खिलाफत को हिन्दुस्तान का मामला बना दिया था। आज मोती

लाल जी की पोती राज्य करती है और इन श्रीमती ने भारत को ही एक मुसलमानी राज्य समझ लिया है।

खिलाफत में दखल देने का परिणाम यह हुआ था कि उन मुसलमानों को प्रोत्साहन मिला था, जो हिन्दुस्तान में पुनः इस्लामी राज्य बनाने की इच्छा करते थे और रबात के मुसलमानी राज्यों के सम्मेलन में भारत के जा कर बैठने का यह परिणाम आवश्यम्भावी है कि मुसलमानों में उसी तत्त्व को प्रोत्साहन मिलेगा।

मस्जिद को आग लगने पर मुसलमानों को बड़ा दुःख पहुंचा है। हमें उनसे पूरी सहानुभूति है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि भारत में जितने मन्दिर गिराये अथवा फूंके जा चुके हैं, उनकी मरम्मत अथवा पुनः निर्माण हो चुका है क्या ?

दोष यह है कि हिन्दुस्तान में एक जन समूह रहता है। इसकी संख्या सैंतालीस करोड़ के लगभग है। इस जन-समूह में ऐक्य का सूत्र है हिन्दुत्व और उसको सरकार ने टेबू (taboo) कर रखा है। हिन्दुत्व अथवा हिन्दू संस्कृति और धर्म में सैंतालीस करोड़ के एकीकरण करने का गुण है। इसे अवगुण मान कर सैंतालीस करोड़ के जन-समूह को पंजाबी, राजस्थानी, अवधी ब्रजवासी, गुजराती, बंगाली इत्यादि छोटे-छोटे समुदायों में बांट कर छः करोड़ मुसलमानों को एक बड़े समुदाय का रूप दिया जा रहा है।

यह नीति ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुओं को दबा कर रखने के लिए चलाई थी और महा बुद्धिमती कांग्रेस इसको एक गुण मान एक अल्प संख्यक के हाथ में देश को बेचने का यत्न कर रही है।

प्रश्न मान-अपमान का नहीं है। प्रश्न नीति का है। यह मानना पड़ेगा कि इस देश में एक हिन्दू राष्ट्र है।

राष्ट्र के अर्थ राज्य नहीं। न ही सरकार है। यह एक समाज है। इस समाज में हिन्दुत्व एक सांझा गुण है। उसको छोड़ कर ही भारत सरकार मुसलमान सम्मेलन में जाने के लिये परेशान हो रही थी। अब भी यह उसमें सम्मिलित न हो सकने पर परेशान प्रतीत होती है। कारण यह कि इस मिथ्या दृष्टि के लिए इसने पश्चात्ताप नहीं किया।

योगीराज कृष्ण

श्री सचदेव

श्री भगवान् कृष्ण ने स्वयं को सर्वव्यापक साक्षात् परमात्मा स्वीकार नही किया।

महाभारत में एक कथा है। जब पाण्डव युद्ध जीत कर सुखपूर्वक राज्य करने लगे, तब श्री कृष्ण हस्तिनापुर से द्वारिका को जाने की तैयारी करने लगे। एक दिन अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा कि वह उनसे उसी गीता का उपदेश पुनः सुनना चाहता है जो युद्ध भूमि में सुनाया था तथा उसी विराट स्वरूप को पुनः देखना चाहता है जो उन्होंने दिखाया था।

महाभारत में यह इतिहास इस प्रकार लिखा है :—

विदितं मे महाबाहो संग्रामे समुपस्थिते।
माहात्म्यं देवकीमातस्तच्च ते रूपमैश्वरम्॥
यत् तद् भगवता प्रोक्तं पुरा केशव सौहृदात्।
तत् सर्वं पुरुषव्याघ्र नष्टं मे भ्रष्टचेतसः॥
मम कौतूहलं त्वस्ति तेष्वर्थेषु पुनः पुनः।
भवांस्तु द्वारिकां गन्ता नचिरादिव माधव॥

(महा भा०—आश्व०—१६–५,६,७)

हे देवकीनन्दन, महाबाहो! युद्ध भूमि पर मुझे तुम्हारा ऐश्वर्ययुक्त स्वरूप दिखाई दिया था। उस समय तुमने मुझे ज्ञान का उपदेश भी दिया था। वह सब ज्ञान विस्मरण हो गया है। मैं अन्य कार्यों में व्यस्त हो गया था। हे माधव, उन विषयों को पुनः सुनने की मेरी उत्कट इच्छा हो रही है। आप द्वारिका जाने वाले हैं, अतः उसे पुनः सुना दीजिये।

अर्जुन की यह अभिलाषा सुन कृष्ण ने कहा :—

श्रावितस्त्वं मया गुह्यं ज्ञापितश्च सनातनम्।
धर्मं स्वरूपिणं पार्थ सर्वलोकांश्च शाश्वतान्॥

अबुद्धया नाग्रहीर्यस्त्वं तन्मे सुमहदप्रियम् ।
न च साद्य पुनर्भूयः स्मृतिर्मे सम्भविष्यति ।।
स हि धर्मः सुपर्याप्तो ब्रह्मणः पदवेदने ।
न शक्यं तन्मया भूयस्तथा वक्तुमशेषतः ।।
परं हि ब्रह्म कथितं योगयुक्तेन तन्मया ।
इतिहासं तु वक्ष्यामि तस्मिन्नर्थे पुरातनम् ।।

(महा भा०—आश्व०—१६-६,१०,१२,१३)

श्री कृष्ण ने अर्जुन की भर्त्सना करते हुए कहा, हे अर्जुन! उस समय मैंने तुम्हें अत्यन्त गोपनीय ज्ञान का श्रवण कराया था। धर्म के स्वरूप का तथा सब लोकों के शाश्वत रूप के तत्व का परिचय कराया था, किन्तु तुम ने अपनी नासमझी के कारण उस उपदेश को विस्मरण कर दिया। यह मुझे रुचिकर नहीं। उन बातों का अब मुझे पूरा पूरा स्मरण आना सम्भव नहीं जान पड़ता।

निश्चय ही तुम बड़े श्रद्धाहीन हो। तुम्हारी बुद्धि बहुत मन्द जान पड़ती है। अर्जुन, अब मैं उस उपदेश को ज्यों का त्यों नहीं कह सकता। वह सारे का सारा धर्म उसी रूप में दोहराना मेरे वश की बात नहीं है।

उस समय मैं योगयुक्त हो परमात्म-तत्व का वर्णन कर रहा था।

अभिप्राय यह है कि उस समय कृष्ण ने योग द्वारा अपना सम्पर्क परमात्मा से बनाया हुआ था और उस सम्पर्क के कारण ही वह अद्वितीय वक्तव्य दिया जा सका था। यहाँ श्री कृष्ण ने अपने लिये प्रयुक्त भगवान, मैं, मेरा, मुझे इत्यादि शब्दों का जिनसे वे परमात्मा का स्थानापन्न प्रकट होते थे, रहस्य स्पष्ट कर दिया है।

हमने पूर्व के लेखों में तथा इसमें यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि भारतीय पद्धति के अनुसार अवतार के क्या अर्थ हैं ?

एक वाक्य में यह कहा जा सकता है कि कुछ मुक्त आत्मायें इस संसार का उद्धार करने के निमित्त समय समय पर स्वेच्छा से जन्म लेती हैं। तब वे परमात्मा का अवतार मानी जाती हैं। परमात्मा का इस कारण कि वे सीधी परमात्मा के सम्पर्क से ही इस लोक में आती हैं।

महाभारत में यह लिखा है कि इस मन्वन्तर के अठाईसवें द्वापर में भयंकर भय से डरे हुओं को अभय दान देने के लिए श्रीवत्स लक्षणों से युक्त श्री कृष्ण का जन्म हुआ।

भगवान् ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि :—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।

जब जब धर्म में हीनता आने लगती है, तब तब ही धर्म के उत्थान के के लिए मैं स्वेच्छा से जन्म लेता हूं । साधुओं का दुःख निवारण करने, दुष्टों को नष्ट करने तथा धर्म की स्थापना करने के लिए समय-२ पर जन्म लेता हूं।

कुल :—

यदुकुल चन्द्रवंशियों की एक शाखा ही मानी जाती है । चन्द्र वंश में एक धर्मात्मा राजा ययाति नाम के हुए थे । इसकी दो पत्नियाँ थीं । एक थी देवयानी । यह शुक्राचार्य की लड़की थी और दूसरी थी शर्मिष्ठा । यह दैत्य-राज वृषपर्वा की पुत्री थी ।

दोनों रानियों में ईर्ष्या उत्पन्न हुई तो देवयानी के कहने पर उसके पिता शुक्राचार्य ने ययाति को शाप दे दिया कि वह समय से पूर्व वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाये । पीछे विनय-अनुनय करने पर शुक्राचार्य ने अपने शाप के निवारण का उपाय बता दिया । उपाय यह था कि कोई भी युवा पुरुष अपना यौवन उसे दान में दे सकेगा ।

ययाति ने अपने लड़कों में से ही किसी से यौवन मांगने का निश्चय कर अपने पुत्रों से मांगना आरम्भ किया । राजा ययाति का सब से बड़ा लड़का यदु था । यह राजा का देवयानी से लड़का था । उसने पिता को अपना यौवन उधार देने से इन्कार कर दिया ।

राजा ययाति के चतुर्थ पुत्र पुरु ने अपने पिता का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया । पुरु से उधार लिये यौवन से ययाति चिरकाल तक युवा बना रहा । इससे पिता ने अपने राज्य का अधिकारी पुरु को बनाया और यदु को अपनी माता के साथ अपने देश से निकाल दिया ।

यदु अपनी माता के साथ मथुरा के क्षेत्र में आ कर रहने लगा और कालान्तर में वहां पर उसके कुल ने राज्य स्थापित कर लिया ।

इसी यदुकुल की एक शाखा वृष्णी वंश में वसुदेव का लड़का कृष्ण हुआ ।

वसुदेव का विवाह कंस की बहिन देवकी से हुआ था । किसी भय के कारण कंस ने अपने बहनोई को बहिन सहित कारावास में डाल रखा था। कृष्ण का जन्म कारावास में ही हुआ था ।

गुरु विरजानन्द जी महाराज के विषय में एक ऐतिहासिक तथ्य

संवत् १६१४ वि० (सन् १८५७ ईसवी) में हुए स्वतंत्रता के संग्राम में श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के गुरु स्वामी विरजानन्द जी महाराज ने क्या योगदान दिया था, इसका एक प्रमाण मिला है।

एक पत्र जो मीर मुश्ताक मिरासी का लिखा कहा जाता है, चौधरी कबूल सिंह मंत्री सर्व-खाप पंचायत ने सम्पादक आर्य मर्यादा साप्ताहिक नई दिल्ली के पास भेजा है। वह पत्र उर्दू भाषा में है और उसका 'फोटो स्टैट' आर्य-मर्यादा १२ अक्टूबर १६६६ के अंक में छपा है। अपने पाठकों की जानकारी के लिये हम उस पत्र को देवनागरी लिपि में छाप रहे हैं। —सम्पादक

देवनागरी लिपि में परिवर्तित

बिस्मिल्लाह उर्रहमानुर्रहीम

सन् १८५६ बमुताबिक सम्वत् १६१३ को एक पंचायत मथुरा के तीर्थ-गाह मुवंकिद हुई उसमें हिन्दू मुसलमान और दूसरे मजहब के लोगों ने शरकत की थी। इस पंचायत में एक नावीना हिन्दू दरवेश को लाया गया था एक पालकी में बिठाकर। उनके आने पर सब लोगों ने उनका अदब किया जब वह चौकी पर बैठ गया तब हिन्दू मुसलमान फकीरों ने इन की कदम बोसी की। इस के बाद सब हाजरीन पंचायत के लोगों ने उनका अदब किया। सब के अदब के बाद नाना साहब पेशवा मौलवी अजीमुल्ला खान रंगू बाबू और शहंशा बहादुरशाह का शहजादा इन सब ने इन के अदब में कुछ सोने की अशरफियां पेश कीं। इस के बाद एक हिन्दू एक मुसलमान फकीर ने यह कहा कि हमारे उस्ताद साहिबान की जबान मुबारिक से जो तकरीर होगी उस तसल्ली के साथ सब साहबान सुनें और वह मुल्क के लिये बहुत मुफीद साबित होगी और वह वली अल्लाह साधु बहुत जबानों का आलिम और हमारा और हमारे मुल्क का बुजुर्ग है खुदा की मेहरबानी से ऐसे हमें मिले यह खुदा का हम पर बड़ा अहसान है।

दरवेश को तकरीर का आगाज

सब से पहले उन्होंने खुदा की तारीफ की और फिर उर्दू में उसका तरजुमा किया। इस बुजुर्ग ने यह कहा था कि आजादी जन्नत है और गुलामी दोजख है अपने मुल्क की हकूमत गैर मुल्क की हकूमत के मुकाबले में हजार दर्जे बहतर है। दूसरों की गुलामी हमेशा बेइज्जती और बेशरमी का बायस है हमें किसी कौम से और किसी मुल्क से कोई नफरत नहीं है हम तो खलके खुदा की बहबूदी के लिये खुदा से रोज दुआ मांगते हैं मगर हुकमराह कौम खास कर फिरंगी जिस मुल्क में हकूमत करते हैं उस मुल्क के वाशन्दों के —

बिस्मिल्लाह उर्रहमानुर्रहीम

साथ इन्सानियत का बरताव नहीं करते और कितनी ही भी अच्छाई की तारीफ करें मगर उस मुल्क के वाशंदों के साथ मवेशियों से गिरा हुआ बरताव करते हैं। खुदा की खलकत में सब इन्सान भाई-भाई हैं मगर गैर मुल्की हुकमराह कौम इन्हें भाई न समझ कर गुलाम समझती है। किसी भी मजहब की किताब में ऐसा हुक्म नहीं है कि अशरफुल्मखलूकात के साथ दगा की जावे और अल्लाह के हुक्म की खिलाफ वरजी की जावे इस वास्ते मातहत लोगों का कोई इमीन है न कोई उनकी शान है। फिरंगियों में बहुत सी अच्छी भी बात है मगर सियासी मसले में आकर वह अपने कौल फेल को न समझ कर फौरन बदल जाते हैं और हमारी अच्छाई और नेक सल्लाह को फौरन ठुकरा देते हैं। इसकी असल वजूहात यह है कि हमारे मुल्क को वह अपना वतन नहीं समझते हैं हमारे मुल्क का बच्चा-बच्चा उनकी खैर खवाही का दम भरे फिर भी अपने वतन के कुत्ते को हमारे इन्सानों से अच्छा समझते हैं। यह सब कर्मा का बायस है। इन्हें अपने ही वतन से मुहब्बत है इस लिये मैं सब बाशिन्दगान हिन्द से इलतजा करते हैं कि जितना वह अपने मजहब से मुहब्बत करते हैं उतना ही इस मुल्क के हर इन्सान का फर्ज है कि वह वतन परस्त बने और मुल्क के हर बाशिन्दे को भाई-भाई जैसी मुहब्बत करे। जब तुम्हारे दिलों के अन्दर वतन परस्ती आ जायगी तो इस मुल्क की गुलामी यहां से खुद ब खुद जुदा हो जायगी हिन्द के रहने वाले सब आपस में हिन्दी भाई हैं और बहादुरशाह हमारा शहंशाह है।

तसनीफ करदह मीर मुश्ताक मिरासी-कासिद् सर्व खाप पंचायत

नोट :— महात्मा सन्यासी का नाम मालूम किया तो इन का नाम सुवामी बिरजानन्द था और बहुत अरसे से मथुरा में रहते हैं और संस्कृत की तालीम देते हैं और अल्लाह ताला के मोतकिद हैं।

बिस्मिल्लाह उर्रहमानुर्रहीम

सम्वत् १६१३ विक्रमी में यह पंचायत दूर दराज जंगल में की गई थी और शुरू भादू का माह था। यह पंचायत चार रोज तक मतवातर होती रही पहले दिन आने वाले सब महमानों की एक दूसरे से मुलाकात कराई गई थी दूसरे दिन हजरत आदम से लेकर हजरत मुहम्मद रसूल सले अल्लाह अलेह व सलम तक सवाने अमरी सुनाई गई तीसरे दिन रामकिरशन और महात्मा बुध और शङ्कराचार्य महावीर स्वामी अतेन ऋषि और मुनि और राजा महाराजाओं के जिन्दगी के दास्तानों पर रोशनी डाली गई और गैर मुल्की वतन परस्तों और खुदा परस्तों याद दिलाई गई और चौथे दिन नाबीना संन्यासी महात्मा विरजानन्द जी और मुसलमान साई मियां महमूदन शाह ने शुरु में विरजानन्द जी की तकरीर से पहले शुरुआत की। आज के दिन तकरीर में खास-खास लोगों की ही जमायत थी और खुफिया सरकारी आदमी इसमें नहीं था। नाबीना महात्मा की तकरीर बहुत ही पुर जोर थी और हर मजहबी इल्म से ताल्लुक रखती थी और डेढ़ घण्टे तक—

बिस्मिल्लाह उर्ररहमानुर्रहीम

तकरीर होती रही। मैंने इन की तकरीर के खास-खास इलफाज तहरीर किये हैं बाकी उन्होंने हर पहलों हर रोशनी डाली थी। जब महात्मा बिरजानन्द को पालकी में बिठा कर लाया गया उस वक्त हिन्दू मुसलमान फकीरों उनकी खुशी में शंख घड़नावल नागफणी निकाडा तुरही और नरसिंघे बजाये थे और खुदा परस्ती और वतन परस्ती के गीत गाये थे। यह नाबीना साधु हरइल्म के समझने की ताकत रखता था और खुदा का जलवे जुलाल इसकी जबान से जाहिर होता था। मैं ने भी अपनी रूह के तकाजे के मुताबिक ५ फूल इनके सामने पेश किये और उनकी कदमबोसी की और खुदा से दुआ मांगी कि खुदा ऐसी नेक रूहों को खलकत की भलाई के लिये हमेशा पैदह कीजिये।

तसनीफ करदह मीर मुशताक मिरासी

[मीर मुश्ताक मिरासी का स्वयं हाथ का लिखा उर्दू-फारसी लिपि का मूल पत्र और उसी के जो ब्लाक बनवाये हैं—वे भी सुरक्षित हैं। यदि कोई सज्जन मूलपत्र को देखना चाहें, तो आर्यमर्यादा के कार्यालय (१५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली-१) में पहुंच कर देख सकते हैं।–सम्पादक]

अस्तित्व की रक्षा [१५]

श्री विद्यानन्द 'विदेह'

यहां संक्षेप में कतिपय अस्पृश्यता-निवारण की विधियों का संकेत किया जाता है।

१) गान्धी जी ने एक सजीव उदाहरण पेश किया था। एक बार वह दिल्ली की एक हरिजन-बस्ती में आकर ठहरे। क्योंकि गान्धी जी से मिलने वहाँ बड़े-से-बड़े व्यक्तियों को आना था, दिल्ली-नगरनिगम उस बस्ती को पूर्णतया स्वच्छ रखने लगा, आनन-फ़ानन में उस बस्ती को जानेवाली और उसके भीतर की रेतीली सड़कों को पक्का कर दिया गया। बस्ती के निवासी भी उन दिनों बहुत स्वच्छ रहने लगे। राष्ट्र के वर्तमान बड़े-बड़े नेता यदि गान्धी जी के उस पग का अनुसरण करने लगें तो बड़ा काम हो जाये।

हमारे स्मृतिकारों ने एक बड़ी भयंकर भूल यह की कि असंस्कृत और अस्वच्छ वर्गों के लिये संस्कृत और स्वच्छ वर्गों की बस्तियों से दूर पृथक् बस्तियां बसाने का विधान किया। उसी का यह परिणाम है कि हमारे इस कभी के विश्वशिरोमणि राष्ट्र में सर्वत्र, सब ओर, अस्पृश्यों की गन्दी और घिनौनी पृथक् बस्तियाँ दिखायी पड़ती हैं। वह वैधानिक कृत्य वैसा ही था जैसा दक्षिण अफ्रीका में गोरी जातियों ने किया है।

२) साधु-महात्मा हरद्वार, प्रयाग, आदि तीर्थ-स्थानों में अपने आश्रम न बनाकर हरिजन-बस्तियों में बनायें। वे उन बस्तियों के निवासियों को अपने-अपने आश्रम के सत्संगों तथा आयोजनों में सम्मिलित करायें, उन्हें स्वच्छ रहन-सहन सिखायें, उनके बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था करें, सहभोजों में उनके साथ भोजन करें, उन्हें धर्म की दीक्षा दें, उनके मलिन व्यसन और खान-पान को छुड़ाकर उन्हें सात्त्विक आहार की ओर प्रवृत्त करें। आश्रमों के साधक-साधिका श्रमदान की योजनाओं द्वारा हरिजन-बस्तियों की तथा उन बस्तियों में निवास करनेवालों के गृहों की सफाई की व्यवस्था करें।

३) हिन्दुओं की धार्मिक तथा सामाजिक संस्थायें अपने मोहल्ला-प्रचार के आयोजन में हरिजन-बस्तियों को सम्मिलित करें। अधिवेशनों की व्यवस्था बस्ती के निवासी करें और प्रचार-कार्य संस्थाओं की ओर से हो।

४) हरिजन-बस्तियों में धनाढ्य पुरुषों की ओर से ऐसी प्रातः अथवा रात्रि-पाठशालायें खोली जायें, जिनमें वहां के बालक बालिकाओं तथा प्रौढ़ों को

हिन्दी तथा संस्कृत पढ़ाने के अतिरिक्त वेदानुशीलन भी कराया जाये। इस कार्य के लिये चारों वेदों में से व्यावहारिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले तथा कर्म-काण्ड में काम आनेवाले सरल-सरल मन्त्र छांट लिये जायें। सरल हिन्दी में उनका अर्थ और तात्पर्य पढ़ाया-समझाया जाये। इस कार्य को आर्यसमाज ही कर सकेगा। सनातनधर्म की वर्तमान मान्यतायें सनातनधर्मियों को यह कार्य करने न देंगी।

५) आर्यसमाज की ओर से राज्य-राज्य में ऐसे आर्ष गुरुकुल खोले जायें, जिनमें अस्पृश्य कही जानेवाली जातियों के बालक-बालिकाओं को आर्ष शिक्षा-पद्धति से गुरु-शिष्य परम्परा के आधार पर संस्कृत तथा वेद-शास्त्रों की उच्च शिक्षा दी जाये। इन गुरुकुलों के छात्रों में एक प्रकार की तीव्र प्रतिस्पर्धा की भावना जाग्रत होगी। मुझे विश्वास है, ऐसे गुरुकुलों के छात्र सवर्णों के छात्रों से बहुत आगे निकल जायेंगे और सवर्णों से बहुत ऊंचे उठ जायेंगे।

६) हिन्दुओं के सभी सर्वमान्य पर्व हरिजनों की बस्तियों के निकट मनाये जायें। उनमें हिन्दुओं के सभी वर्गों के सभ्य-सभ्या अधिक-से-अधिक संख्या में भाग लें, ऐसी व्यवस्था की जाये। पर्वों में समता का वातावरण हो। प्रत्येक पर्व भव्यता और स्वच्छता के साथ मनाया जाये। ऐसे अवसरों पर अस्पृश्यों के कार्यक्रमों पर उन्हें पारितोषिक दिये जायें।

७) नगरनिगमों को प्रेरणा की जाये कि वे हरिजन-बस्तियों का नये सिरे से निर्माण करें। हर बस्ती में योजनानुसार घरों का निर्माण हो। वहां के निवासियों में गलियों, सड़कों तथा घरों को साफ़-सुथरा रखने का संस्कार पैदा किया जाये। वृक्षों और हरियालियों का रोपण तथा सेंचन स्वयं बस्तीवासियों से कराया जाये। बस्तियों के वातावरण को दर्शनीय, आकर्षक, जीवनप्रद तथा आह्लादक बनाया जाये। भीतर-बाहर और चारों तरफ के वातावरण का समाज के जीवन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। भव्य वातावरण निवासियों के जीवनों में भव्यता की प्रेरणा तथा स्थापना करता ही है।

८) अस्पृश्य बस्तियों में आर्यसमाजों की स्थापना की जाये और उनमें विशेष शिक्षण-प्राप्त, मिशनरी भावना के विवाहित पुरोहित नियुक्त किये जायें। करोड़ों हिन्दु अस्पृश्यों तथा हरिजनों को आर्य बनाकर हिन्दु जाति को बहुत बलवान् बनाया जा सकता है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें आर्यसमाज के अतिरिक्त हिन्दुओं का अन्य कोई भी वर्ग प्रवेश करने का साहस न करेगा। आर्यसमाज की जो शक्ति व्यर्थ व्यासंगों में नष्ट हो रही है, काश वह शक्ति इस साधनीय साध में जुट जाये तो हिन्दु जाति का बेड़ा पार होजाये और उसका काफ़िला प्रत्येक दिशा में तेजी के साथ आगे बढ़ जाये। (अपूर्ण)

हिंदू युवतियों का विधर्मियों द्वारा अपहरण धार्मिक एवं गंभीर राष्ट्रीय समस्या

ब्रह्मचारी विश्वनाथ जी

इतिहास का गंभीर अध्ययन करने पर यह सर्वत्र पाया जाता है कि, विजेता, विजित समाज की महिलाओं पर अत्याचार करते हैं। इसका उद्देश्य केवल शारीरिक भूख मिटाना ही नहीं होता है अपितु विजित समाज के नैतिक मूल्यों को ठेस पहुंचाकर अपनी धाक उन पर जमाना भी होता है।

भारत के इतिहास के अनेक पृष्ठ ऐसी लज्जाजनक घटनाओं से भरे हुए हैं। विशेषत: मुसलमानों के भारत पर आक्रमण के अनन्तर तो ऐसी घटनाओं की भरमार दिखाई देती है। और इसीलिये भारत में आक्रमण के रूप में आये हुए मुट्ठी भर मुसलमानों की संख्या करोड़ों में पहुंच कर देश खण्डित हुआ। किन्तु अभी भी यह शृंखला अविरत चल रही है। क्योंकि मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए, उन्हें देश का टुकड़ा तोड़ कर दिया गया किन्तु इसके पीछे की भावना को समाप्त करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया, अपितु प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से उसे परिपुष्ट करने का ही प्रयास वर्तमान शासन द्वारा किया गया और वह भी अल्प संख्यकों को तुष्ट करने की दृष्टि से। ईसाइयों ने भी इस बात के महत्व को कम नहीं माना। यदि एक पुरुष धर्म भ्रष्ट होता है तो उनके धर्म में एक की ही संख्या बढ़ती है, किन्तु यदि एक स्त्री धर्मान्तरित हुई तो यह संख्या अनेकों से बढ़ती है। ये दोनों धर्मानुयायी परिवार नियोजन का कदापि अवलंबन नहीं करते हैं, और इसी के परिणाम स्वरूप भारत स्वतन्त्र होने के बाद बीस वर्ष की समयावधि में, भारत सरकार की छत्रछाया में ही नागाओं की पृथकतावादी प्रवृत्तियाँ बढ़ीं और पनपीं। आज मुसलमान भी अल्प संख्यकता के आधार पर अनेक अधिकारों की माँग कर रहे हैं और यह बात असंभव नहीं है कि कुछ वर्ष बाद वे पुन: किसी पृथक राष्ट्र की और मांग भी करें।

तात्पर्य यही है कि महिलाओं का अपहरण एवम् उनके धर्म परिवर्तन के पीछे राष्ट्र द्रोह की भावना विशेष रूप से रहती है। अतएव हमें, सब भारतीयों को, इस दृष्टि से सजग रहना नितान्त अनिवार्य है।

महाराष्ट्र में हुए 'काजी कांड' से राष्ट्र का एक-एक चप्पा-चप्पा परिचित है ही। जिसने एक नहीं अनेक महिलाओं को उठाकर अपने उद्देश्य की पूर्ति का

प्रयास किया । बलात् अपहरण के अनेक प्रकरण हमें यत्र तत्र सुनाई देते ही हैं, विशेषत: मुसलमानों द्वारा हिन्दू महिलाओं के । इसका कारण भी स्पष्ट है कि मुसलमानों में स्वाभाविकतया एक खानाबदोशी प्रवृत्ति रहती है । क्योंकि जोश के सामने वे उत्तरदायित्व आदि को महत्त्व नहीं देते हैं । अतएव उन्हें किसी एक स्थान पर नौकरी आदि से लगाव नहीं रहता है । आर्थिक अस्थिरता के कारण वे कहीं भी स्थिर या स्थायी नहीं रहते, अतएव ऊपरी शान-शौकत, मीठी ज़बान और शाब्दिक भुलावे के आधार पर वे अनेक हिन्दू महिलाओं को भगाकर ले जाते हैं, जिनको बाद में नारकीय जीवन व्यतीत करना पड़ता है । इस बलात् अपहरण के प्रकार के अतिरिक्त भी आज कल इन लोगों द्वारा एक भुलावे का मार्ग जिसे 'हिप्नाटिज्म' जैसी उपमा दी जा सकती है, अपनाया जाने लगा है । इससे भी अनेक संभ्रान्त परिवार की युवतियों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा है या अपना शेष जीवन नारकीय यातनाओं में व्यतीत करना पड़ता है । एक बम्बई का ही उदाहरण लीजिये ! एक संभ्रान्त परिवार की युवती जिसे नौकरी करने की आवश्यकता भी नहीं थी, केवल स्वतन्त्र वृत्ति से जीवन व्यतीत करने के सुहावने स्वप्न के पीछे पागल होकर नौकरी की तलाश में इधर उधर भ्रमण करने लगी । एक मुस्लिम युवक ने यह भांपा । यह मुस्लिम युवक अपढ़ एवम् अत्यन्त ही मामूली व्यक्ति था, जो दर्जी का व्यवसाय करता था, जिससे उसे अपनी बीबी का भरण-पोषण करने के भी लाले पड़ रहे थे । उसने इस लड़की को अपने मोह जाल में फँसाया और एक दिन उसे अपना प्यारा परिवार छोड़ने के लिए बाध्य किया । परिवार वाले लड़की को घर न पाकर पुलिस की शरण में गये । बड़ी ही कठिनाई से पुलिस उस लड़की को खोज पाई किन्तु वह उस समय इस प्रकार मोहजाल में फँसाई गई थी और उस पर इश्क का इस प्रकार नशा चढ़ाया गया था कि, उसने पुलिस के सामने माँ-बाप के साथ जाने से इन्कार किया । पुलिस एवम् माँ-बाप सभी हतबल हो गये । लड़की नौकरी करती थी । मियाँ मौज उड़ाते ! भाग्य-वशात् लड़की की नौकरी छूट गई और दूसरी कहीं नहीं मिली । मियाँ बौखलाये और उसे अपने पुरखों के घर लाकर पटक दिया । वहाँ उसे पता चला कि मियाँ की निकाह शुदा बीवी भी है और बच्चे भी । जब वह लड़की मियाँ जी के पुरखों के घर आई तो वहाँ की अनपढ़ गवाँर एवम् अभद्र महिलाओं ने यह समझा कि अच्छी एक लौंडी काम के लिए मिली । फिर क्या था ! सुबह से शाम तक वह बरतन माँजना, कूड़ा-करकट साफ करना, कपड़े धोना और उन औरतों के ताने और फब्तियाँ सुनना इसके सिवाय उसके नसीब में कुछ भी नहीं रहा । मियाँ तो नदारद ही रहते, शायद और कहीं डोरे डाल रहे हों ।

इस दुर्दशा में आगे प्रगति हुई और बातें गाली गलोज, मार पीट तक उतर आयीं। उस लड़की का पूरा नशा उतर चुका था और वह असलियत को समझ चुकी थी, किन्तु अब देर हो गई थी। वह कहीं की नहीं रही थी। उस पर इतनी सख्त नजर रहती कि वह चाहती तो भी अपने आप को इस दुनिया से समाप्त नहीं कर सकती थी। किन्तु किसी प्रकार यह किस्सा बम्बई के पाँडुरंग बाड़ी स्थित 'मसुराश्रम' नामक संस्था के कार्य-कर्ताओं के कानों तक गया। यह संस्था ऐसे बेपनाहों की सहायता के लिए जी जान एक कर देती है और उन्हें मुक्ति दिलाकर, यदि वे स्वेच्छा से चाहें तो पुनः उन्हें शुद्ध कर हिंदू धर्म की दीक्षा देती है। इतना ही नहीं, ऐसी पथभ्रष्ट महिलाओं को समझा बुझाकर उनके लिए योग्य वर आदि ढूँढकर उनके विवाह आदि कर देती है। ताकि वे सभ्य समाज में एक सभ्य नारी के रूप में जीवन व्यतीत कर अपने इस मानव जन्म को कृतार्थ कर सकें। इस संस्था द्वारा इस प्रकार उपकृत ऐसी अनेक महिलाएँ आज सभ्य समाज में सुख का जीवन व्यतीत कर रही हैं। किन्तु ध्यान रहे, इसके पूर्व मसुराश्रम के कार्यकर्ताओं को अपना सिर हाथ पर लेकर लड़ना पड़ता है। पुलिस एवम् न्यायालयों की खाक छाननी पड़ती है। अस्तु, तो प्रस्तुत प्रकरण में भी 'मसुराश्रम' के कार्यकर्ताओं ने महत्प्रयासों के पश्चात् इस लड़की को मुक्ति दिलाई और उसे मां-बाप के सुपुर्द किया। किन्तु मां-बाप धर्म-संकट में पड़े। और उन्हें समाज में सिर ऊँचा कर चलना दूभर हो गया था। किन्तु 'मसुराश्रम' के कार्य-कर्ताओं की प्रेरणा से उक्त परिवार द्वारा पूर्व में उपकृत एक युवक आगे आया और उसने उस लड़की का हाथ थामा और आज वह पुनः एक संभ्रान्त युवती का जीवन व्यतीत कर रही है।

तात्पर्य यही है कि आजकल विधर्मियों द्वारा धर्मद्रोह, समाजद्रोह एवम् राष्ट्रद्रोह की भावनाओं से ही महिलाओं का दो प्रकार से अपहरण किया जा रहा है। एक बलपूर्वक एवम् दूसरा इस प्रकार भुलावे में लाकर। अतएव समाज के प्रहरियों को चाहिए कि, समाज, राष्ट्र एवम् संस्कृति की सुरक्षा की दृष्टि से इस विषय में सजग एवम् सचेत रहें और इन प्रवृत्तियों को जड़ मूल से इस प्रकार उखाड़कर फेंक दें कि जिससे विधर्मियों को यह साहस नहीं हो कि वे किसी हिन्दू युवती या महिला का इस प्रकार अपहरण करने का साहस कर सकें। किन्तु यह निस्संदेह है कि, यह कठिन कार्य केवल यह लेख पढ़ने मात्र से न होगा, अपितु राष्ट्रीय विचार धारा के प्रत्येक नवयुवक को इस विषय में पूर्णतया सजग एवम् सचेत रहना होगा, यह दृढ़ प्रतिज्ञा लेनी होगी कि इस कार्य के हेतु वह अपने प्राणों तक की बाजी लगाने से भी पीछे नहीं रहेगा। ●●

अद्वैतवाद अथवा त्रैतवाद

श्री गुरुदत्त

अद्वैतवाद अर्थात् यह मत कि जगत् का मूल कारण एक पदार्थ है और त्रैतवाद अर्थात् यह मत कि जगत् के मूल कारण में तीन पदार्थ हैं, एक बौद्धिक व्यायाम का विषय ही नहीं है, वरंच इसका इस संसार की प्रगति और ह्रास में भारी हाथ रहा है।

यह हमारा मत है कि अद्वैतवाद जैसा श्री स्वामी शंकराचार्य ने प्रतिपादित किया है, भारत वर्ष के ह्रास के मुख्य कारणों में एक रहा है। भारत अभी भी भटक रहा है तो यह भी इसी मिथ्या मत को स्वीकार करने का कारण है। अद्वैतवाद और जड़वाद एक ही मत के दो नाम हैं। दोनों जगत् के मूल में एक ही तत्त्व को मानते हैं। जड़वाद (Materialism) में यह स्वीकार किया जाता है कि जड़ प्रकृति ही मूल है, जिससे जड़ और चेतन, दोनों प्रकार के पदार्थ बने हैं और ये दोनों प्रकार के पदार्थ प्रलय के समय, जड़ अवस्था में ही चले जायेंगे। जड़ प्रकृति ही एक समय चेतनावस्था में आकर चेतन जीव-जन्तुओं की भान्ति व्यवहार करने लगती है। इनके मत वालों के विचार में मूल पदार्थ जड़ है। जगत् रचनाकाल में जड़ और जीव-जन्तु बन जाते हैं और जगत् के प्रलय काल में पुनः सब जड़ रूप स्वीकार कर लेते हैं। उनके विचार को चित्रित किया जाये तो वह इस प्रकार होगा—

जड़ प्रकृति—जगत् रचना काल में—< चेतन पदार्थ / जड़ पदार्थ >—प्रलय होने पर —जड़ प्रकृति

शंकराचार्य का अद्वैतवाद

अद्वैतमत को मानने वाले यह मानते हैं कि ब्रह्म मूल पदार्थ है और जगत् रचना काल में जड़ पदार्थ और प्राणी जगत् की सृष्टि हो जाती है अथवा होती प्रतीत होती है तथा प्रलय काल में पुनः ब्रह्म में लीन हो जाती प्रतीत होती है। इनके विचार को भी चित्रवत् वैसे ही प्रकट किया जा सकता है जैसे ऊपर जड़वादियों का किया है। केवल जड़ के स्थान पर ब्रह्म लिख देना

पड़ेगा। यह चित्र इस प्रकार होगा—

ब्रह्म—रचना काल में—< चेतन प्राणी (ग्राभास) / जड़ पदार्थ (ग्राभास) >—प्रलय काल में—ब्रह्म

दोनो में विवाद है मूल पदार्थ पर। जड़वादी इसे जड़ प्रकृति मानते हैं, अद्वैतवादी उसे ब्रह्म का नाम देते हैं। दोनों में प्रत्यक्ष रूप में तथा व्यवहार में अन्तर नहीं है। जड़ प्रकृति और ब्रह्म में अन्तर केवल एक बात का है। जड़वादी मूल जड़ प्रकृति को inert (गति रहित) मानते हैं और ब्रह्मवादी प्रलय काल में जिसे ब्रह्म रात्रि कहा जाता है, ब्रह्म को सोता हुआ मानते हैं। दोनों के मूल पदार्थ प्रलय काल में लगभग समान ही हैं।

अतः दोनों मत एक समान हैं और दोनों के मानव समाज पर प्रभाव भी एक समान ही हुए हैं।

जैसे ब्रह्म और जड़ प्रकृति में नामों का अन्तर है, वैसे ही जड़वादियों (materialists) और ब्रह्मवादियों (अद्वैतवादियों) के मानव समाज पर प्रभाव के रूपों में भी अन्तर है, परन्तु अन्तिम परिणाम एक समान ही होता है और हुआ है।

जड़वादी यह मानते हैं कि प्रकृति के नियम से ही सृष्टि की रचना होती है और उसके नियम से ही विघटन हो जाता है। इसी प्रकार ब्रह्मवादी मानते हैं कि ईश्वरीय नियम (ईक्षण) से सृष्टि की रचना होती दिखायी देती है और उसी नियम से ही प्रलय का स्वरूप दिखायी देता है। बीच में जो कुछ बनता है अथवा बना दिखाई देता है, वह भ्रम (illusion) है। उसका वर्तमान रूप विचार में ही है, वस्तुतः वह है नहीं।

इस वर्तमान अवस्था में एक ब्रह्मवादी का व्यवहार संसार के प्रति उदासीनता (indifference) का होता है। वर्तमान प्रपंच को वह भ्रम और मिथ्या मानता है। ठीक यही व्यवहार एक जड़वादी का संसार के प्रति होता है। इसका व्यवहार भी उदासीनता का ही होता है। एक जड़वादी अपने अतिरिक्त दूसरों के भले-बुरे से उदासीन होता है। वह स्वार्थ सिद्ध करता है, बिना इस बात का विचार किये कि दूसरे को इससे क्या हानि-लाभ होता है?

इनके व्यवहार को इस कहावत से बहुत भली भान्ति प्रकट किया जा सकता है— 'कोई मरे, कोई जिये, सुथरा घोल प्याला पिये।' संसार के प्रति दोनों के व्यवहार में अन्तर नहीं पड़ता। संसार के साथ कुछ भी हो, अपने साथ आनन्द रहना चाहिये।

जड़वादी और ब्रह्मवादी, संसार रसातल को जाये तो भी, अपने को उससे तटस्थ मानता है। जितना वह तटस्थ होता है, उतना ही वह अपने

सिद्धान्तानुसार अपने को मूल पदार्थ (जड़ प्रकृति अथवा ब्रह्म) के समीप पहुंचा हुआ मानता है।

यदि ऐतिहासिक उदाहरण लें तो बात सर्वथा स्पष्ट हो जायेगी। भारत के इतिहास में स्वामी शंकराचार्य हुए हैं। स्वामी शंकराचार्य ब्रह्मवादी, (अद्वैतवादी) होने के साथ साथ एक बहुत बड़े सुधारक और समाज में ऐक्य निर्माण करने वाले हुए हैं। एक श्री एन० आर० भट्ट का लेख आकाशवाणी पत्रिका के २२ जून के अंक में छपा है और श्री भट्ट जी ने श्री स्वामी शंकराचार्य को हिन्दु समाज का एक महान समन्वयकर्त्ता (integerator) लिखा है। आप अपने लेख में लिखते हैं — Certainly it was a work af integration urgently needed. It was Shri Shankara who did this important task in a wonderful way.

अर्थात् ... निश्चय यह ऐक्यता का कार्य था, जिसकी तुरन्त आवश्यकता थी। यह श्री शंकर थे, जिन्होंने यह अत्यावश्यक कार्य बहुत ही विचित्र ढंग से किया।

स्वामी जी आज से तेरह सौ वर्ष पहले हुए थे। आज के युग में एक अन्य महान 'integerator' (समन्वयकर्त्ता) हुए हैं। यह हैं श्री जवाहरलाल नेहरू। यह पक्के नास्तिक (जड़वादी) थे। इन्होंने भी भारत में हिन्दु, मुसलमान, पारसी, सिक्ख, ईसाइयों को परस्पर लड़ते देखा। और इन्होंने भी वही कार्य किया जो ब्रह्मवादी श्री शंकराचार्य ने किया। यह एक पृथक् बात है कि दोनों असफल हुए। न तो स्वामी शंकराचार्य हिन्दु समाज के मत-मतान्तरों को निःशेष कर सके और न ही श्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू हिन्दु, मुसलमान इत्यादि में समन्वय ला सके।

हमारा विचार है कि दोनों के प्रयत्न एक ही स्रोत से उत्पन्न हुए थे और एक ही प्रभाव उत्पन्न करने वाले हुए हैं। समन्वय के स्थान पर विग्रह ही हुआ था और हुआ है।

दोनों में समान दोष था। वह दोष था दोनों की जीवन-मीमांसा में। वह जीवन मीमांसा थी कोई जिये, कोई मरे, सुथरा घोल प्याला पिये।

जड़वादी अर्थात् एक 'materialist' और ब्रह्मवादी (अद्वैतवादी) कैसे एक ही कार्य को सम्पन्न करने वाले हो गये और फिर दोनों ही उस कार्य को करने में क्यों असफल हुए? यह एक गम्भीर विचार का विषय है। हमारा यह मत है कि इन दोनों में भूल एक ही थी। वह यह थी कि आदि और अन्त पूर्ण संसार का, एतदर्थ मनुष्य का, एक ही पदार्थ को मानना। यह मूल पदार्थ

ब्रह्म है अथवा जड़ प्रकृति है, कुछ विशेष विचार की बात नहीं। मुख्य बात है अन्त और आदि सबका एक ही होना। अतः रचना काल में भी चेतना को मिथ्या मान मनुष्यों के सुख-दुख को भ्रम समझ अपने सुख अथवा आनन्द की चिन्ता करना। दोनों विचारों में एक समान भाव निहित हैं।

यदि अद्वैतवादी अपने आस-पास शान्ति, समन्वय और मैत्री चाहता है तो इसलिये कि उसके मोक्ष (परमानन्द) में विघ्न न पड़े और यदि कोई जड़वादी प्रधान मन्त्री प्रजा में समन्वय चाहता है तो इस कारण कि उसकी सत्ता बनी रहे और वह अपने जीवन काल में, प्रधान मन्त्री को प्राप्य सुख-सुविधायें एवं मान प्रतिष्ठा का भोग करता रहे। वैसे दोनों विचार के महानुभाव दूसरों के हित के प्रति उदासीन रहते हैं।

हमारी इस विवेचना का सबसे बड़ा प्रमाण है एक वेदान्ती, ब्रह्मचारी प्रभुदत्त का श्री जवाहरलाल नेहरू को प्रच्छन्न ईश्वरभक्त की उपाधि प्रदान करना। उन्होंने यह बात किसी स्वार्थवश नहीं कही थी। ऐसा हमारा मत है। यह केवल इसलिये कही गयी थी कि श्री जवाहरलाल और श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी दोनों एक ही मत के अनुयायी थे। दोनों यह मानते हैं कि ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः। बात केवल यह है कि मूल ब्रह्म तथा मूल जड़ प्रकृति पर्यायवाचक हैं। किंचित् मात्र ही गुणों में अन्तर है। वे गुण प्रलय काल में हैं अथवा नहीं? किसी को क्या?

जब तक अद्वैतवाद चलता रहेगा, चाहे वह ब्रह्मवाद के नाम पर हो, चाहे वह जड़वाद के नाम पर, न तो संसार में सुख और शान्ति हो सकती है और न ही मानव कल्याण। यदि शास्त्रीय शब्दों का प्रयोग किया जाये तो न श्रेय प्राप्त होगा और न प्रेय।

यह वर्तमान लेख का विषय नहीं कि हम भारत और भारत के बाहर दुःख, कष्ट और क्लेश का विस्तार से वृत्तान्त लिखें। यहां हम यह बताना चाहते हैं कि अद्वैतवाद के स्थान एक अन्य मत भी है और वह है त्रैतवाद। यह उक्त दोनों अद्वैतवादों से भिन्न है।

त्रैतवाद में जगत् के मूल में तीन पदार्थों को स्वीकार किया गया है। उसमें परमात्मा, जीव और जड़ प्रकृति तीन मूल तत्त्वों को मान कर सृष्टि की और सृष्टि में व्यवहार (कर्म) की कल्पना की गई है। यह माना गया है कि परमात्मा एक सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वकर्त्ता और सर्वान्तर्यामी सत्ता है। प्रकृति के मूल रूप को 'प्रधान' माना है। यह जड़ है। स्वयमेव इसमें न तो गति उत्पन्न होती है और न ही किसी प्रकार का परिवर्तन। इसमें गीत और परिवर्तन परमात्मा की करनी से उत्पन्न होता है। समय आने

पर परमात्मा प्रकृति से जगत् की रचना करता है और उसकी समाप्ति का समय आने पर वह इसका प्रलय कर देता है। इन दोनों के अतिरिक्त एक जीवात्मा नाम की सत्ता है, जो इस जगत् रचना में भोग कर्त्ता है और इस जगत् रचना में अपनी अवस्था को सुधारने का यत्न करती है।

इस मत में दो बातें उक्त दोनों अद्वैतवादों से विलक्षण हैं। एक, अनेक जीवात्माओं का होना, उनका इस जगत् में कर्म करना और कर्म का उत्तरदायी होना। परमात्मा नियन्ता और न्यायकर्त्ता है, वह स्वयं कर्म का करने वाला नहीं। जड़ पदार्थ भोग का पदार्थ है। उसका भोग पुण्य और पाप नहीं। भोग का प्रयोजन ही पुण्य और पाप का सूचक है। अतः कर्म की विवेचना की जाती है। इसमें ही धर्म, अधर्म और अकर्म की विवेचना उत्पन्न होती है।

यदि जीवात्मा जड़ है अथवा ब्रह्म है और उसका अपना अस्तित्व ही नहीं तो वह धर्म करता है अथवा अधर्म करता है, निष्प्रयोजन विवाद बन जाता है। कर्म में रुचि लेना भी अपने मूल पदार्थ से पृथक होना है। जड़वादी भी यही मानते हैं; परन्तु तनिक भिन्न विचार से। वे यह मानते हैं कि मनुष्य में चेतना अस्थाई है। इसका आदि और अन्त जड़त्व है। अतः कर्म में भेद-भाव किसी धर्म-अधर्म के आधार पर नहीं होता। वह कर्त्ता के अधिकाधिक सुख प्राप्ति के हेतु होता है। यह विचार बीज है, सब तानाशाहों का। सब धनी-मानी नास्तिकों का।

नास्तिकों और ब्रह्मवादियों के अपने प्रति व्यवहार में तो अन्तर प्रतीत होगा, परन्तु दूसरों के प्रति व्यवहार में समानता होगी। जड़वादी दूसरों के प्रति उदासीन रहता है। उसे उनके सुख–दुःख से किसी प्रकार का सरोकार नहीं रहता। दोनों में स्वार्थ भी समान रहता है। केवल स्वार्थ के स्वरूप में भेद रहता है। एक (जड़वादी) मरने के उपरान्त असंवेदनात्मक जड़ होना मानता है। इस कारण वह इस संसार में ही सब सुख भोगना चाहता है। ब्रह्मवादी यह मानता है कि मरने के उपरान्त वह ब्रह्म में लीन हो परमानन्द को पा सकता है और उस पद को पाने के लिए उसे संसार से विरक्त अर्थात् तटस्थ रहना चाहिये। दूसरे मरें अथवा जियें, जब तक उसके परमानन्द की प्राप्ति में बाधा नहीं पड़ती, तब तक उसको चिन्ता नहीं होती। अपने विषय में इस किंचित् मात्र भिन्न विचार ढंग के अतिरिक्त संसार के विषयों में दोनों का व्यवहार उदासीनता का होता है।

केवल स्वार्थ ही बिन्दु है, जिसके चारों ओर दोनों का जीवन घूमता है। यह ठीक है कि स्वार्थ भिन्न भिन्न हैं।

परन्तु जीवात्मा की स्वतन्त्र सत्ता मानने वाले के लिए यह बात मान्य

नहीं होती। जब उसे यह ज्ञात होता है कि प्रत्येक कार्य का फल उसे मिलने वाला है तो उसके लिये कर्म के तीन रूप हो जाते हैं—धर्म, अधर्म और अकर्म।

दोनों मतों में एक अन्य अन्तर भी है। दोनों प्रकार के अद्वैतवादियों में मनुष्य की सत्ता एक अस्थाई स्थिति है। इसमें मूल सब मनुष्यों का समान ही है और अन्त भी समान होने वाला है, परन्तु त्रैतवादी मानते हैं कि मनुष्य में जड़ शरीर के अतिरिक्त एक अनादि, अक्षर आत्म-तत्व है और वह कर्म फल का भोग करता हुआ जन्म-जन्मान्तर तक चलता है। जो करता है, उसका फल अवश्य भोगेगा। वह अपने बल, छल अथवा धन से किये के फल को कुछ काल के लिये भले ही टाल दे, परन्तु उससे बच नहीं सकता।

यह त्रैतवादियों का सिद्धान्त है कि आत्मा कर्म में बंधता है और कर्म फल के लिए जन्म-जन्मान्तर में जाता है।

ये दो मुख्य विलक्षणतायें हैं अद्वैतवादियों में और त्रैतवादियों में। ऊपर से देखने पर तो ये मूल सिद्धान्त व्यर्थ के विवाद प्रतीत होते हैं, परन्तु गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर पता चलेगा कि अद्वैतवाद धीरे-धीरे मनुष्य को स्वार्थ के बिन्दु पर ला खड़ा करता है और त्रैतवाद धीरे-धीरे मनुष्य को धर्म-अधर्म पर विचार करने पर विवश करता है।

अद्वैतवाद का एक और परिणाम होता है। संसार पर जब आततायी राज्य जनता का पीड़न करते हैं तो ब्रह्मवादी अलिप्त मुख देखता रहता है। जड़वादी भी अपने सुख-भोग की चिन्ता करता रहता है और दूसरे के मरने-जीने की उसको कुछ चिन्ता नहीं होती। यदि उसका अपना स्वार्थ उत्पीड़न करने वाले का सहायक होने से सिद्ध होता है तो वह सहायक भी हो जाता है और यदि उसका स्वार्थ उत्पीड़क का विरोध करने में होता है तो वह विरोध करने लगता है। दूसरे के सुख एवं दुःख गौण होते हैं।

त्रैतवाद में प्रत्येक व्यक्ति का आत्मा यह अनुभव करता है कि धर्म क्या है और अधर्म क्या है? यह नहीं कि उसका अपना सुख अथवा आनन्द किसमें है?

कभी-कभी ब्रह्मवादी और जड़वादी दोनों लोक-हित की बात करते हैं। दोनों लोक-कल्याण की योजना बनाते हैं, परन्तु इन योजनाओं और बातों में धुरी मोक्ष प्राप्ति की होती है अथवा स्व सुख साधन की। जिस लोक-कल्याण में उनका अपना मोक्ष और अपना सुख-साधन होगा, वही लोक कल्याण वे करेंगे।

इसके अनेक उदाहरण संसार के इतिहास में मिलते हैं। लेनिन और स्टालिन लाखों की हत्या करते हुए लोक-कल्याण का नारा लगाते रहे। हिटलर

लोक-कल्याण की डुग्गी पीटता हुआ करोड़ों यहूदियों की हत्या करता रहा। ब्रह्मवादियों के व्यवहार का भी यही प्रभाव हुआ है। यद्यपि उनके कहने का ढंग विलक्षण रहा। यही बात थी जब कि मुसलमान घोर अत्याचार कर रहे थे, कबीर कह रहा था, 'कबीरा तेरी झोंपड़ी गल कटयों के पास, जो करनगे सो भरनगे तू क्यों भयो उदास।'

एक सूफ़ी ने भी कहा है, 'तुझको परायी क्या पड़ी अपनी निबेड़ तू।' यह व्यवहार एक त्रैतवादी का नहीं हो सकता। जो आत्म-तत्व को स्वीकार करता है और जीवात्मा को अनादि, अक्षर, कर्मफल का भोक्ता मानता है, वह तो यही कहेगा—

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥

आत्मायें हैं। वे कर्म करती हैं और उनका फल उत्पन्न होता है। इस बात को मानने वालों का सदा यह यत्न रहेगा कि धर्मयुक्त व्यवहार ही रखें, जिससे इस संसार में सुख प्राप्त कर सकें और भावी जन्म में भी उन्नत स्थिति में पहुंच सकें।

यह विवेचना उन लोगों को लक्ष्य में रख कर नहीं लिखी गयी जो ब्रह्मवादी बन कर भोग प्रवृत्ति रखते हैं अथवा जड़वादी बन कर किन्हीं अज्ञात संस्कारों के कारण, लोक-कल्याण करते हैं। न ही यह उन त्रैतवादितों का विवेचन है जो मुख से आत्मतत्त्व और कर्म फल को मानते हैं, परन्तु हृदय से इन बातों पर अविश्वास करते हैं। ये सिद्धान्तहीन, निरुद्देश्य, दिशाविहीन व्यक्ति विवश हुए फिरते हैं। आत्मा और कर्म फल को स्वीकार करने वाले ही कल्याणकारी जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

(पृष्ठ ३४ का शेष)

सहायक तथा कथित समाजवादी और साम्यवादी हो रहे हैं। क्या हमारे पास इनका सफाया करने का कोई अस्त्र नहीं? अवश्य है। हम इसके प्रयोग की कला नहीं जानते हैं। यदि यही स्थिति बनी रही तो दुनिया यह देखेगी कि आज जो लोग ४६ करोड़ हैं वे एक दिन ६ करोड़ हो जायेंगे और जो ६ करोड़ हैं, वे कभी ४६ करोड़ की संख्या में होंगे। और तब हिन्दुत्त्व के उपासक तथा संस्कृति के प्रच्छन्न पुजारी यह पाएँगे कि इस राम कृष्ण की धरती पर न कहीं हिन्दू शेष हैं, न हिन्दुत्व।

प्रतिक्रिया का प्रत्यावर्तन

श्री उमाकान्त उपाध्याय,
बी. ए. (ऑनर्स), जी. डी. सी. एस.

मानव जाति के इतिहास में उसकी स्वतंत्रता न केवल एक सर्वप्रिय वस्तु है; अपितु यह एक महान् कल्पना तथा महान् आवश्यकता है । जहाँ व्यक्ति स्वातंत्र्य होता है, वहाँ ही व्यक्ति का सर्वतोमुखी विकास भी होता है । यही कारण है कि मानव ने स्वतंत्रता को अपना जन्मसिद्ध अधिकार घोषित किया। इसे न केवल पवित्र ही माना गया बल्कि इसकी रक्षा की भी व्यवस्था की गई । व्यक्ति सावतंत्र्य के सबसे सशक्त प्रहरी जाग्रत प्रजातंत्र की स्थापना की गई । प्रजातंत्र इतना महान् लक्ष्य है कि हमारी वैदिक संस्कृति ने भी इसकी ओर हमें इंगित, उन्मुख और उत्साहित किया । किन्तु यह पुनीत लोकतत्र तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि समाज में राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक समानता स्थापित न हो जाय ।

जब हिन्दू जीवन पूर्णतया धर्माधीन था तो ये तीनों प्रकार की व्यवस्थाएँ स्वयम्भू और स्वयम्-आवर्तित थीं । जीवन की सभी क्रियाएँ उसी कसौटी पर कसी जाती थीं । धर्मभावना मनुष्य में समत्त्व दृष्टि प्रदान करती थी। इसलिए समाज में शोषण, अन्याय, असमानता और कदाचार न थे । परन्तु आज ये सब विद्यमान हैं । धर्म और संस्कृति का लोप हो गया है । समाज की दृष्टि भौतिकता एवं भोग पर केन्द्रित है । वह ज्ञान, वैराग्य और अध्यात्म की बात भोग और आनन्द के सामने सुनना नहीं चाहता । तो ऐसी स्थिति में 'विषयस्य विपमौषधम्' के अतिरिक्त दूसरा चारा ही क्या है ? किन्तु विष का प्रयोग चिकित्सक द्वारा होना चाहिये । नीम हकीम द्वारा नहीं । साथ ही विष का प्रयोग जीवन रक्षा हेतु होना चाहिए, जीवन खोने के हेतु नहीं ।

आज के लोकतंत्र में आर्थिक आयोज़न ही सब कुछ समझा जाता है । जिन दलों के पास आर्थिक कार्यक्रम नहीं होते या होते भी हैं तो लिजलिजा होते हैं, उन्हें कोई भी अपटुडेट व्यक्ति पसन्द नहीं करता । मत देना तो अलग की बात है । आर्थिक समस्याओं का समाधान करने के लिए मुख्य रूप से

विश्व के सामने दो ही व्यवस्थाएँ हैं। एक पूँजीवादी, दूसरी समाजवादी। पूँजीवादी व्यवस्था व्यक्ति स्वातंत्र्य की उपज है। जब कि समाजवादी व्यवस्था व्यक्ति नियन्त्रण की देन है। हिन्दू संस्कृति व्यक्ति स्वातंत्र्य की समर्थक है। इसलिए हिन्दू संस्कृति और हिन्दुत्व का आदर्श लेकर चलने वाले को समाजवाद से दूर ही रहना चाहिये—ऐसा कहा जाता है।

प्रकारान्तर से देखा जाय तो समाजवाद और पूँजीवाद में कोई अन्तर नहीं है। क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजी पर चन्द व्यक्तियों का ही अधिकार हो जाता है और शेष जनता दरिद्रता के जुए में पिसती रहती है। समाजवादी व्यवस्था में पूँजी पर समाज के नेताओं का अधिकार हो जाता है। और शेष जनता उन्हीं अभावों अन्यायों को सहन और वहन करती रहती है। मतलब यह कि धन का केन्द्रीकरण हर हालत में होता है। दोनों ही व्यवस्थाओं में धन का स्वामित्व सिमट कर कुछ लोगों के हाथों में चला जाता है। ऐसी अवस्था में हिन्दू संस्कृति के अनुसार कौन सी व्यवस्था स्थापित की जाय ताकि दोनों के दोषों से समाज तथा व्यक्ति को बचाया जा सके?

इसका विचार करने के लिए अब हम थोड़ा यह देखें कि भारतीय जीवन-दर्शन में व्यक्ति और समाज की क्या स्थिति है। मेरा अध्ययन यह बताता है कि व्यक्ति को बीज और समाज को वृक्षवत् माना गया है—भारतीय संस्कृति में। परन्तु दोनों में समन्वय रहता आया है। कभी यह नहीं कहा गया कि व्यक्ति बड़ा या समाज बड़ा। किन्तु व्यक्ति-साधना और स्वतंत्रता को सदा ही प्रमुखता प्राप्त होती थी। इस प्रमुखता का मात्र उद्देश्य व्यक्ति के आत्मिक-आध्यात्मिक गुणों का विकास ही होता था। इन विभूतियों से सम्पन्न व्यक्ति का अन्तर इतना आलोकमय और इतना पावन होता था कि उसका 'अहं' स्वयं ही 'वयम्' बन जाता था। अर्थात् व्यक्ति का विस्तार हो जाता था और व्यक्ति स्वयं ही समाज का रूप ग्रहण कर लेता था। वह व्यक्ति-सुख को समाज-सुख पर अर्पित मानता था। वह अन्तःकरण की प्रेरणा से प्रेरित होता था। यह प्रेरणा धर्म प्रदत्त थी।

"एकोऽस्मि बहुस्यामः" के अनुसार समाज के विभिन्न घटकों में उसे अपना ही प्रतिरूप दिखाई देता था। यही दृष्टि सही दृष्टि थी। इसी दृष्टि से देखने पर "वयम्" और 'यूयम्' का भेद समाप्त होकर व्यक्ति में "सर्वभूतहितेरता" की प्रेरणा आती थी। इसलिए वह कामना हीन होता था। और यदि कभी कोई कामना भी होती थी तो यही कि—

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःख भाग भवेत् ॥"

"सर्वे" अर्थात् समाज सुखी और स्वस्थ रहे। यह कामना की गई। पर "कश्चित" अर्थात् व्यक्ति को भी न भुलाया जा सका। क्यों कि "कश्चित" ही तो 'सर्व' की आधारभित्ति है। सुखी और स्वस्थ व्यक्ति ही तो समाज का 'न्युक्लियस' है। परिणाम स्वरूप उसे धर्माधीन स्वतंत्रता और धर्माधीन सम्पति का अधिकार था और आगे भी मिलना चाहिए।

परन्तु आज तो वह व्यक्ति रहा नहीं। आज तो व्यक्ति आसुरी सम्पदा युक्त है। दैवी सम्पदा का विस्मरण कर चुका है। अतः जब तक वह फिर अपनी दैवी सम्पदा का स्मरण कर देवत्व प्राप्त नहीं कर लेता तब तक सीमित सम्पत्ति तथा सीमित स्वतंत्रता ही उसे दी जा सकती है। इसलिए वह अबाध और अमर्यादित अधिकारों का उपभोग आज नहीं कर सकता। आंशिक स्वाधीनता और आंशिक नियंत्रण ही वर्तमान वातावरण में उसके लिए उपयुक्त है। ये बात आज से ही नहीं वरन् प्रारम्भ से ही स्व. श्री डा. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के मस्तिष्क में थी। इस सिद्धान्त के अनुरूप जनसंघ ने धन के केन्द्रीकरण को रोकने और उसके दुष्परिणामों में व्यक्ति को बचाने के लिए आर्थिक विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्तों को अपनाया है। भूखों रह कर हम भजन नहीं कर सकते। नंगे, अधमरे लोग हिन्दुत्व की पोशाक नहीं पहन सकेंगे न ही खालिश अध्यात्म को गले उतार सकेंगे। ज्ञान, वैराग्य, अध्यात्म और दर्शन, ये सभी पेट की ज्वाला शान्त रहने पर की बातें हैं —

"जब जेब में पैसे बजते हैं, जब पेट में रोटी होती है।
उस वक्त ये जर्रा हीरा है, उस वक्त ये शबनम मोती हैं॥"

अस्तु रोटी की समस्या सर्व प्रथम है। पर रोटी की व्यवस्था सही ढंग से न अमेरिका में हो रही है, न ही रूस में। न पूँजीवाद समाधान प्रस्तुत कर रहा है, न ही समाजवाद। अतः मानवता इन दोनों ही व्यवस्थाओं में त्रस्त और ध्वस्त है। इस कारण इन दोनों की बुराइयों से बचने के लिए ही विश्व के बहुत से अर्थशास्त्रियों ने मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का सुझाव दिया। जनसंघ ने उसे ही अपनाया है। वह उसी नीति पर चल रहा है। वह प्रत्येक नर को उत्पादन का साधन प्रदान कर उसे नारायण के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहता है। वह दरिद्र नारायण को विभूति नारायण करने की मन्शा लेकर चला है। जब कि कम्युनिज्म विभूति नारायण को दरिद्र नारायण बनाने का इरादा लेकर चलता है।

अतएव जब भी गरीबों की बात आये, साधनहीनों की बात आए, गरीबी दूर करने की बात आए और उसके लिए जनसंघ कोई समाधान प्रस्तुत करे, तो उसे तुरंत साम्यवादी कार्यक्रम मान लेना यथार्थ दृष्टि का परिचायक न

होगा। श्रमहारा की वकालत करने का, शोषण और अन्याय तथा सामाजिक वैषम्य को समाप्त करने का एक मात्र साम्यवादियों ने ही ठेका नहीं ले रखा है। यदि जनसंघ की अन्तर्वृत्ति को बिना समझे ही कम्युनिस्ट खुश हो रहे हैं तो मूर्खता कर रहे हैं। यदि जनसंघ कम्युनिस्टों के साथ मन्त्रिमण्डल में नहीं आता तो बिहार में बटाईदारी बिल पास हो गया होता। उर्दू राज्य भाषा बनायी गई होती। इस तरह देर से आने वाला वर्ग-संघर्ष कुछ सबेर ही आ धड़कता और कम से कम बिहार में एक और पाकिस्तान की मजबूत नींव पड़ चुकी होती। यह किसे मालूम नहीं कि भाषा के आधार पर प्रान्तों के निर्माण का सिद्धान्त सम्विधान में स्वीकार किया गया है। और उर्दू वाले लोग उर्दूभाषी बिहार की मांग से कब बाज आते। हिन्दुस्तान की छाती पर 'मल्लपुरम्' के रूप में तीसरे पाकिस्तान की कील गाड़ दी गई तो किसने क्या बिगाड़ लिया ! इसलिए संयुक्त मोर्चे में साम्यवादियों के साथ जनसंघ का शामिल होना एक बुद्धिमत्ता की राजनीति थी।

बैंकों के राष्ट्रीयकरण यदि हम शास्त्रों के सन्दर्भ में देखें तो उसका विरोध होना चाहिए था। "मा गृध्रः कस्यस्विद्धनम" किसी की वैध सम्पत्ति को बलपूर्वक छीन लेने का नैतिक अधिकार न समाज को है न व्यक्ति को। किन्तु उस समाज में जहाँ व्यक्ति अपने को सम्पत्ति का एक मात्र अर्जक, सर्जक स्वामी और उपभोक्ता मानता है, धन को ईश्वर का वरदान नहीं अपने पौरुष का परिणाम मानता है, अपने को सम्पत्ति और समाज का संरक्षक और सेवक न मान कर स्वामी समझता है, वह निश्चय ही असुर है। और असुर के साथ उक्त शास्त्रीय उक्ति का पालन नहीं किया जा सकता।

इसी तथ्य को सामने देखकर नीति और सिद्धान्त में सार्वजनिक और व्यक्तिगत क्षेत्रों में सम्पत्ति एवं व्यवसाय का अनुपात ४९:५१ स्वीकृत किया गया है। इस स्वीकृत नीति के अनुसार यदि राष्ट्रीयकरण का विरोध न किया गया तो लाचारी थी। पर विरोध की केवल खानापूर्ति के लिए जो उचित अवसर का बहाना बनाया गया वह मात्र कुतर्क ही था। तर्क तो यह था कि लोक तंत्र की रक्षा हमारा पावन कर्त्तव्य है। राष्ट्रीयकरण से उस लोकतंत्र का गला घोंटा गया है, जिसने स्वयं इन्दिरा जी को शासन की कुर्सी पर बैठाया है। जब तक देश में लोकतंत्र विद्यमान है और जब तक इसमें देश की जनता का राजनैतिक दलों का और देश की सरकार का प्रजातंत्र में विश्वास एवं आस्था वर्तमान है; तब तक जिन बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया, उनके साझेदारों और खातेदारों की इच्छा बिना जाने, राष्ट्रीयकरण करने का कोई भी नैतिक अथवा राजनैतिक अधिकार सरकार को न था। किसी की इच्छा के विरुद्ध उसकी किसी

वस्तु के विषय में निर्णय देना और अपहरण करना न केवल अवैधानिक है, वरन् अधार्मिक और असांस्कृतिक भी है। जनसंघ को यह दृष्टिकोण उपस्थित करना चाहिए था। यदि सरकार को और समाजवादियों को राष्ट्रीयकरण के पीछे जनता समर्थन का इतना ही वहम है तो बैंकों के हिस्सोदारों और खातेदारों की भी तो रायशुमारी करायी जा सकती है।

लोक तंत्र एक महान वस्तु है। इसकी रक्षा केवल दृढ़ संकल्प और उदार चरित चेतना सम्पन्न राष्ट्र ही कर सकता है। यदि व्यक्ति स्वातंत्र्य तथा वर्ग सहयोग हमें प्रिय हैं तो जनतंत्र को जिन्दा और जाग्रत रखना ही पड़ेगा। समाजवाद और साम्यवाद जनतंत्र एवं राष्ट्रीयता की रक्षा में विश्वास नहीं रखते। और भी स्पष्ट कहें तो व्यक्ति की आजादी और वर्ग सहयोग में उनकी आस्था नहीं होती। इन मान्यताओं को बल एवं पोषण केवल मात्र हिन्दुत्त्व से ही मिल सकता है। किन्तु लगता है कि भारत का हिन्दूराष्ट्र सुपुप्ति अवस्था में है। हमें जानना होगा हिन्दुत्त्व की चेतना को। निश्चय ही हिन्दू हितों और हिन्दू संस्कृति में कुछ कतरव्योत की जा रही है। और जो इसका विरोध करते हैं, उनके विरुद्ध सरकारी और दलीय प्रचारतंत्र तेज कर दिया जाता है, ताकि विरोधी का चित्र धूमिल हो जाय और अहिन्दू तत्त्व निखिर पाएँ।

यदि यह कहा जा सकता है कि २२ वर्षों के शासन में देश के अन्दर कांग्रेस ने देश का कुछ भी भला नहीं किया तो जनसंघ से भी यह कहा जा सकता है कि अपने उन्नीस वर्षों के जीवन में उसने भी हिन्दुओं का कोई भला नहीं किया। न हिन्दुओं को जाग्रत कर सका, न ही उन्हें संगठित कर सका, न ही सम्पूर्ण हिन्दू समाज का विश्वास-भाजन बन सका। कछुए के खोल से अपने रूप को उसे बाहर निकालना चाहिए। बिना अपने हिन्दू रूप को विराट बनाए न वह घर का होगा, न घाट का। 'न खुदा ही मिला न विसाले सनम'—की उक्ति उस पर घटने वाली है।

यदि हिन्दुत्त्व जाग्रत होता तो अल-अक्स के बदले सोमनाथ मटियामेट करने का षडयंत्र न हुआ होता। यदि हिन्दू संस्कार देश की चेतना में दहाड़ मारता होता तो हमें चेतावनी देने की किसी में जुर्रत न होती। हमें कुचल दिये जाने की धमकियाँ न दी जातीं। और सबसे अधिक मार्के की बात यह कि हिन्दुत्त्व का आह्वान किया गया होता तो हिन्दूराष्ट्र जीवित होता और सरकार हिन्दू सरकार होती, जनसंघ की सरकार होती।

पर कभी कभी लगता है कि हिन्दुत्त्व अब दम तोड़ रहा है। इसके

(शेष पृष्ठ २६ पर)

समाचार समीक्षा

विचित्र अतिथि :

सीमान्त गांधी के नाम से प्रख्यात खान अब्दुल गफ्फार खां १ अक्टूबर को नई दिल्ली पधारे। यद्यपि उनको आमन्त्रित करने वाली संस्था का नाम सरहदी गांधी सालगिरह समिति है, जिसके प्रधान जयप्रकाशनारायण हैं, तदपि इस तथ्य को भी नहीं झुठलाया जा सकता है कि वे एक प्रकार से भारत शासन के अतिथि हैं।

जिन लोगों को गांधी की कार्य-प्रणाली में अगाध श्रद्धा है, वे खान अब्दुल-गफ्फार खां को भी उसी दृष्टि से देखते हैं। इसी लिए उनका नाम भी उन्होंने 'सीमान्त गांधी' रख दिया है। गांधी के जीवन काल में ही उनको यह संज्ञा प्राप्त हो गई थी। पाकिस्तान के भीतर ही पृथक् पख्तूनिस्तान का स्वप्न संजोये खान साहब भारत विभाजन के समय पाकिस्तान चले गए थे। भारत १४ अगस्त १९४७ को खण्डित घोषित किया गया था। खान साहब ३० जुलाई को ही यहां से सम्भावित पाकिस्तान के लिये प्रस्थान कर गये थे। सुना है चलते समय गांधीजी ने खान साहब को सन्देश दिया था—"पाकिस्तान को पाक बनाना।"

भारत में खान साहब गांधी जन्म शताब्दी समारोहों में भाग लेने के लिये आये हैं। यहां उनको अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के लिए नेहरू पुरस्कार भी प्रदान किया जावेगा। यह "अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना" क्या चीज है और उसके लिए खान साहब ने क्या प्रयत्न किये तथा उन प्रयत्नों का क्या परिणाम निकला, यह बात इस मूर्खों के देश में और धूर्तों के शासन में न कोई जानता है और न ही किसी ने इस विषय में जानने की जिज्ञासा ही प्रकट की है। किन्तु समाचार पत्रों द्वारा इतना ज्ञान तो सभी को हो गया होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के इस मसीहा को अफगानिस्तान से भारत की अपनी यात्रा के दौरान पाकिस्तान के ऊपर से उड़ान नहीं करने दी गई और उसे बैरुत के लम्बे मार्ग से यहां आना पड़ा।

खान साहब ने १५ वर्ष तक पाकिस्तान की विभिन्न जेलों में यातनायें सही हैं। पाकिस्तान में रहते हुए वे अपना मुख नहीं खोल सके। मुक्त होने

पर अफगानिस्तान गये तो वहां शान्ति की साँस ली। किन्तु दिल का भार हल्का नहीं हुआ। वह अवसर उनको भारत में आकर ही सुलभ हुआ है। भारत की धरती पर पग धरते ही बम्बई के शान्ताक्रूज हवाई अड्डे पर जब किसी संवाददाता ने भारत के लिये कोई सन्देश देने को कहा तो उनका प्रथम वाक्य था—"आप ने तो गांधीजी को भुला दिया है, मैं सन्देश देने वाला कौन होता हूं।"

नई दिल्ली के पालम हवाई अड्डे पर अपने स्वागत के उत्तर में उपरिलिखित वाक्य को उन्होंने इन शब्दों में दोहराया—"आप लोगों को महात्मा गाँधी ने कितना कहा, जब आप लोग उसे भूल गये तब मैं आप लोगों को क्या कहूं और क्या होगा।" अपने निवास स्थान पर पहुंचने पर उनके मुखारविन्द से निकला—"आप के देश में परस्पर घृणा का वातावरण है। जिस राष्ट्र के लोगों में परस्पर घृणा हो वह उन्नति नहीं कर सकता।"

खान साहब की आगमन तिथि का कोई भी समाचार पत्र उठा लीजिये और उसके स्तम्भ पढ़ डालिये, कहीं भी भारत द्वारा किये गये उनके स्वागत एवं सम्मान के प्रति कृतज्ञता का एक शब्द भी खान साहब के मुख से निकला नहीं मिलेगा। कांग्रेसियों ने भारत के जन-मानस में आत्म सम्मान जैसी किसी वस्तु का चिन्ह भी अवशिष्ट नहीं रहने दिया। यही कारण है कि जो कोई भारत वासियों को जितने जोर से कोसता है उसकी उतनी ही अधिक प्रतिष्ठा भारतवासी करते हैं। विशेषतया हिन्दू। गांधी आजीवन हिन्दुओं को दुतकारता रहा और हिन्दू उसे विश्ववन्द्य के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे।

ठीक यही स्थिति खान साहब के विषय में है। २ अक्टूबर को गांधी को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए नई दिल्ली के रामलीला मैदान में एक सर्वदलीय विशाल-जन-सभा का आयोजन किया गया। छोटे-मोटे, दांये-बाँये लगभग सभी दलों के नेता उसमें आमन्त्रित थे। खान साहब को भी उसमें बोलने के लिए आमन्त्रित किया गया था। लोगों को बड़ी आशायें थीं कि खान साहब के मुख से इस अवसर पर तो मन्त्र ही मुखरित होंगे। अपने स्वागत-सत्कार की वे प्रशंसा करेंगे, भारत की प्राचीन परिपाटी की दुहाई देंगे और देंगे भारत की सुख समृद्धि के लिये शुभ कामना का सन्देश। किन्तु 'ढाक के वही तीन पात।'

खान साहब का उस अवसर पर कहना था—भारतवासी बातें बहुत करते हैं, काम कम। देशवासियों में परस्पर घृणा की भावना है। मैं आप से कुछ मांगने नहीं आया। मैं आप को देने के लिए आया हूं। मैं आप को गांधी के

सबक की याद दिलाने आया हूं। हिन्दुस्तान की हालत पर मुझे हैरानी और परेशानी है। मैंने सोचा कि मैं हिन्दुस्तान में जा कर ही प्रोटेस्ट करूंगा।

रामलीला मैदान में समवेत मूर्ख मण्डली मन्त्र-मुग्ध सी यह फटकार सुनती रही और समय-कुसमय पर अपनी मूर्खता के प्रदर्शन स्वरूप हर्षध्वनि एवं तालियाँ बजाती रही।

इतना गुबार निकाल देने से ही खान साहब को सन्तोष नहीं हुआ। भारत का अपमान करने में किसी प्रकार की कोर-कसर न छोड़ते हुए सभा-स्थल पर ही खान साहब ने अपने प्रोटेस्ट स्वरूप तीन दिन का उपवास करने की घोषणा कर दी। समाचारपत्र लिखते हैं कि यह सुन कर सभास्थल पर उपस्थित लोगों में सन्नाटा छा गया। क्या यही प्रतिक्रिया होती है अपमान की ? कितना आत्मगौरव-विहीन हो गया है भारतवासी !

कांग्रेस और कांग्रेसी सरकार को इससे कुछ भय सा प्रतीत हुआ। अत: सभा के तुरंत बाद सरकार की सरगना बेगम इंदिरा फिरोज गांधी और कांग्रेस के सरगना श्री निजलिंगप्पा खान साहब के दरे-दौलत पर तशरीफ ले गये, रोये गिड़गिड़ाये, किन्तु व्यर्थ। पठान अपने निश्चय पर अडिग रहा। गांधी के उत्तराधिकारी को जैसा होना चाहिए था वैसा ही वह बना रहा, तना रहा, अड़ा रहा। देश के धूर्त शासक और मूर्ख निवासी उसकी चाटुकारिता में निमग्न रहे। इतना ही नहीं सर्वोदयी नेता ने इस अपमान के समर्थन में स्वयं भी उपवास करने की घोषणा कर दी और देशवासियों का इसके लिए आह्वान किया। वाह रे मूर्ख देश के जड़-निपट मूर्ख नेता !

हिन्दुओं के प्रति मुस्लिम नेताओं की जो दृष्टि, नीति एवं कार्य प्रणाली रही है खान साहब उससे अछूते नहीं हैं। उनका व्यवहार भी ठीक वैसा ही है जैसा आज तक सभी मुस्लिम नेता हिन्दुओं के साथ करते आये हैं। भारतीय जनसंघ का एक प्रतिनिधि मण्डल खान साहब से मिल कर उनके प्रति अपनी सेवायें अर्पित करने के लिये गया। प्रथम तो हमारी समझ में इसका औचित्य ही नहीं समाया कि भारतीय जनसंघ को इस संकट में पड़ने की क्या आवश्यकता आन पड़ी थी ! सम्भवतया लोकाचार प्रवृत्ति ने जोर मारा होगा अथवा धर्मनिरपेक्षता आड़े आई हो। खैर जो हो, जनसंघी भाई गये, शायद आशायें लेकर ही गये होंगे कि खान साहब उन्हें गले से लगाकर जार-जार आंसू बहायेंगे, भाईचारे का हाथ बढ़ायेंगे। किन्तु पठान का हृदय इतना कोमल नहीं होता। उसने दो टूक उत्तर देते हुए कह दिया, आप लोगों के विषय में मैं जाँच-पड़ताल करके उत्तर दूंगा। उस जांच-पड़ताल का क्या परिणाम निकला,

यह हमें तो अभी तक ज्ञात नहीं हो पाया। जनसंघ खान साहब के टैस्ट में उत्तीर्ण हुआ कि नहीं यह गुप्त रहस्य है। खान साहब पी० एस० पी० को जानते हैं, एस० पी० को जानते हैं, सी० पी० आई० को जानते हैं, कल की उपज सी० पी० आई० के बाँये धड़े को भी जानते हैं, किन्तु २० वर्ष के तरुण जनसंघ को पहचानने के लिये उनको समय चाहिये। क्यों? क्या इस कारण कि उसे हिन्दुओं की जमात कहा जाता है? काश! जनसंघ इसे सत्य सिद्ध कर दिखाता।

खान साहब अहमदाबाद गये। उन्होंने ध्वस्त मस्जिदों को देखा और त्रस्त मुसलमानों को भी देखा। अपने जाति भाइयों को देखना अपराध नहीं है। उनसे सहानुभूति प्रकट करना भी अपराध नहीं। हम तो इसको गुण ही मानते हैं। किन्तु दोषी और अपराधी के प्रति सहानुभूति और सद्भावना प्रकट करना मानवता नहीं मानी जा सकती। क्या खान साहब ने अहमदाबाद जाकर उस पुलिस अधिकारी को दुतकारा था, जिसने कथा को भंग किया, रामायण की पुस्तक को ठोकर और आरती की थाली को लात मार कर फेंक दिया। क्या खान साहब ने उन कठमुल्लाओं को अपने समीप बुलाकर लताड़ा जिन्होंने जगन्नाथ मन्दिर को भ्रष्ट ही नहीं ध्वस्त भी किया और मन्दिर के साधुओं की निरीह गउओं पर प्रहार किया। हमने इस प्रकार का कोई समाचार न सुना और न ही पढ़ा। फिर हम कैसे कहें कि खान साहब के मन में साम्प्रदायिक सद्भावना है। अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना तो दूर की बात है।

हमने सुना है कि खान साहब ने अहमदाबाद के सिन्धी हिन्दुओं को लताड़ा है। वे उनकी स्वाहा सम्पत्ति का जायजा लेने के लिये भी तभी गये जब किसी ने उनको ताना देकर कहा कि हम तो वहां भी लुटते थे और यहां भी लुटे हैं। अहमदाबाद में सिन्धियों की लगभग पन्द्रह दुकानों को स्वाहा किया गया है।

इतना सब कुछ सहने के बाद भी भारत अपने इस विचित्र अतिथि का आतिथ्य एवं स्वागत करेगा। अपने इस परम पुनीत कर्त्तव्य से वह विमुख नहीं हो सकता। धर्मनिरपेक्ष जन आश्वस्त रहें।

भानमती का कुनबा :

भानमती के कुनबे का प्रत्यक्ष प्रमाण यदि किसी को पाना हो तो वह प्रधानमंत्री श्रीमती फिरोजगांधी के मन्त्रि-मण्डल को देखें। नाना-विध और नाना-रूप के मन्त्री उसमें दिखाई देंगे।

दस वर्ष तक आय कर न देने वाले जगजीवन राम की चर्चा पिछले दो महीनों में चहकती रही है। और जगजीवन राम को संरक्षण देने के लिये

किस सहजता से इन्दिरा फिरोज़गांधी ने पत्रकारों के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कह दिया कि वे बेचारे भुलक्कड़ स्वभाव के हैं, भूल गये होंगे। जो व्यक्ति सम्पत्ति-कर समय पर देता हो वह आय-कर देना दस वर्ष तक भूल जाय यह कहां तक तर्क-संगत है, इसे बेगम इंदिरा फिरोजगांधी समझ सकती हैं कोई बुद्धिमान नहीं। वह भुलक्कड़ मन्त्री अभी भी मन्त्रीपद पर प्रतिष्ठित है और जैसी कि स्थिति दिखाई देती है श्रीमती फिरोजगांधी को भले ही मन्त्री-मण्डल छोड़ना पड़ जाय किन्तु उस बेचारे भुलक्कड़ मन्त्री की गद्दी बरकरार रहेगी।

श्रीमती फिरोजगांधी के कुनबे के दूसरे बेजोड़ मन्त्री हैं मियां फखरुद्दीन अली अहमद। इनकी लीगी गतिविधियों का पर्दाफाश पिछले राज्य सभा में संसोपा के राजनारायण ने किया था। और अब रबात काण्ड में वे स्वयं बेनकाब हो गये हैं। रबात से लौटते ही उनको कहना पड़ गया कि हमें अपनी विदेश नीति पर पुनः विचार करना आवश्यक है। विदेश नीति से उनका अभिप्राय मुस्लिम देशों के प्रति अपनी नीति से है। और कदाचित् उनका अभिप्राय भी यही होगा कि उन देशों के प्रति हमें अपने खुशामदीपन को और बढ़ावा देना चाहिये।

इस प्रसंग में यह बात स्मरणीय है कि रबात सम्मेलन में भाग लेने के लिये निमन्त्रण प्राप्त करने का आग्रह इन्हीं मियां जी का था। क्योंकि उन दिनों प्रधानमन्त्री श्रीमती फिरोज़गांधी राजधानी से बाहर थीं। प्रधानमन्त्री का उन दिनों पूर्वांचल प्रदेश में काले झण्डों से भव्यस्वागत हो रहा था। इधर राजधानी में मियां फखरुद्दीन को रबात में अपने जाति भाइयों से मिलने की बेकरारी सता रही थी। उन्हीं के आग्रह पर मोरक्को स्थित राजदूत को इसके लिये भाग-दौड़ करनी पड़ी। किन्तु क्या इतने बड़े अपमान का कारण बनने पर प्रधानमन्त्री ने मियां फखरुद्दीन से किसी प्रकार का जवाब तलब किया? स्पष्ट है, नहीं किया।

अल-अक्सा मसजिद के लिए इतनी बेकरारी दिखाने वाले मियां फखरुद्दीन साहब से हम जानना चाहेंगे कि क्या वे संसद के आगामी अधिवेशन में अहमदाबाद में ध्वस्त किये गए जगन्नाथ मन्दिर के विषय में भी उतनी ही उतावली और बेकरारी प्रकट करेंगे? क्या जगन्नाथ मन्दिर के लिए भी उनके मन में अल-अक्सा मस्जिद के समान ही आदर है? ऐसे ही एक 'गैर-कानूनी' कानून-मन्त्री हैं मियां युनुस सलीम। हैं तो वे कानून मन्त्रालय में मन्त्री, किन्तु गैर-कानूनी काम करने में उनसा माहिर कोई नहीं। पाठकों को स्मरण होगा कि इस वर्ष अजमेर के उर्स के समय मियां सलीम अपने पाकिस्तानी रिश्तेदारों का एक ऐसा दल लेकर वहां पहुंचे थे जिनके पास भारत में रहने का पार-पत्र

नहीं था। सलीम साहब ने सोचा होगा कि उनके रहते पाकिस्तानियों के पार-पत्र का परदा फाश नहीं होगा। और होता भी नहीं यदि वहां के अधिकारी हैजे के प्रमाणपत्र की मांग न कर बैठते।

किन्तु सलीम साहब ने वहां पर किस अभद्रता एवं अशिष्टता का परिचय दिया, किस प्रकार सरकारी कर्मचारियों को लताड़ा, डराया, धमकाया, यह समाचार पत्र पढ़ने वालों को भली भांति विदित है। अपने केन्द्रीय मन्त्री-मण्डल का सदस्य होने का जितना अनुचित लाभ वे उठा सकते थे, वह उन्होंने उठाना चाहा।

सलीम साहब की धर्म-निरपेक्षता की अहमदाबाद और बड़ौदा में जाकर पूर्णतया इति-श्री हो गई। वहां जाकर मियां सलीम ने साम्प्रदायिक तनाव भड़काने एवं शान्ति स्थापना में बाधा पहुंचाने का कुकृत्य किया। उसके इस कुकृत्य की गुजरात प्रदेश की सरकार एवं कांग्रेस ने बहुत भर्त्सना की है।

श्रीमती फिरोजगांधी के मन्त्री मण्डल के एक वरिष्ठ मन्त्री अर्थात् स्वराष्ट्र-मन्त्री चह्वाण की तुलना भी किसी से नहीं की जा सकती। एक ओर जहां चह्वाण साहब समयोपयोगी हिन्दूराष्ट्र का नाद घोषित करने वाले संसद सदस्य श्री बलराज मधोक का मामला विधिमन्त्रालय की सलाह से केन्द्र द्वारा स्थापित दिल्ली के उपराज्यपाल को इस लिये सौंपते हैं कि वे दिल्ली न्यायालय में उनके विरुद्ध साम्प्रदायिकता भड़काने का आरोप लगाकर अभियोग दायर करें, वहां दूसरी ओर वे अपने ही काँग्रेसी भाइयों द्वारा लगाये गये साम्प्रदायिकता के आरोपों के आधार पर युनुस सलीम पर अभियोग चलाने के लिये कतई तैयार नहीं। 'समचार भारती' के अनुसार गृहमन्त्रालय के एक प्रवक्ता ने तो इस समाचार का भी खण्डन किया कि गुजरात सरकार ने अहमदाबाद में मियां सलीम की गतिविधियों के बारे में गृहमन्त्रालय को कोई विरोध पत्र भेजा है।

जो इस्लाम से टकरायेगा मिट्टी में मिल जावेगा :

पिछले दिनों अल फतह का प्रतिनिधि मण्डल जब भारत का दौरा कर रहा था तो जहां जहां वह जाता था इस प्रकार के नारे सुनाई दे जाते थे। अहमदाबाद में भी इसका घोष हुआ था। अल-फतह, अल-अक्सा मसजिद और अहमदाबाद काण्ड की पर्याप्त चर्चा रही है। यहां पर नई दिल्ली से प्रकाशित सहयोगी अंग्रेजी के दैनिक पत्र इंडियन एक्सप्रैस के अहमदाबाद के प्रत्यक्षदर्शी संवाददाता के एक लेख के कुछ अंश, जो कि ९ अक्टूबर के इंडियन एक्सप्रैस में प्रकाशित हुआ था, हिन्दी भाषी पाठकों की जानकारी के लिये प्रकाशित कर रहे हैं। ये अंश किसी प्रकार की समीक्षा की अपेक्षा नहीं रखते:

"यह आश्चर्यजनक है कि केन्द्रीय सरकार अहमदाबाद के दंगों का मुख्य दायित्व जनसंघ पर थोपने का प्रयास कर रही है । कहा जा रहा है कि श्री बलराज मधोक, जिनका कि दंगों से कुछ दिन पूर्व अहमदाबाद में भाषण हुआ था, इस सारे काण्ड के खलनायक हैं ।

"अहमदाबाद के दंगों की शुरुआत मुसलमानों की ओर से हुई उत्तेजक कार्यवाहियों में ढूंढी जानी चाहिये । और जानमाल की भारी हानि का दायित्व गुजरात सरकार पर थोपा जाना चाहिये ।

"श्री जयप्रकाश ने सदा की भांति विशेष स्पष्टवादिता से व्यक्त किया है कि अल अक्सा के प्रदर्शन में 'जो इस्लाम से टकरायेगा वह मिट्टी में मिल जावेगा' जैसे नारे लगाये गये । जयप्रकाश जी ने खुले तौर पर पाकिस्तानी तत्त्वों पर आरोप लगाये । इसके बाद जगन्नाथ मन्दिर पर किया गया हमला साम्प्रदायिक हिंसा को भड़काने का बहुत बड़ा कारण था । इस सब की तुलना में जो कुछ श्री मधोक ने कहा था, वह नगण्य है ।

"दंगों के मध्य जब इन पंक्तियों का लेखक अहमदाबाद में था तब उसकी मुस्लिम नेताओं के अनेक गुटों से बात हुई थी । सबने यह स्वीकारा है कि साम्प्रदायिक दंगा जगन्नाथ मन्दिर पर आक्रमण से प्रारम्भ हुआ है । किन्तु उसके तुरन्त बाद वे कहते हैं कि मन्दिर पर किया गया आक्रमण कुछ मुट्ठी भर गुण्डों और कट्टरपंथियों का काम था । जिसके लिये अहमदाबाद की पूरी मुस्लिम जनता को दोषी नहीं ठहराया जा सकता ।

"ये उदार समझे जाने वाले मुसलमान नेता अल-अक्सा की पवित्रता भंग किये जाने पर अहमदाबाद के मुसलमानों के भड़क जाने की बात को बहुत ही स्वाभाविक मानते हैं । जब कि अपवित्र करने वाले आस्ट्रेलियन व्यक्ति को पकड़ लिया गया है । किन्तु यही समझदार व्यक्ति यह नहीं समझ पाते कि अहमदाबाद के हिन्दुओं को अपने देश में, अपने ही नगर में, अपने ही आसपास रहने वाले मुसलमानों द्वारा जगन्नाथ मन्दिर पर आक्रमण होने पर क्यों नहीं भड़क जाना चाहिये ? क्या वे वास्तव में ऐसा मानते हैं कि धार्मिक भावनायें केवल मुसलमानों की ही हैं जिनका आदर दूसरों को करना चाहिये ? और स्वयं चाहे वे दूसरों के धर्म का अपमान कर लें ? या फिर वे ऐसा सोचते हैं, जैसा कि जलूस की तख्तियां कह रही थीं—"जो इस्लाम से टकरायेगा, मिट्टी में मिल जावेगा ।" भारत का अधिकांश मुस्लिम वर्ग ऐसी ही वाहियात मान्यतायें रखता है ।

"यह निस्संकोच ही चौंकाने वाला परन्तु वास्तविक सत्य है कि भारत में होने वाले अधिकांश साम्प्रदायिक झगड़े उन्हीं के द्वारा प्रारम्भ होते हैं ।"

नये संरक्षक सदस्य

२१. डा. मनमोहन वर्मा
मुंशी नगर, गोरखपुर ।

२२. श्री कृष्णानन्द आचार्य
मंत्री आर्य सेन्ट्रल स्कूल, आर्यकुमार आश्रम, पट्टम त्रिवेन्द्रम ।

२३. श्री अम्बिका प्रसाद गुप्ता
द्वारा श्री श्याम सुन्दर गुप्ता, सदर बाजार, धमत्तरी म. प्र. ।

२४. उपर्युक्त (श्री अम्बिका प्रसाद जी ने) दो सदस्यों का शुल्क हमें भेजा है।

२५. श्री रविन्द्र कुमार मल्होत्रा
द्वारा श्री कार्तिक लाल, मो० विद्याधर पो० खगरिया (मुंगेर) ।

परिषद् सभी सज्जनों का आभार प्रदर्शित करती है । हमें कुछ सदस्यों के चित्र प्राप्त हुए हैं । आगामी अंक में मुद्रित कर हमें प्रसन्नता होगी जिन सदस्यों ने चित्र नहीं भेजा कृपया अवश्य भेजें । मन्त्री-परिषद्

संरक्षक सदस्य

१ **केवल एक सौ रुपये भेजकर परिषद् के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बनकर रहेगा।**

संरक्षक सदस्यों को सुविधाएँ—

१ परिषद् के आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। इस वर्ष लगभग २५ रुपये मूल्य की पुस्तकें प्रकाशित की जाएँगी।

२ परिषद् की पत्रिका 'शाश्वत वाणी' आप जब तक सदस्य रहेंगे निःशुल्क प्राप्त कर सकेंगे।

३ परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ आप २५ प्र० श० छूट पर प्राप्त कर सकेंगे।

४ जब भी आप चाहेंगे अपनी धरोहर वापिस ले सकेंगे। धन मनी-आर्डर द्वारा भेज सकते हैं।

पिछले मास में परिषद् ने निम्न तीन पुस्तकें प्रकाशित की हैं जो सदस्यों को बिना मूल्य भेजी जाएंगी।

१ समाजवाद एक विवेचन-ले० श्री गुरुदत्त — मू० १.००

२ गांधी और स्वराज्य—ले० श्री गुरुदत्त — मू० १.००

३ भारत में राष्ट्र—ले० श्री गुरुदत्त — मू० १.००

परिषद् का आगामी प्रकाशन

इतिहास में भारतीय परम्पराएं (प्रेस में)
ले० श्री गुरुदत्त — मू० बारह रुपये

(इतिहास लेखन में भारतीय परम्परा का वर्णन—भारतीय इतिहास पर पाश्चात्य 'पंडितों' के कथन का युक्तियुक्त खण्डन इस पुस्तक में पढ़िये। पुस्तक सम्पूर्ण रूप से पुनः लिखी गई है।)

विजय दशमी–दीपावली के शुभ अवसर पर

विजय दशमी के शुभ अवसर पर हर वर्ष की भान्ति इस वर्ष भी हम एक उपहार योजना चला रहे हैं। पांच नये पाठकों को पत्रिका एक वर्ष के लिए उपहार में दीजिये।

आप पाँच सम्बन्धियों, मित्रों व परिचितों के पते लिख भेजिये जिन्हें आप पत्रिका एक वर्ष के लिये उपहार में देना चाहते हैं। इनका शुल्क केवल रु० २० (बीस रुपये) आप हमें भेजें। और हम उन पाँच पाठकों को वर्ष भर पत्रिका आपकी ओर से भेजते रहेंगे तथा आपको अपनी ओर से एक—

अनुपम उपहार भेजेंगे।

(१) यह उपहार योजना केवल दो मास के लिये है। २५ नवम्बर तक प्राप्त होने वाले फार्म ही इस योजना में स्वीकार किये जायेंगे। इसके बाद पूर्वोक्त नियमों पर ही पत्रिका का शुल्क, आपका अथवा आपके मित्रों का स्वीकार किया जायेगा।

(२) उपहार में आप श्री गुरुदत्त की कोई भी एक अथवा अधिक रचना अथवा पत्रिका में विज्ञापित प्रकाशनों में से अपने पसन्द की चुनी हुई पांच रुपये मूल्य की पुस्तकें मंगवा सकेंगे। भेजने का व्यय लगभग १.५० भी हम देंगे।

(३) इसी प्रकार १० व्यक्तियों का शुल्क ४० रुपये (चालीस रुपये) भेज कर १० रुपये के मूल्य की पुस्तकें उपहार में प्राप्त कर सकते हैं।

(४) पते किसी भी सादा कागज पर स्पष्ट शब्दों में लिखें। साथ ही अपने लिए उपहार की पुस्तकों के नाम भी लिख भेजें।

(५) धन अग्रिम आना आवश्यक है।

सम्पादक
शाश्वत वाणी

भारतीय संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं शक्तिपुत्र मुद्रणालय, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

दिसम्बर १९६९ वर्ष ६—अंक १२ रजि० क० १६८९/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

१. सम्पादकीय	—	३
२. अन्तर्राष्ट्रीय हलचल	—श्री आदित्य	८
३. वेदाविर्भाव	—श्री गुरुदत्त	१२
४. अस्तित्व की रक्षा (१६)	—स्वामी विद्यानन्द 'विदेह'	१६
५. देश और कांग्रेस	—श्री गुरुदत्त	२१
६. योगीराज श्री कृष्ण	—श्री सचदेव	२७
७. वेद में सोम का स्वरूप	—श्री रामशरण वशिष्ठ	३१
८. यह भेद भाव क्यों ?	—श्री आनन्द किशोर झा	३३
९. हिन्दू अनाथालयों की नितान्त आवश्यकता	—अ० विश्वनाथ जी	३७
१०. वैदिक स्वाध्याय	—श्री सीताराम सहगल	३८

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ६.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी

ऋ॒तस्य॑ सानाव॒धि च॒क्रमा॒णाः रि॒हन्ति॒ मध्वो॑ अ॒मृत॑स्य॒ वाणीः॑ ॥

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

वर्णाश्रम धर्म

पिछले कुछ लेखों में हमने यह स्पष्ट किया था कि वर्तमान संसदीय प्रजातन्त्रात्मक राज्य पद्धति ही अराजकता का मूल कारण है । यह अराजकता केवल भारतवर्ष में ही नहीं, अन्य प्रजातन्त्रात्मक देशों में भी बढ़ती दिखायी देती है । यदि प्रजातन्त्रात्मक पद्धति का अर्थ उस राज्य-पद्धति को समझें, जिसके द्वारा प्रजा की उन्नति तथा सुखों में वृद्धि की कल्पना हो तो वर्तमान संसदीय प्रजातन्त्रात्मक पद्धति प्रजातन्त्रात्मक नहीं कहीं जा सकती ।

हम प्रजातन्त्र शब्द के पक्ष में ही नहीं हैं । इसका अभिप्राय यह नहीं कि हम प्रजा के हित के पक्ष में नहीं हैं । बालक अज्ञानता के कारण अपना हित नहीं जानता । बाल-तन्त्रात्मक का अर्थ बाल-हितार्थ नहीं हो सकता । अतः बाल-तन्त्र एक निरर्थक शब्द हो जायेगा । संक्षेप में प्रजातन्त्रात्मक पद्धति के दोष और उन दोषों का कारण हम पहले बता आये हैं । इसकी स्थानापन्न और जो इससे अधिक हितकर तथा व्यवहारिक प्रतीत होती है; वह है आर्य धर्म-शास्त्र में वर्णित वर्णाश्रम पद्धति ।

वर्णाश्रम व्यवस्था के दो भाग हैं । वर्ण

व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था। आश्रम व्यवस्था का सम्बन्ध व्यक्ति के जीवन से है और वर्ण व्यवस्था का सम्बन्ध समाज के जीवन से। राज्य समाज का एक अंग है। अतएव राज्य पद्धति वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत आती है।

व्यक्ति से समाज बनता है। जैसे स्टील की छड़ों से और अन्य स्टील के पदार्थों से एक बृहद् प्रासाद का ढांचा निर्माण किया जा सकता है, इसी प्रकार व्यक्तियों से समाज निर्माण किया जा सकता है। यदि स्टील के छड़, गार्डर और कील-कांटे बढ़िया तथा सुदृढ़ नहीं होंगे तो उनसे बनने वाला प्रासाद का ढांचा सुन्दर और सुदृढ़ नहीं होगा। इसी प्रकार यदि व्यक्ति भव्य, श्रेष्ठ, बुद्धिमान, विद्वान, बलवान इत्यादि नहीं होंगे तो उनसे बनने वाला समाज भी श्रेष्ठ समाज नहीं हो सकता। अतएव श्रेष्ठ समाज के निर्माण के लिये श्रेष्ठ व्यक्तियों का निर्माण प्रथम आवश्यकता है।

यह हमने ऊपर बताया है कि राज्य समाज का एक अंग मात्र है। राज्य के अतिरिक्त समाज के अन्य अंग हैं :—

(१) शिक्षक (२) शिक्षणालय (३) चिकित्सक (४) चिकित्सालय (५) ब्राह्मण वर्ग (६) श्रमिक वर्ग (७) व्यवसायिक वर्ग (८) सेवक वर्ग।

एक नवाँ अंग है—राज्य। समाज़ का सबसे बड़ा वर्ग, जिसमें अधिक से अधिक संख्या में जन होता है, वह श्रमिक और व्यवसायिक वर्ग है। श्रमिक और व्यवसायिक वर्ग को ही वैश्य वर्ण कहते हैं। इसकी तुलना मानव शरीर के पेट से की जाती है। पेट का कार्य पूर्ण शरीर के लिये भोजन ग्रहण कर, उसको चबा, हज़म कर शरीर को चलाने के लिये रक्त का निर्माण करना है और फिर उस रक्त को शरीर के प्रत्येक अंग के लिये, दूर से दूर-स्थित-अंग, हाथ-पांवों की अंगुलियों एवं सिर तक पहुंचाना है। यह सब काम पेट करता है। इसी प्रकार समाज का वैश्य वर्ण अपने व्यवसाय से धन उपलब्ध कर उस धन का लाभ पूर्ण समाज को और समाज में दूर से दूर स्थित अंग को पहुंचाता है। इस वैश्य वर्ण की रक्षार्थ हाथों की भांति रक्षा करने वाला क्षत्रिय वर्ण है। पांव की तुलना शूद्र वर्ण से की गई है।

राज्य, समाज के इन समस्त अंगों से पृथक् है। इस का प्रयोजन समाज के पूर्ण शरीर को सुचारु रूप से कार्य में लगाये रखना है। मानव शरीर में यह कार्य वात-तन्तुओं द्वारा किया जाता है। इसको अंग्रेज़ी में nervous system कहते हैं। यह nervous system मानव शरीर में अंग-प्रत्यंग में व्याप्त रहता है और उसको नियन्त्रित रखता है। यही कार्य समाज में राज्य का है। जैसे मानव शरीर में nervous system मस्तिष्क द्वारा नियंत्रित होता है, उसी प्रकार राज्य-तन्त्र समाज के मस्तिष्क अर्थात् ब्राह्मण

वर्ग द्वारा चलाया जाना चाहिये। अति संक्षेप में, समाज में राज्य की स्थिति प्राणी के 'nervous system' की भान्ति ही है।

यदि इस तुलना को कुछ अधिक व्याख्या से लिखें तो वह इस प्रकार होगी। समाज एव मनुष्य शरीर की भांति संगठित इकाई है। इसके मुख्य रूप में, चार अंग हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ये वर्ण कहलाते हैं। अपने गुणों के कारण ही इनके कार्य और अधिकार निश्चित हैं। गुण का अभिप्राय योग्यता है। योग्यता के अनुसार कार्य करना और कार्य करने का स्वभाव रखना एक वर्ण का कर्त्तव्य है और उस वर्ण को अपने कर्त्तव्य-पालन करने के लिये प्रत्येक प्रकार की सुविधा प्राप्त कराना समाज का कर्त्तव्य है। समाज के ढांचे में साधन उपलब्ध करना, जिनसे समाज के चारों वर्ण सम्पुष्ट होते रहें और अपने अपने कर्त्तव्यों के पालन में सुविधा प्राप्त करते रहें, वैश्य वर्ण का कर्त्तव्य है। क्षत्रिय वर्ण में वे लोग आते हैं, जो समाज रूपी पूर्ण शरीर की रक्षा करने की योग्यता रखते हैं और उस योग्यता का प्रयोग करने के लिये तैयार रहते हैं।

शूद्र वर्ण में केवल वे लोग आते हैं, जिनकी योग्यता केवलमात्र शरीर के अन्य अंगों की सहायता एवं सेवा करना है। यह वर्ण छोटे से छोटा (अर्थात् संख्या में कम से कम लोगों का) होना चाहिये। इसमें केवल वे लोग ही आते हैं, जो शरीर के अन्य अंगों अर्थात् समाज के अन्य वर्णों के कार्यों की योग्यता न रखते हों।

शरीर पर नियन्त्रण रखना जिससे शरीर के भिन्न भिन्न अंग सतर्कता एवं योग्यता से कार्य करते रहें, मस्तिष्क का काम है। मस्तिष्क अपने तन्त्र (nervous system) द्वारा पूर्ण शरीर को अपने नियन्त्रण में रख सकता है। समाज रूपी शरीर में इसका नाम राज्य है।

उक्त विवेचना से एक बात स्पष्ट है कि राज्य न तो पूर्ण समाज बन सकता है और न ही यह पूर्ण समाज के कामों को स्वतः कर सकता है। यह पूर्ण समाज पर नियन्त्रण तो रखता है, परन्तु समाज का कार्य स्वयं नहीं कर सकता। नियन्त्रण रखना और कार्य करना दो भिन्न भिन्न बातें हैं। जैसे [illegible], जिसे मुख में रख दिया गया हो, को चबाकर उसका रस बनाना, रस से [illegible] मांस, मज्जा इत्यादि शरीर के अंगों का निर्माण करना पेट का कार्य है, पेट ही कर सकता है; यद्यपि पेट पर भी नियन्त्रण 'nervous system' का है। 'nervous system' पेट के कार्य पर नियन्त्रण इस प्रकार करता है। मान लो, रोटी के साथ कोई ऐसी वस्तु मुख में चली जाती है, जो अस्वाभाविक

है। जिह्वा की रसना उसको पहचान जाती है। और मुँह उस को थूक कर बाहर फेंक देता है। कई बार ऐसा होता है कि रसना पहचान नहीं सकती कि खाने वाले पदार्थ के साथ कोई अनिच्छित पदार्थ भी पेट में जा रहा है। उसका ज्ञान खाना पचाते समय होता है। वहां पर कार्य कर रहा nervous system अपना नियन्त्रण आरम्भ कर देता है। परिणामस्वरूप वह अनिच्छित पदार्थ कभी तो वमन के रूप में बाहर आ जाता है, कभी दस्त के रूप में निकल जाता है। यह है 'nervous system' का नियन्त्रण। परन्तु पाचन-कार्य तो पेट ही करता है।

उक्त व्याख्या से एक दूसरी बात पता चलती है कि जैसे मानव शरीर का 'nervous system' मस्तिष्क के आदेशों पर कार्य करता है, इसी प्रकार समाज में राज्य को, समाज के मस्तिष्क अर्थात् ब्राह्मण वर्ग के आदेश पर कार्य करना चाहिये। इसको अधिक व्याख्या से समझने की आवश्यकता है।

समाज में वर्ण गुण, कर्म और स्वभाव से होने चाहियें। जैसा कि हम बता चुके हैं कि गुण का अर्थ योग्यता है। योग्यता का सम्बन्ध कर्म से होना आवश्यक है। यदि कोई ऐसा कर्म करे, जिसकी योग्यता उसमें न हो तो यह समाज के हित में नहीं होगा। केवल गुण और कर्म का ही सम्बन्ध आवश्यक नहीं, वरंच मनुष्य का स्वभाव भी वैसा होना चाहिये; अन्यथा कार्य कुशलता-पूर्वक सम्पन्न नहीं हो सकेगा। स्वभाव किसी कर्म को बारम्बार करने से बन जाता है। समाज के कल्याण में यह आवश्यक है कि मनुष्य अपना कर्म अपनी योग्यतानुसार चुने और फिर उसको निरन्तर करता जाये, जिससे वह उसका स्वभाव बन जाये। योग्यता हो योद्धा की, कर्म करने लगे दुकानदारी का और दुकान का दिवाला पिट जाने पर बन बैठे ब्राह्मण। जहां ऐसे लोग होंगे, वहां समाज चौपट हो जायेगा। अतएव समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपने गुणों के अनुकूल कर्म करे और उस गुण में संलग्न रहे। इससे ही समाज का भला होगा। यही समाज के हित में है। इसी को 'प्रजाहिताय' कहना चाहिये और वास्तव में यही प्रजातन्त्र है।

शरीर में 'nervous system' मस्तिष्क के आदेशों पर कार्य करता है। परमात्मा ने ऐसा प्रबन्ध बनाया है कि शरीर में ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, कर्मेन्द्रियाँ हैं, मन और बुद्धि है। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का पद समाज में राज्य को दिया गया है। मन और इन्द्रियों का कार्य शरीर में मस्तिष्क करता है और समाज में यह कार्य ब्राह्मण वर्ग का समझा गया है। इसका अर्थ यह है कि भारतीय समाज के ब्राह्मण वर्ग और राजतन्त्र का परस्पर घना सम्बन्ध है।

शास्त्रों ने इसको माना भी है। ऐसा लिखा है कि जिस समाज में ब्राह्मण वर्ग और राजतन्त्र परस्पर सहयोग से नहीं चलते, वह समाज शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है। महाभारत में लिखा है :—

विद्धं राष्ट्रं क्षत्रियस्य भवति ब्रह्म क्षत्रं यत्र विरुद्ध्यतीह।
अन्वग्बलं दस्यवस्तद् भजन्ते तथा वर्णं तत्र विदन्ति सन्तः॥

अर्थात् सब भले आदमी इस बात को जानते हैं कि जहाँ राष्ट्र में क्षत्रियों का ब्राह्मणों से विरोध होता है, वहां राज्य छिन्न-भिन्न हो जाता है। लुटेरे दल-बल के साथ उस राज्य पर अधिकार जमा लेते हैं और उस राज्य में रहने वाले सब वर्ण के लोगों को अपने अधीन कर लेते हैं।

हमने इस लेख में यह बताने का यत्न किया है कि वर्तमान संसदीय प्रजातन्त्रात्मक पद्धति से वर्णाश्रम पद्धति अधिक युक्तियुक्त और व्यवहारिक है। समाज मानव शरीर की भांति एक इकाई है। इसका सिर है, पेट है, हाथ हैं, पांव हैं। राज्य समाज में 'nervous system' की तुलना रखता है और उसको मस्तिष्क अर्थात् ब्राह्मण वर्ग के अधीन कार्य करना चाहिये। इस लेख में हमने यह भी बताया है कि जैसे शरीर का एक अंग दूसरे अंग का कार्य नहीं कर सकता, इसी प्रकार समाज का एक वर्ण दूसरे वर्ण का कार्य नहीं कर सकता। वर्ण-व्यवस्था गुण, कर्म और स्वभाव पर आधारित है। इसका अभिप्राय यह है कि जैसा जिस व्यक्ति का गुण हो, वैसा ही वह कार्य करे और फिर उस कार्य को करता रहे, जिससे वह कार्य करना उसका स्वभाव बन जाये।

जिस प्रकार 'nervous' system और मस्तिष्क में समन्वय रहता है, उसी प्रकार राज्यतन्त्र और ब्राह्मण वर्ग में समन्वय रहना आवश्यक है। आगामी अंक में इस विषय पर अधिक विस्तार से विचार व्यक्त किए जायेंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

श्री आदित्य

लगभग दो वर्ष पूर्व संयुक्त राज्य अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति (जॉनसन) ने यह घोषणा की थी कि अमरीका वियतनाम में युद्ध समाप्त करने के लिये तैयार है। इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा था कि वह राष्ट्रपति पद के आगामी चुनाव में प्रत्याशी नहीं बनेंगे।

इससे यह स्पष्ट था कि जॉनसन युद्ध बन्द करने के पक्ष में नहीं थे, परन्तु वह अनुभव कर रहे थे कि अमरीका के लोग युद्ध बन्द करने के पक्ष में होते जा रहे हैं। उसके उपरान्त प्रधान पद का चुनाव हुआ। उसमें सफल प्रत्याशी निक्सन ने यह वचन दे दिया कि वह युद्ध बन्द कर देंगे, परन्तु जिस ढंग से वह युद्ध बन्द करना चाहते हैं अथवा जो शर्तें वह अपने विरोधियों से युद्ध बन्दी से पहले मनवाना चाहते हैं, पूरी नहीं हो रहीं। इस पर भी अमरीका का जन-मत दिन-प्रतिदिन युद्ध बन्दी के पक्ष में हो रहा है।

१५ अक्तूबर सन् १९६९ को पूर्ण अमरीका में युद्ध-बन्दी-दिवस मनाया गया। कहा जाता है कि इस दिन लगभग दस लाख लोगों ने इस में भाग लिया। अमरीका की जनसंख्या देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि है युद्ध-बन्दी के पक्ष में कुछ बहुत बड़ी संख्या में लोग थे। दस-लाख लोग पूर्ण जन संख्या का ०.५ प्रतिशत ही हैं। इसपर भी इस प्रदर्शन का प्रभाव अमरीका के जन-मानस पर बहुत गहरा हुआ है। राष्ट्रपति निक्सन भी इससे अति प्रभावित हुए प्रतीत होते हैं। उन्होंने घोषणा कर दी है कि वह पूर्ण अमरीकी-सेना को वियतनाम से वापिस बुला लेंगे। सेनाओं की वापसी तो पहले ही प्रारम्भ हो चुकी है, परन्तु यह घोषणा पहली बार ही की गयी है कि पूर्ण सेना शीघ्र ही वापिस आ जायेगी।

उक्त प्रदर्शन के उपरान्त अमरीका के जन साधारण और मुख्य मुख्य लोगों से मत-संग्रह किया गया। उस मत-संग्रह का परिणाम कुछ ऐसा था कि लगभग ६० प्रतिशत साधारण-जन निक्सन के धीरे धीरे सेना बुलाने के पक्ष में

थे। नेतागणों में से भी ५३ प्रतिशत निक्सन की नीति को पसन्द करते थे; परन्तु दस लाख प्रदर्शनकारियों का प्रभाव प्रबल प्रतीत हुआ है और निक्सन ने यह नयी घोषणा की है।

मत-संग्रह में यह भी पूछा गया था कि क्या लोग यह चाहते हैं कि वियतनाम से अमरीकी सैनिक तुरन्त बुला ली जाये? इसके पक्ष में ३६ प्रतिशत थे और विरोध में ५७ प्रतिशत। नेतागणों में से तुरन्त बुलाने के पक्ष में ३२ प्रतिशत थे और विरोध में ६१ प्रतिशत। इस मत संग्रह का भी यही अर्थ निकलता है कि बहुत बड़ी संख्या में लोग निक्सन की नीति के पक्ष में थे, परन्तु उसने यही उचित समझा है कि सेना बिना किसी शर्त के, विरोधी से बिना किसी प्रकार का आश्वासन प्राप्त किये, वापिस बुला ली जाये।

संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति श्रीयुत् निक्सन की इस घोषणा का प्रभाव संसार भर में होगा। एक ओर तो उन लोगों की, जो अन्तर्राष्ट्रीय जगत में वैचारिक गुट्ट बन रहे देख रहे थे, आशायें निर्मूल सिद्ध होंगी। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में पिछले कई सौ वर्षों से संयोग और वियोग विचारधाराओं के आधार पर नहीं बन रहे हैं, वरन् अपने-अपने देश के स्वार्थों के आधार पर बन और बिगड़ रहे हैं।

मुहम्मद साहब के इतिहास में पदार्पण करने के उपरान्त चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शताब्दी तक वैचारिक गुट्ट कार्य करते रहे और दक्षिणी युरोप, उत्तरी अफ्रीका, पूर्वी एशिया, मध्य एशिया, भारत और हिन्द महासागर के चारों ओर के द्वीपों में वैचारिक संघर्ष चलता रहा। हज़रत मुहम्मद ने एक विचार को लेकर इतिहास में पदार्पण किया और उन्होंने तथा उनके अनुयाइयों ने उस विचार को तलवार के बल से चलाया। उसके लिये युद्ध लड़े और प्रत्येक प्रकार के उचित-अनुचित कार्य किये। एक समय मुहम्मद साहब के विचार के लोगों का डंका मोराको और स्पेन से लेकर बंगाल की खाड़ी और इण्डोनेशिया तक बजने लगा था। इस विचार-पक्ष का विरोध विचार पक्ष द्वारा स्पेन में किया गया और मुहम्मद साहब के विचार वालों को भूमध्य सागर के दक्षिण अफ्रीका के किनारे पर धकेल दिया गया। भारतवर्ष में भी मुहम्मद साहब के विचार पक्ष का विरोध विचार पक्ष से होना आरम्भ हुआ। एक ओर शिवाजी, दूसरी ओर गुरु गोविन्द सिंह और बन्दा वैरागी ने प्रयत्न आरम्भ किया। इसमें अत्यन्त सफलता मिली। स्पेन में और भारत में भी युद्ध अति भंयकर हुए। इनकी भयंकरता को देख अपने आपको श्रेष्ठ और भले मानने वाले लोग कांप उठे। वे भूल गये कि वैचारिक युद्ध सदा ऐसे ही होते हैं।

मुहम्मद साहब से पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में देशीय स्वार्थों का बोलबाला था। इस्लाम ने वैचारिक हितों की दुंदुभी बजा दी। जो कुछ मुसलमानों ने अपने विचार के प्रसार के लिये किया, वह इतिहास के पृष्ठों पर लिखा हुआ है और फिर इस विचार मदात्य को दबाने के लिए जो घोर क्रूरता की गयी, सर्वविदित है। दुनिया भर के भले लोग इस क्रूरता को देख कर कांप उठे और वैचारिक पक्ष को लेकर युद्ध करने से भयभीत हो गये। अब पुनः अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में संयोग-वियोग देश हितों के आधार पर बनने-बिगड़ने लगे हैं।

परन्तु देशों के स्वार्थ, विचारों के मोर्चे को पूर्णतया निःशेष नहीं कर सके। ब्रिटिश साम्राज्य, फ्रैंच साम्राज्य, स्पेनिश साम्राज्य और छोटे-बड़े अन्य साम्राज्य भी देशीय स्वार्थों के आधार पर बने और बिगड़े। ब्रिटिश साम्राज्य तो इतना बड़ा था किपूर्ण भूमण्डल पर छा रहा था। इस पर सूर्य अस्त नहीं होता था। परन्तु ये सब विलीन हो गये। और आज न ब्रिटिश साम्राज्य रहा है और न फ्रैंच साम्राज्य। परन्तु वैचारिक मोर्चा अभी तक कायम है। हजरत मुहम्मद साहब का निर्माण किया मोर्चा पिछले तेरह सौ वर्षों से इस समय भी स्थित है और समय-समय पर अपने पक्ष में तलवार उठाता रहता है। यह ठीक है कि अब इसमें वह तेजी नहीं रही जो स्पेन से निकाले जाने के पहले इसमें थी। भारत में गुरु गोविन्द सिंह इत्यादि अपने वैचारिक मोर्चे को इतनी दूर तक नहीं ले जा सके, जितनी दूर तक ईसाई पादरी (स्पेन में) ले गये थे। परिणाम-स्वरूप वर्तमान पाकिस्तान का बनना है।

इसके साथ ही भारत में ऐसे वैचारिक मोर्चों को पसन्द नहीं किया जा सका। यही कारण है कि हिन्दुओं में एक बहुत बड़ी संख्या में ऐसे लोग हैं जो बन्दा वैरागी से घृणा करते हैं। महात्मा गांधी सदृश नेता तो इस प्रकार के वैचारिक मोर्चे को बनाने के घोर विरोधी थे।

वैचारिक मोर्चों पर होने वाले युद्धों की क्रूरता को देखकर संसार के शरीफ़ लोगों ने एक पक्षीय सुलह की झण्डी खड़ी की हुई है, परन्तु न तो मुहम्मद साहब का वैचारिक मोर्चा पराजित हुआ है और न ही दुर्बल पड़ा है।

सन् १९१७ से एक नया ही वैचारिक मोर्चा निर्माण हो गया है। इस मोर्चे का विचार करने वाले एक जर्मन व्यक्ति कार्ल मार्क्स थे और उस विचार को मोर्चे का रूप देने वाले एक रूसी व्यक्ति लैनिन थे। इस वैचारिक मोर्चे ने भी द्रुत गति से विस्तार पाया है। सन् १९१७ से लेकर सन् १९५२ तक इसने अपना आधिपत्य मध्य जर्मनी से लेकर प्रशान्त महासागर तक कर लिया था। इस मोर्चे की झड़प अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में समय-समय

पर दूसरे देशों से, जो देशीय हितों के आधार पर मोर्चे बनाये बैठे हैं होती रही है।

कम्युनिस्ट मोर्चे ने अपनी विजय पताका फहराने के लिए इस्लाम से कम अत्याचार और हत्यायें नहीं कीं। यह अनुमान है कि इस छोटे से काल में कम्युनिज्म के प्रसार में लगभग दस करोड़ हत्याएँ की जा चुकी हैं। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अभी इन कम्युनिस्टों के अभिमान का वैसा विरोध कहीं नहीं हुआ, जैसा कि स्पेन में इस्लाम का हुआ था। इण्डोनेशिया में इसी प्रकार का रंग कुछ वर्ष पहले जमा था। इस पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वहाँ अथवां अन्य किसी गैर कम्युनिस्ट देश में किसी प्रकार का भी वैचारिक मोर्चा बना है। अमरीका में कम्युनिज्म का विरोध एक वैचारिक मोर्चे का रूप धारण नहीं कर सका। कोई भी देश ऐसा स्वीकार नहीं करता। भारत अमरीका की इस नीति की घोर निन्दा करता है। जापान में यद्यपि संयुक्त राज्य अमरीका की विरोधी सरकार नहीं, जनता का एक बड़ा अंश अमरीका की इस नीति की निन्दा कर रहा है। यूरोप में अमरीका के इस वैचारिक मोर्चे का विरोध डीगाल और उसका दल करता चला आ रहा है। इंग्लैंड और इटली भी यह पसन्द करते प्रतीत होते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में देशीय हितों के आधार पर ले दे होनी चाहिये; वैचारिक मोर्चे नहीं बनने चाहियें। कम्युनिस्ट, जिनके विरुद्ध अमरीका वैचारिक मोर्चा खड़ा करने का यत्न कर रहा था, स्वाभाविक रूप में अमरीका की निन्दा करते थे और करते हैं। इधर डी- गाल का दल (Gallist) ब्रिटेन, जर्मनी, इटली इत्यादि देशों का जो देशीय हितों के आधार पर मोर्चे बनाना चाहते हैं, भी विरोध कर रहा है। इनके विरोध के साथ-साथ इंगलैण्ड, फ्रांस इत्यादि का विरोध भी सम्मिलित हो जाता है। परिणाम यह हो रहा है कि निक्स : को वियतनाम से सेनायें बुलानी पड़ रही हैं। अमरीका अन्तर्राष्ट्रीय जगत में अपने वैचारिक शत्रुओं से भी निन्दनीय है और अपने विचार वालों से भी निन्दनीय बन रहा है।

क्या इसका परिणाम यह होगा कि कम्युनिस्ट अपना वैचारिक मोर्चा बन्द कर देंगे और वे भी देशीय हितों के आधार पर संयोग-वियोग बनाने लगेंगे।

कुछ लोगों का विचार है कि रूस अब ऐसा करने लग पड़ा है, चीन भी करेगा। हमारा विचार इससे भिन्न है। इस्लामी मोर्चा अभी ठण्डा नहीं हुआ। पिछले तेरह सौ वर्ष से यह चला आ रहा है। इससे किस किस का कल्याण हुआ है और किस-किस का अकल्याण, इसका इतिहास साक्षी है। जो

[शेष पृष्ठ २४ पर]

वेदाविर्भाव

श्री गुरुदत्त

वेद ईश्वरीय ज्ञान है

भारतीय परम्परा के अनुसार वेद मानव सृष्टि के आरम्भ में प्रकट हुए। इसी परम्परा के अनुकूल महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका और सत्यार्थ प्रकाश में यह लिखा है कि वेद ईश्वरीय देन हैं। ये सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य को मिले और परमात्मा से दिया ज्ञान होने के कारण वेद ज्ञान सत्य ज्ञान है। वेदों में इस सत्य के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यह ज्ञान न केवल सत्य है, वरंच नित्य भी है।

महर्षि जी ने यह भी लिखा है कि वेदों का आविर्भाव अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा देवताओं द्वारा हुआ और ये देवता शरीरधारी मानव थे तथा ये सृष्टि के आदि में अमैथुनीय सृष्टि के प्राणी थे।

वर्तमान दार्शनिकों का मत

वर्तमान वैज्ञानिकों का इससे मतभेद है। वे वेदों के अस्तित्व को तो मानते हैं, परन्तु इनके सृष्टि के आरम्भ में होने को नहीं मानते, न ही इसमें ईश्वरीय ज्ञान तथा सर्वथा सत्य ज्ञान का होना स्वीकार करते हैं।

वर्तमान युग के समाज शास्त्री मनुष्य समाज के लिए किसी प्रकार के ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता भी नहीं मानते। वास्तव में वे ईश्वर के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करते। यह तो वे स्वीकार करते हैं कि मनुष्य का व्यक्तिगत ज्ञान समाज के सामूहिक ज्ञान की परछायीं है। मनुष्य का नैसर्गिक ज्ञान कुछ नहीं, वह उसे समाज से प्राप्त होता है। उदाहरण के रूप में बोलना, चलना, भोजन करना, सभ्यतापूर्वक व्यवहार करना और सामान्य ज्ञान मनुष्य माँ के पेट से लेकर उत्पन्न नहीं होता, वरंच समाज उसे सिखाता है और इस में कई वर्ष लग जाते हैं।

व्यक्ति तथा समाज

आज से दो तीन शतक पहले युरोप के विख्यात दार्शनिक यह मानते

थे कि समाज व्यक्तियों का समूह है। व्यक्ति समाज को बनाते हैं। उदाहरण के रूप में हरबर्ट स्पैन्सर समाज को एक जीवित वस्तु (Organism) मानता था, परन्तु उसने यह स्वीकार किया है :—

Society has no common sensorium, no central organ of perception or of thought. For it is only individuals who think and feel.

अर्थात्—समाज के पास कोई सांझा "अनुभव यन्त्र" अभिप्राय यह कि अनुभव करने और विचार करने की केन्द्रीय इन्द्रिय नहीं है। एक व्यक्ति ही अनुभव करता है और विचार करता है।

परन्तु वर्तमान युग के विख्यात समाज शास्त्री आर० एम० मैक्विर (R. M. Maciver) ऐसा नहीं मानते। वह कहते हैं कि :—

There is a good reason why we should reject this theory. For the theory rests upon the false assumption that human beings are or could become human beings outside or apart from society—that individual man and society are inseparable. Neither has a priority in the histoty of development.

उक्त विचार को अस्वीकार करने के लिए प्रबल कारण हैं। इस विचार का आधार मिथ्या है कि समाज के बिना अथवा इसके बाहर रह कर मनुष्य है अथवा हो सकता है। ....एक मानव और मानव समाज पृथक-पृथक नहीं किये जा सकते। न ही विकास के इतिहास में कोई एक दूसरे के पहले था।

परमात्मा और विकासवाद

हरबर्ट स्पेन्सर तथा उसके विचार के व्यक्तिवादी और वर्तमान युग के समाज शास्त्री दो बातों को मान कर चलते हैं। एक यह कि मनुष्यों का मार्ग दर्शन करने वाला कोई सर्वज्ञ, सर्व व्यापक, सर्व शक्तिमान तत्व नहीं है। अभिप्राय यह कि परमात्मा नाम की कोई वस्तु नहीं। दूसरी धारणा यह है कि मनुष्य एक बन-मानुष से उन्नति करता हुआ वर्तमान युग का मानव बन गया है।

यदि परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार करें और विकासवाद के विचार को अस्वीकार करें तो उक्त दोनों प्रकार के अनर्गल वक्तव्यों की न तो आवश्यकता रहती है और न ही प्रामाणिकता। ये दोनों बातें भारतीय विचार से वैसी नहीं, जैसी आधुनिक दर्शन शास्त्री मानते हैं। भारतीय मान्यता तो यह

है कि इस ब्रह्माण्ड में एक शासक, संचालक और हितैषी सत्ता है । वह परमात्मा है । साथ ही भारतीय मान्यता यह है कि जबसे मानव सृष्टि हुई है, तबसे मानव की नैसर्गिक शक्तियाँ ज्यों की त्यों हैं । उनमें कुछ ह्रास हुआ तो दिखायी देता है, किन्तु उनमें विकास नहीं हुआ ।

परमात्मा के अस्तित्व को सिद्ध करना और विकासवाद की अनर्गलता सिद्ध करना इस लेख का विषय नहीं । इस पर भी यह दावे से कहा जा सकता है कि जिस आधार पर हमारे दार्शनिक इन दोनों मान्यताओं को स्वीकार करते हैं, वे आधार सर्व सिद्ध और अकाट्य अनुमानों पर टिके हैं ।

जब यह मान लिया जाये कि प्रथम मानव सृष्टि सब प्रकार के नैसर्गिक गुण रखती थी और एक सर्वोत्कृष्ट सत्ता है जो सबके कल्याण के लिये अवसर प्रस्तुत करती रहती है तो समाज और व्यक्ति का झगड़ा उत्पन्न ही नहीं होता । प्रथम मानव सर्व मानवोचित गुणों से युक्त था और उचित ज्ञान उसे ईश्वर से मिला था । इस ज्ञान में समाज के रहने का ढंग भी उसे ईश्वर ने दिया था ।

मनुष्य को ज्ञान दूसरों से मिलता है

यह तो मानना ही पड़ता है कि मनुष्य बिना किसी से सीखे स्वतः कुछ जान अथवा सीख नहीं सकता । यह तो वर्तमान समाज शास्त्री भी स्वीकार करते हैं । श्री आर० एम० मैकिवर भी यह मानता है कि यदि आज भी किसी मानव को समाज से पृथक कर दिया जाये तो वह सर्वथा अज्ञ और कार्य-कौशल रहित हो जायेगा । समाज एक नैसर्गिक ज्ञान का स्वामी है और प्रत्येक मानव बालक सीधे अथवा उलटे ढंग से समाज से ज्ञान को ग्रहण करता है । अपनी इस बात को सिद्ध करते के लिए वह तीन ऐतिहासिक उदाहरण देता है । वह इनका उल्लेख अपनी पुस्तक "Society" में करता है ।

मैकिवर लिखता है :—

(१) कैस्पर हाउज़र नाम का एक व्यक्ति था । वह राजनीतिक कारणों से सम्पूर्ण मानव सम्पर्क से विच्छिन्न कर दिया गया था । सन् १८२८ में वह सत्रह वर्ष का युवक न्यूरैम्बर्ग की सड़कों पर भटकता पाया गया । वह चल नहीं सकता था । उसकी मानसिक अवस्था एक शिशु तुल्य थी और वह कुछ एक निरर्थक वाक्य उच्चारण कर सकता था । कैस्पर जड़ और चेतन पदार्थों में अन्तर नहीं समझता था । पांच वर्ष उपरान्त जब वह मार डाला गया तो उसकी शव परीक्षा पर पता चला कि उसके मस्तिष्क का विकास इतर श्रेणी के प्राणियों का सा था । यह स्पष्ट था कि उसके सब अभाव इस कारण थे कि वह समाज की संगति से वंचित कर दिया गया था ।

(२) दो हिन्दु बच्चों को सन् १९२० में एक भेड़िये की गार में पाया गया। उस समय उनकी आयु आठ वर्ष से कुछ कम की थी। छोटा बच्चा तो मिलने के कुछ मास उपरान्त ही मर गया। दूसरा, जिसका नाम कमला रखा गया था, सन् १९२९ तक जीवित रहा। इसके व्यवहार का विवरण सावधानी से लिखा गया है। कमला का व्यवहार मानवों का सा नहीं था। वह हाथ और पांव के बल चलती थी। कुछ भी बोल सकती नहीं थी; केवल भेड़ियों की भान्ति गुर्राती थी। वन्य पशुओं की भान्ति मनुष्यों से डरती थी। बहुत मेहनत से सिखाने पर उसे बहुत ही प्रारम्भिक मानवोचित व्यवहार की बातें सिखायी जा सकी थीं। वह सन् १९२९ में मर गयी।

(३) सन् १९३८ में एक अवैध अमेरिकन बच्ची ऐन्ना का अध्ययन किया गया। जब वह छः मास की थी, उसे एक बन्द कमरे में रख दिया गया। वहां वह केवल दूध पर पलती रही। वह उस कमरे में मानव समाज से पृथक पांच वर्ष तक रही और सन् १९३८ में वह मिली तो उसके व्यवहार का अध्ययन किया गया। यह देखा गया कि उसमें पांच वर्ष की आयु के बच्चों का कोई भी गुण नहीं था। यह लड़की सन् १९४२ में मर गयी। उस अवस्था में भी बहुत परिश्रम से उसे कुछ व्यवहार की बातें सिखायी जा सकी थीं।

संसार में अन्य उदाहरण भी मिलते हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि मानव शिशु उस समाज से ही सब कुछ सीखता है, जिसमें वह रहता है। बिना समाज के वह कुछ नहीं सीख सकता।

इस बात के सिद्ध हो जाने के उपरान्त प्रश्न यह रह जाता है कि समाज में यह ज्ञान कहां से आया? बस इसी की व्याख्या में भारतीय और पाश्चात्य मान्यताओं में अन्तर है।

वर्तमान युग के पाश्चात्य समाज-शास्त्री यह मानते हैं :—

The emergence of the capacity of social life is an aspect of the growth of selfhood of personality. The child does not merely imitate the social usages of adults as a parrot might pick up a language. He is certainly imitative, but in the process of imitation his own social nature is gradually revealed.

इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य के व्यक्तित्व एवं स्वभाव का उद्भव उसके सामाजिक जीवन के स्तर पर निर्भर है। एक बच्चा अपने बड़ों की नकल ही नहीं करता, जैसे एक तोता भाषा सीखता है, वरंच वह नकल

उतारने के साथ अपना सामाजिक स्वभाव का क्रमिक प्रकटीकरण भी करता है।

यह वक्तव्य अयुक्तिसंगत है। इसका अर्थ यह है कि एक मानव शिशु नकल करने के साथ-साथ अपनी ओर से कुछ नवीन अनुभव भी जोड़ता चला जाता है। इस प्रकार समाज का अनुभव बढ़ता चला जाता है।

अनुभव यह बताता है कि यदि बच्चों को अपने ही अनुभव पर और अपनी ओर से नवीन विचार पर ही छोड़ दिया जाये तो वे कुछ उन्नति करने के स्थान पर अवनति करने लग जाते हैं। परिणाम स्वरूप जबसे मनुष्य ने अपने ज्ञान और अनुभवों को ईश्वरीय ज्ञान (वेद) से समय-समय पर मार्जित करना छोड़ा है, यह अवनत हो रहा है। इसमें विकास नहीं, वरंच ह्रास हो रहा है।

मनुष्य कुछ उन्नत, कुछ श्रेष्ठ आविष्कार नहीं करता; क्योंकि इसका स्वभाव है कि सुगम, सुखद और सरलता की ओर जाये। यह परिश्रम और तपस्या से बचना चाहता है। उन्नति ऊपर जाने की भान्ति परिश्रम और तपस्या की माँग करती है। इस कारण मनुष्य का इतिहास ह्रास का तथा सुख की ओर है

वर्तमान युग की तकनीकी उन्नति मानव गुणों के विकास का इतिहास नहीं, वरंच मानव की सुख, सुगमता और सरलता की खोज का इतिहास है। तनिक गम्भीरता से विचार किया जाये तो पता चलेगा कि ज्यों-ज्यों मानव सामर्थ्य (man's capability) कम होती जाती है, मनुष्य उसकी पूर्त्ति यन्त्रों द्वारा करने का यत्न करता है।

यही सामूहिक रूप में मानव समाज में हो रहा है। जहां-जहां समय समय पर व्यक्तिगत व्यवहार और सामाजिक व्यवहार को ईश्वरीय ज्ञान से मार्जित किया जाता रहा है, सुख एवं सुगमता की खोज में हो रहा ह्रास रुक जाता रहा है। यदि मनुष्य में स्वतः समाज के अनुभवों में कुछ उन्नत अथवा श्रेष्ठ जोड़ने की सामर्थ्य होती तो अफ्रीका के हब्शी अथवा अमेरिका के मूल निवासी भी, जो वेद ज्ञान से सर्वथा कट गये थे, युरेशिया की जातियों की भांति उन्नत हो गये होते।

सृष्टि के आरम्भ में जब सामाजिक व्यवहार की परम्परायें नहीं थीं, यदि तब का मनुष्य इतर जीव-जन्तुओं से श्रेष्ठ था तो ईश्वरीय ज्ञान के कारण ही था।

आदि मनुष्य

इस पर प्रश्न यह है कि क्या आदि मनुष्य सभ्य और श्रेष्ठ था?

वर्तमान युग के विकासवादी मानते हैं कि आदि मनुष्य पशु तुल्य था, परन्तु इनके पास इसका प्रमाण नहीं है। वे अपने कल्पित विकासवाद से ही यह कल्पना करते हैं। किसी उजड़े स्थान से किसी मानव की भान्ति के अज्ञात जीव की खोपड़ी अथवा अन्य अस्थियों के मिलने से वे उसे वर्तमान मानव का पूर्वज मानने लगे हैं, परन्तु ऐसा मानने में किसी प्रकार की युक्ति एवं आधार नहीं। वह किसी ऐसी प्राणी जाति का भी अवशेष हो सकता है जो जाति अब विलुप्त हो चुकी है। वर्तमान मानव का वह पूर्वज ही है, इसका कोई प्रमाण नहीं है।

इस प्रकार के संदिग्ध प्रमाणों के अतिरिक्त अन्य कोई ठोस प्रमाण नहीं कि वर्तमान युग के मानव का, वह अविकसित खोपड़ी वाला प्राणी पूर्वज था। विकासवाद, जिससे उक्त बात कल्पित की गयी है, एक असिद्ध सिद्धान्त है।

इसके विपरीत इस बात के प्रमाण तो मिलते हैं कि मनुष्य के मानवीय गुणों में ह्रास हो रहा है। आदि मनुष्य आज के मनुष्य से मानवीय सामर्थ्य में उन्नत था, यह निर्विवाद है। इसका प्रमाण किसी ऐसे मानवीय व्यवहार में ढूंढा जा सकता है, जिसका आदि मानव में होना प्रमाणित हो और आज तक वह विद्यमान हो। कम से कम एक ऐसी बात है जो प्राचीन काल के मनुष्य में थी और जिसके चिन्ह आज तक विद्यमान हैं। वह है भाषा विज्ञान। प्राचीन ग्रन्थों की भाषा की आज की भाषा से तुलना की जा सकती है। यह देखा जा सकता है कि वैदिक भाषा संस्कृत से, संस्कृत प्राकृत तथा ग्रीक, लैटिन इत्यादि भाषाओं से भाव प्रकट करने में अधिक सक्षम, अधिक उच्चारणों को अंकित करने में समर्थ और अधिक विधिपूर्वक गठित थी। वर्तमान भाषायें उच्चारण करने में सुगम, स्मरण रखने में सुसाध्य तो हैं, परन्तु उनमें न तो प्राचीन भाषाओं का सा लालित्य, भाव पूर्ति की क्षमता (power of expression) है और न ही संक्षेप में अधिक बताने की क्षमता है। वर्तमान भाषाओं के उच्चारणों में सुगमता, कम उच्चारणों पर ही निर्वाह करने का यत्न इत्यादि, वास्तव में मानव सामर्थ्य में ह्रास के लक्षण हैं। मानव अनेकों उच्चारणों की सामर्थ्य से हीन हो चुका है। अतः इसकी भाषा में अक्षर कम हो रहे हैं। इसकी स्मरण शक्ति में ह्रास होने से यह विभक्ति रहित भाषाओं का निर्माण कर रहा है और किसी एक भाव को प्रकट करने के लिए अनेक शब्दों के प्रयोग के लिए विवश हो जाता है। परिणाम स्वरूप वर्तमान युग की भाषायें भाव प्रकट करने की सामर्थ्य में हीन और सुनने में कर्कश हैं।

भूमण्डल पर मिलने वाले ग्रन्थों में ऋग्वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है और इस की भाषा निस्सन्देह अधिक लालित्य पूर्ण, भाव पूर्ण और गागर में सागर के गुण रखती है। भाषा विज्ञान के ज्ञाता इस बात की साक्षी भरते हैं।

यह निर्विवाद सत्य है कि प्राचीन मानव आज के मानव से अधिक सामर्थ्यवान्, बुद्धिमान और निर्मल मन रखने वाला था।

ईश्वरीय ज्ञान की अनिवार्यता

जब यह सिद्ध हो गया कि मनुष्य बिना किसी के सिखाये कुछ भी नहीं सीख समता और प्राचीन मनुष्य आज से अधिक शिक्षित था तो वह शिक्षा उसे अथवा उस काल की मानव समाज को किसने दी ? यह मानना पड़ेगा कि उस समय कोई बहुत ही ज्ञानवान् सामर्थ्यवान् और बुद्धिमान तत्व उपस्थित था, जिसने आदि मानव तथा समाज को ज्ञान दिया होगा।

भारतीय परम्परा यह है कि वह ज्ञानवान्, सामर्थ्यवान और बुद्धिमान् तत्व परमात्मा था।

यथा—

शास्त्र यौनित्वात् ।। (वे० द०—१-१-३

ज्ञान का उद्गम स्थान परमात्मा है। जब ज्ञान बिना किसी के दिये आ नहीं सकता और आदि मानव वेद भाषा तथा ज्ञान का ज्ञाता था तो निस्सन्देह उसे किसी ने सिखाया होगा। वह परमात्मा है।

वेद में भी इसको स्वीकार किया है।

स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।। ८ ।।

(यजु०४०—८)

स्वयम्भु परमात्मा ने यथार्थ सनातन् उचित ज्ञान सबके लिए दिया।

और भी लिखा है :—

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दाᳪसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायते ।।७।।

(यजु० ३१-७)

यस्मादृचो अपातक्षन्यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।।२०।।

(अथर्व—१०—७-२०)

अर्थात—उस कल्याणकारी परमात्मा से जो प्रलय करने की सामर्थ्य

(शेष पृष्ठ २४ पर)

अस्तित्व की रक्षा (१६)

स्वामी विद्यानन्द 'विदेह'

संसार में केवल भारत एक ऐसा देश है जहां शौचालयों, मूत्रालयों, सड़कों, नालियों तथा गलियों की सफाई एक वर्ग-विशेष के ज़िम्मे है। गान्धी जी की तीन बातों का मैं अपने उपदेशों में प्राय: उल्लेख किया करता हूं। गान्धीजी कहा करते थे—यदि आप गन्दगी करना जानते हैं तो आपको सफ़ाई करना भी आना चाहिये, यदि आप खाना जानते हैं तो आपको खाना बनाना भी आना चाहिये, यदि आप पहनना जानते हैं तो आपको कपड़ा बुनना भी आना चाहिये। यहां इस लेख का सम्बन्ध गान्धी जी के प्रथम वाक्य से है। उपर्युक्त सफ़ाई की वर्गीयता ने ही मुख्यत: हरिजनों को अस्पृश्य बना रखा है। जैसाकि अन्य सब देशों में है, सफ़ाई का यह कार्य वर्ग-विशेष के ज़िम्मे न रह कर समाज के सभी वर्गों द्वारा करणीय होना चाहिये। साथ ही यह बात भी है कि हरिजनों के जो परिवार शिक्षा प्राप्त करके सुसंस्कृत होते जाते हैं, वे सफ़ाई के इस कार्य से मुक्त होकर सरकारी व गैर-सरकारी संस्थानों में नौकरियां करते हैं। वह समय भी निकट है जब ऐसे हरिजन-परिवार व्यापार-व्यवसाय तथा उद्योगों को अपनायेंगे। परन्तु यह क्रम बहुत लम्बा हो जायेगा। युग की आवश्यकता को देखते हुए सफ़ाई के इस काम की ज़िम्मेदारी से हरिजनों को मुक्त करके यह सभी वर्गों की संयुक्त ज़िम्मेदारी होनी चाहिये। सफाई के इस कार्य को एक राष्ट्रीय शिष्ट व्यवसाय का रूप दिया जाना चाहिये। जहां-जहां नगरपालिका तथा नगर निगम हैं, वहां-वहां नगरों की सफ़ाई का कार्य उसी प्रकार ठेके पर कराया जाना चाहिये जिस प्रकार अन्य अनेक कार्य कराये जाते हैं। ठेकेदार सफ़ाई के वैज्ञानिक कारण-उपकरण तैयार करके इस कार्य के लिये वार्षिकवृद्धियुक्त वेतनों की दरें निर्धारित करेंगे। आकर्षक वेतन तथा वैज्ञानिक उपकरणों की उपलब्धि पर सवर्णों के व्यक्ति भी स्वभावत: सफ़ाई-विभाग को अपनायेंगे। दूसरा विकल्प यह हो सकता है कि नगरपालिकायें तथा नगरनिगम स्वयं सफ़ाई-विभाग को स्वच्छता की दृष्टि से ऐसा वैज्ञानिक तथा आर्थिक दृष्टि से ऐसा लाभप्रद बनायें कि सवर्ण एक

सम्मानित कार्य समझकर इस विभाग की सेवाओं में प्रविष्ट होने में ग्लानि अथवा असम्मान अनुभव न करें। सवर्णों द्वारा सफ़ाई की साधना को अपनाये जाने पर इस विभाग में सवर्ण तथा हरिजन जब एकजुष्ट होकर कार्य कर रहे होंगे, तब हरिजनों के सवर्णों के साथ समस्तर होने में देर न लगेगी। तब न हरिजन 'हरिजन' होंगे, न सवर्ण 'सवर्ण' होंगे। तब दोनों एकवर्ण होंगे—केवल हिन्दु वा आर्य होंगे।

सारे देश में सरकारों द्वारा शिक्षा के अनिवार्यकरण में प्रत्यक्षतः अभी पर्याप्त समय लगेगा, क्योंकि इस दिशा में आर्थिक परिस्थितियाँ अभी अनुकूल नहीं हैं। किन्तु प्रत्येक प्रदेश तथा केन्द्रशासित क्षेत्रों में हरिजन बालक-बालिकाओं के लिये मैट्रिक तक की शिक्षा आसानी से अनिवार्य तथा निःशुल्क की जा सकती है। वास्तविक हरिजनों की संख्या सम्पूर्ण भारत में अधिक नहीं है। "वास्तविक" शब्द का प्रयोग यहां मैंने इरादतन किया है। सरकारी लाभों की प्राप्ति के लिये बहुत से अहरिजन भी अपने-आपको हरिजन घोषित करने लगे हैं।

स्वयं हरिजनों को इस बात का पूर्ण उद्योग करना चाहिये कि वे सफ़ाई के कार्य को स्वच्छ और सम्मानित बनायें। नगरपालिकाओं तथा नगर-निगमों के अतिरिक्त भारत की केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों को चाहिये कि वे पाश्चात्य देशों की सफ़ाई-व्यवस्था के अध्ययनार्थ उच्च-शिक्षा-प्राप्त कुशल व्यक्तियों को उन देशों में भेजें। वापसी पर वे सरकारों को अपनी रिपोर्ट पेश करते हुए ऐसे सुझाव प्रस्तुत करें जिनके क्रियान्वयन से जहां समूचे भारत की स्वच्छता सम्पूर्णता को प्राप्त हो वहा हरिजनों का भी निर्मूलन हो।

सम्पन्न सवर्ण परिवारों को घरेलू सेवकों का अभाव बहुत परेशान करता जा रहा है। ऐसे परिवारों को चाहिये कि वे घरेलू कामकाज के लिये हरिजन स्त्री-पुरुषों को नियुक्त करने लग जायें। अफ्रीका में निवास करनेवाले सम्पन्न सवर्ण परिवारों में भोजन बनाने, कपड़े धोने, कमरों को स्वच्छ तथा सज्ज करने के लिये अफ्रीकन हब्शियों को सेवक के रूप में रखा जाता था, जो भारत के हरिजनों से किसी भी दृष्टि से बहतर नहीं होते थे। सवर्णों के परिवारों में काम करते-करते वे सवर्णों के समस्तर हो गये थे। लौनों [दूब वाटिकाओं] तथा उद्यानों को संजोने का कार्य भी हरिजनों को सिखाया जा सकता है। बाग़वानी सिखाकर नगरनिगमों तथा नगरपालिकाओं के पार्कों में उनकी सेवाओं का उपयोग किया जा सकता है।

[अपूर्ण]

देश और कांग्रेस

श्री गुरुदत्त

देश में सत्तारूढ़ दल इण्डियन नैशनल कांग्रेस' से देश की किसी भी भलाई की आशा रखना बबूल के वृक्ष से आमों की आशा रखने के समान ही है। कांग्रेस को सत्ता सम्भाले आज बाईस वर्ष हो चुके हैं और इन बाईस वर्षों में देश की अपार हानि हो चुकी है।

देश में निर्धनता बढ़ी है। देखने को बड़े बड़े महल, कारखाने, डैम दिखायी देते हैं परन्तु देश सामूहिक रूप में अति ऋणी हुआ है। किसानों की आय बढ़ गयी है, परन्तु उनका व्यय आय के अनुपात में अधिक हो गया है। सरकारी नौकरों की संख्या बहुत बढ़ गयी है, परन्तु व्यय के अनुपात से प्रत्येक सरकारी कर्मचारी का वेतन कम ही है। बड़े से बड़ा वेतन लेने वाला भी अपने व्यय पूरे नहीं कर सकता।

देश में अनैतिकता बढ़ी है। झूठ, फ़रेब, रिश्वत, चोरी, कत्ल और आत्म-हत्यायें कई गुणा अधिक हो गयी हैं। बलवे, लूट-खसूट, छीना-झपटी, हत्यायें और अग्निकाण्ड सामान्य घटनाएँ हो गयी हैं। मज़दूर, रिक्शा वाले, क्लर्क और विद्यार्थी सभी जलूस निकालना और फिर जलूसों में हिंसात्मक प्रदर्शन करना अपना अधिकार मानते हैं। किसी को कुछ भी असन्तोष हो, वह किसी सार्वजनिक स्थान पर लेट भूख हड़ताल करना एक पुण्य का काम मानने लगा है और चण्डीगढ़ जैसे तुच्छ विषय पर तो एक आहुति चढ़ चुकी है और दूसरी तैयार है।

हमारा यह मत है कि यह सब कुकृत्य और देश-घातक व्यवहार कांग्रेस की नीतियों का सीधा परिणाम है।

परन्तु देश की स्थिति यह है कि जो भी इन नीतियों का विरोध करता है, उसकी कोई सुनने के लिये तैयार नहीं। आइये, तनिक वर्तमान कांग्रेस में फूट के उद्गम स्थान को देखें।

जबसे कांग्रेस सत्तारूढ़ हुई है, तबसे नेहरू परिवार का यहां राज्य रहा है। थोड़े से काल को छोड़कर, जब श्री लालबहादुर शास्त्री प्रधानमन्त्री बने,

देश का प्रधान मन्त्रीत्व नेहरू परिवार में रहा है । सन् १९४६ से १९६४ तक श्री जवाहरलाल नेहरू प्रधान मंत्री रहे और १९६६ से आज तक इन्दिरा गाँधी सत्ताधीश हैं । जिस किसी ने भी जवाहरलाल नेहरू की नीतियों का विरोध किया, वह मक्खन में से बाल की भांति निकाल बाहर कर दिया गया।

सबसे पहले आचार्य कृपलानी निकाले गये । फिर वल्लभभाई पटेल को निस्तेज किया गया । तदनन्तर श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन को कान से पकड़ कर बाहर किया गया । छोटे-मोटे तो कई निकाले गये । देशमुख, डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी, नियोगी, गाडगिल इत्यादि । यह नेहरू परिवार की परम्परा रही है कि वह अपने विरोधियों को सहन नहीं कर सकता था ।

एक बार तो पण्डित मोतीलाल नेहरू ने महात्मा गांधी तक को धमकी दे दी थी । यह सन् १९२० की बात है । उन्होंने अपने पुत्र को लिखा था—

I have already warned Dass that we must be prepared for a big tussle, Gandhiji's going to Delhi for a talk with Shastri, his constant association and general agreement with Malaviya are no gcod omens for Gandhiji himself. Here is such a thing as trusting too much to one's popularity. Mrs. Besant is paying for it and others have done the same. It **will be a great grief to me it Gandhiji follows suit.**

यह गांधी जी को धमकी दी गयी थी और गांधी जी (like a good boy) शास्त्री और मालवीय जी का साथ थोड़ खिलाफ़त आन्दोलन के पक्षपाती हो गये थे ।

यही बात जवाहरलाल नेहरू ने श्री कृपलानी और सरदार पटेल से की थी । श्री पटेल ने पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपया न देने का प्रस्ताव रखा था और जवाहर लाल नेहरू ने गांधी जी द्वारा उनके कान खिंचवा दिये थे ।

श्री टण्डन ने जवाहरलाल जी की हिन्दी विषयक नीति का विरोध किया तो पहले उनको उत्तर प्रदेश की विधान सभा के अध्यक्ष पद से हटाया और फिर पीछे कांग्रेस के प्रधान पद से हटवाया ।

अतः आज जब इन्दिरा गांधी ने श्री निजलिंगप्पा को चलता किया है तो यह कोई नयी बात नहीं है । श्री निजलिंगप्पा ने फ़रीदाबाद कांग्रेस अधिवेशन में कह दिया था कि सरकारी उद्योग क्षेत्र ठीक नहीं चल रहे । भला इतनी गुस्ताखी करने वाले को क्षमा कैसे किया जा सकता था ? सरकारी क्षेत्र प्रधान मन्त्री इन्दिरा गांधी की निजी सम्पत्ति थीं । उसके कार्य पर अंगुली करने वाले को कैसे क्षमा किया जा सकता था ?

वर्तमान कांग्रेस में होने वाली घटना का बीज नेहरू परिवार में है। जब तक इस परिवार की समाधियों पर गुलाब के पौधे लगाये जाते रहेंगे, तब तक देश के सब भले लोग इस प्रकार की लातें खाते रहेंगे।

यदि एक प्रश्न आर्य समाजियों से भी पूछा जाये तो क्या वह अनुचित होगा ? लखनऊ में आर्य समाज की अर्ध शताब्दी के अवसर पर श्री नेहरू का अभिनन्दन का रस-स्वादन मिला अथवा नहीं ? भला जो पटेल और टण्डन का झटका कर सकता था, वह बेचारे आर्य समाजियों और आर्य समाज की क्या चिन्ता करता !

वर्तमान स्थिति यह है कि ५१८ सदस्यों की लोक सभा में २८१ कांग्रेसी थे। कांग्रेस के चोटी के नेताओं के साथ केवल ६३ सदस्य हैं और शेष २१८ इन्दिरा गांधी के साथ हैं। प्रधान श्री निजलिंगप्पा के साथ कम लोग क्यों हैं और इन्दिरा गांधी के साथ इतने अधिक क्यों है, यह विचार का विषय है।

किसी भी बुद्धिमान व्यक्ति को कांग्रेस प्रधान का कथन सत्य प्रतीत होता है कि इन्दिरा गांधी घोर अनियन्त्रण (gross indiscipline) की अपराधी है। इस पर भी कांग्रेस में और कांग्रेस के बाहर भी इन्दिरा गांधी का पक्ष प्रबल है। लोक सभा के वर्तमान सत्र के प्रथम दिवस में होने वाले रबात विषयक विवाद पर इन्दिरा की सरकार के पक्ष में इतना बहुमत आना यह प्रकट करता है कि इस देश में कुछ आधार भूत गलती हो रही है। रबात कॉन्फरेंस मुसलमानी देशों की कान्फरेंस थी। इसमें विचारणीय सब विषय इस्लामी राज्यों से सम्बन्धित थे। विपक्षी लोक सभा में चीख-पुकार करते रहे, परन्तु परिणाम वही ढाक के तीन पात।

अतएव हमारा यह कहना है कि इस देश में कुछ मूल-चूल गलत हो रहा है। वह क्या है ? इस विषय में कुछ प्रश्न हैं—

१. क्या कहीं अर्थ सम्बन्धी बातें जनता में बलिदान की भावना उत्पन्न करती देखी गयी हैं ? रोटी प्राप्त करने के लिये लोग हत्यायें तो करते देखे जाते हैं, परन्तु कहीं त्याग और तपस्या करते नहीं देखे जाते ?

अतएव क्या यह सत्य नहीं कि सोशलिज्म की भावना ने हत्यायें, अग्नि-काण्ड, गोली, बम्ब और छीना-झपटी करायी है, परन्तु कहीं पर भी इस भावना ने देश तथा जाति के लिये परिश्रम और बुद्धिशीलता को जन्म नहीं दिया है।

२. सम्प्रदाय हीनता संसार में कहां दृष्टिगोचर होती है ? जहां जहां मनुष्य समाज है वहां वहां सम्प्रदाय हैं। यह बात दूसरी है कि सम्प्रदाय किसी न्यायसंगत तथा सत्य सिद्धान्त पर आधारित हों अथवा अन्यायाचरण, मिथ्या-वादिता, नैतिक पतन इत्यादि दुष्ट सिद्धान्तों पर बने हों। यह निर्विवाद है कि सम्प्रदाय के बिना मानव समाज नहीं रह सकता।

अतः क्या यह ठीक नहीं होगा कि न्याय, सत्य, धर्म और उदारता पर स्थित सम्प्रदायों को उभारा जाये ? साम्प्रदायिकता का खण्डन अर्थहीन है। भले अर्थात् दैवी सम्प्रदायों के समर्थन के लिये संगठित होना क्यों ठीक नहीं और दूषित सम्प्रदायों को निःशेष करना क्यों ठीक नहीं ?

३. क्या सत्य और झूठ का निर्णय हाथ खड़े कर किया जाना चाहिये ? आज इन्दिरा गांधी के पक्ष में देश और कांग्रेस के प्रतिनिधियों का बहुमत है तो क्या इसका यह अर्थ है कि श्रीमती गांधी ने कांग्रेस के राष्ट्रपति पद के लिये खड़े किये प्रत्याशी का विरोध नहीं किया ? क्या बहुमत का यह अर्थ है कि श्रीमती गांधी के बोले सब झूठ सत्य हो गये हैं ? क्या बहुमत से यह सिद्ध हो गया कि सरकारी उद्योग क्षेत्र में भारी लाभ हो रहा है अथवा देश में महंगाई नहीं है ? इस प्रकार कुछ बहुमत से क्या यह सिद्ध हो गया कि रबात कांफरेंस मुस्लमानी देशों की कान्फरेंस नहीं अपितु एशियाई देशों की थी।

सत्य, धर्म और न्याय मतदान से निश्चित नहीं होते।

४. विपक्षियों के 'सलोगनों' (समाघोषों) को दोहराने से क्या विपक्षी दल दुर्बल होता है ? समाजवाद वेदों में भी है, आज कुछ इस प्रकार की घोषणाएँ की जा रही हैं। इससे वेदों की महिमा बढ़ती है क्या ? अनुभव में ऐसा नहीं है। जो दल विपक्षियों के समाघोषों को उधार लेकर अपना कार्य चलाते हैं, वे वास्तव में विपक्षियों की ही सहायता करते हैं।

श्री जवाहरलाल नेहरू ने नारा लगाया समाजवाद का। भले-बुरे सब लोग इस नारे को कूकने लगे। परिणाम हुआ जवाहरलाल की जय। यदि हिन्दु महा सभा, भारतीय जनसंघ, आर्य समाज, सनातन धर्म सभा, समाजवाद का पक्ष लेती हैं तो निस्सन्देह वे अपनी अपनी संस्था का प्रचार नहीं करतीं, वरन् जवाहरलाल नेहरू के विचारों का ही प्रचार करती हैं।

कोई भी पूछ सकता है कि यदि अशोक मेहता अथवा मुरार जी देसाई भी वहीं करना चाहते हैं जो इन्दिरा गांधी करने को कह रही हैं तो फिर झगड़ा किस बात का है ? अरे, मुरार जी भाई ! तुम उप प्रधान मन्त्री अथवा वित्त मन्त्री रहीं रहे तो एक सामान्य नागरिक को क्या ? करना तो तुम भी वही चाहते हो। इन्दिरा के साथ बहुमत है, उसके हाथ में राज्यसभा है; अतः जब तक वह प्रधान मन्त्री है और वही कर रही है जो तुम कह रहे हो तो फिर कृपया कुछ देर आराम करो और देखने दो कि वह क्या करती है ?

५. भारतीय जनसंघ भी भारत नाम के अन्तर्गत भावना का पोषक है और कांग्रेस भी यही कहती है तो फिर जनसंघ की आवश्यकता क्यों है ?

भारतीय जनसंघ में कुछ विलक्षणता तो है, परन्तु उस विलक्षणता की

घोषणा करनी चाहिये । जब तक ऐसा नहीं होता, जनता इसकी मान्यता को भला क्यों स्वीकार करेगी ?

भारतीयता में क्या घोटाला है ? यह स्पष्ट है । देश में वे भी भारतीय हैं, जो पाकिस्तान में हिन्दुओं पर हो रहे अत्याचार को प्रसन्नता की दृष्टि से देखते हैं । सब मुसलमान ऐसे न हों, परन्तु यहां ऐसे लोग अवश्य हैं और वे भी भारतीय हैं ।

अतएव भारतीय और हिन्दु पर्यायवाचक नहीं हो सकते । कोई हिन्दू अपनी सरकार की पाकिस्तान के प्रति नीति का विरोध अथवा समर्थन कर सकता है, परन्तु इन देश के रहने वालों पर पाकिस्तान का अत्याचार सहन क्या वह कर सकेगा ?

हम पाकिस्तान में रहने वाले हिन्दुओं को इस देश के नागरिक ही मानते थे और अब भी जो इस देश के प्रति सद्भावना रखते हैं, वे हिन्दू ही हैं । इस देश के बाहर बसे वे वहाँ के नागरिक मात्र हैं । ऐसी ही भावना प्रायः सब हिन्दुओं की है । इसमें अपवाद हैं नेहरू परिवार के पिछलग्गू ।

अतः हम पूछते हैं कि क्या भारतीय शब्द ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना चाहिये ? भारतीय शब्द रखते हुए भी हम हिन्दू हैं और इस देश में बहुसंख्यक होने से हिन्दुओं के अधिकार विशेष हैं ।

ऐसा क्यों नहीं ? हिन्दू शब्द में क्या दोष है ? इसकी मुसलमान और ईसाई निन्दा करते हैं तो क्या यह शब्द निन्दनीय हो गया है ?

आधारभूत बातें जिन पर देश की राष्ट्रीयता स्थित होनी चाहिये, वह हैं हिन्दु समाज, सबके साथ न्याय, सबसे यथायोग्य व्यवहार, सबको विचार स्वतन्त्रता एवं प्रचार स्वतन्त्रता, सब कार्यों पर धर्म का नियन्त्रण, धर्म युक्त आय करने की और अर्जित अर्थ को धर्मयुक्त ढंग से व्यय करने की स्वतन्त्रता,

अर्जन करने पर और अर्जित आय को रखने पर धर्म के अतिरिक्त अन्य कोई प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिये ।

भूखा, नंगा और प्यासा कोई न रहे । इनमें अपवाद हैं कामचोर, दुष्ट, अत्याचारी, परद्रव्यापहारी लोग ।

परन्तु भारत में क्या उधार लिये समाघोषों पर दल रहीं बन रहे ? प्रायः समाघोष कम्युनिस्टों के नहीं हैं क्या ? इनसे कम्युनिज्म का प्रचार ही होगा । इन्दिरा गांधी की जयजय कार होगी और देश का पतन चलता रहेगा ।

●

(पृष्ठ १८ का शेष)

रखता है, ऊससे ऋक्, साम और अथर्व वेद प्रकट हुए। यजुर्वेद भी उसी से प्रकट हुआ।

जिससे ऋचायें, यजु- साम और अथर्व प्रकट हुए, वह स्कम्भ है, वह अत्यन्त सुखमय है।

यह तो वेद में प्रमाण है कि वेद ज्ञान परमात्मा ने मनुष्य को दिया। इससे पहले हम युक्ति से बता चुके हैं कि आदि सृष्टि में मनुष्य को किसी अति ज्ञानवान्, सामर्थ्यवान, बुद्धिमान् तत्त्व ने ज्ञान दिया है। दोनों ढंग से भारतीय परम्परा की पुष्टि होती है। सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं और वे मानव कल्याण के लिये परमात्मा द्वारा दिये गए हैं।

(क्रमशः)

(पृष्ठ ११ का शेष)

लोग यह समझते हैं कि इस्लाम का मोर्चा ढीला पड़ गया है, उन्हें द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त का इतिहास पढ़ना चाहिये। हमारा यह भी मत है कि कम्युनिस्ट मोर्चा भी ढीला नहीं पड़ेगा। विचारों का संघर्ष विचारों से चलता है और स्वार्थमय हितों का संघर्ष स्वार्थमय हितों से। जहां सब देशों को अपने अपने स्वार्थों का चिन्तन करना आवश्यक है, वहां देशों को अपने में बसे मानव कल्याण का भी चिन्तन करना पड़ेगा। अन्यथा मानवता भूतल से विलीन हो जायेगी।

रहा यह प्रश्न कि वैचारिक संघर्ष में तोपें, बन्दूकें इत्यादि शस्त्र चलते हैं, हम इसके पक्ष में नहीं हैं। परन्तु तोप, बन्दूकों को चलना केवल एक पक्ष के कहने से नहीं रुक सकता। जब तक दोनों पक्ष इस बात पर सहमत नहीं हो जाते कि विचार-संघर्ष में बल प्रयोग नहीं होगा, तक एक पक्ष का शान्त रहना निरर्थक होगा।

योगीराज श्रीकृष्ण

श्री सचदेव

श्रीकृष्ण के एक पुरखा देवमीढ़ थे। देवमीढ़ के पुत्र शूरसेन थे और शूरसेन के दस पुत्र थे, जिनमें वसुदेव सबसे बड़ा था। वह आनक दुंदुभि कहा जाता था। यह किंवदन्ती थी कि उसके जन्म के समय देवताओं के नकारे स्वयमेव बज उठे थे।

शूरसेन की पांच लड़कियाँ भी थीं। उनमें पृथा सबसे बड़ी थी। पृथा को कुन्तिभोज ने गोद ले लिया था। कुन्तिभोज के अपनी कोई सन्तान नहीं थी।

शूरसेन के काल में यदुवंशियों की सब शाखाओं के राजा मथुरा को अपनी राजधानी बना कर रहते थे। यदुवंश की मुख्य शाखायें तीन थीं। वृष्णि, आन्ध्र और भोज। शूरसेन वृष्णि शाखा का पुरखा था, परन्तु चलती थी भोजवंशीय कंस की।

कंस उग्रसेन का लड़का था। इसका विवाह जरासंध की पुत्रियों अस्ति और व्यस्ति से हो चुका था। कदाचित् जरासंघ ने अपनी पुत्रियों का विवाह कंस से स्वीकार ही इस कारण किया था कि दोनों अति दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति थे।

मथुरा में कंस के अत्याचार से प्रजा और यदुवंशीय त्रसित थे। कंस स्वयं बहुत बलशाली था। उसके पास सेना भी बहुत बड़ी थी। सेना के अतिरिक्त बड़े बड़े योद्धाओं को इसने अपने चारों ओर एकत्रित कर रखा था।

शूरसेन महाराजा था और अन्य यदुवंशीय उसे बड़ा मानते थे। कंस शासन करता था और शूरसेन उसके सामने बोल नहीं सकता था।

कृष्ण का जन्म

वसुदेव की कई पत्नियां थीं। उनमें पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला और देवकी इत्यादि प्रमुख थीं।

देवकी सबसे छोटी थी। वह राजा देवक जो भोजवंशीय था, की लड़की

थी। देवक कंस का चाचा था।

देवकी के विवाह के समय एक घटना घटी। कंस देवकी से बहुत स्नेह रखता था। अतः विवाह के उपरान्त विदाई के समय वह देवकी और वसुदेव का रथ स्वयं हांकने लगा। इस समय किसी ने यह भविष्यवाणी कर दी कि यह मूर्ख जिसको इतने चाव से लिये जा रहा है, उसकी सन्तान ही इसकी हत्या करेगी।

यह भविष्यवाणी कंस के कान में पड़ गयी और वह उसी समय देवकी की हत्या कर देने के लिए तत्पर हो गया, परन्तु कुछ लोगों ने बीच-बचाव कराकर यह समझौता करा दिया कि देवकी की सन्तानें कंस को सौंप दी जाया करेंगी।

इस शर्त की अक्षरशः पूर्ति के लिए देवकी और वसुदेव के प्रासाद के बाहर पहरा बैठा दिया गया। दूसरे शब्दों में वे अपने ही प्रासाद में बन्दी के रूप में रहने लगे।

देवकी के एक एक कर आठ सन्तानें हुईं। इसमें से प्रथम सात कंस को सौंप दी गयीं और कंस ने उन सातों को मरवा डाला। जब देवकी आठवीं बार गर्भधारण कर चुकी तो विचार होने लगा कि उसे बचा लिया जाये। इसके लिए एक षड्यन्त्र किया गया और आस-पास के गांवों में कोई ऐसा दम्पति ढूंढा गया, जिसके घर उसी दिन सन्तान होने वाली थी। इसके बालक को बन्दीगृह से निकालने का प्रबन्ध किया गया।

देवकी के प्रसव हुआ भाद्रपद के कृष्णपक्ष की अष्टमी की रात्रि के समय। पूर्व प्रबन्धानुसार देवकी की अष्टम सन्तान (जो एक पुत्र था) को बन्दीगृह से निकाल कर गोकुल पहुंचा दिया गया और वहां के नन्द और यशोदा की लड़की को उसके स्थान पर कंस को सौंप दिया गया। कंस ने उसको भी मार डाला।

बाल्यकाल

शिशुकाल की बहुत कथायें सुनायी जाती हैं। पूतना दाई को मार डालना, पांव की ठोकर से छकड़े को उलट देना, मां के साथ अनेकानेक कलोलें करना।

वास्तव में बड़े लोगों के बाल्यकाल की ऐसी कथायें जनसाधारण में प्रचलित हो जाया करती हैं। सब महापुरुषों के मरने के उपरान्त इनका प्रचलन होता है। इनमें से कौन कथा कितनी सत्य है और कौन सी कितनी कल्पना, कहना कठिन है।

इसी प्रकार बाल्यकाल की कथायें भी प्रचलित हो गयी हैं। कालियानाग

का दमन, कंस द्वारा भेजे कुछ दैत्यों को मल्ल युद्ध में परास्त करना, गोपियों और ग्वालों से खेल-कूद, नांच-रंग आदि।

इन कथाओं को किसी भी पुराण अथवा महाभागवत् पुराण में से पढ़ा जा सकता है। हमारी इस कथा का श्रीकृष्ण के बाल्यकाल के रासरंग अथवा शौर्य के कामों से सम्बन्ध नहीं। हम समझते हैं कि योगीराज कृष्ण के जीवन, आचार-विचार के साथ इन कथाओं का सम्बन्ध नहीं। योगीराज कृष्ण बाल लीला के कारण प्रसिद्ध नहीं है। उसकी वास्तविक कथा आरम्भ होती है उस मल्ल युद्ध से, जो कंस ने कृष्ण और बलराम की हत्या कराने के लिए कराया था।

कौमार्यावस्था

इस आयु में प्रलम्ब शंखचूड़ इत्यादि वन में विचरने वाले असुरों से कृष्ण का सामना हो गया। वे मारे गये तो श्रीकृष्ण की ख्याति एक योद्धा के रूप में दूर-दूर फैलने लगी। यह ख्याति मथुरा में पहुंची। इससे कंस को चिन्ता लग गयी कि यह कौन उसके राज्य में उत्पन्न हो गया है, जो कुमारावस्था में भी बड़े बड़े योद्धाओं को पछाड़ने लगा है।

कंस की सेवा में बहुत बलशाली योद्धा रहते थे। उसने इस युवक को। मरवा डालने के लिए अपने योद्धाओं में से एक अरिष्टासुर को वृन्दावन में भेजा

अरिष्टासुर और श्रीकृष्ण में मल्ल युद्ध हुआ और अरिष्टासुर मारा गया। इस पर कंस को कुछ ऐसा समझ आया कि देवकी के विवाह के समय हुई भविष्यवाणी सत्य सिद्ध होने जा रही है।

उसको सन्देह हो गया कि वसुदेव और देवकी उससे छलना खेलते रहे हैं और उन्होंने अपनी कोई सन्तान चोरी-चोरी कहीं पालने के लिये भेज दी है। इस पर उसने वसुदेव और देवकी को पुनः बन्दी बना लिया और एक कैशी मल्ल को ब्रज के दोनों कुमारों (कृष्ण एवं बलराम) को मार डालने का आदेश दे भेज दिया।

जब कैशी भी मारा गया तो कंस ने षड्यन्त्र किया और इन दोनों भाइयों को मथुरा में बुलाकर इनको बहुत से योद्धाओं से एक दम लड़वा कर मरवा डालने का विचार बना लिया।

कंस ने मल्ल युद्ध दंगल का आयोजन किया और पूर्ण राज्य के मल्ल योद्धाओं को उसमें आमन्त्रित किया। श्रीकृष्ण तथा बलराम को भी आमन्त्रित किया गया। इस समय तक ये दोनों भाई अपना इतिहास जान चुके थे। अतः ये कंस से अपने माता-पिता को मुक्त कराने के विचार से दंगल में जा कंस से युद्ध करने का विचार बना बैठे।

निमन्त्रण यदुवंश के एक प्रमुख व्यक्ति अक्रूर द्वारा भेजा गया। यद्यपि अक्रूर ने मथुरा जाने पर भय में कारण बता दिया था, परन्तु कृष्ण ने हठ किया और दोनों भाई कुछ ग्वाल भाइयों के साथ दंगल के अवसर पर मथुरा जा पहुंचे।

कंस-वध

जब कंस को विदित हुआ कि ब्रज के दोनों कुमार आ रहे हैं तो उसने दंगल में पहुंचने से पहले ही उनको एक बृहत् काय हाथी से मरवा डालने की योजना बना ली।

मल्ल शाला के द्वार पर कुवलयापीड़ नामक हाथी को खड़ा कर दिया गया और महावत को यह आज्ञा दे दी कि जब अक्रूर के साथ दो युवक आयें तो हाथी को उनके ऊपर छोड़ दे और उनको हाथी की सूंड में भीच कर भूमि पर पटक पटक मरवा डाले।

परन्तु उस हाथी को वहाँ खड़े देख कृष्ण समझ गया कि योजना क्या है। अतः वह आगे बढ़ा और ज्यों ही हाथी उसकी ओर लपका, कृष्ण चपलता से हाथी की पीठ की ओर हो गया। हाथी इतनी तेजी से घूम नहीं सका, जितनी तेजी से कृष्ण हाथी के पीछे जा, उसकी पूंछ पकड़ उसके ऊपर चढ़ गया। एक क्षरण में ही महावत को मार कृष्ण ने अंकुश से हाथी के कान में वार किया और कुवलयापीड़ घायल तथा पीड़ा से तड़फड़ाता हुआ भूमि पर लेट गया। तदनन्तर वह मारा गया और कृष्ण तथा बलराम मल्लशाला में जा पहुंचे। कंस उनको जीवित देख भयभीत हो सब योद्धाओं को कहने लगा कि पकड़ो, मारो इनको।

परन्तु योद्धा, जो हाथी के मारे जाने का समाचार पा चुके थे, भयभीत हो भागने लगे। केवल दो योद्धा ही साहस कर आगे आये, परन्तु वे तो एक एक घूंसे के वार से चित हो गये।

इस पर कृष्ण ने कंस को ललकारा और कहा कि मैं तुम से युद्ध के लिए आया हूं।

कंस का उत्तर था, तुम कुलीन नहीं हो। यदुवंशीय राजकुमार एक ग्वाले से नहीं लड़ सकता।

इस पर कृष्ण ने अपने माता-पिता का परिचय दिया। यह सुन कंस के प्राण सूख गए। उसे भविष्यवाणी स्मरण हो आयी। वह भयभीत हो उठ कर भागने लगा, परन्तु कृष्ण चपलता से सिंहासन पर चढ़ गया और उसने कंस को गर्दन से पकड़ धर दबाया। संक्षिप्त-सा युद्ध हुआ जिसमें कंस मारा गया।

वेद में सोम का स्वरूप

श्री रामशरण वसिष्ठ

वैदिक साहित्य में सोम के अनेक अर्थ हैं। अनेक मन्त्रों में यह परमात्मा का वाचक है। किसी स्थान पर वह राजा का द्योतक है। चन्द्र को भी सोम तथा इन्दु कहा गया है। कुछ मन्त्रों में वह पति के अर्थ में आता है, परन्तु अधिक मन्त्र ऐसे हैं जिनमें सोम औषध की महिमा वर्णन करता है। उसके उगने का स्थान और समय, सोम रस निकालने की विधि और पान करने के लाभ बताये हैं। यज्ञों में इन्द्र आदि को आवाहन करके सोम की हवि देने का विधान है। सोम यज्ञ भी करते हैं। सोम एक दैवी शक्ति का भी नाम है जो संसार में उत्पत्ति काल से आती है और अपना कार्य करती है। सोम को सूर्य का सहायक बताया है, जो उसे प्रकाश देता है। सोम द्वारा ही वनस्पति अर्थात् वृक्षों का उद्‌भव हुआ। सोम के अणु पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यूलोक तक जाते हैं। वहां फट कर प्रकाश देते हैं।

सोम को सर्वोत्तम औषधि बताया है। (ऋ० १०-९७-१८) सोम रस के पान से बल प्राप्त होता है। (ऋ० १९१-१८) इससे प्रसन्नता मिलती है और बुद्धि तथा वाणी की शक्ति बढ़ती है। (८-३२-१, ८-४९-४) उससे हिम्मत बढ़ती है और सुस्ती दूर होती है। (९-४७-२, ३) सोम की बूटी ऊँचे पहाड़ों पर उगती है। (३-४८-२) वह चांद की चान्दनी में फैलती है। उसके पत्ते तोड़ कर दो पत्थरों के बीच में रख दबाते हैं। रस निकलता है, उसको छानते हैं, उसको पीते हैं अथवा दूध, दही, शहद व जौ मिलाकर पीते हैं। इस विषय पर अनेक मन्त्र आते हैं। ऋ० १-२८, ८-२, ९-६२ आदि कई मन्त्र हैं। ऋ० ५-८५-२ में भी इसका वर्णन है। (९-४६, १ से ४ में भी है।) सोम पान से आयु बढ़ती है। (९-९७-१४) इसके कई लाभ वर्णन किये हैं। खोज करने वालों ने बताया है कि यह बूटी नैपाल में झील के किनारे उगती है।

सोम बहुत मन्त्रों में प्रभु का वाचक है। ऋ० १-९१ में १८, १९, २० में प्रार्थना की गयी है कि हमारी हवि को ग्रहण करो, हमारी आयु लम्बी

करो। १-६१-८ में सोम से प्रार्थना है कि हमें रोगों व दुःखों से बचाओ।

इन्द्र के सम्बन्ध में आने वाले अनेक मन्त्रों में उसको सोम का प्यारा बताया गया है। ६-४४ ऐसे ही ६-११३-४, ६-१०-५६-४, ६-१०८-१३ में भी सोम के अर्थ ईश्वर के हैं।

ऋ० ८-७६-२ में आता है कि सोम नग्न को वस्त्र देता है। अंधे को चक्षु और बहरों को कान। ऋ० १०-५६-४ में भी सोम प्रभु का वाचक है। ऋग्वेद में नवें मण्डल के सब मन्त्र पवमान् सोम पर हैं, जिनमें ईश्वर की पवित्र करने की शक्तियों का वर्णन है। शेष वर्णन गौण है।

ऋ० १०-८५-२ में सोम पृथिवी, आदित्य और नक्षत्रों का बल देने वाला कहा है और १०-८५-५ में सोम चन्द्रमा का वाचक है। एक बड़ा सुन्दर मन्त्र १०-८५-३ है कि सोम रस के पीने वाले तो बहुत हैं, परन्तु असली सोम को जानने वाले बहुत कम पुरुष हैं। जो सारे संसार का स्वामी है। परमात्मा के रूप में सोम सांसारिक नियमों को बनाता है, दुष्टों को दण्ड देता है, सोम सर्वव्यापक है। ६-४१-२। सोम दिव्य शक्ति भी है जो ऋ० ६-६६-५ में वर्णित की गयी है। इस शक्ति ने उत्पत्ति काल में पृथिवी और अन्तरिक्ष को फैलाया।

सोम ने ही पृथिवी, जो पहले बिना वृक्ष के थी, उस पर वनस्पति, औषधि और वृक्षों को रचा। सोम के कारण ही सूर्य प्रकाश देता है। इसका वर्णन ६-६१-३१ में है। यजुर्वेद ३४-२१ में भी सोम का वर्णन आता है।

सोम कुछ मन्त्रों में सूर्य का वाचक है। १-४६-१ सूर्य के रूप में वह वर्षा करता है। सोम के परमाणु तीनों लोकों में मिलते हैं।

इसी प्रकार ऋ० ६-६३-४ में वह सूर्य के अर्थ देता है। ६-६१-२८ में वह चन्द्रमा के अर्थ देता है और ६-६१-२६ में वह राजा का अर्थ देता है और ८-६८-८ में भी 'हे राजन्! तू हमारे शत्रु को मार भगा।'

अतः २-३६-३ में सोम पति के अर्थ देता है और १०-८५-३६,४० में सोम को कन्या का पति कहा है।

इससे यह ज्ञात है कि वेद मन्त्रों में सोम के भिन्न भिन्न अर्थ हैं। यह वेद की शैली है; क्योंकि वेद में शब्द योगिक अर्थ वाले होते हैं। सोम शान्ति-दायक है, बलदायक है, शक्तिशाली है। जो उसकी पूजा करता है, उसको प्रभु सारे पदार्थ वन, पशु, वैभव और उन्नति देता है। भाग्यशाली स्त्री और चतुर पुत्र देता है। यदि वेद पाठी विद्वान उसका ध्यान न करेगा कि सोम के इस मन्त्र में क्या अर्थ है, वह भूल में पड़ जायेगा और ठीक अर्थ न जानेगा।

यह भेद भाव क्यों ?

श्री आनन्द किशोर झा
(अध्यक्ष वैरिया मंडल भारतीय जन संघ)

भारतीय संविधान के अनुसार भारत का प्रत्येक नागरिक कानून की नजरों में समान है। उसे विचार-स्वातन्त्र्य-अभिव्यक्ति, लेखन आदि अनेकों प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त है ताकि प्रत्येक भारतवासी अपना सर्वांगीण विकास कर सके। साथ ही संविधान में इन स्वतन्त्रताओं पर कुछ प्रतिबन्ध भी हैं। प्रतिबंध इसलिए लगाया गया है कि स्वतन्त्रता के आवेश में व्यक्ति अपनी सीमा को न पार कर जाय। परन्तु हमारी सरकार संविधान एवं कानून को अपनी खास धरोहर समझती है और वह अपनी इच्छानुसार उसका अर्थ लगाती है। हालांकि संविधान के शब्दों का अर्थ लगाना विधिवेत्ताओं और न्यायालयों का कार्य है। परन्तु हमारी सरकार विशेष कर गृहमंत्री चह्वाण साहब बिना न्यायालय में गए ही किसी पर दोषारोपण कर बैठते हैं और उसे अनेकों प्रकार की धमकियां दी जाती हैं। चह्वाण साहब को याद रखना चाहिए कि प्रजातन्त्र शासन किसी व्यक्ति विशेष की चीज नहीं है। इसलिए शासक को आदर्श उपस्थित करना चाहिए ताकि भावी शासक उसी का अनुसरण करें।

इधर हाल ही में गुजरात में साम्प्रदायिक दंगा भड़क उठा। पहले तो सरकार मौन साधे बैठी रही परन्तु बाद में एकाएक वह भारतीय जनसंघ पर दोषारोपण करने लगी और जनसंघ के अनेकों कार्यकर्ताओं को बंदीगृह में डाल दिया गया। इसी बीच गृहमंत्री चह्वाण साहब प्रो० बलराज मधोक (भूतपूर्व अध्यक्ष) पर कानूनी कारवाई की धमकी देने लगे। कानूनी कारवाई का कारण दिल्ली एवं अहमदाबाद के आपत्तिजनक भाषण बताए गये हैं।

एक शासक के लिए भेदभाव की नीति को अपनाना उचित नहीं। कारण, उसकी दृष्टि में प्रत्येक नागरिक बराबर है भले ही वह शासक हो या किसी दल विशेष का सदस्य। परन्तु सर्वप्रथम वह भारत का नागरिक है और इस दृष्टि से वह कानून की नजरों में बराबर है। यह याद रखने की बात है कि

संविधान एवं भारतीय कानून की नजरों में सभी बराबर हैं। चाहे वह प्रधान मंत्री हो या कोई अन्य मंत्री या एक साधारण नागरिक। समानता ही प्रजातंत्र का मूल है। बिना इसके प्रजातंत्र सफल नहीं हो सकता।

अगर कोई व्यक्ति संविधान के विरुद्ध चलता हो, सार्वजनिक कानूनों का उल्लंघन करता हो, अपने भाषणों के द्वारा संप्रदायों में कटुता पैदा करता हो, तो ऐसे व्यक्तियों पर अवश्य ही कानूनी कारवाई होनी चाहिए। परन्तु कानूनी कारवाई का अर्थ यह न हो कि जो शासक है और जो शासक दल का प्रियपात्र है, वह भले ही हजारों गलतियां करे परन्तु चह्वाण साहब उसके ऊपर कोई कानूनी कारवाई नहीं करें। न्याय में भेदभाव की नीति नहीं रहनी चाहिए। क्या ए० के० गोपालन् और नम्बूदरीपाद कानून की दृष्टि में दोषी नहीं हैं, जिन्होंने खुलमखुल्ला भारतीय संविधान का अपमान किया। चह्वाण साहब उनके विषय में चूँ तक नहीं बोलते ? क्या जगजीवनराम भारतीय कानून से परे हैं जो कि सार्वजनिक सभाओं में हरिजनों को बलात् जमीन पर कब्जा करने के लिए प्रोत्साहन देते हैं। अभी हाल ही में पांचजन्य ने एक रहस्योद्घाटन किया है जिसके अनुसार माननीय समाजवादी मंत्री के जिम्मे आय कर का बकाया मात्र १,४२,००० रुपया ही है। क्या उन्होंने कानूनों का उल्लंघन नहीं किया ? प्रधानमंत्री उन्हें भुलक्कड़ कहती हैं। क्या एक अपराधी किसी अपराध से केवल यह कह कर बच सकता है कि मैं अमुक कानून नहीं जानता था। नहीं, यह कथन ठीक नहीं। कारण कानून की अनभिज्ञता किसी को अपराधी होने से नहीं बचाता। क्या चह्वाण साहब एवं वित्तमंत्री बताएंगे कि जगजीवन बाबू पर उन्होंने कौन-सा कारवाई की है ? अभी हाल ही में बैंक राष्ट्रीयकरण के विरोधियों को रक्षा उत्पादन मंत्री ने खुले आम सार्वजनिक सभा में (शायद जयपुर में) यह धमकी दी थी कि अगर बैंक राष्ट्रीकरण का विरोध किया गया तो खून की नदियां बह जाएंगी। क्या यह भाषण उत्तेजनात्मक नहीं है ? क्या इस पर गृहमंत्री ने कोई कारवाई की ? नहीं, कारण स्पष्ट है कि वे शासक दल के हैं और प्रधानमन्त्री के प्रियपात्र हैं।

अभी हाल ही में २९ अगस्त को हैदराबाद में मुसलमानों ने मारवाड़ियों के विरुद्ध नारे लगाये एवं पर्चे वितरित किए जो कि मारवाड़ियों के प्रति विद्वेष से भरे थे। उपमंत्री कुरेशी द्वारा पाकिस्तानियों को संरक्षण देना एवं पुलिस को कर्त्तव्य पालन में बाधा डालना क्या इसी को कानूनों का पालन कहते हैं ? कानून उपमंत्री श्री यूनुस सलीम साहब का शियायों को हिन्दुओं के विरुद्ध उभाड़ना क्या साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाना नहीं है ? मैं चह्वाण साहब से अनुरोध करता हूं कि वे साम्प्रदायिकता संबंधी भाषणों, नीतियों एवं लेखों

की परिभाषा हम भारतीयों को दें ताकि हम लोग भी समझ सकें कि आपत्ति-जनक भाषण क्या है ? संप्रदाय विशेष के धर्मगुरु शंकराचार्य जी के बारे में अनर्गल बातें करना क्या सम्प्रदाय विशेष की धार्मिक भावनाओं पर चोट करना नहीं है ? अगर किसी कांग्रेसी में हिम्मत है तो वह जरा मौलवियों के बारे में अनापशनाप बातें करें तो हम देखें कि उनमें कितनी हिम्मत है ।

अगर जनसंघ एवं इसके नेता साम्प्रदायिक हैं एवं आपत्तिजनक बातें करते हैं तो भारत सरकार को चाहिए कि उच्चतम न्यायालय में मुकदमा कर फैसला करा लें कि कौन साम्प्रदायिक है और कौन राष्ट्रभक्त । इसके साथ ही संसद है । संसद में ही वाद-विवाद के द्वारा तय कर लिया जाय कि भारतीय जनसंघ सांप्रदायिक पार्टी है या और कोई पार्टी । स्व० मुखर्जी साहब ने अनेकों बार नेहरू जी को इसके बारे में चुनौती दी थी; परंतु उन्होंने उस चुनौती को स्वीकार नहीं किया तो फिर आप किस मुंह से कहते हैं कि जनसंघ एवं इसके नेता संप्रदाय विशेष को मान्यता देते हैं एवं साम्प्रदायिक हैं ।

अगर वास्तव में जनसंघ दोषी है और जैसा कि कहा जाता है कि प्रत्येक दंगे में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ एवं जनसंघियों का हाथ रहता है तो सरकार आयोगों की रिपोर्ट क्यों नहीं प्रकाशित करती ताकि जनता भी समझ जाय कि कौन संप्रदायवादी है और किस के द्वारा दंगा कराया जाता है । रांची दंगा के लिए जो आयोग बना था (दयाल आयोग) क्या उसका प्रतिवेदन सरकार जनता के सामने लायेगी ?

अहमदाबाद का दंगा ही लिया जाय, जिसमें वहां के राज्यपाल ने स्वयं स्वीकार किया है कि उस दंगे में विदेशियों का हाथ था । राज्यपाल महोदय कांग्रेसी हैं, जनसंघी नहीं । क्या उनका अनुमान असत्य है ? कांग्रेसी सरकार तो कहती है कि यह संप्रदाय विशेष को खास तरजीह नहीं देती । क्या "अलफतह" को देशभ्रमण की अनुमति देना संप्रदाय विशेष को तरजीह देना नहीं है ? जब कि इसका विश्वास तोड़-फोड़ में है और वह एक देश के विरुद्ध प्रचार कर रहा है । क्या यह सम्प्रदाय विशेष को खुश रखने के लिए नहीं ?

अतः हमारा अनुरोध है कि भारत सरकार विशेषकर चह्वाण साहब भेदभाव की नीति का परित्याग करें और भारतीय संविधान एवं कानून की दृष्टि में सबों को समान समझें । भले ही वह व्यक्ति किसी दल विशेष का सदस्य हो या मंत्री । अगर उन्हें मधोक साहब के भाषणों से उतनी चिढ़ है तो वे कानूनी कारवाई करें परंतु सर्वप्रथम अपने सहयोगियों को न्यायालय के कटघरे में खड़ा करें जिन्होंने अनेकों बार विष वमन किया है और यह भार न्यायालय के ऊपर रहे और वही कहे कि कौन दल या व्यक्ति सांप्रदायिक है ।

श्री गुरुदत्त अभिनन्दन ग्रंथ

हिन्दी के लोक-प्रिय एवं प्रसिद्ध उपन्यासकार तथा लेखक वैद्य श्री गुरुदत्त जी इस वर्ष ८ दिसम्बर को अपने जीवन के प्रेरणाप्रद ७५ वर्ष पूर्ण कर रहे हैं। इस अवसर पर एक समारोह का आयोजन कर उन्हें एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने की योजना है।

साहित्य-पथ पर एकाकी बढ़ने वाले एवं सत्पथ से कभी विचलित न होने वाले, आदर्श तथा सिद्धान्त वादी और हिन्दुत्वनिष्ठ साहित्यकार श्री गुरुदत्त जी अब तक लगभग १२५ पुस्तकों का प्रणयन कर चुके हैं। उनसे प्रेरणा पाकर उनका पाठक-समुदाय समाज की उन्नति में सतत कार्यरत है। गुरुदत्त जी ने अपने सत्साहित्य द्वारा समाज को सुव्यवस्थित करने में सहयोग दिया है, और राजनीति को रजस् से रिक्त करने तथा देश को दलित होने की दुर्दशा से उभारने का प्रयास किया है।

५ खण्डों में विभाजित इस अभिनन्दन ग्रन्थ में सुहृज्जनों की शुभ कामनाओं एवं संस्मरणों के अतिरिक्त श्री गुरुदत्त जी के जीवन एवं कृतियों पर विशेष विशद लेखों के अतिरिक्त उपन्यास साहित्य के इतिहास, विविध विधायें एवं प्रचलित वादों पर प्रकाश डालने वाला अधिकारी विद्वानों के विशेष लेखों का एक पृथक् खण्ड निर्धारित किया गया है। इस प्रकार पाठक, चिन्तक, प्राध्यापक एवं शोधछात्र सभी के लिए समान रूपेण उपयोगी लगभग ४०० पृष्ठों के बड़े आकार के इस नयनाभिराम ग्रन्थ का मूल्य चालीस रुपये होगा।

परन्तु अभिनन्दन ग्रन्थ का अग्रिम आर्डर भेजने वालों को यह ग्रंथ केवल ३० रुपये में (डाक व्यय फ्री) भेजा जाएगा।

अग्रिम आर्डर निम्न पते पर भेजें—

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

हिन्दु अनाथालयों की नितान्त आवश्यकता

ब्र० विश्वनाथ जी

पूना जिले में रहने वाली चर्मकार समाज की पार्वती नामक एक युवति किसी मुसलमान युवक के भुलावे में आकर अपना गाँव छोड़ बम्बई आयी। और मुसलमान बन उसके साथ रहने लगी। मेहनतमजदूरी कर कष्टमय जीवन बीता रही यह युवति तीन बच्चों की मां बनी। इसी बीच उस मुसलमान युवक ने एक और शादी की जिससे पार्वती के छल-मुसीबतों की सीमा ही न रही।

पार्वती की दुर्दशा देख एक परधर्मीय प्राध्यापिका बहन ने उसे मसूराश्रम में जाने की सलाह दी। तदनुसार पार्वती अपने तीन बच्चों के साथ मसूराश्रम में शरणार्थी बन आयी। उसके दो बच्चों को (आयु ७ व ५) किसी अनाथालय में दाखिल करना आवश्यक था। बम्बई के अनाथालयों में उनकी व्यवस्था के लिए काफी कोशिश की गई किन्तु वहां के निबंध और तदर्थ आवश्यकता न्यायालयीन मान्यता एक अतिरिक्त मुसीबत बन बैठी। पार्वती के बम्बई स्थित रिश्तेदार, उनके जाति के लोगों से आवाहन किया गया कि वे संकट के समय अपनी बहन की सर्वतोपरी मदद करें। लेकिन हिन्दु समाज के लोग वे किसी भी जाति और समाज के क्यों नहीं—वे तो स्नेहसम्मेलन-प्रीतिभोज गोष्ठी अपने अपने जाति के मन्त्रियों के सन्मान समारोहों में मशगुल रहते हैं। उपरोक्त-प्रकार की जिम्मेदारी निभाने का जब प्रसंग आता है तो ये ही समाज के नेता-अधिकारी कोई-न-कोई बहाना बनाकर रफू हो जाते हैं। इसका अनुभव आश्रम के लिए कोई नई चीज नहीं है। अन्ततः काफी दौड़ करने के उपरान्त आर्य समाजी मित्रों के सहयोग से बच्चों की व्यवस्था हो सकी। पार्वती को प्राय-श्चित्त देकर विधिवत् पुनश्च हिन्दु धर्म में सम्मिलित कर लिया गया है। तथा उसकी इच्छानुसार अब हिन्दु बस्ती में उसकी रहने की व्यवस्था की गई है जहाँ वह मजदूरी कर स्वावलम्बी जीवन जी रही है।

उपरोक्त प्रकार के कई प्रकरण मसूराश्रम के आते रहते हैं। जिससे एक स्वतंत्र हिन्दु अनाथालय की आवश्यकता तीव्रता से महसूस होने लगी है। हिन्दु धर्म एवं संस्कृति के स्वाभिमानी तथा समाज के रक्षयेच्छु व्यक्ति एवं धनी लोग यदि अनाथाश्रम हेतु जगह धन आदि की व्यस्था करें तो आश्रम इसे अच्छी तरह से चलाकर यहां के बालक-बालिकाओं को सक्षम धार्मिक-सांस्कृतिक कार्य-कर्त्ता बन सकेगा। अतः धर्म एवं संस्कृति प्रिय जनता परिस्थिती की गंभीरता को सोचकर अपना कर्तव्य शीघ्रातिशीघ्र निभावें ऐसी विनती है।

श्री गुरुदत्त की बहुचर्चित एवं बहुप्रशंसित रचना

जवाहरलाल नेहरू एक विवेचनात्मक वृत्त

का नया संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण

भारत गांधी नेहरू की छाया में

छपकर तैयार है। नेहरू की स्वरचित जीवनी, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, श्री एन० वी० गाडगिल, महात्मा गांधी की जीवनी लिखने वाले श्री प्यारेलाल तथा अन्य प्रमुख लेखकों की रचनाओं में से लगभग २५० उद्धरणों के आधार पर यह पुस्तक लिखी गयी है तथा राजनीति में रुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी है। मूल्य पाकेट संस्करण केवल ३.००

समाजवाद एक विवेचन

समाजवाद क्या है? धर्म क्या है? धर्मवाद क्या है? क्या दोनों में समन्वय हो सकता है? मूल्य १.००

गांधी और स्वराज्य

देश की राजनैतिक अधोगति क्यों हुई? क्या स्वराज्य गांधी जी की करनी से मिला है? मूल्य १.००

भारत में राष्ट्र

भारत में राष्ट्र कौन सा है? हिन्दू की परिभाषा क्या है? हिन्दू के लक्षण तथा हिन्दू राष्ट्र की विवेचना। मूल्य १.००

धर्म संस्कृति और राज्य मूल्य ८.००

धर्म तथा समाजवाद मूल्य ६.००

श्रीमद्भगवद्गीता एक विवेचन मूल्य १५.००

प्राप्ति स्थान

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०/९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)

नई दिल्ली-१

भारतीय संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा सम्पादित एवं शक्तिपुत्र मुद्रणालय, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।